हिन्दी व्याख्या के व्याख्याता

श्री स्वामी शान्तिधर्मानन्द सरस्वती

सत्यं साधना कुटीर

वार्ड नं 3, डाकः कैलास गेट, मुनि की रेती,

ऋषिकेश, तहसीलः नरेन्द्रनगर, जिलाः टिहरी गढ़वाल,

उत्तराखण्ड. पिनः 249137. चलदूरभाषः 9557130251

ॐ

यति दण्ड ऐश्वर्य विधानम्

1

ॐ

यतिदण्ड ऐश्वर्यविधानम्

(प्रथम खण्ड)

(दण्ड-पिण्ड-ब्रह्माण्ड-श्रीचक्र और ॐ की एकता)

दण्ड

दण्ड

पिण्ड

हिन्दी व्याख्याता

स्वामी शान्तिधर्मानन्द सरस्वतीजी

ब्रह्माण्ड

विद्यागुरु

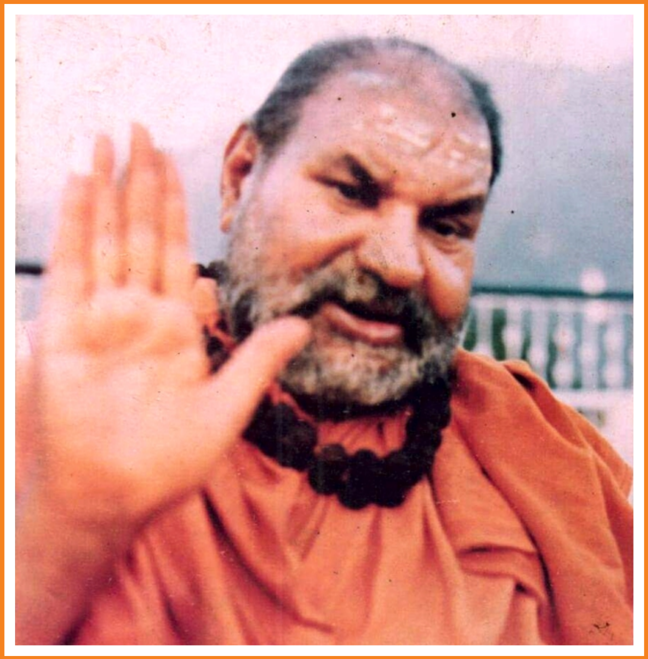

स्वामी हरिहर तीर्थ जी महाराज

स्वामी रामानन्द सरस्वती जी महाराज

दीक्षागुरु

दादा गुरु - स्वामी शिवानन्द सरस्वती जी महाराज

संन्यास दीक्षागुरु - स्वामी सत्यानन्द सरस्वती जी

।।ॐ श्रीसद्गुरवे नमः।।

जगद्गुर्वाद्यशंकराचार्यप्रणीतः

यतिदण्डैश्वर्यविधानपद्धतिः

(विषय- श्रीयन्त्र, दण्ड, पिण्ड और ब्रह्माण्ड की एकता सहित पूजापद्धति और समस्त महाषोढान्यास)

प्रथमखण्डः

हिन्दीव्याख्याकारः

स्वामी शान्तिधर्मानन्द सरस्वती

सत्यं साधना कुटीर

वार्ड नं 3, डाकः कैलास गेट, मुनि की रेती,

ऋषिकेश, तहसीलः नरेन्द्रनगर, जिलाः टिहरी गढ़वाल,

उत्तराखण्ड. पिनः 249137. चलदूरभाषः 9557130251

ग्रन्थ का नामः यतिदण्डैश्वर्यविधानपद्धतिः।
प्रकाशकः सत्यं साधना कुटीर।

© सर्वाधिकारः प्रकाशकाधीनः।

प्रथमावृति : 500.

चैत्र शुक्ल पक्ष प्रतिपदा, वि.सं. 2078; 13-4-2021.

संपादकगण : स्वामी सर्वेशानन्द सरस्वती,
पं ज्योतिप्रसाद उनियाल।

प्राप्ति स्थान :

सत्यं साधना कुटीर,
वार्ड नं 3, डाकः कैलास गेट, मुनि की रेती,
ऋषिकेश, तहसीलः नरेन्द्रनगर, जिलाः टिहरी गढ़वाल,
उत्तराखण्ड. पिनः 249137. चलदूरभाष् : 9557130251.
ईपत्रः swsdsr@gmail.com
Web: www.satyamsadhana.org

मूल्य : रु. 500/-

मुद्रक : सेमवाल प्रिंटिंग प्रेस, रेलवे रोड, ऋषिकेश.

श्रीमन्निखिलमहीमण्डलाचार्यचक्रचूडामणीनां सर्वतन्त्रस्व- तन्त्राणां यतिपतिभास्करप्रभृतिविविधविरूदावलीविभूषितानां राजराजेन्द्र-समभ्यर्चित-चरणारविन्दानामद्वैतमत-प्रवर्तक-जगद्‌गुरु-भगवत्पादश्रीशङ्कराचार्य संस्थापित-श्रीगोवर्धनपीठाधीश्वराणाम् अनन्तश्रीविभूषित-श्रीनिरञ्जनदेव-तीर्थस्वामिचरणानाम्

शुभाशीर्वादः

मायिकेऽस्मिन्निखिलेऽपि प्रपञ्चे देहाद्युपकरणसंघाताभिमानिनोऽन्तःकरणावच्छिन्नस्य जीवाभिधानस्य चैतन्यस्य ब्रह्मानन्दात्मस्वरूप लाभ एव परमं प्रयोजनमिति तदवाप्तये भगवत्पादैराद्यशङ्कराचार्यवर्यैरस्ति काचन साधना सरणिरुपदिष्टा। तत्र ते भूयांसि ग्रन्थरत्नानि प्रणिन्यिरे। तेष्विदं **'यतिदण्डैश्वर्य विधानम्'** वैशद्येन हृदयग्राहि - तया च साधनाया उच्चतमभूमिकां निर्वोढुं सक्षमं सत् सर्वमूर्धानमधिरोहति। अत्र दण्ड-पिण्ड-ब्रह्माण्ड-श्रीयन्त्राणामेकत्वं प्रति पादितम्। 'परोक्षप्रिया हि देवाः'- इति नैगमिकं 'सङ्केतविद्या गुरुवक्त्रगम्या '- इति चागमिकं सिद्धान्तं भगवत्पादाः पदे पदे प्रत्यपीपदन्।

विभूति-तत्त्व-साधना-सिद्धिश्चेति पादचतुष्टयात्मकस्यास्य रहस्यं सद्‌गुरुचरणाश्रयपुरस्सरमध्ययनेनैव बोधविषयीभविष्यति। योगविद्यायाः श्रीविद्यासपर्यायाश्च प्रासंगिकतत्त्वानां यादृक्षं वैशद्यमत्र प्रत्यपीपदन् भगवत्पादास्तादृक्षं नान्यत्र कुत्रापि सारल्येनावगन्तुं शक्यमित्यस्य ग्रन्थस्य महिमातिशयः। ग्रन्थरत्नमिदं यावज्जीवं नैकविधतन्त्रान्वेषणप्रवणेन मूर्खारण्योपाह्व-श्रीविद्यारण्य स्वामिना (कश्चिदाधुनिकेन) महता श्रमेण नेपालदेशादानीतमिति - तदर्थ श्रीस्वामिमहोदयः सर्वथा साधुवादार्हः। तथाचायं ग्रन्थो न केवलं यतीनामेवोपयोगी, अपि तु तन्त्रागमश्रीविद्या मर्मबुभुत्सूनामपि कृतेऽवश्यमुपयोगमावहेदित्यतो हेतोः प्रकाशितोऽयं ग्रन्थः साधकानां हिताय लोककल्याणाय च भवेदित्यकारणकरुणा वरुणालयं भगवन्तं श्रीचन्द्रमौलीश्वरमभ्यर्थयते -

आद्यशंकराचार्यजयन्ती
वैशाख शुक्ल पंचमी बुधवासरः **श्रीनिरंजनदेवतीर्थस्वामी**
वैक्रमाब्धः 2043, 14.5.1986.
जगन्नाथपुरी, उड़ीशा.

।।भगवान् श्री चन्द्रमौलीश्वर का विजय हो।।

महामाया से सृष्टि इस सम्पूर्ण प्रपंच में देहादि उपकरणों के अभिमानी अन्तःकरण से सीमित 'जीव' नाम से कहे गये चैतन्य का ब्रह्मानन्द रूपी अपना स्वरूपलाभ ही परम प्रयोजन है। उसके प्राप्ति के लिये भगवत्पाद आद्यशंकराचार्य द्वारा उपदिष्ट कुछ साधनपद्धति है। इस विषय में उन्होंने बहुत सारे ग्रन्थों की रचना की। उनमें से यह है - 'यमतिदण्डै वर्यविधानम्' जो की अत्यन्त विशद् और सरलता से हृदयग्राही होने के कारण साधना के सर्वोच्च भूमिका को निभाने में सक्षम होते हुए सर्वोपरि स्थान को प्राप्त किया है। इस ग्रन्थ में दण्ड-पिण्ड-ब्रह्माण्ड और श्रीयन्त्र की एकत्व को प्रतिपादन किया गया है। 'परोक्षप्रिय ही देवता होते हैं'। हम वैदिकसिद्धान्त और 'संकेतविद्या गुरुमुख से ही प्राप्त किया जाता है' इस आगमिक सिद्धान्त को भगवत्पाद आचार्यशंकर हर प्रसंग में प्रतिपादन किये हैं।

विभूति-तत्त्व-साधना और सिद्धि नाम के चार पादों वाला तथा अत्यन्त रहस्यात्मक होने से गुरुजनों के शरण में रहकर अध्ययन करके ही जानने योग्य विषय वाला यह ग्रन्थ है। योगविद्या और श्रीविद्या की पूजा के प्रासंगिकतत्वों का जिस प्रकार विशदरूप से यहाँ प्रतिपादन करते हुए आचार्य शंकर जी किये हैं उस प्रकार अन्यत्र कहीं भी सरलतापूर्वक ज्ञान होना सम्भव ही नहीं- यही इस ग्रन्थ की महिमातिशय है। इस ग्रन्थरत्न को सम्पूर्णजीवन ही अनेकविधशास्त्र का ही अन्वेषण में लगे रहे 'मूर्खारण्य' उपनामवाले (आधुनिक) श्री विद्यारण्यस्वामी (पंचदशी आदि ग्रन्थकर्ता नहीं) बहुत परिश्रम करके नेपाल देश से लाये हैं - अतः वे सर्वथा भूरिशः साधुवाद के पात्र हैं। इसलिये यह ग्रन्थ केवल संन्यासियों के लिये ही नहीं अपितु तन्त्र, आगम योग और श्रीविद्या का मर्म के जिज्ञासुओं के लिये भी अत्यन्त उपयोगी हाने के कारण इस ग्रन्थ का प्रकाशन साधकों का हित और लोककल्याण के लिये होवे-ऐसे मैं अहैतुकीकरुणा से परिपूर्ण भगवान श्री चन्द्रमौली वर से प्रार्थना करता हूँ।

श्री निरंजनदेव स्वामी

आद्यशंकराचार्य जयन्ती
वैशाख शु0 5 बुधवार
वैक्रमाब्ध : 2043, पुरी

श्रीहरिः

श्रीगणेशाय नमः

'**मुखजानामयं धर्मो यद्विष्णोर्लिङ्गधारणम्।**' इस देवलवचन के अनुसार चारों आश्रमों में अधिकृत ब्राह्मणों का यह धर्म है कि कर्म और भोग में प्रीति तथा प्रवृत्ति की निवृत्ति होने के अनन्तर भगवान् विष्णु के प्रतीक दण्ड को विधिवत् धारण करें। दण्ड जहाँ संयत जीवन का प्रेरक है; वहाँ श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन के द्वार से सच्चिदानस्वरूप ब्रह्मात्मतत्त्व के एकत्वका द्योतक है। नारदपरिव्राजकोपनिषत् तथा सन्यासोपनिषदादिके अनुशीलन से; तद्वत् भगवत्पाद श्रीशिवावतार शङ्कराचार्य - महाभागविरचित '**यतिदण्डैश्वर्यविधानम्**' के अध्ययन से विष्णुलिङ्ग यतिदण्ड के प्रकार, प्रकल्प, पूजन तथा प्रभाव का सम्यग्बोध सुखेन सम्भव है।

ध्यान रहे; देवता का कारण शरीर मन्त्र है तथा स्थूल शरीर यन्त्र है। विष्णुलिङ्गसंज्ञक ब्रह्मदण्ड मन्त्र, तन्त्र तथा यन्त्रात्मक सिद्ध है। अक्षरालम्बन से अक्षरसंज्ञक उपास्यदेवका निरूपक और उनके प्रति सर्वतोभावेन सम्पर्क **मन्त्र** है। उपास्य देवके स्वरूप, स्वभाव, प्रभाव, नाम, रूप, कर्म तथा स्थान का प्रतिपादक जहाँ **तन्त्र** है; वहाँ उपास्यकी समर्चा के प्रकार का तथा समर्चक के देहेन्द्रियप्राणान्तःकरण में दिव्यता का आधायक भी **तन्त्र** है। उपास्य देव और उनके मन्त्र तथा तन्त्र का उद्दीपक **यन्त्र** है।

'**सुचक्राय स्वाहा**' (त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ७), '**सहस्रार हुँ फट्**' (वनदुर्गोपनिषत्, सुदर्शनकवच)- श्रीविष्णु के आयुधरूप सुदर्शनमन्त्रगत षडक्षरात्मक षड्ग्रन्थि से सम्पन्न **सुदर्शन** - संज्ञक दण्ड है।

'**ॐ नमो नारायणाय**' (त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ७) - इस अष्टाक्षर नारायणमन्त्रात्मक अष्टग्रन्थि से सम्पन्न **नारायण** - नामक दण्ड है।

'**गोपीजनवल्लभाय नमः**' (त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ७) - इस दशाक्षर गोपालमन्त्रात्मक दश - ग्रन्थि से सम्पन्न **गोपाल**- नामक दण्ड है।

'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' (त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ७) – इस द्वादशाक्षर वासुदेवमन्त्रात्मक द्वादशग्रन्थि से सम्पन्न **वासुदेव**–संज्ञक दण्ड है।

'ॐ नमो भगवते महासुदर्शनाय हुं फट्' (त्रिपाद्विभूति–महानारायणोपनिषत् ७) – और **'ओमनन्ताय नमः'** (त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ७) की विधा से उद्भासित **'ॐ नमो भगवते महानन्ताय हुं फट्'**– इस चतुर्दशाक्षर अनन्तमन्त्रात्मक चतुर्दश – ग्रन्थि से सम्पन्न **अनन्त** –नामक दण्ड है। तद्वत् **'ॐ नमो भगवते महासुदर्शनाय'** (त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ७) और 'ॐ **सङ्कर्षणाय नमः**' (त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ७) का युग्मरूप 'ॐ **नमो भगवते महासङ्कर्षणाय**' – इस चतुर्दशाक्षर अनन्तसंज्ञक सङ्कर्षणमन्त्रात्मक चतुर्दश – ग्रन्थि से सम्पन्न **अनन्त** – नामक दण्ड है।

यतिदण्डगत ब्रह्ममुद्रा तन्त्रप्रधान है तथा श्रीचक्रात्मिका परशुमुद्रा यन्त्र प्रधान है। उक्त विधा से दण्ड की मन्त्र, तन्त्र, यन्त्रात्मकता सिद्ध है। स्थूल शरीर की चक्रात्मक यन्त्ररूपता, सूक्ष्म शरीर की तन्त्रात्मकता तथा कारण शरीर की मन्त्रात्मकता सिद्ध है।

अष्ट दिक्, दश दिक्, षड्–ऋतु, द्वादश मास, चतुर्दश भुवन का द्योतक दण्ड – प्रभेद है। ऋतु तथा मास की कालरूपता सिद्ध है। भुवन की वस्तुरूपता सिद्ध है। इस प्रकार; सर्वकाल, सर्व वस्तु – समवेतात्मक यतिदण्ड सिद्ध है।

इतना ही नहीं; ब्रह्ममुद्रा ब्रह्मा का तथा परशुमुद्रा हरिहर का युग्म रूप है। अत एव सर्वदेवात्मक भी यतिदण्ड सिद्ध है।

मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और तालु – संज्ञक कण्ठपर्यन्त षट्चक्र शक्तिस्थान हैं। भ्रूचक्र, आज्ञाचक्र, ब्रह्मरन्ध्रस्थ सहस्रदल निर्वाणचक्र और मूर्धान्त षोडशदल आकाशचक्र पर्यन्त शाम्भव स्थान हैं।

योगचूडामण्युपनिषत् के अनुसार मूलाधार चक्र चतुर्दल है, स्वाधिष्ठान षड्दल है, मणिपूरक नाभिचक्र दशदल है, अनाहत हृदयचक्र द्वादशार है, विशुद्ध चक्र षोडशार है। विवक्षावशात् सौभाग्य लक्ष्म्युपनिषत् तथा ध्यान बिन्दू पनिषत् के अनुसार हृदय चक्र अष्टदल है। अत एव षड्ग्रन्थि सम्पन्न यतिदण्ड षड्दल स्वाधिष्ठानात्मक है और इसके उद्भासक आराध्यदेव सुदर्शन हैं, अष्टग्रन्थि सम्पन्न यदिदण्ड अष्टदल अनाहतात्मक है और इसके उद्भासक आराध्य देव नारायण हैं, दशग्रन्थि सम्पन्न यतिदण्ड दशदल मणिपूरकात्मक है और इसके उद्भासक आराध्यदेव गोपाल हैं, द्वादशग्रन्थि सम्पन्न यतिदण्ड द्वादश दल अनाहतात्मक है

और इसके उद्भासक आराध्यदेव नारायण हैं, दशग्रन्थि सम्पन्न यतिदण्ड दशदल मणिपूरकात्मक है और इसके उद्भासक आराध्य देव गोपाल हैं, द्वादश ग्रन्थि सम्पन्न यतिदण्ड द्वादश दल अनाहतात्मक है और इसके उद्भासक आराध्य देव वासुदेव हैं। अनाहत और आज्ञा का युग्म रूप चतुर्दश दलात्मक यतिदण्ड अनन्त का प्रतीक है।

चक्र और मुद्रा के साहचर्य की दृष्टि से श्रीयन्त्रात्मक श्रीचक्र तथा योनि मुद्रा की युग्मरूपता सिद्ध है। ध्यान रहे; देहमध्यगत वह्नि है। वह्निमध्यगत द्युति है। द्युतिमध्यगत दीप्ति है। दीप्तिमध्यगत सोम है। सोमस्थ परम शोभन श्रीचक्र है। श्रीचक्रस्थ बिन्दु है। बिन्दुमध्यगत मन है। मनोमध्यगत नाद है। नादमध्यगत कला है। कलामध्यगत जीव है। जीवमध्यगत चित्स्वरूपिणी पराशक्तिस्वरूप परमात्मा है। जीवात्मा और परमात्मा का निरुपाधिक स्वरूप एक है। जीव, जगत् तथा जगदीश्वररूप विभेद में हेतुभूता ब्रह्मशक्ति-प्रकृतिरूपा माया की अनिर्वचनीयता के कारण जीव, जगत् तथा जगदीश्वर की ब्रह्मरूपता सिद्ध है-

देहमध्यगतो वह्निर्वह्निमध्यगता द्युतिमध्यगता दीप्तिर्दीप्तिमध्यगतः शशी।।
शशिमध्यगतं देव्याश्चक्रं परमशोभनम्। तन्मध्ये च गतो बिन्दुबिन्दुमध्यगतं मनः।।
मनोमध्यगतो नादो नादमध्यगताः कलाः। कलामध्यगतो जीवो जीवमध्यगता परा।
जीवः परः परो जीवः सर्वं ब्रह्मेति भावयेत्।। (वनदुर्गोपनिषत्)

अभिप्राय यह है कि मूलाधार से आकाश पर्यन्त शिवशक्तिनिकेत दशचक्रात्मक स्थूलदेह यतिदण्ड है। स्थूलदेह इन्द्रिय, प्राण और अन्तःकरणात्मक लिङ्गशरीर का अभिव्यञ्जक संस्थान है। नाद-बिन्दु-कला का अभिव्यञ्जक लिङ्गदेह जीवाधिष्ठित अग्नि, सूर्य और सोमादि-संज्ञक अधिदैव से उद्भासित है। अग्न्यादि अधिदैव जीव से उद्भासित हैं। जीव निज बिम्बभूत जगदीश्वर से उद्भासित है। जीवेश्वर का निरुपाधिक मौलिक स्वरूप ब्रह्म स्वशक्तिभूता प्रकृति रूपा माया के योग से सर्वरूपों में उल्लसित है।

उपर्युक्त विधा से अग्नि में सोम की, सोम में श्री चक्र की तथा श्री चक्र में परोपरीयक्रम बिन्दु, मन, नाद, कला, जीव और शिव की प्रतिष्ठा सिद्ध है। प्रकारान्तर से यह तथ्य भी सिद्ध है कि वह्निभावापन्न सूर्यात्मक बिन्दु है। सोमभावापन्न नाद है। ध्रुवभावापन्न कला है। कलातीत शान्त जीव है और शान्तातीत परंब्रह्म है-

बिन्दुनादकलाज्योतीरवीन्दुध्रुवतारकम्।
शान्तं च तदतीतं च परं ब्रह्म तदुच्यते।।

(योगशिखोपनिषत् ६.६६)

प्रकारान्तर से नादकी दिग्रूपता, बिन्दुकी वस्तुरूपता तथा कला की कालरूपता सिद्ध है। '**अग्निर्यस्मान्नादः प्रजायते**' (योगशिखोपनिषत् ५.३०) के अनुशीलन से यह तथ्य सिद्ध है कि नाद अग्निसमुद्भूत है। नाद में मनोलय के अमोघ प्रभाव से दिग्देव से उद्भासित श्रोत्र से दूरश्रवण सम्भव है। समानवाचोयुक्ति से बिन्दु सूर्यसमुद्भूत है। बिन्दु में मनोलय के अमोघ प्रभाव से वास्तुदेव सूर्य से उद्भासित नेत्र से दूरदर्शन सम्भव है। तद्वत् कला सोमसमुद्भूत है। कला में मनोलय के अमोघ प्रभाव से मन के अधिदैव सोम से उद्भासित मन से त्रिकाल ज्ञान सम्भव है। यथा–

नादे मनोलयं ब्रह्मन्दूरश्रवणकारणम्।
बिन्दौ मनोलयं कृत्वा दूरदर्शनमाप्नुयात्।।
कलात्मनि मनोलीनं त्रिकालज्ञानकारणम्।

(योगशिखोपनिषत् ५.४७,४८)

प्रकारान्तर से यह तथ्य भी सिद्ध है कि देहरूप श्रीचक्र है। विष्णुभावापन्न अग्नि से उद्दीप्त नेत्र के द्वारा जीव बाह्याभ्यन्तर नाद का उद्भावक सिद्ध है। ब्रह्मभावापन्न सूर्य से उद्दीप्त प्राण के द्वारा जीव बाह्याभ्यन्तर नाद का उद्भावक सिद्ध है। ईशभावापन्न चन्द्र से उद्दीप्त मनोरूप चित्त के द्वारा जीव बाह्याभ्यन्तर कला का उद्भावक सिद्ध है–

मनश्चन्द्रो रविर्वायुर्दृष्टिरग्निरुदाहृतः ।
बिन्दुनादकलाब्रह्मन् विष्णुब्रह्मेशदेवता।।

(योगशिखोपनिषत् ६.७०)

वायुं बिन्दुं तथा चक्रं चित्तं चैव समभ्यसेत्।

(योगशिखोपनिषत् ६.७५)

ध्यान रहे; मूलाधार में सन्निहित बिन्दुरूपा बीजात्मिका वाक् की **परा**–संज्ञा है। पर वाक् से समुत्थित अङ्कुरात्मिका ओङ्कारसंज्ञक नाद की **पश्यन्ती** – संज्ञा है। हृद्गत गर्जनायुक्त पर्जन्यसन्निभ वाक् की **मध्यमा** संज्ञा है। स्वसंज्ञक प्राण के योग से ताल्वादिस्थानसमुद्भूत अकारादिक्षकारान्त अक्षर, पद तथा वाक्य की कलात्मिका **वैखरी** संज्ञा है।

इस प्रकार : शब्दब्रह्म और परब्रह्म के युग्म रूप का प्रतीत यतिदण्ड है। '**दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम्**' (श्रीमद्भगवद्गीता १०.

३८)– इस गीतावचन के अनुशीलन से यह तथ्य सिद्ध है कि नीति तथा युक्तिपूर्वक इन्द्रियदमन तथा शमन दण्डग्रहण का प्रयोजन है। पञ्च ज्ञानेन्द्रियों के सहित मन– इन छह को; पञ्च ज्ञानेन्द्रियों के सहित मन, अहं, बुद्धि – इन आठ को, पञ्च कर्मेन्द्रियों के सहित पञ्च ज्ञानेन्द्रिय – संज्ञक दसको, दस इन्द्रियों के सहित मन और बुद्धिरूप – बारह को, दस इन्द्रियों के सहित मन, बुद्धि, चित्त तथा अहङ्कार रूप चौदह को अर्थात् करण ग्राम को संयम करने की भावना से दण्डग्रहण विहित है। तद्वत् लोकसंग्रह की भावना से तत्त्वज्ञ ब्राह्मण परिव्राजक के लिए दण्डग्रहण विहित है–

'यदा तु विदितं तत्त्वं परं ब्रह्म सनातनम्। तदैक दण्डं संगृह्य सोपवीतां शिखां त्यजेत्।।' (नारदपरिव्राजकोपनिषत् ३.१७),

'कौपीनं दण्डमाच्छादनं च स्वशरीरोपभोगार्थाय लोकस्यैवोकारार्थाय च परिग्रहेत्।' (परमहंसोपनिषत्)

विष्णुस्वरूप यतिदण्ड का त्याग सर्वथा अनुचित है–

'विधृतं विष्णुलिङ्गं त्यजन्न शुद्ध्येत्' (शाट्यायनीयोपनिषत् २६)

कार्तिकेयाधिदैवत षड् – ग्रन्थ सम्पन्न यतिदण्ड श्री और आरोग्यप्रद सिद्ध है। वस्वष्टक – अष्टमात्राधिदैवत – अष्टमुख यतिदण्ड गङ्गाप्रीतिकर सिद्ध है। यमदैवत दशमुख यतिदण्ड शान्तिजनक सिद्ध है। द्वादशादित्यरूप द्वादशमुख यतिदण्ड महाविष्णुसायुज्यप्रद है। सर्वदैवत चतुर्दशग्रन्थिसम्पन्न यतिदण्ड सर्वव्याधिहर सर्वदारोग्यप्रद सिद्ध है।

भगवत्पाद श्रीशिवावतार शङ्कराचार्य – महाभाग –विरचित **'यतिदण्डैश्वर्यविधानपद्धतिः'** के हिन्दी व्याख्याकार स्वामी शान्तिधर्मानन्द सरस्वती जी का सत्प्रयास सर्वथा सराहनीय है। भगवान् श्रीहरिहर के अनुग्रह से ग्रन्थ परमोपयोगी सिद्ध हो, ऐसी भावना है।

स्वामी निश्चलानन्दसरस्वती

श्रीमज्जगद्गुरु – शङ्कराचार्य – पुरीपीठ

आश्विन – कृष्ण – अष्टमी . वि.स. २०७७

भूमिका

लेखक – परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्री 108 श्रीविद्यारण्यस्वामीजी महाराज
(यह पंचदशीकार नहीं किन्तु कोई अन्य सन्त जिनका उपनाम– श्रीमूर्खारण्यजी महाराज था)

प्रस्तुतग्रन्थ '**यतिदण्डैश्वर्यविधानम्**' भगवान् आद्यशंकरविरचित एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। आचार्यश्री की उपलब्धकृतियों में यह अबतक अज्ञात था। यह किसी अन्य ग्रन्थ का भाष्य न होकर सर्वथा मौलिक एवं स्वतन्त्र रचना है। जो पिण्ड, ब्रह्माण्ड और दण्ड के रचना – रहस्यों का उद्घाटन कर योग और मन्त्र के समन्वित स्वरूप द्वारा अभिनव साधना का पथ प्रशस्त करता है। इस ग्रन्थ का श्रीगणेश 2612 गतकलि तदनुसार विक्रमपूर्व 431 में ज्योतिर्मठ में हुआ किन्तु समापन 2613 गतकलि में रुद्रगाढेश्वर (नेपाल) में सम्पन्न हुआ।

भारतीय पुरातन वाङ्मय में योग और तन्त्र का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि लक्ष्य और उपलब्धि की दृष्टि से दोनों समान है तथापि योग की अपेक्षा तन्त्र का लोकपरक पक्ष उसकी अपनी विशेषता है। हमारा तान्त्रिक वाङ्मय आज खण्डित और विशृंखल रूप में ही उपलब्ध है। अनेक साधक और मनीषी आज भी इन लुप्त कड़ियों के अन्वेषण में सतत लगे हुए हैं।

भगवान् आद्यशंकर के आविर्भाव ने भारतदेश को आध्यात्मिक अखण्डता प्रदान की। उनका अल्पकालिक जीवन मानवजीवन की बहुमुखी दिशाओं के द्वार खोल गया। योग और तन्त्र की दिशा में आद्यशंकर ने जो उपलब्धियाँ मानव जाति को प्रदान की है वे अत्यन्त दिव्य और पावन है।

प्रस्तुतग्रन्थ '**यतिदण्डैश्वर्यविधानम्**' की उपलब्धि हिमालय के प्रदेश विशेष में हुई। भगवान् आद्यशंकर ने इस ग्रन्थ की रचना भारत में आरम्भ की थी। उन्हीं दिनों नेपाल यात्रा का प्रसंग उपस्थित होने पर वे नेपाल प्रस्थान कर गये। इस ग्रन्थ की सम्पूर्ति नेपाल–निवास काल में हुई। कालान्तर में राजसत्ता की अस्थिरता और देश को पराधीनता आदि अनेक ऐसे कारणों से अन्वेषण के अभाव में यह ग्रन्थ अबतक अप्रकट एवं अज्ञात ही रहा।

अपने मूलरूप में यह ग्रन्थ ब्रह्मलिपि में था। कालान्तर में यह विविध लिपियों में रूपान्तरित होता रहा। ब्राह्मीलिपि से यह 'लिच्छवि' लिपि में आया। तत्पश्चात् अन्य लिपि में रूपान्तरित हुआ। उसी लिपि से वर्तमान रूप में यह ग्रन्थ प्रथमबार देवनागरी लिपि में लिपिबद्ध हुआ।

आद्यशंकर और नेपाल

आद्यशंकर ने गतकलि संवत् 2613 में नेपाल की यात्रा की। वे लगभग 1 वर्ष नेपाल में निवास कर गतकलि संवत् 2614 में भारत लौटे। आचार्यश्री के नेपाल आगमन से पूर्व नेपाल के राजा वृषभदेव नवप्रचलित बौद्ध और जैन धर्म से अत्यधिक प्रभावित हो गये थे। फलस्वरूप नेपाल में वैदिकधर्म का ह्रास चिन्तनीय स्थिति में पहुंच चुका था। आचार्यश्री के नेपाल आगमन के पश्चात् ही राजा वृषभदेव पुनः शैव धर्म में प्रतिष्ठित हुए। भगवान् पशुपतिनाथ के मन्दिर एवं अन्य कई दिव्य क्षेत्रों का पुनरुद्धार हुआ। शास्त्रार्थों में अनेक बौद्ध एवं जैन धर्म के आचार्यों का पराभव हुआ। इस आवासकाल में आचार्यश्री द्वारा अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रणयन भी हुआ जिनमें से आज अधिकांश कालकवलित हो चुके हैं। भगवान् पशुपतिनाथ का पूजा विधान आज भी आचार्यश्री द्वारा निर्धारित रीति से सम्पन्न हो रहा है।

यह भी उल्लेख मिलता है कि राजा वृषभदेव को कोई सन्तान नहीं थी। आचार्यश्री के आशिर्वाद के फलस्वरूप युधिष्ठिर संवत् 2614 में उन्हें पुत्र रत्न की उपलब्धि हुई। राजा ने अपने इस पुत्र का नाम अपने गुरु के आशीर्वाद से प्राप्त प्रसाद के कारण 'शंकरदेव' रखा।

नेपालस्थित स्वयम्भू लिङ्ग ही चैत्य है। सत्ययुग में देवतागण इसका पूजन करते थे। बाणासुर के पुत्र महेन्द्र द्वारा कच्छपासुर के वध के पश्चात् इसकी गोपुच्छ से पूजा होने लगी। सूर्यवंशी राजा वृषभदेव ने जब शैवधर्म का परित्याग कर बौद्धधर्म अपना लिया तो उन्होंने शान्तशील भिक्षु के निर्देशानुसार इस स्वयम्भूलिङ्ग को गतकलि संवत् 2600 में चैत्य के रूप में परिवर्तित कर दिया। इसके उपरान्त राजा के परामर्श से शान्तिकरवज्राचार्य ने उपर्युक्त पर्वतीय क्षेत्र को समतल कराकर आवासीय भूमि का रूप दिया। जहां आज भी बौद्ध लोगों का प्रमुख आवास है। सूर्यवंशी राजा प्रतापमल के समय में इस क्षेत्र में वसुपुर, वरुणपुर, अग्निपुर, वायुपुर और समरपुर नामक पंचपुरी स्थापित की गई।

भगवान् आद्यशंकर के नेपाल आगमन से राजा वृषभदेव जब पुनः शैवधर्म में दीक्षित हुए तब आद्यशंकर की प्रेरणा से राजा वृषभदेव के द्वारा उपर्युक्त चैत्य में ही स्वयम्भूलिङ्गकी पुनः प्रतिष्ठा की गई, जो अब तक विद्यमान है।

आद्यशंकर का काल निर्णय

नेपाल में '**यतिदण्डैश्वर्यविधानम्**' की उपलब्धि के साथ-साथ इस रहस्य का भी उद्‌घाटन हुआ कि आद्यशंकर के जन्मकाल के निर्धारण में अब तक भ्रामक आधारों नर निक्चय किया जाता रहा है। नेपाल की शाहीवंशावली के आधार पर आद्यशंकर का जन्म आज के प्रचलित विक्रम संवत् के भी पूर्व हुआ था? उपलब्ध आधारों के अनुसार तात्कालिक गतकलि संवत् 2578 में नेपाल में राजा वृषभदेव का राज्याभिषेक हुआ। उसके 15 वर्ष पश्चात् आद्यशंकर का जन्म हुआ। द्वापरयुग में 38 युधिष्ठिर संवत् व्यतीत हो चुकने के उपरान्त कलियुग का प्रारम्भ हुआ। गतकलि संवत् 2593 में युधिष्ठिर संवत् 2631 में आद्यशंकर का जन्म हुआ। इसी जन्मकाल का उल्लेख आद्यशंकर द्वारा स्थापित मठों में भी उपलब्ध होता है। इस प्रकार विक्रम संवत् पूर्व 451 (वैशाख शुक्ला 5) में आद्यशंकर का जन्म निर्धारित हुआ, जो कि ईस्वी सन् के अनुसार ईसा पूर्व 508 वर्ष है।

यतिदण्डैश्वर्यविधानम् का वैशिष्ट्य

यतिदण्ड पर भारतीय वाङ्मय में अभीतक कोई आधिकारिक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। यह परम सौभाग्य ही कहा जायेगा कि देश में यतिधर्म को सुसंगठित स्वरूप प्रदान करनेवाले भगवान् आद्यशंकर द्वारा स्वलिखित विधान ही उपलब्ध हो गया।

'**यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे**' यह उद्‌घोष सामान्यतया प्राचीन समय से दुहराया जाता रहा है किन्तु पिण्ड में अवस्थित शक्तियाँ किस प्रकार से विराट् ब्रह्माण्ड का अभिन्न अङ्ग बनती है और यतिदण्ड ब्रह्माण्डका स्वरूप किस प्रकार से है, इस रहस्य का उद्‌घाटन इसी ग्रन्थ में उपलब्ध होता हैं।

योग और तन्त्र का समन्वय

योग में वर्णित विभूतियों का रहस्य इस ग्रन्थ में सजीव नाड़ियों के रूपमें चित्रित किया गया है। साधक शरीरस्थ नाड़ी को प्रबुद्ध कर किसी भी विभूति को हस्तामलकवत् प्राप्त कर सकता है। योग में वर्णित सम्पूर्ण विभूतियाँ एक एक सजीव नाड़ी है जो कि हमारे अपने ही शरीर में स्थित है। इस नाड़ीसमुदाय को

आधार बनाकर की गई साधना ही '**तन्त्रपथ**' की साधना है। जिस लक्ष्य की उपलब्धि केलिये योगमार्ग कठोर साधना का निर्देश करता है उसी लक्ष्य की उपलब्धि तन्त्रविधि द्वारा सहज और सरल रूप से प्राप्त की जा सकती है। तन्त्रविधि द्वारा उपलब्ध की गई विभूतियाँ योग की अपेक्षा कही अधिक सुगम एवं चिरस्थायी हैं।

प्रतिपाद्य विषय की भावभूमि

आचार्यश्री की कृतियों के पीछे उनकी दो यात्राओं - कैलाशयात्रा एवं नेपालयात्रा तथा नेपाल में माँ के द्वारा तक्र पिलानेवाली घटना का विशेष महत्त्व है। कैलाशयात्रा करते हुए आचार्यश्री को भगवान् परशुरामजी के दर्शन का लाभ हुआ था और उनके अनुग्रह से उन्हें अचिन्त्य रहस्यों की अनुभूति हुई थी। उनके उपदेशानुसार ही आचार्यश्री ने ग्रन्थों का प्रणयन करना प्रारम्भ किया था।

इस यात्राकाल में नेपाल के भातगाँव में भगवान् दत्तात्रेय के श्रीविग्रह के दर्शन एवं अर्चा के बाद आचार्यश्री एक शिलाखण्ड पर बैठे थे, वहाँ बैठे बैठे ही उनकी सहजरूप से समाधि लग गयी। समाधिस्थ दशा में उन्हें अपूर्व ज्ञान विज्ञान की उपलब्धि हुई। '**यतिदण्डैश्वर्यविधान**' जिसका प्रारम्भ उन्होंने विक्रम पूर्व 431 में ज्योतिर्मठ में किया था, उसका समापन रुद्रगाढेश्वर (नेपाल) में गतकलि संवत् 2613 में सम्पन्न हुआ। इस समय आचार्यश्री की अवस्था 20 वर्ष की थी जिसे उनके जीवन की उच्चतम प्रौढ़ता का काल कहा जा सकता है।

तक्र पिलानेवाली घटना इस प्रकार है। एक दिन आचार्यश्री को बहुत प्यास लगी। इधर-उधर देखने पर पानी का कोई साधन कहीं भी दिखाई नहीं दिया। प्यास से अधिक व्याकुल होने पर स्वयं माँ ने उन्हें तक्रपान कराया, तक्र पीते ही आचार्यश्री को अद्‌भुत बोध हुआ और उन्होंने माँ की स्तुति इस प्रकार की-

त्वामेवैकां निगदति वेदः शिवेन साकं नहि ते भेदः।
शिवशक्तिक्रमविद्याशिक्षा दातव्येति त्वयि मम भिक्षा।।
आदिवर्णजनुषोऽतितिक्षोरवतु सतुर्याश्रममयभिक्षोः।
त्वत्पदयुगले मनोनिवासं भिक्षामपर्य जननि! सहासम्।।

(तारापंजरिकास्तोत्रम्)

इसप्रकार भगवान् परशुराम, भगवान् दत्तात्रेय उवं जगज्जननी जगदम्बा के विशेष अनुग्रह के कारण आचार्यश्री ने जिन ग्रन्थों का प्रणयन किया, प्रस्तुतग्रन्थ भी उन्हीं में से एक है।

विषयवस्तुपरिचय

'**यतिदण्डैश्वर्यविधान**' की विषय वस्तु को चार पादों में विभाजित किया है। विभूतिपाद, तत्त्वपाद, साधनापाद और सिद्धिपाद।

प्रथमपाद '**विभूतिपाद**' में 318 श्लोक हैं। इसमें दण्डमहिमा एवं दण्ड की आवश्यकता का वर्णन करते हंए दण्ड को प्रणवमात्रा, शिववक्त्राम्नाय, तत्त्वचक्र, दिशोपदिशा पूर्वक श्रीचक्र के रूप में प्रस्तुत कर, प्राणप्रतिष्ठा एवं न्यासादि से दण्ड के अलौकिकत्व को प्रदर्शित करते हुए दण्ड वन्दन एवं वन्दन के समय पूजा, तर्पण, अर्घ्यप्रदान आदि वन्दनवेलाके करणीय कार्यों का विशदवर्णन किया है।

द्वितीयपाद '**तत्त्वपाद**' में 198 श्लोक हैं। इसमें प्रणव के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है। प्रणव की मात्राओं का स्वरूप तथा प्रणव के वर्ण, देवता एवं शक्तियों का वर्णन, उनके मन्त्र व ध्यान तथा मात्राओं में आम्नायव्यवस्था (आम्नाय मानवशरीर के छह चक्र हैं। वे ही भगवान् शिव के छह मुख हैं), सृष्ट्यादि व्यवस्था, कादि-हादि एवं सादि क्रमकूट व्यवस्थाओं का वर्णन यतियों के लिये 'साधना पथ' की स्पष्ट दिशा उद्भासित करने की दृष्टि से तत्त्वपाद में (उक्त पदार्थों को) अनुस्यूत किया है।

तृतीयपाद '**साधनापाद**' में 922 श्लोक हैं। यह पाद इस ग्रन्थ का प्रमुख अंग है। साधना केलिये उसके शरीर एवं उसके अवयवों का ज्ञान परमावश्यक है। अतः इस पाद में शारीरिक रचना का वर्णन करते हुए शरीरस्थ वायुओं का तथा उनके स्थान, वर्ण एवं कार्यों का वर्णन के साथ शरीरस्थ नाडियों का तथा उन्हें प्रबुद्ध कर उनके सुगमता पूर्वक कार्य सम्पादन करने की प्रक्रियाओं का, शरीरस्थ चक्रों का तथा उनके माध्यम से किये जाने वाले जप व ध्यान आदि के महत्त्व का तथा नाद, बिन्दु, योग एवं महारजोवीर्ययोग आदि यौगिक प्रक्रियाओं का विवेचन इस पाद में किया गया है।

चतुर्थपाद '**सिद्धिपाद**' में 722 श्लोक है। यह पाद इस ग्रन्थ का अन्तिम पाद है। इसमें चक्रराज एवं श्रीयन्त्र का विशद वर्णन हुआ है। नवार्णवमन्त्र की महिमा का वर्णन करते हुए उसे देवी का स्वरूप ही बताया गया है। इसी प्रकार पश्चिम आम्नाय को श्रेष्ठ मानते हुये उसे देवी के सादिकूट का सूचक कहा गया है। षट्चक्रों में विभिन्न मुखों से ध्यान करने का विधान बताते हुये ब्रह्म, इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा आदि नाड़ियों एवं उनके द्वारस्थानों का निरूपण करते हुए अन्त में योग निरूपण किया गया है जो सिद्धि प्राप्ति का ही स्वरूप है।

'**यतिदण्डैश्वर्यविधान**' की पांडुलिपि में कुछ ऐसे पृष्ठ हैं जिनमें दीक्षाक्रम, मात्रा कावर्णन एवं '**शरीरस्थचक्राणां नामानि**', '**शिवशक्तिनामानि**' आदि विषय है। तद्विषयकग्रन्थों का बाद में शोध करने पर इन विषयों का समावेश '**वडवानलतन्त्र**' एवं '**प्रपंचसार**' आदि अन्य ग्रन्थों में भी पाया गया है। (अतः पाठकगण अधिक जानकारी केलिये उन गन्थों का अवलोकन करें)

जिस प्रकार गीता में समस्त वेद (श्रुति), स्मृति, पुराण एवं उपनिषदों का सार निहित है ठीक उसी प्रकार '**यतिदण्डैश्वर्यविधान**' में भी आचार्यश्री द्वारा समस्त निगम एवं आगम के ग्रन्थों में वर्णित शरीररचना, विभिन्न साधना पद्धतियों एवं तत्सम्बन्धी जप, ध्यान आदि प्रक्रियाओं व मुद्राओं का सम्यक् वर्णन सरल एवं सुबोध भाषा में किया गया है। अतः यह ग्रन्थ न केवल सद्विषयक अन्यग्रन्थों का सार ही है अपितु उन विषयों के सम्यक् बोध हेतु पथ-प्रदर्शक भी है। वस्तुतः यह ग्रन्थ भारतीय सांस्कृतिक परम्परा एवं गौरव को अक्षुण्ण बनाये रखनेवाले कतिपय ग्रन्थों में से एक अनोखा ग्रन्थ है।

मूलप्रतिपाद्यविषय

इस ग्रन्थ का मूलप्रतिपाद्य विषय है - '**दण्ड, पिण्ड, ब्रह्माण्ड और श्रीयन्त्र का एकत्व**'। इस दृष्टि से इसमें '**परोक्षप्रिया हि देवाः**' इस नैगमिक और '**संकेतविद्या गुरुवक्त्रगम्या**' इस आगमिक सिद्धान्त को पदे-पदे उजागर होते देखा जा सकता है। दण्ड जैसे प्रतीक में भारतीय मनीषी द्वारा उपलब्ध अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत सम्बन्धी रहस्य ओत प्रोत है। ये साधना की उच्चतम भूमिका में प्रविष्ट कराने की दृष्टि से किस प्रकार उपयोगी है, यह सब इस एक ग्रन्थ से इतना स्पष्ट, विशद एवं हृदयग्राहीढंग से प्रतिपादित है कि यह ग्रन्थ इस विषय के ग्रन्थों में शीर्षस्थान पर प्रतिष्ठाप्य (प्रतिष्ठित करने योग्य) है।

विविधखण्डों में विभक्त इस ग्रन्थ में अनेक आध्यात्मिक एवं साधनापरक रहस्यों का उद्घाटन आचार्यश्री ने लोककल्याणार्थ प्रस्तुत किया है। दण्डमूल, दण्डाग्र और मुद्रा में सृष्टि, स्थिति तथा लय का बोधन और प्रत्येक में बारह–बारह तत्त्वों का प्रतिपादन कर आचमन का विधान करते हुए आत्मतत्त्व में परिगणित सांख्यसम्मत चौबीस तत्त्वों और (शैवसम्मत) विद्यातत्त्व में परिगणित सात तत्त्वों (7–पुरुष, नियति, काल, याग, अविद्या, कला एवं माया) तथा शिवतत्त्व में परिगणित पांच तत्त्वों (5–शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर और विद्या) का एकत्र समाहार कर तत्त्वशुद्धि के मन्तव्य को स्पष्ट किया गया है। इसी प्रकार अनाख्या एवं भासा की संस्थितियों का विवेचन तथा आम्नायविषयकमान्यता का प्रतिपादन इस ग्रन्थ के अनूठे उपहार हैं।

चक्रों का वर्णन करते समय आचार्यश्री ने कई विलक्षण रहस्यों को एक साथ निबद्ध कर प्रस्तुत किया है। ऊर्ध्वमुख और अधोमुख चक्रों का वर्णन, अभ्युदय केलिये अधोमुख चक्रों की साधना का महत्त्व, निःश्रेयस केलिये समग्र चक्रों की साधना का महत्ता, प्रत्येक चक्र का स्वरूप तथा स्थानविवेचन सहित मातृकाओं की चक्रगत स्थिति का वर्णन, दल एवं बीजों तथा देवताओं का वर्णन तथा प्रत्येक मातृका से सम्बद्ध विशिष्ट वायु का नामोल्लेख आदि को सरल एवं सुबोध भाषा में, इस ग्रन्थ में एक साथ संजोया हुआ मिलेगाा। इसके अतिरिक्त अधोमुख चक्रों में से किसका ध्यान ऊर्ध्व मुख से किया जाना चाहिये और क्यों? इसका निर्देश भी इस ग्रन्थ में स्पष्टतया उपलब्ध है। किन किन चक्रों में जप व ध्यान करने से जिज्ञासा, आकर्षणशक्ति, बुद्धिविकास, ज्ञानविज्ञान, सिद्धि तथा अपने इश्टदेवता के स्वरूप, ऐश्वर्य, वैभव एवं सामर्थ्य आदि का यथार्थरूप में अनुभव कर साधक किस प्रकार दिव्यता को प्राप्त करता है, यह सब चक्रों के वर्णन में स्पष्टकर दिया गया है। मानवशरीर में विरचित अष्टोत्तरशतचक्रों का उल्लेख भी किया गया है। यथा –

'अष्टोत्तरशते चक्रे मन्त्रपिण्डाक्षरात्मके ।
द्विशतात्मा पुनः प्रोक्त उदयः सर्वसिद्धिदः।।'

इन चक्रों को प्रबुद्ध करने केलिये गणपति के अष्टोत्तरशतनाम, सप्तशती में वज्रकवच, शिव के अष्टोत्तरशतनाम एवं दशमहाविद्या, सिद्धमहाविद्या आदि

सब के अष्टोत्तरशतनाम मिलते हैं। ये सब नाम रहस्यगर्भित नाम हैं। ये सब नाम इन अष्टोत्तरशत चक्रों को प्रबुद्ध करने केलिये महर्षियों ने विशेष अनुकम्पा कर लिखे हैं। देश-काल-परिस्थिति के कारण समय पाकर इन चक्रों के नाम इनसे सम्बन्धित नहीं रह गये हैं, न इस विषय में कहीं लिखा हुआ ही उपलब्ध होता है। कौनसा नाम कौनसे चक्र को प्रबुद्ध करेगा? इसका ठीक पता नहीं मिलता। यदि इसका यथार्थ बोध हो जाये तो शीघ्र ही चक्रों की क्रिया सम्पादित होने लग जाती है।

त्रिशती और सहस्रनाम प्राय: सभी देवताओं के मिलते हैं। इन सहस्रनामों में विविध प्रकार के प्रयोगों का महत्त है। प्रयोग करने पर होता भी है परन्तु यथार्थ प्रक्रिया ज्ञात न होने के कारण प्रयोग नहीं कर पाते। सहस्रनामों की गणना मुख रूपसे बतलाई गई है। यह भी एक रहस्य गर्भित बात है। मुख अग्नि का स्वरूप है। उसमें पडा हुआ बीज सम्पूर्ण शरीर को संचालित करता है। सम्पूर्ण शरीर का निर्माण करता है। सहस्रनाम के पाठ के समय मानव को अग्नि की दस कलाओं का ध्यान करना चाहिये। इन्हीं दस कलाओं से एक-एक कला में सौ-सौ नाम हैं। वही सहस्रनाम होता है।

अग्नि की कला '**मणिपूर**' चक्र में है। मणिपूरचक्र में दस पंखुड़ियाँ हैं। यदि इन्हें ही अग्नि की दस कलायें मान ली जायें तो वे ही प्रज्वलित होकर वाष्प बनती हैं। मणिपूरचक्र में ही महारज का निवास स्थान है। यह '**सङ्केतविद्या**' है। महारज लालरंग का होता है। वह अग्नि में जलकर शुद्ध स्फटिक के सदृश हो जाताहै। यह जीवन की सर्वोत्तम शुद्ध बुद्ध नित्यमुक्त मानवी शक्ति को बना देता है। मस्तिष्क से एक नाड़ी निकल कर अधोमुख होकर मणिपूर से जुड़ी है। इसी कारण आचार्यप्रवर ने मस्तिष्क से गुरु की आज्ञा प्राप्त कर मणिपूर से जप प्रारम्भ करने का निर्देश किया है। इसका विशेष विवरण ग्रन्थ में शारीरिकरचना प्रकरण में, जो जप प्रकार दिया है, उसमें उपलब्ध है।

शरीरगत नाड़ियों के वर्णन के प्रसङ्ग में 84 नाड़ियाँ प्रमुख हैं। इन चौरासि नाड़ियों में से 72 के नाम उपलब्ध हैं। उनके कार्य, उनकी उद्‌भव भूमि, उनके उपयोग आदि का जितना विस्तृत विवेचन इस ग्रन्थ में उपलब्ध है उतना अन्यत्र कहीं भी नहीं है। इस ग्रन्थ में सात भागों में विभक्त मस्तिष्क के सम्बन्ध में जो वर्णन उपलब्ध है, उसे साधकजगत् और आर्यविज्ञानियों केलिये प्रकाशस्तम्भ

के समान दिशा निर्देशनकारी मानना होगा। साधना द्वारा इन विभिन्न नाड़ियों को प्रबुद्धकर साधक कैसे कैसे अलौकिक कार्य सम्पादित कर सकता है तथा विभिन्न यौगिकमुद्राओं की साधना द्वारा मनुष्य किस प्रकार दिव्य शक्तियों का अपने में आधान कर सकता है, यह सब इस ग्रन्थ में अनुस्यूत कर आचार्यश्री ने मानवजाति के कल्याण पथ को आलोकित किया है।

साधना और नाड़ी विज्ञान

शारीरिक संरचना में यदि मनुष्य को नाड़ी ज्ञान हो जाये तो निमिष मात्र में सम्पूर्ण क्रियाएँ साध्य हो जाती हैं। भगवन्नाम जप, विभिन्न प्रकार के मन्त्रों के अनुष्ठान तथा विविध प्रकार की यौगिक नाड़ियों के सम्यक् ज्ञान से ही क्रियायें साध्य हो जाती हैं। जिस क्रिया का साधनकरना है, उससे सम्बन्धित नाड़ी पर दबाव डालकर उसे प्रबुद्ध करना यही उसका साधन है। सम्बन्धित स्थान की नाड़ी को प्रबुद्ध कर देने पर दुर्गम एवं दुरुह मार्ग भी सुगमता से साध्य बन सकता है। इस प्रकार मस्तिष्क आदि शरीर के विभिन्न अङ्गों में सूक्ष्मरूप से फैली हुई इन नाड़ियों के सम्यक् ज्ञान से न केवल दूरदृष्टि, दूरश्रवण, परकायप्रवेश एवं मानस परिवर्तित करने की शक्तियों की प्राप्ति सम्भव है। अपितु रुग्ण अवस्था में सम्बन्धित अङ्गों की चिकित्सा भी सुगमता पूर्वक की जा सकती है। इस ग्रन्थ में सिद्धान्तों की ही चर्चा नहीं अपितु स्थापित सिद्धान्तों की उपलब्धि का साधनपथ भी निर्दिष्ट है। तन्त्रागमों में प्रतिपादित काली और सुन्दरी की नित्याओं के साथ काली व सुन्दरी का देहगत नाड़ीसमूह में अभिन्न और अविच्छिन्न सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध क्यों है, तथा उपासना क्षेत्र में अन्त में काली और सुन्दरी के अभेद में परिगणित होने का क्या रहस्य है? यह विवेचन भी इस ग्रन्थ में उपलब्ध है।

शास्त्रों में वर्णित 10 आम्नायों का साधनमार्ग प्राप्त होता है। छह आम्नाय सर्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं। चार आम्नाय दो-दो आम्नायों के योग से बनते हैं। यही 10 आम्नाय शारीरिक रचना के अनुसार ऊर्ध्वमुख और अधोमुख चक्र कहलाते हैं। हमारी शारीरिक संरचना में 16 आधार बताये गये हैं। प्रत्येक आम्नाय के मूलमन्त्र को 16 भागों में विभक्त करते हैं। उक्त 16 भागों में विभक्तमन्त्र का योगियों द्वारा निश्चित किये हुये 16 आधार स्थानों पर ध्यान एवं मन्त्रार्थविचार करने के साथ-साथ मन्त्रचैतन्य के भी अभ्यास के साथ मन्त्र का मनन करने पर एक विशेष प्रकार का

स्पन्दन उभरता है और चक्रों का नाद भी सुनाई देने लगता है। प्राणवायु का संघर्ष होने से सम्बन्धित आम्नाय का जो चक्र है वह उस मन्त्र के रूप का अनावर्त बन जाता है। उसी अनावर्त से निकले हुए वायु के संघर्ष से वह वायु मृणालतन्तु के समान ब्रह्मरन्ध्र से निकलकर ब्रह्म की ओर चलना प्रारम्भ करता है। वह धीरे–धीरे ब्रह्मरन्ध्र को खोलने लगता है, उस ब्रह्मरन्ध्र से एक प्रकार की श्वेत वाष्परश्मि का प्रादुर्भाव होता है। जिस प्रकार एक अग्निकण को सूखे तृणों में फूंक देने से अग्नि का समूह बन जाता है। इसके विपरीत उस अग्निकण को उपेक्षा से छोड़ दिया जाये तो वह नष्ट हो जाता है। उसी प्रकार प्रत्येक जीव का उपर्युक्त तन्तु द्वारा ब्रह्मरन्ध्र के साथ सम्बन्ध है। उस तन्तु को जो सम्भाल सकते हैं, वे उस तन्तु द्वारा ब्रह्म के साथ एकता प्राप्त कर शिवस्वरूप बन सकते हैं। यदि उपेक्षा कर दें तो पशुता में ही पड़े रह जाते हैं।

ब्रह्मरन्ध्र से निकला हुआ श्वेतवाश्प ही ब्रह्मतन्तु है। यह तन्तु प्रत्येक जीव में बहुत सूक्ष्म रूप से विद्यमान है। यह आश्चर्य की बात नहीं है। अभ्यास की दृढता से सुगमता पूर्वक यह दृष्टिगोचर होता है। इस तन्तु का ज्ञान जिस साधन द्वारा प्राप्त कर लिया जाए, उसी का नाम '**तन्त्र**' है अर्थात् एक प्रकार की महान् युक्ति जिससे मनुष्य जीव से शिव बन जाता है। जिस प्रकार घड़ी में चाबी देने से घड़ी के अन्दर के सभी यन्त्र (पुर्जे) चलना प्रारम्भ कर देते हैं। चाबी के पूरा भरा होने पर एक यन्त्र चलता है और उसके सहयोगी बहुत से यन्त्र चलते रहते हैं। उसके साथ उसके सहयोगी यन्त्रों का सम्बन्ध जुड जाता है तो विविध प्रकार के ज्ञान प्राप्त होते हैं। उसी प्रकार सुगुरु (यानि सद्गुरु जो ऐसा गुरु मानवशरीरस्थ नाड़ियों का विशेषज्ञ हो और दूसरे व्यक्ति की नाड़ियों को भी प्रबुद्धकर सकने की क्षमता रखता हो) अपने शिष्य के उन्हीं चक्रों को संचालित कर सुप्तनाड़ी विशेष से सम्बन्ध जोड़कर, उसे चैतन्य बनाकर विविध प्रकार के ज्ञान को हस्तामलकवत् कर देते हैं। इसी को 'निमेषमात्रेण सुसाध्य एव' कहते हैं।

वैसे तो अभिधान की दृद्विट से इस ग्रन्थ का सारा सन्दर्भ यतियों केलिये है और उनके यह आवश्यक आह्निक (दैनिक) कर्तव्यों का इसमें स्थान–स्थान पर उल्लेख है, विशेषतः दण्डविषयक सन्दर्भ में। तथापि इसमें कई अन्य रहस्य भी यत्र तत्र स्पष्ट किये गये हैं जो मनुष्यमात्र केलिये अत्यन्त उपयोगी और अभ्युदयकारक भी हैं।

सामान्य जनजीवन के साधनोपयोगी विषय इस ग्रन्थ में विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। आगमानुसार शारीरिक रचना एवं विशेष नाड़ियों का ज्ञान, काली एवं सुन्दरी कल्पानुसार चक्रों की संख्या, देवता आदि का वर्णन तथा साधन क्रमेण चक्रों के स्वरूप, धमनी नाड़ियों के निरूपण, चक्रस्थ नाड़ियों के नाम, दशविध जप क्रम एवं उनका फल और चक्रों की मानव्यवस्था, बहिर्याग-अन्तर्याग विधान, शाम्भवक्रम, वीर्यसंरक्षण प्रक्रिया, औषधि ऊर्ध्व रेतस्विता का साधन, तद्विषयक विविधमुद्रा, साधकों के कर्तव्य, विशेषप्रकार से कुण्डलिनीजागरणविधि आदि विषयों को विशेष रूप से बताया गया है।

कादि एवं हादि कूटों का विवरण यत्र तत्र सर्वत्र प्राप्त हो जाता है, पर सादि कूट का विवरण इसी ग्रन्थ में प्राप्त है। इस प्रकार आचार्यश्री ने कादि-हादि एवं सादि तीनों कूटों का विवरण प्रस्तुत कर साधकसमुदाय की ग्रन्थियों को उन्मूलित किया है। प्रत्येक मन्त्र का ध्यान, मन्त्रोद्धार और आम्नाय का निर्णय भी दिया है, जो साधकों के हित में अत्यन्त उपयोगी है। इस प्रकार आचार्यश्री ने "**साधन पथ**" को राजमार्ग बनाते हुए साधकों का गन्तव्य और भी सुलभ कर दिया है।

शरीरस्थदण्ड परिचय

'यतिदण्डैश्वर्यविधान' के पढने एवं चिन्तन करने के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि शास्त्रों में 5 प्रकार के दण्ड बताये गये हैं। ये 1. सुदर्शनदण्ड, 2. नारायणदण्ड, 3. गोपालदण्ड, 4. वासुदेवदण्ड एवं 5. अनन्तदण्ड के नाम से प्रसिद्ध हैं। उक्त पांचों दण्डों की अधिष्ठात्रीदेवी, देवता और सम्बन्धित योग इस तालिका से स्पष्ट है -

क्रमांक	दण्डनाम	अधिष्ठात्रीदेवी	देवता	योग
1	सुदर्शन	भुवनेश्वरी	ब्रह्मा	मन्त्रयोग
2	नारायण	महालक्ष्मी	नारायण	मन्त्र-भक्ति एकता
3	वासुदेव	कुब्जिका	रुद्र	कर्मयोग
4	गोपाल	दक्षिणकालिका	विष्णु	भक्तियोग
5	अनन्त	गुह्यकाली	ईश्वर	ज्ञानयोग

दण्ड का यह विधान शरीर रचना के अनुसार है। दण्ड और शरीर (अर्थात् शरीरस्थ चक्रों) साधन मार्ग के अनुसार परस्पर सम्बन्धित हैं। इस प्रकार इन दण्डों का शरीरस्थचक्रों से अभिन्न सम्बन्ध है। सुदर्शन स्वाधिष्ठान से, नारायण अधोमुख-मणिपूर से, गोपाल ऊर्ध्वमुख-मणिपूर से, वासुदेव अनाहत से एवं अनन्त अधोमुख विशुद्ध चक्र से पूर्ण सम्बन्ध रखता है। वैसे तो अधः एवं ऊर्ध्व सहस्रार भी इनसे सम्बन्धित है, परन्तु इसका प्रमुख स्थान स्वाधिष्ठान ही है।

जिस प्रकार प्रत्येक चक्र से ऊर्ध्व सहस्रार से सम्बन्ध रखने वाली एक नाड़ी अधः चलती है और विभिन्न प्रकार के कार्य सम्पादन करती है, उसी प्रकार दण्ड भी कार्य करता है। यद्यपि वर्तमान ग्रन्थों में इस प्रकार का कोई उपदेश नहीं मिलता परन्तु चिरकाल की साधना के पश्चात् इसका बोध हो ही जाता है। दण्ड प्रणाम करने में विभिन्न ग्रन्थियों को स्पर्श कर प्रणाम करने का विधान है। महाभारत आदि को देखने से पता चलता है कि उस समय भी विभिन्न उद्देशों की प्राप्ति केलिये दिशाओं के ज्ञान से सम्बन्धित बातों का विशेष ध्यान रख जाता था। पाण्डवों के वनवास जाते समय उनके साथ धौम्य ऋषि नैर्ऋत्यदिशा की ओर कुशा किये हुये नैर्ऋत्याम्नाय के वैदिक(सामवेदीय)मन्त्रों का उच्चारण करते हुए चल रहे थे। नैर्ऋत्याम्नाय के वैदिकमन्त्रों का उच्चारण करते हुये नैर्ऋत्यकोण में (की ओर) कुशा करके जाने की फलश्रुति यह हुई कि वन जाते समय उन्होंने जिस राज्यश्री को खो दिया था, लौट कर उसे पुनः प्राप्त किया जाये। महाभारत में कहा है-

'कृत्वा तु नैर्ऋत्यान्दर्भान्धीरो धौम्यः पुरोहितः।
सामानि गायन्याम्यानि पुरतो याति भारत।।' (अनुद्यूतपर्व ८०.22)

इस प्रकार के अनेकों दृष्टान्त ग्रन्थविस्तार के भय से उद्धृत नहीं किये जा रहे हैं। दण्ड प्रणाम के सन्दर्भ में यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि दण्ड-प्रणाम की विधि गुरुजनों से ही जानी जा सकती है।

मस्तिष्क की अविकसित नाड़ियाँ भी दण्डग्रहण करने पर दण्ड से सम्बन्धित विभिन्न मन्त्रों के जप करने से विशेषरूप से विकसित हो जाती हैं। किन्तु यह आचार्य की कृपा पर निर्भर है।

'सुदर्शन' नामक दण्ड के ग्रहण करने पर स्वाधिष्ठान के छह पत्र और दण्ड की छह ग्रन्थियों का ऐक्य हो जाता है। यह मन्त्रयोग को प्रकाश में लानेवाला है। साथ ही पूर्वाम्नाय को प्रतिष्ठित करता है। इसी प्रकार श्रीयन्त्र एवं दण्ड का

'यतिदण्डैश्वर्यविधान' में ऐक्य बतलाया गया है। इससे यह ज्ञात होता है कि हमारे आचार्यों के मन्त्रसंकेत, यन्त्रसंकेत, तन्त्रसंकेत आदि सभी संकेत रहस्यगर्भित है। गुरुगम्य होने के कारण इनका संकेत किस प्रकार का है, यह कहना दुष्कर है। लेकिन यह सभी बातें 'यतिदण्डैश्वर्यविधान' के अन्तर्गत विचारों के द्वारा स्पष्ट किया गया है।

'**नारायण**' नामक दण्ड अधोमुख-मणिपूर से सम्बन्धित है। अधो मुख मणिपूर पूर्वाम्नाय एवं दक्षिणाम्नाय मिलकर आग्नेयाम्नायात्मक अष्टदलपद्म (स्वाधिष्ठान के छह और मणिपूर के दस पत्र, दोनों को मिलाकर अर्द्धभाग करने पर अष्टदल हुआ) के अष्टदल ही दण्ड की अष्टग्रन्थियाँ हैं। पूर्ववत् यह दण्ड आम्नायात्मक एवं श्रीयन्त्रात्मक बनकर भक्तियोग प्रदान करता है। पूर्वाम्नाय का मन्त्रयोग एवं दक्षिणाम्नाय का भक्तियोग के ऐक्य एवं साक्षात् नारायणस्वरूप होने से 'नारायण' नाम का दण्ड कहलाता है।

'**गोपाल**' नामक दण्ड ऊर्ध्व-मणिपूर से सम्बन्धित है। ऊर्ध्व- मणिपूर के अधिष्ठातृदेवता भगवान् विष्णु हैं और मणिपूरचक्रकी अधिष्ठात्री शक्ति दक्षिणकालिका हैं। ये दोनों शक्तियाँ स्वयं मिलकर गोपाल कहलाती हैं, अर्थात् भगवान् कृष्ण का नाम ही गोपाल है। गोपाल दण्ड की दस ग्रन्थियाँ ही मणिपूर के दस दल हैं। साथ ही ये अग्नि की दस कलायें भी हैं। इन सब का ऐक्य होकर गोपाल नाम पड़ा।

'**वासुदेव**' नामक दण्ड अनाहत से सम्बन्धित है। अनाहत के द्वादश दल हैं। वासुदेवदण्ड की द्वादश ग्रन्थियाँ इन्हीं की प्रतीक हैं। यहां पूर्ववत् श्रीयन्त्रात्मक आम्नायात्मक ऐक्यता का बड़े सुन्दर ढंग से इस ग्रन्थ में विवेचन किया गया है। '**अनन्त**' नामक दण्ड अधोमुखविशुद्धचक्र का ही स्वरूप है। अधो मुख-विशुद्ध चक्र के चौदह दल हैं, जो कि अनन्तदण्ड के चौदह ग्रन्थियों से विभूषित हैं। पूर्ववत् आम्नायात्मक एवं श्रीयन्त्रात्मक ऐक्यता प्रतिपादित करता है।

'**श्रीयन्त्र**' का मानवशरीर में स्थित स्वरूप, ग्रन्थों में दो प्रकार से मिलता है। श्रीयन्त्र का एक बिन्दुस्थान स्वाधिष्ठान एवं दूसरे का सहस्रार में है। इसी अनुपात से श्रीयन्त्र का निर्माण हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि दण्ड का निर्माण इसी आधार पर हुआ होगा, क्योंकि श्रीयन्त्र एवं दण्ड की ऐक्यता इस ग्रन्थ से

विशेष प्रतीत होती है। वैसे तो इस ग्रन्थ में सहस्रार के बिन्दु से तीन श्रीयन्त्रों (सृष्टि, अनाख्या और भासा) का निर्माण होता है एवं स्वाधिष्ठान के बिन्दु से दो श्रीयन्त्रों (स्थिति और संहार) का निर्माण होता है। इनकी पूजापद्धति, कारिका, देवियों के ध्यान आदि सभी उपलब्ध हैं। इनके नाम हैं – सृष्टिपूजा, स्थितिपूजा, लयपूजा, अनाख्यापूजा और भासापूजा। इनमें अनाख्या पूजा और भासापूजा यतियों केलिये विशेष महत्त्व रखती है। यह विशेष रूप से गुरुगम्य है। यही संकेतविद्या है। उच्चतम साधना करने के बाद ही स्वानुभव द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है। 'यतिदण्डैश्वर्यविधान' में 'यतिकर्तव्यानि' में लिखा है –

'चक्राणां क्रमशो ध्यानं जपनं चिन्तनं तथा।
प्रणवस्य च मात्राणां शक्तेश्च चिन्तनं खलु।।
कर्तव्यानि षडेतानि यतिभिर्नियतं मुदा।
सम्प्रोक्तक्रमनिर्वाहादैश्वर्यं प्राप्यते ध्रुवम्।।
शौचं स्नानं जपो ध्यानं सुरार्चनं भिक्षाटनम्।
कर्तव्यानि षडेतानि सर्वथा नृपदण्डवत्।।

ये विभूतिपाद के 316, 317 एवं 318 श्लोक द्रष्टव्य हैं। (नृपदण्डवत् अर्थात् गुर्वाज्ञा के समान)। साधनापाद में भी कहा गया है –

'भिक्षाटनं जपः स्नानं ध्यानं शौचं सुरार्चनम्।
कर्तव्यानि षडेतानि सर्वथा नृपदण्डवत् ।।234।।
प्रणवश्च मात्राश्चैव शक्तयो ध्यानं जपं च।
कर्तव्यानि षडेतानि तारमात्रासु चिन्तनम्।।235।।'

उपर्युक्त श्लोक इसी ग्रन्थ में उल्लिखित हैं। अन्यत्र भी कहा गया है –

स्नानं शौचं तथा भिक्षा नित्यमेकान्तसेवनम्।
भिक्षोश्चत्वारि कर्माणि पंचमं नोपलभ्यते।।
स्नानं मनोमलत्यागः शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
ब्रह्मामृतं पिबेद् भिक्षामेकान्तं द्वैतवर्जितम्।।

महारजोवीर्य के बारे में योगलक्षण में दिया गया है कि साधकों को इस पर विशेष ध्यान देना चाहिये। यतियों का तो यह प्राण ही है। आचार्यश्री ने जो यति एवं साधकों के लिये कर्तव्य बतलाया है, यह शास्त्रों का ही अन्वेषण है और शास्त्र एवं आचार्य सम्मत भी है। यहाँ यही बड़ा संकेत है। गोस्वामीजी की उक्ति– 'आज्ञा सम न सु साहिब सेवा'। इसी की पुष्टि करती है। 'तारमात्रासु

चिन्तनम्' अर्थात् प्रणव की मात्रायें एवं प्रणव की शक्तियाँ (16%16=256) अर्थात् 256 ये क्रमशः शक्तियाँ हैं, उनका चिन्तन अवश्य करना चाहिये।

'यतिकर्तव्यानि ' में लिखे हुये श्लोक उन व्यक्तियों केलिये है जो संपूर्ण साधनाओं को पूर्ण कर चुके हैं और अपने अनुयायी साधकों को परिपुष्ट एवं उन्नतिशील बनाने केलिये मेधा एवं प्रज्ञा को विकसित करने केलिये बैठकर चिन्तन करते हैं। 'रजोवीर्य योग लक्षणम्' में यही विषय पुनः उसी प्रकार उद्धृत है। यह प्रधानतः साधकों केलिये ही है। ये अतिगुह्यतम बातें हैं।

आचार्यपाद के ग्रन्थों में शरीरों का वर्णन मिलता है। ये संख्या में नौ हैं - मस्तिष्क में तीन, कान और आँख में एक-एक, साथ ही हस्त एवं पाद में दो-दो। इस प्रकार नौ शरीर होते हैं। इन नौ स्थानों में सम्पूर्ण शरीर का वर्णन है। जो एक-त्रितय रूप में सम्पूर्ण शरीर कहलाता है। आज का विज्ञान प्रकृतिका अनुकरण कर रहा है परन्तु अभी तक पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं कर सका है। प्रकृति ने जिस मानव घड़ी का निर्माण किया है वह जन्म के समय संचालित होती है और अन्तिम समय में सदैव केलिये बन्द हो जाती है। प्रकृति की प्रेरणा हो जाने पर परिवर्तन भी सम्भव है। इसकेलिये गुरुकृपा, ईश्वर अनुग्रह, शास्त्रकृपा एवं स्वयं का प्रयास (मनोयोग अथवा जिसे आत्मकृपा कहते हैं) हो जावे तो सभी कुछ अपनी इच्छा अनुसार करने में साधक समर्थ हो सकता है। इन सब में अपनी और गुरु कृपा ही प्रधान है। सम्पूर्ण साधन इस 'साधनपाद' में वर्णित है; साथ ही संकेत भी दिये हैं। यह विद्या है। इसमें वर्णित मन्त्र, ध्यान, विनियोगादि आगम शास्त्र में प्राप्त होते हैं। (इनका संग्रह अलग है) इसमें कई जगह एक ही विषय दो छन्दों में या एक ही श्लोक दो जगह प्राप्त होते हैं। मेंरे विचार में दोनों एक नहीं हैं और न पुनरावृत्ति ही है। दूसरे शरीर और इस शरीर के अलग-अलग वर्णन है। जैसे चन्द्रमा की कला 'अ' से 'अः' तक है, परन्तु 'अ' कार के विना दूसरे व्यंजनों का उच्चारण नहीं हो सकता। सूर्य की कला में 'क' से 'भ' तक है जो की द्वादश (बारह) हैं, इनमें भी 'अ' कार के विना उच्चारण नहीं हो सकता। यदि शतपथ ब्राह्मण को विचारपूर्वक देखेंगे तो पता चलता हैकि सूर्य को प्रकाश करने का ईंधन चन्द्रमा ही देता है। इसी प्रकार 'अ' कार 'क' से 'भ' को प्रकाशित करने केलिये शक्ति प्रदान करता है। इसह तरह यह विचार इस ग्रन्थ में दो या तीन बार आया है। विस्तारभय से इसका वर्णन नहीं दे रहा हूँ।

अन्त में अधिक न कहकर केवल इतना ही विनम्र निवेदन है कि भगवान् आद्यशंकर की यह दिव्य कृति को जो अब तक अज्ञान के अन्धकार में छुपी हुई थी, अध्यात्मपथ के पथिकों का कल्याण करने केलिये प्रकाशित हो रही है। आचार्यश्री की आज तक की उपलब्ध कृतियों में विशिष्ट स्थान रखनेवाली ''प्रस्थानत्रयी'' के भाष्यों के साथ-साथ ''यतिदण्डैश्वर्यविधानम्'' का भी अपना विशिष्ट स्थान होगा। साथ ही योग और तन्त्र सम्बन्धी वाङ्मय में एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि सिद्ध होगी।

अब अन्त में यह कहना है कि मैंने इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ (यतिदण्डैश्वर्य विधानम्) को नेपालयात्रा के प्रसंग में जब देखा तो मुझे बड़ा आह्लाद हुआ। क्योंकि यह ग्रन्थ अपने विषय का सर्वाङ्गीण और समीचीन निरूपण तो प्रस्तुत करता ही है, साथ ही इससे पूर्व अप्रकाशित एवं अनुपलब्ध भी रहा है। सबसे विशेष बात यह है कि यह कृति जगद्गुरु भगवान् आद्यशंकराचार्यजी द्वारा रचित है। आद्यशंकराचार्यजी का नाम देखते ही मुझे तत्काल विचार आया कि क्यों न इस ग्रन्थ को किसी शंकराचार्य के पीठ से ही प्रकाशित कराया जावे? इसी विचार से मैंने गोवर्धनपीठाधीश्वर अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिंजनदेव तीर्थजी महाराज को समर्पित कर निवेदन किया कि अब इस ग्रन्थ का सम्पादन, प्रकाशन, मुद्रण आदि का सर्वाधिकार गोवर्धनमठ, पुरी (उड़ीसा) का ही रहेगा।

ॐ तत्सद् ब्रह्मार्पणमस्तु।।

विशेष सूचना

व्याख्याकार स्वामी शान्तिधर्मानन्द सरस्वतीजी जी के द्वारा कुछ अधूरे श्लोकों को पूरा करने का प्रयास किया गया है, जिनके क्रमांक इस प्रकार है -

प्रथमपाद :-. 284 और 293। **द्वितीयपाद :**- 99,125, 192 और 193।

तृतीयपाद:- 36, 37, 100, 113, 114, 129, 183, 193, 235, 316, 323, 352, 359, 631, 633, 643, 647, 667, 769, 777, 780, 782, 784, 813, 823 और 825।

चतुर्थपाद :- 4, 49, 58, 89, 172, 217, 222, 223, 501, 584, 594, 636, 678, 682 और 691।

कुछ अधूरे श्लोकों को पूरा करने का प्रयास नहीं किया गया है, जिनके क्रमांक इस प्रकार है -

प्रथमपाद :- 2 से 16, 59, 64, 69, 74 जसे76, 202, 227, 229, 236, 238 और 315।

तृतीयपाद:- 43, 80, 85, 90, 91, 373 और 443।

विषयानुक्रमणिका

विभूतिपाद - प्रथम पाद

क्रमांक	विषय	पृष्ठसंख्या
1.	मङ्गलाचरण	34
2.	दण्डमहिमा	34
3.	दण्ड का प्रणवात्मकता	35
4.	दण्ड का प्रणव, आम्नाय, तत्त्व, चक्र,	35
	दिशा, उपदिशा और श्रीचक्र से अभेद	36
5.	दण्ड में प्रणव से चक्र पर्यन्त की एकता	36
6.	दण्ड का स्वरूप	37
7.	स्थूलादि मान (नाप)	37
8.	आकार का विमर्श	38
9.	दण्ड के प्रकार और उनके नाम	38
10.	दण्ड के तीन भाग	39
11.	दण्ड में मुद्रा द्वय	39
12.	दण्ड में ब्रह्मसूत्र पर विचार	39
13.	ब्रह्मसूत्र का नाप	40
14.	ब्रह्ममुद्रा का स्थान	40
15.	परशुमुद्रा का स्थान	41
16.	ब्रह्ममुद्रा का विधान	42
17.	परशुमुद्रा का विधान	43
18.	सुदर्शन नामक दण्ड में शडाम्नाय की भावना	44
19.	सुदर्शन नामक दण्ड में श्रीचक्र की भावना	45
20.	सुदर्शन नामक दण्ड में विश्वधर्मरक्षकश्रीयन्त्र की भावना	45
21.	नारायण नामक दण्ड में आम्नाय की भावना	46
22.	नारायण नामक दण्ड में श्रीचक्र की भावना	46
23.	गोपाल नामक दण्ड में आम्नाय की भावना	47
24.	गोपाल नामक दण्ड में श्रीचक्र की भावना	48

25.	वासुदेव नामक दण्ड में आम्नाय की भावना	48
26.	वासुदेव नामक दण्ड में श्रीचक्र की भावना	49
27.	अनन्त नामक दण्ड में आम्नाय की भावना	49
28.	अनन्त नामक दण्ड में श्रीचक्र की भावना	50
29.	दण्ड के ब्रह्मसूत्र के धागों की संख्या आदि	51
30.	श्रीचक्रस्थ आम्नायों के स्वरूप, गोत्र आदि	51
31.	दण्ड में मूलाधारादि चक्रों की स्थिति	53
32.	दण्ड में पृथिव्यादि की कल्पना	54
33.	प्रणव के मात्राओं का कादिमत से दीक्षा	54
34.	यन्त्र आदि में प्राणप्रतिष्ठा की आवश्यकता	57
35.	दण्ड के चार स्वरूप	57
36.	दण्ड में प्राणप्रतिष्ठा की आवश्यकता	58
37.	प्राणप्रतिष्ठा का फल	58
38.	न्यासादि से दण्ड का अद्भुतत्व	58
39.	प्राणप्रतिष्ठा के तीन भेद	59
40.	दण्ड में प्राणप्रतिष्ठा के फल	60
41.	प्राणप्रतिष्ठा के अभाव में मात्र लकड़ी	61
42.	विधिवत्साधितदण्ड के धारण का फल	62
43.	दस चक्रों में जप का क्रम	62
44.	कुण्डलिन्यादि क्रम से चक्र चिन्तन	64
45.	न्यास प्रकरण	65
46.	षोढान्यास का स्वरूप	66
47.	अधराम्नाय षोढान्यास – रविवार में	66
48.	पूर्वाम्नाय षोढान्यास – सोमवार में	67
49.	दक्षिणाम्नाय षोढान्यास – मंगलवार में	67
50.	पश्चिमाम्नाय षोढान्यास – बुधवार में	67
51.	उत्तराम्नाय षोढान्यास – गुरुवार में	68
52.	ऊर्ध्वाम्नाय लघुषोढान्यास – शुक्रवार में	69
53.	ऊर्ध्वाम्नाय महाषोढान्यास – शनिवार में	69
54.	महाषोढान्यास का फल	70

55. श्रीगुरुप्रणाम का रहस्य 71
56. श्रीदण्डप्रणाम का रहस्य 72
57. नित्य दण्डग्रहण का मन्त्र 75
58. दण्ड तर्पण 75
59. दण्ड वन्दना और कर्तव्य 76
60. न्यास विवरण 77
61. प्रणव के अक्षरों का विनियोग 78
62. पंचोपचारपूजन 79
63. तर्पण 80
64. अर्घ्यदान 81
65. उत्तरपूजन 81
66. प्रणवोच्चारण से दण्डतर्पण 81
67. तुर्या सन्ध्या 82
68. न्यास विवरण 81
69. ध्यान 81
70. अजपाजपनिवेदन 82
71. जपनिवेदनमन्त्र 83
72. दण्ड स्थापन मन्त्र 84
73. दण्ड गिरने पर पुनर्ग्रहण विधि 84
74. यतियों के अनाख्या और भासा क्रम 84
75. यतियों के कर्तव्य 85

तत्त्वपाद - दूसरा पाद

1. प्रणव महिमा 86
2. प्रणव के मात्रा, देवतादि ज्ञान 86
3. प्रणव के मात्राओं का वर्णन 86
4. प्रणव के मात्राओं का रंग 87
5. प्रणव के अन्य 16 मात्रायें 87
6. स्थूलादिभेद से प्रणव के 64 मात्रायें 87

7.	प्रकृतिपुरुषभेद से प्रणव की द्विविधता	88
8.	सगुणनिर्गुणभेद से प्रणव की पुनर्द्विविधता	88
9.	प्रणव के आम्नायक्रमदीक्षास्वरूप	88
10.	प्रणव के आम्नायस्वरूप	88
11.	आम्नायों के छः भेद	88
12.	प्रणव के कूटात्मकता	89
13.	प्रणव के मात्राओं में आम्नाय व्यवस्था	89
14.	प्रणव के मात्राओं का सृष्ट्यादिरूपता	90
15.	दिक्सृष्टिक्रम से प्रणव की मात्राव्यवस्था	90
16.	आम्नायों के उपासना का फल	91
17.	प्रणव के मात्राओं की शिवरूपता	92
18.	अकारमात्रा की चक्रकूटादिरूपता	93
19.	कादिहादिसादिक्रमकूटव्यवस्था	93
20.	कूटत्रय के देवता	93
21.	कादिविद्याओं के क्रम	94
22.	कादिक्रमों के प्रणवमात्राक्रम	94
23.	प्रतिकूट के क्रम, सृष्ट्यादिसन्धान	94
24.	अकारमात्रा की शक्तियाँ	95
25.	उकारमात्रा की चक्रादिरूपता	96
26.	उकारमात्रा की शक्तियाँ	96
27.	मकारमात्रा की चक्रादिरूपता	97
28.	मकारमात्रा की शक्तियाँ	97
29.	अर्धमात्रा की शक्तियाँ	100
30.	नादमात्रा की शक्तियाँ	100
31.	बिन्दुमात्रा की शक्तियाँ	101
32.	कादि आदि कूटों के पाठान्तर	103
33.	कादिक्रमों के सृष्ट्यादिसन्धान	104
34.	कूटत्रय के देवता	104

35. सभी केलिये श्रीचक्रानुष्ठानक्रम 105
36. विराट्प्रणवस्वरूप 108
37. पंचसमयविद्याओं के क्रमव्यवस्था 112
38. स्थूलक्रम में चक्रादियों की व्यवस्था 113
39. सूक्ष्मक्रम में चक्रादियों की व्यवस्था 113
40. आम्नायक्रम से चक्रादियों की व्यवस्था 114
41. आम्नायों और डाकिन्यादि के स्वरूप 114

साधनापाद - तीसरा पाद

1. योगज्ञान और तत्त्वसाधना की आवश्यकता 117
2. योग की महिमा 118
3. दो प्रकार की सिद्धियाँ 118
4. अकल्पित सिद्धियाँ 118
5. कल्पित सिद्धियाँ 118
6. शरीर की महिमा 119
7. शरीर में स्थित दस वायु 119
8. दस वायु के स्थान 119
9. वायुओं के रंग 119
10. प्राणादिवायुओं के स्थान 120
11. प्राणादिवायुओं के कार्य 121
12. दस इन्द्रियों के परिच्छेद 122
13. शरीरस्थ मूलाधारादिचक्र 123
14. सुन्दरीकल्प 124
15. चक्रें के अधिष्ठात्री देवता 125
16. सृष्टिचक्रस्थशक्तियों के नाम 127
17. स्थितिचक्रस्थशक्तियों के नाम 128
18. संहारचक्रस्थशक्तियों के नाम 128
19. प्रणव के 16मात्राओं की कूटत्रयरूपता 129
20. नाडियों से चक्रों का निर्माण 130
21. 16 नाडियों के नाम और स्थान 134

22.	जप के प्रकारभेद	136
23.	छ:चक्रों में जपादि का फल	143
24.	दसचक्रों में जपादि का फल	144
25.	बहिर्याग, अन्तर्याग और पूजाविधि	145
26.	देहमें चारपीठों की स्थिति	147
27.	देहमें शाम्भ्वी-शाम्भव की स्थिति	147
28.	देहमें बिन्दुनादमहालिंगों की स्थिति	148
29.	नाद और बिन्दु के योग का लक्षण	148
30.	महारजोवीर्ययोगलक्षणम्	149
31.	मस्तिष्क और शरीर की नाड़ियाँ	150
32.	वीर्यसंरक्षण प्रक्रिया	163
33.	महामुद्रा का लक्षण	165
34.	महाबन्ध का लक्षण	167
35.	महावेध का लक्षण	168
36.	विपरीतकरणीमुद्रा का लक्षण	169
37.	शक्तिचालनमुद्रा का लक्षण	170
38.	अश्विनीमुद्रा का लक्षण	172
39.	मूत्रोत्सर्गमुद्रा का लक्षण	174
40.	कुण्डलिनीजागरणविधि	174
41.	मणिपूरचक्र का वर्णन	187
42.	मूलाधारचक्र का वर्णन	188
43.	आज्ञाचक्र का वर्णन	189
44.	विशुद्धिचक्र का वर्णन	190
45.	स्वाधिष्ठानचक्र का वर्णन	190
46.	अनाहतचक्र का वर्णन	191
47.	चक्रों के नाम	192
48.	चक्रों के नाप	193
49.	मूलाधारचक्रस्थ रंग और वायु	197
50.	अधोमुखस्वाधिष्ठानचक्रस्थ रंग और वायु	200
51.	स्वाधिष्ठानचक्रस्थ रंग और वायु	200

52.	अधोमुखमणिपूरचक्रस्थ रंग और वायु	200
53.	मणिपूरचक्रस्थ रंग और वायु	202
54.	अधोमुखानाहतचक्रस्थ रंग और वायु	203
55.	अनाहतचक्रस्थ रंग और वायु	205
56.	अधोमुखविशुद्धिचक्रस्थ रंग और वायु	207
57.	विशुद्धिचक्रस्थ रंग और वायु	207
58.	आज्ञाचक्रस्थ रंग और वायु	208
59.	मूलाधारचक्रस्थ भुवनें	210
60.	स्वाधिष्ठानचक्रस्थ भुवनें	211
61.	मणिपूरक्रस्थ भुवनें	211
62.	अनाहतचक्रस्थ भुवनें	212
63.	चक्रों का भेदनक्रम से नादोत्पत्ति	213
64.	सिर में स्थित नाडियों का विवरण	213
65.	सहस्रारचक्रस्थ नाड़ी और वायु	229
66.	आज्ञाचक्रस्थ नाड़ी और वायु	239
67.	विशुद्धिचक्रस्थ नाड़ी और वायु	239
68.	अनाहतचक्रस्थ नाड़ी और वायु	239
69.	मणिपूरचक्रस्थ नाड़ी और वायु	239
70.	स्वाधिष्ठानचक्रस्थ नाड़ी और वायु	240
71.	मूलाधारचक्रस्थ नाड़ी और वायु	240
72.	मिश्रचक्र की नाड़ियाँ	241
73.	पंचीकरणशक्तियाँ	241
74.	गुरुमहिमा	245

सिद्धिपाद - चौथा पाद

1.	श्रीयन्त्र में पश्चिमाम्नाय के शक्तियों का विवरण	251
2.	नवार्णवमन्त्र के देवियों का परमस्वरूप	254
3.	पश्चिमाम्नाय की श्रेष्ठता, सादिकूटसूचकता	254
4.	षट्चक्रों का विभिन्नरूप से ध्यान	257
5.	ब्रह्मनाडीनिरूपण	266

6.	नाडियों के स्थाननिरूपण	266
7.	नाडी द्वारा स्थान व योग का निरूपण	268
8.	प्रणवदीक्षाक्रम	273
9.	लघुक्रम	281
10.	श्रीविद्याचक्र के क्रमों का ज्ञान	284
11.	मातृकाओं का वर्णन	284
12.	नाद का भेद	339
13.	नाद का ज्ञान	340
14.	साधना के काल का ज्ञान	342
15.	शरीरस्थचक्रों के विशेष ज्ञातव्य	347
16.	आज्ञाचक्र की शिवशक्तियाँ	348
17.	आज्ञाचक्र का पद्मदलतत्त्व	348
18.	अनाहतचक्र की शिवशक्तियाँ	350
19.	अनाहतचक्र का पद्मदलतत्त्व	350
20.	विशुद्धिचक्र की शिवशक्तियाँ	351
21.	विशुद्धिचक्र का पद्मदलतत्त्व	352
22.	मणिपूरचक्र की शिवशक्तियाँ	353
23.	मणिपूरचक्र का पद्मदलतत्त्व	354
24.	स्वाधिष्ठानचक्र की शिवशक्तियाँ	354
25.	स्वाधिष्ठानचक्र का पद्मदलतत्त्व	355
26.	मूलाधारचक्र की शिवशक्तियाँ	355
27.	मूलाधारचक्रस्थ दस प्रधान नाडियाँ	355
28.	शरीरस्थ दस वायु	355
29.	मूलाधारचक्र का पद्मदलतत्त्व	356
30.	शरीरस्थ दस अग्निस्थान	356
31.	बिन्दु को स्थिर करने का औषधियाँ	357

---000---

।।ॐ श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः।।

।।ॐ श्रीसद्गुरुभ्यो नमः।।

जगद्गुरु-भगवत्पाद-श्रीमदाद्यशङ्कराचार्य-विरचिते

यतिदण्डैश्वर्यविधाने

अथ विभूतिपादो नाम प्रथमः पादः = विभूतिपाद नामक पहला पाद आरम्भ होता है।

1. **मङ्गलाचरणम्** = मंगलाचरण किया जाता है –

प्रणम्य परमात्मानं सच्चिदानन्दमद्वयम्।
यतिदण्डस्य माहात्म्यं वच्मि संन्यासिनामहम्।।1।।

अद्वयस्वरूप सच्चिानन्द परमात्मा को प्रणाम करके संन्यासियों के यतिदण्ड का माहात्म्य को मैं कहूँगा– (श्लोक संख्या 2 से 16 तक मंगलाचरणान्तर्गत श्लोक उपलब्ध नहीं हैं। (1)

(विशेषसूचना – प्रथमश्लोकानन्तरं पंचदश श्लोका अपठिताः सन्त्यतः श्लोकसंख्याऽग्रे सप्तदश दत्ताऽस्ति। इतोऽग्रेऽपि यत्र यत्र श्लोकानां विलोपो विद्यते तत्र तत्रैवमेव संख्यायोगः कृतो विद्यते इति ज्ञेयम् = अर्थात् पहले श्लोक के बाद 15 श्लोक पठित नहीं हैं यानि उपलब्ध नहीं हैं। इसलिये अगले श्लोक की संख्या 17 दिया गया है। यहां से आगे भी जहां जहां श्लोक लुप्त हैं यानि अनुपलब्ध हैं वहां वहां ही श्लोकों के संख्या क्रमानुसार रखा गया है – ऐसा जानें।)

2. **दण्डमहिमा** = दण्ड की महिमा बताते हैं –

सुरासुरमनुष्याणां वज्रास्त्रशस्त्रशक्तिवत्।
निगमागममन्त्राणां विधानेन प्रतिष्ठितः ।।17।।

सुर, असुर और मनुष्यों के जैसे वज्र, अस्त्र और शस्त्र शक्ति होते हैं उसी प्रकार निगम, आगम और मन्त्रों के विधान से (दण्ड)प्रतिष्ठित होता है।। 17।।

नित्योपासनया सिद्धः साक्षाद्देवायुधोपमः।
शास्त्रोक्तविधिना प्राप्तो यतिदण्डो विशिष्यते।।18।।

यतिदण्ड की यह विशेषता है कि शास्त्रोक्तविधि से प्राप्त कर नित्य उपासना करने पर वह (दण्ड) सिद्ध होता है ठीक उसी प्रकार जैसे देवताओं के आयुध।।18।।

विष्णुहस्ते यथा चक्रं शूलं शिवकरे यथा।
इन्द्रहस्ते यथा वज्रं तथा दण्डो यतेः करे।।19।।

(इसलिये) विष्णुजी के हाथ में सुदर्शनचक्र, शिवजी के हाथ में त्रिशूल और इन्द्र के हाथ में वज्र के समान यति के हाथ में दण्ड होता है।।19।।

3. **दण्डस्य प्रणवात्मकता** = दण्ड की प्रणवात्मकता बता रहे हैं –

प्रणवस्य प्रतिकृतिर्दण्डः संन्यासिनां मतः।
प्रणवोऽस्ति यतः साक्षादद्वैतब्रह्मबोधकः।।20।।

संन्यासियों के दण्ड को प्रणव का प्रतीक माना गया है, क्योंकि प्रणव साक्षात् अद्वैत ब्रह्म का बोधक है।।20।।

शब्दब्रह्मात्मना सोऽयं महानिर्वाणबोधकः।
परमाद्वैतरूपेण यस्माद्दण्डे प्रतिष्ठितः।।21।।

इसलिये भी दण्ड अद्वैत का ही प्रतीक है। जिसलिये वह यह प्रणव शब्दब्रह्मरूप से परमनिर्वाण का बोधक है। (इसलिये) वह परमाद्वैतरूप से दण्ड में प्रतिष्ठित है।।21।।

4. **दण्डस्यप्रणवमात्रा-शिववक्त्राम्नाय-तत्त्व-चक्रं दिशोपदिशापूर्वकं श्रीचक्रात्मकत्वं च** = दण्ड की प्रणवमात्रा, शिववक्त्राम्नाय, तत्त्व, चक्र, दिशोपदिशा पूर्वक श्रीचक्रात्मकता बता रहे हैं –

ओङ्कारमात्रा एवात्र सन्ति शम्भुमुखानि वै।
शिवाननानि चाम्नाया आम्नायास्तत्त्वरूपिणः।।22।।

दण्ड का प्रणव की मात्रारूपता शिव के पाँच मुखों से उपदिष्ट पाँच आम्नाय, दिशा उपदिशा पूर्वक तत्त्वों, चक्रों और श्रीचक्र के साथ तादात्म्यता – ओंकार के मात्रायें ही शिव में उनके मुख रूप प्रतीक हैं। वे शिव के पंचमुख ही पाँच आम्नाय हैं। वे आम्नाय ही तत्त्व रूप हैं।।22।।

तत्त्वान्येव हि चक्राणि चक्राण्यथ दिशो मताः।
दिश एवोपदिशो वै भवन्त्येव न संशयः।।23।।

वे तत्त्व ही पुनः चक्र हैं। चक्र ही दिशायें हैं, दिशायें ही उपदिशायें हैं। इसमें कोई संशय नहीं। ऐसे सर्वाभेद ही पारमार्थिक सत्य है।।23।।

सर्वाण्येतानि संयुज्य यान्ति श्रीचक्ररूपताम्।
तस्माच्छ्रीचक्रात्मकत्वं यतिदण्डस्य वर्णितम्॥24।।

ये सब मिलकर ही श्रीचक्र का स्वरूप बनता है। इसलिये संन्यासियों के दण्ड भी श्रीचक्र रूप है– ऐसे वर्णन किया गया है शास्त्रों में।।24।।

तदेवं स्मरणान्न्यासाद्भावनात्पूजनात्तथा ।
यतिदण्डो भवेत्साक्षाच्छ्रीयन्त्रात्मक उत्तमः॥25।।

इस प्रकार स्मरण, न्यास, भावना और पूजा करने से संन्यासियों का दण्ड साक्षात् सर्वोत्तम श्रीयन्त्र ही हो जाता है।।25।।

चक्रराजप्रतीकोऽयं दण्डो भवति नान्यथा।
एतद्बुध्वैव सन्धार्यो भावना चात्र सिद्धिदा ॥25।।

चक्रराज (श्रीयन्त्र) का प्रतीक यह दण्ड है और किसी प्रकार से भी भेद नहीं है। ऐसे जानकर दण्ड में श्रीयन्त्र आदि का अभेद की भावना (अनुसन्धान = चिन्तन) करने से सिद्धि (अन्तःकरण शुद्धि) प्राप्त होगी।।26।।

5. यतिदण्डे प्रणवादिचक्रान्तानां सर्वेषामैक्यम् = यतिदण्ड में प्रणवादि चक्रपर्यन्त सभी के ऐक्यता का प्रतिपादन कर रहे हैं –

यतिदण्डे च प्रणवे मात्रासु प्रणवस्य च।
शिववक्त्रेषु चाम्नायेष्वथ तत्त्वेषु दिक्षु वै॥26।।
विदिशासु तथा श्रीमच्चक्रराजेऽपि सर्वथा।
न कश्चिद्विद्यते भेदो भेदकृन्निरयं व्रजेत्॥27।।

दण्ड में प्रणव से श्रीचक्र पर्यन्त की एकता इस प्रकार है – यदि दण्ड और प्रणव में, मात्राओं में प्रणव का तथा शिवमुखों आम्नायों, तत्त्वों, दिशाओं और श्रीचक्र में सर्वथा कोई भेद नहीं है। जो इनमें भेद करता है। (इन्हें भिन्न–भिन्न) समझता है वह निश्चित रुप से नरक को (पुनः पुनः जन्म–मरण रुपी संसार को) प्राप्त करता है।। 27–28।।

तारे दण्डे च पिण्डे च ब्रह्माण्डे यन्त्रराजके।
न कंचिद्भावयेद्भेदं यतिस्तत्त्वार्थचिन्तकः॥29।।

इस लिये तत्त्वचिन्तक संन्यासी कभी भी प्रणव, दण्ड, पिण्ड, ब्रह्माण्ड और श्रीयन्त्र में, किसी भी प्रकार का भेद की भावना न करें।। 29।।

दण्डे पिण्डे च ब्रह्माण्डे श्रीचक्रे च सरूपताम्।

ध्यात्वा शुभफलावाप्तिर्नाल्पस्य तपसः फलम्।।30।।

दण्ड, पिण्ड, ब्रह्माण्ड और श्रीचक्र की सरूपता को ध्यान करने से प्राप्त होने वाला शुभफल किसी थोड़ी तपस्या का फल नहीं किंतु बहुत तप का फल है।।30।।

आम्नायोपाम्नाययुतासृष्ट्यादिक्रमकल्पना।

यतिदण्डे विधातव्या प्रणवादिवदेव हि।।31।।

आम्नाय और उप आम्नाय युक्त सृष्टि आदि क्रम की कल्पना प्रणव आदियों के समान यति दण्ड में विधान करना चाहिये।।31।।

मूलाधारादिचक्राणां यथा पिण्डे विभावना।

कार्या तथैव दण्डेऽपि षट्चक्राणां विभावना।।32।।

मूलाधारादि चक्रों का जिस प्रकार पिण्ड (शरीर) में भावना करते हैं उसी प्रकार षट् चक्रों की भावना दण्ड में भी करना चाहिये।।32।।

श्रीचक्रस्य यथा देहे क्रियते परिकल्पना।

तथैव कार्या दण्डेऽपि सर्वदा परिकल्पना।।33।।

श्रीचक्र की कल्पना जिस प्रकार इस देह में की जाती है ठीक उसी प्रकार दण्ड में भी सदा भावना करनी चाहिये।।33।।

6. **यतिदण्डस्वरूपम्** = यति के दण्ड का स्वरूप बता रहे हैं –

दृढवंशभवः शुष्कश्चारुपर्वविभूषितः ।

पवित्रभूमिसम्प्राप्तो दण्डः संन्यासिनां भवेत्।।34।।

पवित्रभूमि में उत्पन्न सुन्दर पर्व (गाँठों) से सुशोभित, सूखा, मजबूत बाँस ही संन्यासियों का दण्ड होता है (34)

7. **स्थूलादि मानम्** = दण्ड के मोटाई आदि बता रहे हैं –

स्यादङ्गुष्ठस्थपर्वाढ्या यतिदण्डस्य स्थूलता।

तथा कनिष्ठान्त्यकृशा शिखा तस्य प्रकीर्तिता।।35।।

अंगूठे के पर्व के समान मोटा (निचले भाग में) और ऊपर चोटी कनिष्ठिका के अन्त्य पर्व के समान पतला, इस प्रकार उस दण्ड का माप (मोटाई के बारे में) बताया गया है।।35।।

8. आकारविमर्शः = आकार के बारे में बता रहे हैं –

पादाङ्गुष्ठाच्छिखान्तः स्याद्गृहीतुर्दण्ड उत्तमः।
तत एव च दण्डः स्याद्भालं यावच्च मध्यमः॥36।।

दण्ड ग्रहण करने वाले यति के अपने पैर के अंगूठे से शिखापर्यन्त लम्बाई के बराबर लम्बाई का दण्ड उत्तम दण्ड है।।36।।

पादाङ्गुष्ठान्नासिकान्तो यतिदण्डोऽधमः स्मृतः।
आकृतेरेष नियमः स्वीकार्यो ह्यथवा पुनः॥37।।

पैर के अंगूठे से नाक के पर्यन्त लम्बाई के बराबर लम्बाई का दण्ड को अधम दण्ड कहा गया है। यह नियम (आकृति) आकार के सम्बन्ध में स्वीकार करना चाहिये। अथवा ।।37।।

हस्तौ प्रसारितौ कृत्वा मध्यमाङ्गुलियुग्मयोः।
स्पर्शं यावत्प्रलम्बस्तु यतिदण्डः शुभो भवेत्।।38।।

पैर के अंगूठे से लेकर हाथों को ऊपर की ओर फैला करके मध्यमा अंगुलियों को जोड़ लेने पर जितनी लम्बाई होगी उतना लम्बा दण्ड शुभ होता है ।।38।।

मध्यमोऽनामिकास्पर्शः कनिष्ठास्पृक्तथाऽधमः।
एवं विचार्य क्रियते दण्डोऽयं यतिभिः सदा।।39।।

अनामिका अंगुलियों के स्पर्श तक की लम्बाईवाला दण्ड मध्यम और कनिष्ठिका अंगुलियों के स्पर्श तक की लम्बाईवाला दण्ड अधम कहा गया है। इस प्रकार विचार करके संन्यासी लोग दण्ड को बना लेते हैं।।39।।

9. यतिदण्डस्य प्रकाराः नामानि च = यतिदण्ड के प्रभेद और उनके नाम–

पंच प्रकारा दण्डस्य पूर्वाचार्यैः प्रदर्शिताः।
ग्रन्थीनां संख्यया भेदा भवन्त्येते यथाक्रमम्।।40।।

पूर्वाचार्यलोग पंच प्रकार का दण्ड बताये हैं। ग्रन्थियों (गाँठों) की संख्या भेद से वे क्रमशः इस प्रकार है – ।।40।।

षड्भिः सुदर्शनस्तत्राऽष्टभिर्नारायणो भवेत्।
गोपालो दशकैः प्रोक्तो वासुदेवोऽथ मासयुक्॥41।।

6 गाँठवाले को 'सुदर्शन', आठ गाँठ वाले को 'नारायण', दस गाँठवाले 'गोपाल' और 12 गाँठवाले को 'वासुदेव' नाम से कहे गये हैं।।41।।

मनुग्रन्थिमयोऽनन्तस्तत ऊर्ध्वं न धारयेत्।
पंच प्रकारा एवैते यतिदण्डस्य निश्चिताः॥42।।

चौदह गाँठवाले को 'अनन्त' नाम से कहा गया है। 6 से कम व 14 से ज्यादा गाँठवाले दण्ड को धारण न करें। अतः यतिदण्ड केवल पाँच प्रकार के ही निश्चय किये गये हैं।

10. **यतिदण्डस्य त्रयो भागाः** = यतिदण्ड के तीन भाग –

सर्वेषां यतिदण्डानां त्रयो भागा भवन्त्यथ।
ग्रन्थीनां क्रमतस्तेषां निर्णयो भवति ध्रुवम्।।43।।

सभी यतिदण्डों के तीन भाग होते हैं। ग्रन्थियों के क्रम से उन तीन भागों को नियत रूप से निश्चय किया जाता है।।43।।

अधो मध्योत्तरा भागाः क्रमशः परिकीर्तिताः।
स्थूलो भवेदधोभागो मध्यो मध्यम उच्यते।।44।।

इन भागों को निचला, मध्य और ऊपरी नाम से क्रमशः कहा गया है स्थूलभाग को निचला (अधः) मध्यमभाग को मध्य (मध्यः) कहा गया है।।44।।

उत्तरस्तु कृशस्तस्मादिति संवीक्ष्य गृह्यते।
नातिस्थूलो नातिकृशो यतिदण्डो विधीयते।।45।।

पतलाभाग को ऊपरी (उत्तरः ऋ) नाम से कहा जाता है। इसलिये स्थूलादि को देखते हुए दण्ड ग्रहण करना चाहिये (उल्टा नहीं यानि पतलाभाग नीचे और स्थूल भाग ऊपर करके)। ज्यादा मोटा और ज्यादा पतला दण्ड को ग्रहण करने का विधान नहीं है।।45।।

11. **यतिदण्डे मुद्राद्वयम्** = यतिदण्ड में दो मूद्रायें –

ब्रह्ममुद्रा पर्शुमुद्रा नाम्ना मुद्राद्वयं स्मृतम्।
मुद्रां विना यतो दण्डः केवलं काष्ठमेव सः।।46।।

यतिदण्ड में ब्रह्ममुद्रा और परशुमुद्रा नाम से दो मुद्रायें कहे गये हैं। इस लिये इन दो मुद्राओं के बिना वह दण्ड केवल एक लकड़ी ही है।।46।।

12. **यतिदण्डे ब्रह्मसूत्रविचारः** = यतिदण्ड में यज्ञोपवीत का विचार –

किंचात्र ब्रह्मसूत्राणां चतुरुत्तरविंशतेः।
दण्डसूत्रं भवेदेकमिति संन्यासिनां मतम्।।47।।

यतिदण्ड में संन्यासियों का मत है कि 24 यज्ञोपवीत के बराबर दण्ड का एक यज्ञोपवीत होता है।।47।।

अष्टादशद्वाविंशतिसूत्राणामपि भेदतः।
दण्डसूत्राणि जायन्ते तीर्थवाणी विभागतः॥48॥

अठारह अथवा बाईस यज्ञोपवीतों का भेद दण्ड के यज्ञोपवीत के विषय में तीर्थ और वाणी का भेद के अनुसार स्वीकार किया गया है। अर्थात् तीर्थ= संन्यास दस नाम भेद और वाणी = उसके शाखा के अनुसार।।48।।

13. ब्रह्मसूत्रमानम् = यज्ञोपवीत का नाप –

त्रिवृत्क्रमविधानेन तन्तूनामनुवर्तनात् ।
षण्णवत्यङ्गुलमितं ब्रह्मसूत्रमिति स्मृतम्॥49॥

तीन धागों को परस्वर वेणी जैसे गूथने को त्रिवृत्करण कहा जाता है, व्यक्ति का अपने अंगुली के नाप के अनुसार 96 अंगुली लम्बी हो उसे यज्ञोपवीत= ब्रह्मसूत्र कहा जाता है। ब्रह्म = वेद, उसका अध्ययन के लिये दीक्षित होने का प्रतीक सूत्र, अतः ब्रह्मसूत्र कहा गया है।।49।।

षडुत्तरैषा नवतिश्चतुर्विंशतिसंख्यया ।
गुणिता चेद्भवेत्संख्या चतुःखाग्निद्विसम्मिता॥50॥

96 अंगुली माप को 24 संख्या से गुणा करने पर 2304 संख्या फलित होता है।।50।।

तिथिर्वारश्च नक्षत्रं तत्त्वं वेदा गुणत्रयम्।
कालत्रयं हि मासाश्च ब्रह्मसूत्रे हि षण्णवे॥51॥

96 अंगुली क्यों? उत्तर देते हैं – 96 संख्या में तिथि (30) + वार (7) + नक्षत्र (27) + तत्त्व (10 = पुरुष, प्रकृति, महत् (बुद्धि) अहंकार, मन, पांच ज्ञानेन्द्रियां) + वेद (4) + तीन गुण (3=सत्त्व, रजः, तम) + तीन काल (3=भूत, वर्तमान, भविष्यत्) + मास (12) = ये ही ब्रह्मसूत्र अर्थात् यज्ञोपवीत में 96 पदार्थ हैं, जिन्हें 96 अंगुल रूपी प्रतीक से बताया गया है।।51।।

14. ब्रह्ममुद्रास्थानम् = ब्रह्ममुद्रा का स्थान –

24 से गुणा क्यों? सत्य युग में बालक यज्ञोपवीत 3 धागों का, जब विवाह होता है पत्नी के निमित्त 3 धागों का, कुल 6 यानि दो यज्ञोपवीत धारण किया जाता है। कलियुग में उसका चार गुण अतः 6 x 4 = 24 हुआ। 96 x 24 = 2034 इसका तात्पर्य यह है कि 96 पदार्थों से बना हुआ शरीर को नित्य 24 बार कम से कम दण्ड में लगाये हुए यज्ञोपवीत के द्वारा मनुष्य के लक्ष्य का स्मरण होते

रहे। कुछ अन्य विद्वानों का मानना है कि 24 गुणा का तात्पर्य 24 घण्टे लक्ष्य का स्मरण रहें।

भागद्वयोत्तरं ब्रह्ममुद्रास्थानं तु निश्चितम्।
अथवा नाभिपर्यन्तं पादाग्राद्दण्डगं भवेत्।।52।।

दण्ड के लम्बाई का नीचे से 2 भाग के ऊपर (नीचे से 64 अंगुल ऊपर और ऊपर से 32 अंगुल नीचे) अथवा पैर के अग्रभाग से नाभि पर्यन्त दण्ड के भाग को ब्रह्ममुद्रा का स्थान कहतें हैं।।52।।

15. परशुमुद्रास्थानम् = परशुमुद्रा का स्थान –

ब्रह्ममुद्रोत्तरं मुद्रा परशोस्तु निधीयते ।।53।।
प्रणवाकारता तस्याः प्रथिता यतिमण्डले।।54।।

यति मण्डल में यह प्रसिद्धि है कि ब्रह्ममुद्रा के ऊपर परशुमुद्रा को धारण किया जाता है और उसकी प्रणव आकारता भी प्रसिद्ध है। (53–54)

16. ब्रह्ममुद्राविधानम् = ब्रह्ममुद्रा बनाने की विधि –

अधस्तात्परशुमुद्राया ब्रह्ममुद्रा विधियते।
प्रदक्षिणं समावेष्ट्य दण्डसूत्रैः समन्ततः।।55।।
ब्रह्ममुद्रा विधातव्या चतुरङ्गुलमायता।
चतुर्थे वलये तत्र धेनुमुद्रां यथाक्रमात्।।56।।
विरचय्य विधातव्या शङ्खमुद्रापि शोभना।
ततः प्रणवमात्राख्यां शेषमुद्रां ★ च शोभिताम्।।57।।
विधाय ग्रन्थयेद् ग्रन्थिं सुदृढां ब्रह्मसूचिकाम्।
एवं दण्डे विधातव्या ब्रह्ममुद्रा यथाविधि।।58।।

परशुमुद्रा के नीचे ब्रह्ममुद्रा का विधान किया गया है। दण्डसूत्र= ब्रह्म सूत्र=यज्ञोपवीत को चार अंगुल चौड़ाई में ही प्रदक्षिणानुमा लपेटें। चौथे वलय (लपेट) पर धेनुमुद्रा और शंखमुद्रा को भी क्रमशः दर्शाकर प्रणवमात्रा को तथा शोभनीया शेषमुद्रा को भी दर्शाकर गाँठ बाँधें। इस प्रकार ब्रह्म का सूचक अत्यन्त सुदृढ़ गाँठ को दण्ड पर बनाने को विधिवत् ब्रह्ममुद्रा का सम्पादन करना कहा गया है।।55–58।। ★ मुद्राशेषसुशोभितम् – इति पाठान्तरम्।

सार्धत्रिवलयाकारां ----------- ।।59।।

(शेषभागोऽनुपलब्धः)

17. परशुमुद्राविधानम् (परशुमुद्रायाः पटमानं, तत्साधनं, तन्निर्माणविधिश्च) = परशुमुद्रा में प्रयुक्त कपड़े का नाप, उसका साधन और उसको बनाने की विधि –

गृह्णीयान्मसृणं वासः पूर्वं शुद्धमथाक्षतम्।
भवेद्यदष्टचत्वारिंशदङ्गुलीमितमायतम् ।।60।।

स्यात्षोडशाङ्गुलायामं रंजयेत्तत्प्रयत्नतः ।
काषायेणैव रागेण स दण्डो नियतात्मवान्।।61।।

प्राग् विस्तारस्योभयतः परावृत्य तटद्वयम् ।
तदाष्टाङ्गुलविस्तारं कुर्यादुभयतः समम्।।62।।

ततः पुनर्मध्यतस्तत्परावृत्य यथायथम्।
विस्तारमानतः कुर्याच्चतुरङ्गुलशेषितम् ।।63।।

परशुमुद्रा का विधान : चमकदार, मृदु (कोमल) व सुन्दर (साफ–सुथरा) वस्त्र जो कि पहले धोया हुआ हो और अक्षत (फटा, दागी आदि न हो), ऐसे 48 अंगुल लम्बी और 16 अंगुल चौड़ाई वस्त्र को भगवा (गेरुवा) रंग से अच्छी तरह रंग लें। काषाय रंग से रंगे तो अत्युत्तम होगा। 16 अंगुल को मोड़ कर 8 अंगुल चौड़ा वाले भाग को किनारों से बराबर हो (यानी टेडा न हो) ऐसे मोड़कर चार अंगुल का बना लें।।60–63।।

चतुरङ्गुल (इत्यादि 64 का शेष अनुपलब्ध)

यथैवमेकतस्तत्स्याच्चतुरङ्गुलविस्तृतम् ।
अन्यतश्चाष्टचत्वारिंशदङ्गुलमितं क्रमात्।।65।।

अथायामं चोभयतः प्रकल्प्य चतुरंशकम्।
एकैकभागं प्रथमं परावर्त्य प्रयत्नतः।।66।।

सप्तधा वेष्टितं कृत्वा निर्मितं परशोश्चरेत्।
तत्र त्रिधा विभागाच्चसा मुद्रा साध्यते सदा।।67।।

ततस्तां दण्डसूत्रेण दण्डे संयोज्य यत्नतः।
विधिवत्तत्र बध्नीयाद्यतिः श्रद्धासमन्वितः।।68।।

अथवा एक तरफ से ही केवल मोड़ते हुए चार अंगुल चौड़ा कर लें किन्तु लम्बाई 48 अंगुल ही बनाये रखें। चौड़ाई वाले भाग को दण्ड के दोनों ओर बराबर लपेट कर चार भागों में यानि एक–एक अंगुल चौड़ाई के अनुसार लपेटें

अथवा 4 अंगुल वाले भाग दण्ड के दोनों तरफ कर 48 अंगुल लम्बाई वाले भाग का 7 बार में लपेटें - ऐसे करने पर इसे परशु मुद्रा कहते हैं। उसमें तीन भागों में विभक्त करके भी परशु मुद्रा को बनाया जा सकता है। उसके बाद उसको यज्ञोपवीत से, श्रद्धा से युक्त होकर संन्यासी दण्ड पर बाँधे। 65-68।

(श्लोक संख्या 69 उपलब्ध नहीं है।)

एवं षडङ्गुलायामा चतुरङ्गुलविस्तरा।
भवेत्परशुमुद्रैषा दण्डिनां योगसिद्धिदा।।70।।

इस प्रकार 6 अंगुल लम्बा व 4 अंगुल चौड़ा यह परशु मुद्रा होती है, जो की दण्डिमहात्माओं (संन्यासियों) को सिद्धि प्रदायक है।।70।।

अथ पाठान्तरम् -

ततश्चतुर्षु भागेषु स्थापयेत्समतां नयन्।
उपर्युपरि विन्यस्य क्रमेणैवं विशुद्धधीः।।71।।
पुनः परशुमुद्रायां त्रिषु खण्डषु संस्थितम्।
वासस्तद्दण्डब्रह्माण्डे संन्यसेच्च यथाविधि।।72।।

पाठन्तर में ऐसे कहा गया है -विशुद्ध बुद्धिवाले यति यज्ञोपवीत बराबर मोड़ते हुए चार भागों में क्रमशः ऊपर-ऊपर ही लपेटकर परशुमुद्रा में तीन खण्डों में संस्थित कपड़े को दण्ड और ब्रह्माण्ड को अभेद भावनाकर विधिवत् न्यास करें।।71-72।।

ततस्तद्दण्डसूत्रेण बध्नीयात्सुदृढं यतिः।
यद्धवेद्धारणं युक्तं तद्धार्यं दण्डिभिः सदा।।73।।

फिर उस दण्डसूत्र (यज्ञोपवीत) से कपड़े को दृढ़तापूर्वक (कसके) बाँधे। अतः इस प्रकार का दण्ड ही दण्डियों के द्वारा धारण करना युक्त है (योग्य है), उसे अवश्य धारण करें।।73।।

(श्लोक संख्या 74 से 76 उपलब्ध नहीं है।)

18. सुदर्शनाख्ये यतिदण्डे षडाम्नायभावना = सुदर्शननामक यतिदण्ड में षडाम्नाय की भावना -

रस ग्रन्थि समायुक्ते यतिदण्डे सुदर्शने।
प्रतिग्रन्थि तथा ग्रन्थिमध्ये तत्र विधानतः।।77।।

आम्नायाः परिकल्प्यन्ते सर्वेऽपि यतिसाधकैः।
सशक्तिकानां मात्राणां प्रतिष्ठा च विधीयते।।78।।

कम से कम छः गाँठों से युक्त दर्शनीय यतिदण्ड में प्रत्येक ग्रन्थि (गाँठ) और उनके मध्य देश में विधिपूर्वक छः आम्नायों की भावना करनी है। सभी साधकों व यतियों द्वारा शक्तियों सहित मात्राओं की प्रतिष्ठा करनी है।।78।।

अधस्तादादिमग्रन्थौ पूर्वाम्नाय उदाहृतः।
द्वितीयस्यां दक्षिणः स्यात्तत्रैवाद्याऽथ भावना।।79।।
तृतीयस्यां पश्चिमः स्याच्चतुर्थ्यामुत्तरः स्मृतः।
उपाम्नायाश्च तत्रैषां मध्ये मध्य उदाहृतः।।80।।
उपाम्नायसमष्टिश्च पंचम्यां यतिभिः स्मृता।
ऊर्ध्वाम्नायस्तथा प्रोक्तः षष्ठ्यां ग्रन्थै विचक्षणैः।।81।।
एवं सुदर्शनो दण्डो सर्वाम्नायैर्विभूषितः।
यतिहस्ते धृतो नित्यं धर्मरक्षणसक्षमः।।82।।

नीचे से पहली गाँठ में पूर्वाम्नाय कहा गया है। उसमें आद्यशक्ति की भावना करें। दूसरी ग्रन्थि में दक्षिण आम्नाय, तीसरी ग्रन्थि में पश्चिम आम्नाय और चौथी ग्रन्थि में उत्तर आम्नय की भावना करें। उनके बीच के भागों में उपाम्नायों की भावना करें अथवा यतियों द्वारा पाँचवी ग्रन्थि में उप-आम्नाय सहित समष्टि की भावना करने को कहा गया। विद्वान् यतियों ने कहा है कि छठी ग्रन्थि में ऊर्ध्वाम्नाय की भावना करें। इस प्रकार सकल आम्नायों से विभूषित यति हस्त में धारित सुदर्शन दण्ड नित्य ही धर्म की रक्षा में सक्षम है।।79-82।।

19. सुदर्शनाख्ये यतिदण्डे श्रीचक्रभावना = सुदर्शननामक यतिदण्ड में श्रीचक्र की भावना -

श्रीचक्रकल्पना दण्डे यथा संसाध्यतेऽथ सा।
प्रोच्यते क्रमशः षट्सु ग्रन्थिषु प्रतिपादिता।।83।।
अधःस्थायामाद्यग्रन्थौ भूपुरं च त्रिवृत्तकम्।
षोडशारं नागदलं भावयेद्यतिसाधकः।।84।।
द्वितीयस्यां च मन्वस्रदशारयुगलं तथा।
तृतीयस्यामष्टकोणं त्रिकोणं च विभावयेत्।।85।।
श्रीचक्रे प्रथमो बिन्दुः पंचदश्यात्मको भवेत्।
ग्रन्थौ चतुर्थ्यां क्रियते तस्य नित्यं विभावना।।86।।

द्वितीयस्तत्र बिन्दुर्योऽनाख्यात्मक उदाहृतः।
पंचमग्रन्थिमध्ये तु कर्तव्या तस्य भावना।।87।।
तृतीयस्तत्र यो बिन्दुर्भासात्मक उदाहृतः।
षष्ठ्यां ग्रन्थौ विधातव्या यतिभिस्तस्य भावना।।88।।

द्विचतुःषडष्टदशकूटानां समयात्मिका ।
राशिसंख्यककूटा च मनुसंख्यान्विता ततः।।89।।

तथा षोडशकूटाख्या महात्रिपुरसुन्दरी ।
निर्वाणविद्याऽप्यत्रैव न्यस्तव्या सिद्धिदायिनी।।90।।

दण्ड के छः ग्रन्थियों में जिस प्रकार की श्रीचक्र की भावना की जाती है उस प्रकार को अब क्रमशः प्रतिपादन करते हैं। यति साधकों का कर्तव्य है कि नीचे से आरम्भ करते हुए पहली ग्रन्थि में त्रिवृत्तवाला भूपुर सहित षोडशार नागदल की भावना करें। द्वितीय ग्रन्थि में चतुर्दशार व दशारयुगल की भावना करें। तीसरी ग्रन्थि में अष्टकोण और त्रिकोण की भावना करें। चौथी ग्रन्थि में पंचदशी रूपी श्रीचक्र में विराजमान प्रथमबिन्दु का नित्य ही विशेष तौर पर भावना करें। अनाख्यनामक दूसरी बिन्दु की भावना पाँचवी ग्रन्थि के बीच में करें। भासात्मक जो तीसरी बिन्दु कहा गया है उसकी भावना छठी ग्रन्थि में यतिजन द्वारा करनी चाहिये। इसी छठी ग्रन्थि में 2, 4, 6, 8,10 और 12 कूटों वाली समयात्मिका और 14 संख्या युक्त के साथ 16 कूटात्मक महात्रिपुरसुन्दरी को सर्वसिद्धिदायिनी निर्वाणविद्या सहित भावना करनी चाहिये।। 83-90।।

20. विश्वधर्मस्य रक्षाकृच्छ्रीयन्त्रस्यात्र भावना = इसमें विश्वधर्म की रक्षा करनेवाला श्रीचक्र की भावना -

विश्वधर्मस्य रक्षाकृच्छ्रीयन्त्रस्यात्र भावना।
सुप्रतिष्ठा च कर्तव्या शक्तियुक्तस्य साधकैः।।91।।

शक्तियुक्त विश्वधर्म का तथा रक्षाकृत श्रीयन्त्र को साधकों द्वारा दण्ड में सुप्रतिष्ठित करना चाहिये।।91।।

ऐश्वर्ययुक्तब्रह्मत्वप्रदातुश्च विभावाना।
कर्तव्या ब्रह्ममुद्रायां श्रीयन्त्रस्य तथैव हि।।92।।

ऐश्वर्य युक्त ब्रह्मत्व का प्रदायक श्रीयन्त्र की भावना ब्रह्ममुद्रा में करनी चाहिये।।92।।

परैश्वर्यस्य सदनं जयप्राप्तिकरं च यत्।
श्रीयन्त्रपर्शुमुद्रायां भावनीयं हि तत्सदा।।93।।

तथा जो परमैश्वर्य का सदन एवं विजय प्राप्ति कारक श्रीयन्त्र की भावना, परशुमुद्रा में करनी चाहिये।।93।।

श्रीसुदर्शनदण्डस्य षट्सु ग्रन्थिषु नित्यशः।
षडाम्नायगतान्न्यासान्महाषोढात्मकाँश्चरेत्।।94।।

श्री सुदर्शन दण्ड के छः ग्रन्थियों में नित्य ही महाषोढ़ात्मक षड़ाम्नायगत न्यासों का आचरण करें।।94।।

अर्चनापेक्षया न्यासाः विशिष्यन्ते सदैव हि।
तस्मान्न्यासाः प्रकर्तव्या भक्तिशक्तिसुखाप्तये।।95।।

पूजा की अपेक्षा न्यास श्रेष्ठ है। अतः भक्ति, शक्ति और सुख प्राप्ति के लिये न्यासों को आवश्यक नित्य करना चाहिये।।95।।

21. नारायणाख्ये यतिदण्ड आम्नायभावना = नारायणनामक यतिदण्ड में आम्नायों की भावना –

अष्टग्रन्थिसमायुक्ते दण्डे नारायणाह्वये।
चतुर्थग्रन्थिपर्यन्तमाम्नायाः पूर्ववत् स्थिताः।।96।।

आठग्रन्थियों (गाँठों) वाला दण्ड को ''नारायण'' दण्ड नाम से कहा जाता है। चौथी ग्रन्थि पर्यन्त पूर्ववत् यानि सुदर्शनदण्ड में बताये क्रम से ही इसमें भी छः आम्नाय स्थित हैं।।96।।

पंचम्यां नैर्ऋत्याग्नेयावाम्नायौ भवतस्तथा।
षष्ठ्यामीशवायव्याम्नायौ स्थितिशालिनौ।।97।।

पाँचवीं में नैर्ऋत्य और आग्नेय आम्नाय विद्यमान हैं। जब कि छठी ग्रन्थि में ईशान और वायव्य आम्नाय की स्थिति समझें।।97।।

उपाम्नायसमष्टेस्तु सप्तम्यां क्रियते स्थितिः।
ऊर्ध्वाम्नायस्तथाष्टम्यां ग्रन्थौ संस्थापितो भवेत्।।98।।

उप आम्नायों की समष्टि को सातवीं ग्रन्थि में स्थित एवं ऊर्ध्वाम्नाय को आँठवी ग्रन्थि में संस्थापित होने की भावना करें।।98।।

22. नारायणाख्ये यतिदण्डे श्रीचक्रभावना = नारायणनामक यतिदण्ड में श्रीचक्र की भावना –

श्रीयन्त्रस्थितिरप्यत्र पूर्ववत्समुदाहृता ।
षष्ठ्यां ग्रन्थौ परो बिन्दुः प्रथमं स्थितिरिष्यते ।।99।।

नारायण दण्ड में भी पूर्ववत् यानि जैसे सुदर्शनदण्ड में बताया गया उसी प्रकार श्री चक्र की स्थिति समझकर भावना करें। प्रथम स्थिति परा बिन्दु की छठी ग्रन्थि में भावना करें ।।99।।

सप्तमाष्टमग्रन्थ्योस्तु शिष्टं बिन्दुद्वयं स्थितम्।
विद्यानां चापि संस्थानमन्त्यग्रन्थौ विभावयेत्।।100।।

सातवीं और आठवीं ग्रन्थियों में अवशिष्ट दो बिन्दुओं की भावना करें। अन्तिम ग्रन्थि में (अर्थात् आठवीं में) ही सभी विद्याओं की भावना करें।।100।।

मुद्रयोस्तु तथैव स्याद्यन्त्रयोरथ भावना ।
एवं सम्भावयेद्भक्त्या दण्डे नारायणाभिधे।।101।।

ब्रह्ममुद्रा और परशुमुद्रा – इन दोनों मुद्राओं को सुदर्शन दण्ड में जिस प्रकार किये थे और उनमें जिस प्रकार चक्रों की भावना किये थे उसी प्रकार नारायण दण्ड में भी भक्ति से भावना करें।।101।।

23. गोपालरूपे यतिदण्ड आम्नायभावना = गोपालनामक यतिदण्ड में आम्नायों की भावना –

दशग्रन्थिमये दण्डे गोपालाख्ये क्रमादिह।
अधरः प्रथमग्रन्थौ पूर्वाम्नायो द्वितीयगः।।102।।

दस ग्रन्थियों से युक्त दण्ड को गोपाल दण्ड कहते हैं। उसमें क्रमशः नीचे से पहली ग्रन्थि में अधराम्नाय और पूर्वाम्नाय की भावना द्वितीय में करें।।102।।

आग्नेयश्च तुतीयस्यां चतुर्थ्यां दक्षिणः स्मृतः।
पंचम्यां नैर्ऋतः षष्ठ्यां पश्चिमाम्नाय इष्यते।।103।।

आग्नेय को तृतीय में, चतुर्थ में दक्षिण आम्नाय को, पाँचवीं में नैर्ऋति तथा छठी में पश्चिम आम्नाय की भावना करें।।103।।

वायव्यः सप्तमीसंस्थोऽष्टम्यामुत्तर एव च।
ईशानस्तु नवम्यां स्याद्दशम्यामूर्ध्वसंस्थितिः।।104।।

सातवीं में वायव्य आम्नाय, आठवीं में उत्तराम्नाय, नौवीं में ईशान आम्नाय और दसवीं में ऊर्ध्वाम्नाय की भावना करें।।104।।

उपाम्नायसमष्टिश्च सहैवात्र विभाव्यते।
एवमाम्नायदशकं गोपाले भावयेद्यतिः।।105।।

उप आम्नाय समष्टि को ऊर्ध्वाम्नाय के साथ ही इसी (दसवीं) में भावना करनी है। इस प्रकार सभी दस आम्नायों को गोपाल नामक दण्ड में संन्यासी भावना करें।।105।।

24. गोपालाख्ये यतिदण्डे श्रीचक्रभावना = गोपालनामक यतिदण्ड में श्रीचक्र की भावना –

श्रीचक्रभावनायान्तु गोपालग्रन्थिषु क्रमात्।
भुपराद् बिन्दुपर्यन्तं स्थितिर्भवति निश्चितम्।।106।।

गोपाल दण्ड के ग्रन्थियों में भूपुर से लेकर बिन्दुपर्यन्त संपूर्ण श्री चक्र की भावना पूर्वक स्थिति निश्चत करने का विधान है। (अर्थात् नीचे से आरम्भ करके नौ ग्रन्थियों में नौ आवरणों की भावना करें।)।।106।।

दशम्यामेव ग्रन्थौ च शिष्टं बिन्दुद्वयं भवेत्।
विद्यानामपि संस्थानमन्त्यग्रन्थौ विभावयेत्।।107।।

अन्तिम अर्थात् दसवीं ग्रन्थि में अवशिष्ट दो बिन्दुओं सहित सकल विद्याओं की भावना करें।।107।।

मुद्रयोस्तु तथैव स्याद्यन्त्रयोरथ भावना।
एवं सम्भावयेद्भक्त्या दण्डे गोपालसंज्ञके।।108।।

दोनों मुद्राओं (ब्रह्म और परशु) को सुदर्शन दण्ड में जिस प्रकार किये थे और उनमें जिस प्रकार चक्रों की भावना किये थे उसी प्रकार गोपालनामक दण्ड में भी भक्ति से भावना करें।।108

25. वासुदेवाख्ये यतिदण्ड आम्नायादिभावना = वासुदेवनामक यतिदण्ड में आम्नायों की भावना –

द्वादशग्रन्थिसंयुक्ते वासुदेवाभिधेयके ।
दण्डे गोपालवत्सर्वेऽप्याम्नायाः सन्ति संश्रिताः।।109।।

बारह ग्रन्थियों से युक्त वासुदेव नामक दण्ड में गोपाल दण्ड में जिस प्रकार सभी आम्नायों की भावना की जाती है उसी प्रकार भावना करनी है।।109।।

उपाम्नायसमष्टिस्तु परं सा दशमी स्थिता ।
एकादश्यं ततो ग्रन्थावूर्ध्वाम्नाय उदाहृतः।।110।।

ग्यारहवीं ग्रन्थी में उप आम्नाय समष्टि की स्थिति की भावना करें और बारहवीं ग्रन्थी में ऊर्ध्व आम्नाय की भावना करें।।110।।

द्वादश्यं च तथा ग्रन्थावधरोऽप्यस्ति संस्थितः ।
एवमारध्य सततं यतिः सिद्धिधरो भवेत्॥111।।

इसी प्रकार निचले ग्रन्थियों में संस्थित की निरन्तर आराधना करके यति सिद्धि धारक होता है।।111।।

26. वासुदेवाख्ये यतिदण्ड श्रीचक्रभावना = वासुदेवनामक यतिदण्ड में श्रीचक्र की भावना –

श्रीचक्रभावना दण्डे वासुदेवाभिधे मता।
गोपालदण्डवद् ग्रन्थिदशके तु भवेत्समा॥112।।

गोपालदण्ड में (10) दस ग्रन्थियों तक जैसे श्रीचक्र की भावना की जाती है उसी प्रकार वासुदेवदण्ड में भी दस ग्रन्थियों तक करें।।112।।

एकादश्यां ततो ग्रन्थौ द्वितीयो बिन्दुरिष्यते।
बिन्दुस्तृतीयो द्वादश्यां विद्याभिः सह संस्थिताः॥113।।

तदनन्तर ग्यारहवी ग्रन्थि में दूसरी बिन्दु की भावना करें तथा बारहवीं ग्रन्थि में सकल विद्याओं सहित तीसरी बिन्दु की भावना करें।।113।।

एवं द्वादशग्रन्थीनां मध्ये सम्भाव्य भक्तितः।
वासुदेवाभिधं दण्डं धारयेद्यतिरुत्तमः ॥114।।

इस प्रकार बारह ग्रन्थियों में श्रीचक्र को भक्ति से सम्भावित कर उत्तम (श्रेष्ठ) यति का कर्तव्य है कि वह वासुदेव नामक दण्ड को धारण करें।।114।।

27. अनन्ताख्ये यतिदण्ड आम्नायादिभावना = अनन्तनामक यतिदण्ड में आम्नायों की भावना –

चतुर्दशग्रन्थिमये दण्डेऽनन्ताभिधे पुनः।
वासुदेव इवैवात्र ग्रन्थिषु प्रोक्तसंस्थितिः॥115।।

चौदह ग्रन्थियों से युक्त दण्ड को 'अनन्त' दण्ड नाम से कहते हैं। वासुदेव दण्ड में जैसे आम्नायों की स्थिति बतायी गई है वैसे ही अनन्त नामक दण्ड के ग्रन्थियों में भी भावना करें।।115।।

त्रयोदश्यां तु तत्रैव गुर्वाम्नाय उदाहृतः।
चतुर्दश्यां तु सर्वेषां समष्टिं भावयेद्यतिः।।116।।

तेरहवीं ग्रन्थि में गुर्वाम्नाय कहा गया है और चौदहवीं ग्रन्थि में समष्टि की भावना करें यति।।116।।

एवं साम्नाय संस्थित्या भावना सिद्धिदायिनी।
यतीनां परमोत्कृष्टतपस्तेजःप्रकाशिका ।।117।।

उक्त प्रकार से आम्नायों की संस्थिति की भावना यतियों की सिद्धिदायिनी और परमोत्कृष्टतपस्या से जन्य तेज की प्रकाशिका होगी।।117।।

28. अनन्ताख्ये यतिदण्डे श्रीचक्रभावना = अनन्तनामक यतिदण्ड में श्रीचक्र की भावना –

श्रीचक्रभावनाऽप्यस्मिन्दण्डेऽनन्ताह्वये ततः।
पूर्ववद्यतिभिः कार्या द्वादशीं यावदुत्तमा।।118।।

अनन्तनामक यतिदण्ड में वासुदेव नामक दण्ड में जिस प्रकार (12) बारहवीं ग्रन्थी तक श्रीचक्र की भावना करने का विधान किया गया है उसी प्रकार यतियों के द्वारा उत्तम भावना से करना चाहिये।।118।।

त्रयोदश्यां च निर्वाणविद्यां सम्भावयेत्पुनः।
चतुर्दश्यां पाशुपतं मनुमुच्चार्य चिन्तयेत्।।119।।

तेरहवीं (13) ग्रन्थी में निर्वाण विद्या की भावना करें और चौदहवीं ग्रन्थी में पाशुपतमन्त्र का उच्चरण पूर्वक चिन्तन करें।।119।।

एतयोरेव कूटानां चतुर्दश्यां समन्विता।
कलाकूटात्मिका चैव महाषोडश्युपास्यते।।120।।

निर्वाणविद्या और पाशुपतमन्त्र सहित कूटों का भी चौदहवीं ग्रन्थी में ही भावना करें। कालकूटात्मक महाषोड़शी की उपासना तीनों से युक्त (निर्वाणविद्या + पाशुपतमन्त्र +कूटत्रय) भी की जाती है।।120।।

सप्तकोटिमहामन्त्रस्तथाऽन्या मन्त्रशक्तयः ।
भावनीया सदा भक्त्या यतिभिः साधकोत्तमैः।।121।।

साधकोत्तम यतियों के द्वारा अनन्तनामक दण्ड में सात करोड़ महामन्त्र सहित संपूर्णमन्त्र शक्तियों की सदा भक्तिपूर्वक भावना करनी चाहिए।।121।।

अन्त्यग्रन्थौ तु मन्त्राणां शिष्टाः कूटादिभावनाः।
सुदर्शनसमाः कार्याः षोढान्यासादयस्तथा।।122।।

अन्तिमग्रन्थी में मन्त्रों के कूटादिभावना और षोढान्यासों की भावना सुदर्शनदण्ड में जिस प्रकार बताया गया उसके समान उसी प्रकार करना है।।122।।

29. यतिदण्डे ब्रह्मसूत्रतन्तुसंख्यानां श्रीयन्त्रावरणदेवतात्वं च = यतिदण्ड में ब्रह्मसूत्रगत तन्तुसंख्या श्रीयन्त्रगत आवरण देवतासंख्या की बराबरी –

यतिदण्डे ब्रह्मसूत्रतन्तुसंख्या तु या स्मृता।
चतुःखाग्निद्विप्रमिता साऽस्ति सच्छास्त्रसम्मता।।123।।

श्लोक संख्या 50 में बताये गये संख्या 2304 (96 X 24) वह यतिदण्डगत ब्रह्मसूत्र की तन्तुओं की संख्या सत्शास्त्र सम्मत है।।123।।

सा च प्रणवमात्राभिर्भक्ता षट्पंचवीक्षणैः।
नवावशेषा भवति संख्यया नैतदद्भुतम्।।124।।

प्रणव के मात्राओं की संख्या 256 से वस्तुओं की संख्या 2304 को भाग देने पर 9 संख्या अवशेष होता है। संख्या के दृष्टि से यह कोई आश्चर्य नहीं।।124।।

श्रीचक्रस्यावरणगाः स्मृता या नव देवताः।
ता एव दर्शिताः सम्यग्गताया दशसंख्यया।।125।।

क्योंकि श्रीचक्र के आवरणगत नौ देवता (नावारणभिमानी) शास्त्रों में वर्णित हैं। वे सम्यक् है जो उन्हें (10) दस संख्या के द्वारा दण्ड में दर्शाया गया है।।125।।

नवावरणान्युक्तानि श्रीचक्राभ्यन्तरेऽपि च।
बिन्दूनां गणना नास्ति तेष्वावरणकेषु च।।126।।

श्रीचक्र के भीतर में भी नौ आवरणों का वर्णन किया गया है। उन आवरणों में बिन्दुओं की गणना नहीं है।।126।।

यतो बिन्दौ भवत्येव मूलदेवस्य संस्थितिः।
सोऽप्यावरणरूपेण परिणतो भवेत्ततः।।127।।

किन्तु जिस लिये बिन्दु में भी मूलदेवता की स्थिति है इसलिये वह भी आवरण रुप से परिणत ही समझें।।127।।

30. श्रीचक्रात्मकाम्नायस्य स्वरूपम् =श्रीचक्रात्मक आम्नाय का स्वरूप–

पूर्वाम्नाय बिन्दुरूपं षट्कोणं दक्षिणं स्मृतम्।
अष्टपत्रं पश्चिमस्योत्तरं षोडशच्छदम्।।128।।

पूर्वाम्नाय बिन्दुरूप है। षट्कोण दक्षिणाम्नाय है। अष्टमदल पश्चिमाम्नाय है और षोडशदल उत्तराम्नाय है।।128।।

ऊर्ध्वंत्रिकोणरूपं स्यात्पातालं च त्रिवृत्तकम्।
पराम्नायं च वलयद्वयरूपं ततः परम्।।129।।

ऊर्ध्वाम्नाय त्रिकोण है तथा अधराम्नाय त्रिवृत्त है। उसके अनन्तर वलयद्वय पराम्नाय है, जब कि भूपुर का एक वलय आनन्द(निर्वाणविद्या) है और शेष दो वलय रहस्यविद्या है। यद्यपि पूर्वादि छः आम्नाय ही प्रसिद्ध है तथापि कुछ मतों में अनुत्तराम्नाय (पराम्नाय) भी कहा गया है।

इसलिये यहाँ पर उस अनुत्तराम्नाय (पराम्नाय) को और उसी के विस्तार को आनन्दरूप से, उपाम्नायरूप से और रहस्य की समष्टिरुपता से वर्णन किया गया है। इसे सर्वागमरहस्य और कौलसर्वस्व जानें।।129।।

प्रसंगादाम्नायगोत्राणां शाखानां चापि निर्देशः = प्रसंगवश आम्नायों का गोत्र और शाखा का निर्देश कर रहे हैं –

पूर्वस्य चाजनी गोत्रं मानसी दक्षिणस्य च।
विभावरी पश्चिमस्याद्भुतमुत्तरकस्य च।।130।।

पूर्वाम्नाय का गोत्र 'अजनी', दक्षिण का 'मानसी', पश्चिम का 'विभावरी', उत्तर का 'अद्भुत'।।130।।

ऊर्ध्वस्य जलया गोत्रं पातालस्य च श्यामला।
मातंगिनी पराख्यस्यानन्दस्य स्याज्जलन्धरी।।131।।

ऊर्ध्व का 'जलया' और अधर (यानि पाताल) का 'श्यामला', पराम्नाय का 'मातंगिनी', आनन्द का 'जलन्धरी'।।131।।

रहस्यस्य निजं गोत्रं क्रमाज्ज्ञेयं च देशिकैः।
पूर्वे सामन्तिनी शाखा दक्षिणे च मनोन्मनी।।132।।

तथा रहस्य का गोत्र 'निज' – ऐसे क्रम से विद्वानों द्वारा जानना चाहिये। पूर्वाम्नाय की शाखा है 'सामन्तिनी', दक्षिण की 'मनोन्मनी'।।132।।

पश्चिमे यक्षिणी शाखा चोत्तरे कालिका स्मृता।
ऊर्ध्वे सौभाग्यशाखा स्यात्पाताले शीतला भवेत्।।133।।

पश्चिम की 'यक्षिणी' शाखा है, उत्तर की 'कालिका' कही गयी है। ऊर्ध्व की शाखा 'सौभाग्या' और अधर की 'शीतला' है।।133।।

मनस्विनी परामनाये ह्यानन्दे शृंगिनी मता।
रहस्यं च पराख्या स्यादिति शाखाविनिर्णयः।।134।।

परामनाय की 'मनस्विनी', आनन्द की 'शृंगिनी' और रहस्य की 'पराख्या' कहा गया है। (पाठ भेद के अनुसार रहस्य की शाखा 'स्वयम्भू' है) इस प्रकार आम्नायों के शाखाओं का वर्णन है।।134।।

विशुद्धौ डाकिनी देवी अनाहते तु राकिणी।
लाकिनी मणिपूरस्था काकिनी लिंगगोचरे।।135।।

विशुद्धि चक्र में 'डाकिनी' देवी है, अनाहत में 'राकिणी', मणिपूर में स्थित है 'लाकिनी' तथा स्वाधिष्ठान में 'काकिनी' देवी है।।135।।

आधारे साकिनी देवी आज्ञायां हाकिनी तथा।
याकिनी ब्रह्मरन्ध्रस्था सर्वकामफलप्रदा।।136।।

मूलाधार में 'साकिनी' देवी, आज्ञाचक्र में 'हाकिनी' तथा ब्रह्मरन्ध्र में 'याकिनी' देवी है जो सर्वकामफलप्रदायिनी है।।136।।

31. दण्डे मूलाधारादिचक्रकल्पना=दण्ड में मूलाधारादिचक्रों की कल्पना-

मूलाधारस्तथा स्वाधिष्ठानं च मणिपूरकम्।
अनाहतं विशुद्धं च तथाऽऽज्ञेति समृतानि षट्।।137।।

मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि और आज्ञा नाम से पिण्ड (शरीर) में मुख्यरूप छः चक्र होते हैं।।137।।

मूलाधारादिचक्राणि दण्डे संकल्प्य देहवत्।
कार्या तत्तद्देवानां यतिभिस्तत्र भावना।।138।।

मूलाधारादि चक्रों को दण्ड में संकल्प करके देह में जिस प्रकार चक्रस्थ देवियों की भावना करते हैं उसी प्रकार यतियों द्वारा तत्तद् देवताओं की भावना दण्ड में भी करनी चाहिये।।138।।

किं वा देहस्थचक्रेषु कृत्वा सम्यगुपासनम्।
दण्डे विचिन्तयेत्पश्चाद्यतिस्तेषां तदात्मताम्।।139।।

पहले शरीर में विद्यमान चक्रों में सम्यक् प्रकार से उपासना करके यति उनका तत्तद् रूप से ही दण्ड में चिन्तन करें।।139।।

स्थूलसूक्ष्मलिंगभेदैस्त्रिधाऽयं देह उच्यते।
त्रिष्वप्येतेषु चक्राणि कल्प्यन्ते योगिभिः पृथक्।।140।।

इस शरीर को स्थूल-सूक्ष्म और कारण भेद से तीन प्रकार का बताया

गया है। इन तीनों शरीरों में अलग-अलग करके योगियों द्वारा चक्रों की भावना की जाती है।।140।।

32. पृथ्व्यादिकल्पना = पृथिवी आदि की कल्पना -

स्थूले पृथ्व्यादितत्त्वानि प्रकल्प्यन्ते यथाक्रमम्।
किन्तु तत्र भवेदीषद्भेदः सोऽपि विचार्यताम्।।141।।

स्थूल शरीर में पृथिव्यादि तत्त्वों की कल्पना यथाक्रम की जाती है किन्तु उसमें भी थोड़ा भेद है। उसका भी विचार कर लें।।141।।

मूलाधारे मही तत्र मणिपूरे जलं तथा।
स्वाधिष्ठाने भवेद्वह्निरित्यवस्थाविशेषतः।।142।।

मूलाधार में पृथिवी, मणिपुर में जल और स्वाधिष्ठान में अग्नि की कल्पना की जाती है अवस्था विशेष के अनुसार। (सामान्यतः मूलाधार में पृथिवी, स्वाधिष्ठान में जल और मणिपूर में अग्नि तत्त्व माना गया है।)।।142।।

33. प्रणवमात्राणां कादिमतेन दीक्षाविचारः =प्रणव के मात्राओं का कादि-मत से दीक्षा पर विचार -

अथ चादौ गुह्यकाली भुवना कुब्जिका ततः।
दक्षिणा कालिका तारा श्रीविद्या परमेश्वरी।।143।।
महाकाली महालक्ष्मीर्महापूर्वा सरस्वती।
ततस्त्रिशक्तिचामुण्डा भद्रकालीस्वरूपिणी।।144।।

सर्वप्रथम गुह्यकाली, तत्पश्चात् भुवना (भुवनेश्वरी) कुब्जिका, दक्षिणकाली, तारा, श्रीविद्या, परमेश्वरी, महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती, त्रिशक्तिचामुण्डा, भद्रकाली (कालीकल्प के अनुसार किन्तु श्रीकल्प (सुन्दरीकल्प) में उग्रचण्डा बताया गया है।) इस क्रम से ध्यान करना चाहिये।।143-144।।

ध्येया पश्चात्कुब्जिकायां समष्ट्यालयगामिनी।
लघुक्रमोऽयं देवेशि चामुण्डाया नवार्णगः।।145।।

तत्पश्चात् कुब्जिका में समष्टि आलयगामिनी का ध्यान करें। हे देवी! यह चामुण्डा की नवार्णगत लघुक्रम है।।145।।

कामादिदोषरहिताः कादिहादिमतानुगाः।
वाञ्छिता कल्पिता सिद्धिर्मनोरथमयी तथा।।146।।

कामादि दोष रहित, कादि अथवा हादि मतानुगामियों को वांछित व कल्पित मनोरथमयी सिद्धि होती है।।146।।

नैष्ठिकीं ब्रह्मचर्यस्य दीक्षां लब्ध्वा तु नैष्ठिकः।
ओंकारमात्राणां कुर्यात्पुरश्चरणमुत्तमम् ।।147।।

ब्रह्मचर्य का नैष्ठिकी दीक्षा प्राप्त कर नैष्ठिक ब्रह्मचारी नित्य नियम से ॐकार की मात्राओं का उत्तम (विधिवत्) पुरश्चरण करें। (147)

ततः संन्यस्य विधिवन्मेधादीक्षां लभेत सः।
संन्यासाश्रमकं पश्चान्महामेधा प्रदीयते।।148।।

उसके बाद विधिवत्संन्यास ग्रहण कर मेधादीक्षा को प्राप्त करें। संन्यासाश्रम में अधिरूढ़ होने पर ही महामेधा (दीक्षा) दी जाती है। (148)

महासाम्रज्यदीक्षा च तत एवाभिजायते।
एषैव दिव्यसाम्राज्यदीक्षाऽपि विनिगद्यते।।149।।

उसी से महासाम्राज्यदीक्षा हो जाती है। इसी को दिव्यसाम्राज्यदीक्षा भी कहा जाता है।।149।।

यतीनामेव यत्रास्तेऽधिकारः केवलं भुवि।
महासाम्राज्यदीक्षाया लोके परतरं न हि।।150।।

इस पृथिवी पर केवल यतियों को ही जिसमें अधिकार है ऐसी महासाम्राज्य दीक्षा से बढ़कर इस लोक में कुछ भी नहीं है।।150।।

न न्यासः पूजनं नैव नियमो नापि विद्यते।
केवलं धारणान्मुक्तिर्मन्त्रोच्चाराच्छिवो भवेत्।।151।।

न तो न्यास ही है, न पूजा और न कोई नियम ही रह जाता है। केवल धारण करने मात्र से मुक्ति होगी और मन्त्रोंच्चारण मात्र से वह शिव ही हो जाता है।।151।।

यदि संन्याससम्प्राप्तिः पूर्वमेव कृता भवेत्।
तदापि शक्तिसम्प्राप्त्यै दण्डे पिण्डे च सिद्धये।।152।।
पुरश्चरणमाचर्यं तदनन्तरमेव हि।
विश्वे धर्मस्य रक्षायां सामर्थ्यं लभते यतिः।।153।।

यदि संन्यास पहले ही ग्रहण कर लिया है फिर भी शक्ति की प्राप्ति के लिये तथा दण्ड और पिण्ड की सिद्धि के लिये पुरश्चर अवश्य करना चाहिये। तदनन्तर ही विश्व में धर्म की रक्षा करने का सामर्थ्य यति को प्राप्त होता है।।152-153।।

निग्रहानुग्रहशक्तिश्च तदैवायाति नित्यशः।
अयमेवोत्तमः पक्षो द्वितीयः प्रोच्यतेऽधुना।।154।।

निग्रह और अनुग्रह करने की शक्ति तब ही नित्य प्राप्त होगी। यह सर्वोत्तम पक्ष है। अब हम दूसरे पक्ष को कहते हैं।।154।।

ओंकरमात्राशक्तीनां मन्त्राणां विधिवद्यतिः।
संन्यस्तोऽप्याश्रमाचारात्पुरश्चर्यामथाचरेत्।।155।।

ऊँकार की मात्रायें और उसकी शक्तियों (अर्थ) का चिन्तन करते हुए पुरश्चरण विधिवत् यति करें, भले ही आश्रमधर्मों के आचार-विचार से आप संन्यस्त हों।।155।।

ओंकारदीक्षा संन्यासे दीयते यद्यपीह सा।
तथापि तद्वत्सुगुणा नागच्छन्ति तया विना।।156।।

यद्यपि इस लोक में संन्यास ग्रहण काल में ओंकार की दीक्षा दी जाती है फिर भी बिना पुरश्चरण किये उस प्रकार सुगुण (सद्गुण) प्राप्त नहीं होते जिस प्रकार सद्गुण पुरश्चरण करने पर प्राप्त होते हैं।।156।।

पुरश्चर्याऽनन्तरं हि दीक्षा मेधात्मिका मता।
महामेधादयश्चाग्रे क्रमशोऽथ भवन्ति हि।।157।।

पुरश्चरण के अनन्तर ही प्राप्त दीक्षा मेधा स्वरूपा होती है। तत्पश्चात् ही क्रमशः महामेधा आदि दीक्षायें होती है।।157।।

तदा यतिः स्वकर्मभ्यो मुक्त एव न संशयः।
ततः स्मरणमात्रेण शिवरूपो भवेद्यतिः।।158।।

तब यति अपने स्वकर्मों से मुक्त होता है। (158)

पुरश्चर्यास्वशक्तश्चेद्दण्डे स्वे भक्तिपूर्वकम्।
प्रणवस्याथ मात्राणां शक्तीनां च विशेषतः।।159।।
नाम्नामेव सदा कुर्वन् स्मरणं श्रद्धयाऽन्वितः।
तदैव फलमाप्नोति भक्तिमान्नात्र संशयः।।160।।

यदि पुरश्चरण करने में अशक्त हो तो अपने दण्ड में (मेरुदण्ड में यदि परमहंस संन्यास दीक्षा युक्त हो तो) ही भक्ति पूर्वक प्रणव के मात्राओं और शक्तियों के विशेषतः नामों से सदा श्रद्धा युक्त होकर स्मरण करते हुए रहे तो वह भक्तिमान् यति भी पूर्वोक्त फल अवश्य प्राप्त करता है, इसमें कोई संशय नहीं।।159-160।।

34. साधनासिद्धये प्राणप्रतिष्ठाया आवश्यकत्वम् = साधना की सिद्धि केलिये प्राण प्रतिष्ठा आवश्यक है –

एवमुक्तविधानेन दण्डानां ग्रन्थिवत्क्रमात्।
आम्नायात्मकशक्तीनां परिवृत्त्यामहर्निशम्।।161।।
ओंकारमात्रारूपस्य श्रीचक्रस्य विधानतः।
प्राणप्रतिष्ठा कर्तव्या साधनासिद्धये मुदा।।162।।

इस प्रकार उक्त विधान से दण्डों का ग्रन्थिवाले क्रम से आम्नायात्मक शक्तियों को बारम्बार आवृत्तिपूर्वक दिन–रात ॐकाररूप श्रीचक्र के विधि से प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये, अपनी साधना की सिद्धि (यानि सफलता) के लिये।।161–162।।

35. दण्डस्य चतुः स्वरूपाणि = दण्ड के चार स्वरूप–

स्थूलं सूक्ष्मं कारणं च कारणातीतमेव च।
चतुर्धाऽत्र स्वरूपन्तु दर्शितं मुख्यरूपतः।।163।।

स्थूल, सूक्ष्म, कारण और कारणातीत नाम से चार प्रकार के दण्ड प्रधान रूप से दर्शाये गये हैं।।163।।

स्थूले तु ग्रन्थयस्तत्र पर्शुमुद्रा च सूक्ष्मके।
कारणे ब्रह्ममुद्राऽन्ते प्रणवात्मकता मता।।164।।

उनमें से स्थूल दण्ड में ग्रन्थियाँ प्रधान हैं, सूक्ष्मदण्ड में परशुमुद्रा, कारणदण्ड में ब्रह्ममुद्रा और अन्तिम (कारणातीत दण्ड) तो प्रणवात्मक ही माना गया है।।164।।

सेयं संकेतविद्याऽऽस्ते गुरुदेवप्रसादतः।
पूर्णरूपेण ज्ञातव्या भक्त्या च श्रद्धया सदा।।165।।

गुरुदेव की कृपा से वह यह संकेत विद्या को सदा भक्ति और श्रद्धा से पूर्णरूपेण जानना चाहिये।।165।।

तदेवं कारणाद्दण्डः श्रीचक्रात्मक उत्तमः।
सर्वशक्तिसमायुक्तो भवत्येव न संशयः।।166।।

इस कारण ही कहा जाता है कि उत्तम प्रणवरूपी श्रीचक्रात्मक यतिदण्ड सर्वशक्ति समायुक्त है, इसमें कोई संशय नहीं।।166।।

सृष्टिस्थितिलयानाख्याभासारूपा अपि श्रिताः।
भवन्त्यन्तर्गताः सर्वे दण्डे सूत्रे च मुद्रयोः।।167।।

सृष्टि, स्थिति, लय, अनाख्या और भासा– ये सब दण्ड, सूत्र और दोनों मुद्राओं (परशु, ब्रह्म) के अन्तर्गत आश्रित है।।167।।

36. यतिदण्डस्य प्रतिष्ठाया आवश्यकता =यतिदण्ड के प्राणप्रतिष्ठा की आवश्यकता–

प्रतिमासु यथा प्राणप्रतिष्ठा क्रियते बुधैः।
तथैव कार्या दण्डेऽपि प्रतिष्ठा विधिपूर्विका॥168।।

जिस प्रकार प्रतिमाओं में प्राणप्रतिष्ठा विद्वानों (कर्मकाण्डियों) द्वारा की जाती है उसी प्रकार विधिपूर्वक दण्ड में प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये।।168।।

37. प्रतिष्ठायाः फलानि = किसी भी प्रतिष्ठा के सामान्यफल –

तासां प्रतिष्ठा कर्तव्या दण्डे शास्त्रविधानतः।
प्रतिष्ठयाऽनया दण्डे प्रभावातिशयोद्भवः।।169।।

दण्ड में प्राणों की प्रतिष्ठा शास्त्र विधि से करनी चाहिये। प्राणप्रतिष्ठा के द्वारा दण्ड में अतिशय (गुण व शक्ति) उत्पन्न होती है। (169)

चमत्कारविशिष्टायाः शक्तेश्चानुभवो भवेत्।
विश्वधर्मस्य रक्षायां समर्थः स्यात् क्षितौ यतिः।।170।।

चमत्कार विशिष्ट शक्ति का अनुभव होता है। जिससे पृथिवी पर सर्वधर्म की रक्षा करने में यति समर्थ होता है।।170।।

38. प्रतिष्ठान्यासदिभिरेव यतिदण्डस्याद्भुतत्वम् = प्रतिष्ठा, न्यास आदि से यतिदण्ड में अद्भुतत्व –

प्रतिष्ठान्यासपूजादिकार्यं संन्यासिना ध्रुवम्।
तथैव मुद्रयोर्नित्यं ग्रन्थिर्देया महात्मभिः।।171।।

संन्यासियों के द्वारा निश्चित ही न्यास, पूजा आदि द्वारा प्राण प्रतिष्ठा करनी ही चाहिये। महात्माओं द्वारा सदा मुद्राओं का ग्रन्थि भी देनी चाहिये।171।

आम्नायनायिकामन्त्रैः सर्वैरेवानुपूर्वशः ।
ततः संजायते दण्डः श्रीचक्रसदृशोऽद्भुतः।।172।।

आम्नाय के नायिकाओं (अधिष्ठात्री) को सभी मन्त्रों से क्रमशः प्रतिष्ठित करें। उससे दण्ड श्रीचक्र के समान अतिशयत्व और अद्भुतत्व को प्राप्त करता है।।172।।

39. प्रतिष्ठायास्त्रयः प्रकाराः = प्रतिष्ठा के तीन भेद –

त्रिवृत्प्रतिष्ठा गदिता शास्त्रेषु नियमान्विता।
प्रथमा तत्र मूर्तीनां यन्त्राणां वा स्थिरा मता।।173।।

नियमों से युक्त प्राणप्रतिष्ठा तीन प्रकार का कहा गया है। प्रथम प्रकार स्थिर (अचल) मूर्ति अथवा यन्त्रों का है।।173।।

मन्दिरादिषु तस्यां तु नाह्वानं न विसर्जनम्।
शयनोत्थापने स्यातां मुद्राभ्यां नित्यमेव हि।।174।।

यह मन्दिर आदियों में ही हो और एक बार प्राणप्रतिष्ठा किये जाने पर रोज (पुनःपुनः) प्राणप्रतिष्ठा करना नहीं है, न आवहन करना है और न विसर्जन। किन्तु शयन और उत्थापन तो नित्य ही मुद्राओं से करना है।।174।।

द्वितीया नित्यपूजा या पर्वपूजादिके भवेत्।
नित्याह्वानं विसृष्टिश्च तत्र स्यातां परं तदा।।175।।

द्वितीय प्रकार अस्थिर (चल) मूर्ति और यन्त्रों का है। पूर्वपूजा आदि (उत्तरपूजा) से युक्त जो नित्यपूजा है, जिसमें नित्य ही आवहन और विसर्जन किया जता है। अथवा उसमें यानि दूसरे प्रकार में तब और श्रेष्ठता होती है।।175।।

आह्वानं हृदये कृत्वा पूजयित्वा विधानतः।
पूजान्ते हृदि विश्रामो दीयते साधकोत्तमैः।।176।।

जब हृदय में ही साधकोत्तम के द्वारा विश्राम दिया जाता है।।176।।

तृतीया धारणार्थं ये यन्त्रमूर्त्यादयो वृताः।
तेषां प्रतिष्ठा भिन्नाऽस्ति पूर्वोक्ताभ्यां विशेषतः।।177।।

तीसरा प्रकार – शरीर पर धारण करने के लिये जो मूर्ति, यन्त्र आदि ग्रहण करते हैं, उनका पूर्वोक्त दोनों प्रकार की अपेक्षा विशेष तौर पर भेद है।।177।।

इयं प्रतिष्ठा नैकस्मिन्दिन एव समाप्यते।
सूक्ष्मरूपेण यदि चेद्भवेन्नवदिनात्मिका।।178।।

यह प्रतिष्ठा एक दिन में पूरा नहीं होती किन्तु संक्षेप रूप से करना हो तो नौ दिनों में होती है।।178।।

बृहद्रूपेण यदि चेत्क्रियते तर्हि तत्र सा।
प्रमितैर्दिनैः संयाति शास्त्ररीत्या प्रपूर्णताम्।।79।।

विस्तार रूप से करना हो तो प्राणप्रतिष्ठा शास्त्रविधि से 48 दिनों में पूरा होती है।।179।।

इति निश्चित्य दण्डेऽपि प्रतिष्ठा शास्त्रसम्मता।
यतिभिः सर्वदा कार्या धर्मकर्मविशारदैः ।।180।।

इस बात को निश्चत करके समझें कि प्राणप्रतिष्ठा के बिना दण्ड एक लकड़ी मात्र है जैसे प्राणप्रतिष्ठा के बिना मूर्ति केवल पत्थर है, यन्त्रादि केवल तन्तद् धातु (ताँबा, चाँदी, सोना आदि) ही है। प्राण प्रतिष्ठा शास्त्र सम्मत है। इसलियें धर्म-कर्म आदि को जानने वाले संन्यासियों का कर्तव्य है कि वे अवश्य ही दण्ड में प्राणप्रतिष्ठा करें।।180।।

40. यतिदण्डस्य प्रतिष्ठायाः फलानि =यतिदण्ड में प्राणप्रतिष्ठा के फल-

एवं यः कुरुते दण्डी क्रियाः सर्व विधानतः।
स भवेद्देवतातुल्यः परब्रह्मस्वरूपभाक् ।।181।।

जो दण्डी उक्त प्रकार से सभी क्रियाओं को विधि-विधान से करता है वह देवतातुल्य होता है, परब्रह्मस्वरूप का भागी होता है।।181।।

महाषोढान्यासयुक्तस्तथा तत्कवचावृतः ।
यतिर्न कंचित्प्रणमेन्नित्यं स्वरूपमास्थितः।।182।।

महाषोढान्यास से युक्त होकर और उसके कवच से अपनी रक्षा करके यति नित्य ही अपने स्वरुप स्थित होवे तो उसके लिये किसी को भी प्रणामादि व्यवहार करने का बन्धन (नियम) नहीं रहता।।182।।

इत्थमैश्वर्ययुक्तोऽपि निग्रहानुग्रहक्षमः ।
निर्ममो निरहंकारः संन्यासी विचरेद् भुवि।।183।।

इस प्रकार का ऐश्वर्य युक्त होने पर भी निग्रह-अनुग्रह करने की क्षमता वाला यति इस पृथिवी पर अंहकार और ममकार रहित होकर विचरें।।183।।

ऐश्वर्यं बाधकं प्रोक्तं मुमुक्षूणां तु यद्यपि।
तथापि दण्डसंस्कारात्पुरश्चर्याविधानतः ।।184।।
ऐश्वर्यं स्वयमुत्पन्नं बाधकं न भेवद्यतेः।
किन्तु साधकमेव स्यान्नित्यं तस्योर्ध्वगामिनः।।185।।

यद्यपि किसी भी प्रकार का ऐश्वर्य मुमुक्षुओं के लिये बाधक कहा गया है तथापि दण्ड के संस्कार से तथा पुरश्चरण का अनुष्ठान से स्वयं उत्पन्न ऐश्वर्य यति के लिये बाधक नहीं होता। किन्तु उस ऊर्ध्वगामी यति का वह (ऐश्वर्य) साधक ही होता है।।184-185।।

पतनाद्वारयेच्चापि निरुन्ध्याद्वा विमार्गतः।
तथा शारीरधातूनां रक्षकं तद्भवेद्यतेः।।186।।

यदि यति पतन से (निषिद्ध कर्मों से) तथा विमार्ग (अवैदिकमार्ग) से अपने को रोक सके (बचा सके) तो यति के शरीर के धातुओं (सप्तधातु) का वह ऐश्वर्य रक्षक होता है।।186।।

ओजस्तेजोधृतिं चैव समुत्पाद्य प्रभावतः।
प्रत्युत्पन्नां मतिं दद्यात्तदैश्वर्यं सदा यतेः।।187।।

वह ऐश्वर्य यति (सन्मार्गी, गुरुसेवी, आदि हो तो) में ओजः, तेजः, धृति को अपने प्रभाव से उत्पन्न करके अत्यन्तसूक्ष्म प्रतिभा आदि युक्त मति को सदा देता है। (187)

41. प्रतिष्ठाऽभावे दण्डस्य प्रदर्शनमात्रत्वम् = प्रतिष्ठा के अभाव में दण्ड केवल प्रदर्शन ही है –

प्रतिष्ठा प्रणवस्यापि मात्राणां शक्तयस्तु याः।
तासां यदि प्रतिष्ठा नो दण्डं तद्दृश्यमेव हि।।188।।

प्रणव के मात्राओं और शक्तियों की जो प्रतिष्ठा है उन्हें यदि प्रतिष्ठित न करें तो वह दण्ड एक दृश्य (लकड़ी) मात्र है। (188)

42. विधिवत्साधितदण्डधारणस्य फलानि = विधि द्वारा संस्कारित दण्डधारण का फल –

एवं दण्डस्य माहात्म्यं विधानं साधनाः क्रियाः।
सर्वं ज्ञात्वा यतिः कुर्याद्विधिवद्दण्डधारणम्।।189।।

इस प्रकार यति दण्ड का माहात्म्य, साधना, क्रिया, इनके विधि आदि सब को जानकर विधिवद् दण्डधारण करें। (189)

विधिना विहितं कर्म कृत्वा सच्छ्रद्धयाऽन्वितः।
अनन्तशक्तिसम्पन्नोऽनन्तदेवप्रतिष्ठितः ।
अनन्तानन्तपुण्यानां सारभूतः सनातनः।।190।।

पूर्ण श्रद्धा से युक्त होकर विधि के अनुसार विहित कर्मों को करके अनन्त शक्ति से सम्पन्न, अनन्तदेव में प्रतिष्ठित होकर जैसे अनन्तानन्त पुण्य युक्त होता है। सनातनी (190)

यथाऽऽस्ते यतिदण्डोऽयं तथा दण्डधरो भवेत्।
तदा तद्धारणं लोके सफलं भवति ध्रुवम्।।191।।

ठीक उसी प्रकार यह यति दण्ड है और उसको धारण करने वाला यति भी। इसलिये इसका धारण करना लोक में सफल है यह निश्चित है।(191)

(अत्र केचन श्लोकाः पठितुं न पारिता अत एव तेषां क्रमसंख्याऽपि न योजिता। = यहां कुछ श्लोक नहीं पढ़ सके हैं, इसलिये उनके क्रमांक को जोड़ा नहीं गया।)

43. दशचक्रेषु जपक्रमः, कुण्डलिनीरूपेण चक्रचिन्तनं च = दस चक्रों में जप का क्रम और कुण्डलिनी के रूप में चक्रों का चिन्तन –

गुरोराज्ञां समादाय मणिपूरसरोजके।
दशधा प्रजपेद्विद्यां सावधानेन चेतसा॥192।।

गुरु की आज्ञा पाकर एकाग्र चित्तवाला होकर मणिपुरचक्र के कमल में विद्या को 10 प्रकार जपें। (192)

मूलाधारं समेत्याथ प्रजपेद्दशधा मनुम्।
मूलाधारादथाज्ञायामागत्य दशधा जपेत्॥193।।

तदनन्तर मूलाधार पहुँचकर उस पर भी 10 बार मन्त्र को जपे। तत्पश्चात् मूलाधार से आज्ञा में जाकर 10 प्रकार (मन्त्र को) जपें। (193)

आज्ञाचक्राद्विशुद्धाख्ये जपेद्दश समाहितः।
विशुद्धादग्रतो गत्वा दशधा प्रजपेन्मनुम्॥194।।

आज्ञाचक्र से विशुद्धि चक्र में आकर 10 प्रकार (मंत्र को) जपे। विशुद्धि चक्र से आगे जाकर (यानी स्वाणिकान चक्र पहुँचकर) वहाँ पर भी 10 प्रकार (मंत्र को) जपे। (194)

ततः स्वाधिष्ठानमेत्य दशधा प्रजपेन्मनुम्।
स्वाधिष्ठानात्समेत्याऽनाहतं तत्र जपेद्दश॥195।।

मंत्र के द्वारा ही दो-दो को मिलाकर एक चौकोण की कल्पना करें। (195)

द्वौ द्वौ सम्मेलयेत्तेन भवेत्कोणचतुष्टयम्।
तत्र नैर्ऋत्यमाश्रित्य वायव्यान्तं प्रपूजयेत्॥196।।

उसमें (दिशाओं की कल्पना करके) नैर्ऋत्य दिशा को आश्रय करके (अर्थात् नैर्ऋत्य दिशा से आरम्भ करके) वायव्य दिशा पर्यन्त पूजा करें। (196)

मोहिनी मातंगी सरस्वती पश्चिमदिग्गता।
दक्षिणस्यामुग्रया च युज्यते जायते तदा॥197।।

नैर्ऋत्याधिष्ठातृकैषा चामुण्डेति निगद्यते।
लोके त्वेषा महामाया भद्रकालीति गीयते।।198।।

नैर्ऋत्य में मोहिनी, पश्चिम में सरस्वती और वायव्य में मातंगी। दक्षिणदिशा में उग्राके साथ युक्त होनेपर नैर्ऋत्य दिशाके अधिष्ठात्री हो जाती है। जिसे 'चामुण्डा' कहते है। लोक में इसे महामाया और भद्रकाली नाम से कहते है। (197-198)

पूर्वस्था कमलादेवी बगला याम्यदिग्गता।
संश्लिष्टाऽऽग्नेयकोणस्य महालक्ष्मीर्निगद्यते।।199।।

पूर्व में स्थित है कमलादेवी, दक्षिणदिशा में बगला। सहित संश्लिष्ट आग्नेयकोण के देवी को महालक्ष्मी कहते हैं। (199)

पूर्वस्था सिद्धलक्ष्मीश्च पंचवक्त्रा तथोत्तरा।
मिलित्वा दशवक्त्राऽथ महाकालीति कथ्यते।।200।।

(पुनः) पूर्व में स्थित सिद्धलक्ष्मी और उत्तर में विराजमान पंचवक्त्रा के साथ मिलाकर दशवक्त्रा 'महाकाली' कहते हैं (200)

प्रतीच्याश्चण्डमातंगी छिन्नमस्ता तथोत्तरा।
वायव्यस्य मिलित्वा च महासरस्वती ननु।।201।।

तथा पश्चिमदिशा में स्थित चण्डमातंगी और उत्तर दिशा में छिन्नमस्ता। वायव्य दिशा के अधिष्ठात्रीसहित निश्चित रूप से 'महासरस्वती' होती है। (201)

एतास्तु लम्बिकायां वै पूजनीया विधानतः।
बिन्दौ नवार्णमन्त्रञ्च पूजनीयं प्रत्यत्नतः।।202।।
षट्त्रिंशदंगुलो हंसः प्रमाणं कुरुते बहिः ।
सव्यापसव्यमार्गेण प्रयाणात्प्राण उच्यते।।203।।

इन सबका ''लम्बिका'' में विधिवत् पूजा करें। प्रयत्नपूर्वक बिन्दु (विसर्ग नामक चक्र) में नवार्णमन्त्र से पूजा करें। (हमारे श्वास रुपी हंस) बाहर की ओर 36 अंगुल प्रयाण करता है। दायें और बायें मार्गों से प्रयाण करने से ''प्राण'' कहते हैं। (202-203)

अपानः कर्षति प्राणं प्राणोऽपानं च कर्षति।
सोऽहं हंसः पदेनैव जीवो जीवति सर्वदा।।204।।

अपान प्राण को खींचता है और प्राण अपान को खींचता है। इस प्रकार ''सोऽहं हंस'' दो के द्वारा ही यह जीव सदा जीता है। (204)

शिवादि कृमिपर्यन्तं प्राणिनां प्रवर्तनम्।
निःश्वासश्वासरूपेण मन्त्रोऽयं वर्तते प्रिये॥205॥

हे प्रिये! शिव से लेकर जीव पर्यन्त सभी प्राणियों का प्राण वृत्ति श्वास और निःश्वास के रूप से यह मन्त्र निरन्तर चलता रहता है। (205) (पूजा के अन्त में इस पर अवश्य ध्यान करें)।

44. कुण्डलिन्यादिक्रमैश्चक्रचिन्तनानि = कुण्डलिनी आदि क्रम से चक्रों का चिन्तन –

चिन्तनं प्रथमे चक्रे कुण्डलिक्रम उच्यते।
द्वितीये चिन्तनं चक्रे मिश्रणाख्यो भवेत्क्रमः॥206॥

(साधनापाद के 40वें प्रघट्टक में इसका विस्तृत रूप से वर्णन है।) प्रथम चक्र में जो चिन्तन किया जाता है उसे ''कुण्डलिनी क्रम'' कहते हैं। दूसरे चक्र में जो चिन्तन होता है उसे ''मिश्रण क्रम'' नाम से कहते हैं। (206)

तृतीये लम्बिकाचक्रे तत्तुर्यक्रमचिन्तनम्।
संवरोधिनीक्रमश्चैव कथ्यते विबुधैः सदा॥207॥

तृतीय लम्बिका नामक चक्र में जो चिन्तन किया जाता है उसे ''तुर्यक्रम'' कहते हैं। उसी को विद्वान् लोग ''संवरोधी क्रम'' नाम से भी कहते हैं। (207)

शाम्भवक्रमतश्चैव चिन्तयेत्परमेश्वरीम्।
तत्पंचमोर्ध्वचक्रं त्वाज्ञाया हंसक्रमेण वै॥208॥

शाम्भव क्रम से परमेश्वरी का चिन्तन करें। पंचम से ऊर्ध्व आज्ञा चक्र में हंसक्रम से (चिन्तन करें) (208)

बैन्दवादिमहाबिन्दुक्रमेणैव सुचिन्तयेत्।
पूर्ववद्भ्रमयेद्देवि कुण्डलिक्रमतश्च तत्॥209॥

हे देवी! बैन्दवादि महाबिन्दु क्रम से ही सम्यक् चिन्तन करें और पूर्ववद् अपने चित्त को भ्रमण करायें और वह भी कुण्डलि क्रम से। (209)

षष्ठं वै चिन्तयेद्देवीमूरूपद्मे तु लम्बिकाम्।
सप्तमं चिन्तयेद्देवि समाधिं सविकल्पकम्॥210॥

विस्तृत पद्मवाला लम्बिका में छठी (षष्ठी) देवी का चिन्तन करें और हे देवी! सातवीं देवी का भी चिन्तन करें। जिससे सविकल्प समाधि (होगी) (210)

महावैभवसंयुक्तः साक्षाच्छिवमयो भवेत्।
तेनातिमन्दभाग्योऽपि कुबेराधिपतिर्भवेत्॥211॥

महावैभव से मुक्त साक्षात् शिवमय होता है। उससे अतिमन्द भाग्यवाला भी कुबेराधिपति हो जाता है। (211)

क्रमदीक्षासमायुक्तश्चिन्तयेच्चक्रमुत्तमम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वैश्वर्यप्रदायकम्॥212।।

क्रमदीक्षा से युक्त होकर सर्वैश्वर्यप्रदायक सर्वोत्तम चक्र (श्रीचक्र) का चिन्तन करें। उससे सकल पापों से मुक्त होगा। (212)

45. न्यासप्रकरणम् = न्यास प्रकरण -

करोम्यनेन मन्त्रेण तालत्रयमहं शिवे।
नाराणोऽहं ब्रह्माऽहं भैरवोऽहं शिवोऽस्म्यहम्।।213।।

हे शिवे! इस मंत्र से मैं तीन बार ताली बजाऊँगा - "नारायणोऽहमस्मि, ब्रह्माहमस्मि, भैरवोऽहमस्मि और शिवोऽहमस्मि।" (213)

देवोऽहं परमात्माऽहं महात्रिपुरसुन्दरि।
ध्यात्वैवं वज्रकवचं न्यासं तत्र करोम्यहम्॥214।।

हे महात्रिपुरसुन्दरी! देवोऽहमस्मि, परमात्माहमस्मि। "तदनन्तर इस प्रकार वज्रकवच का ध्यान करके आपका मैं न्यास करुँगा। (214)

कुमारीबीजसंयुक्तं महात्रिपुरसुन्दरि ।
मां रक्ष रक्षेति हृदि करोम्यंजलिमीश्वरि।।215।।

वज्रकवच- "हे महात्रिपुरसुन्दरी! हे ईश्वरी! कुमारीबीज से युक्त आप मेरी रक्षा करें, रक्षा करें"-ऐसे कहते हुये अपने हाथ को हृदय पर रखूँगा। (215)

नमो देव्यासनायेति ते करोम्यासनं शिवे।
चक्रासनं नमस्यामि सर्वमन्त्रासनं भजे॥216।।

हे शिवे! आपके लिये ''नमो देव्यासनाय" इस मन्त्र तथा "चक्रासनं नमस्यामि, सर्वमन्त्रासनं भजे।" (216)

साध्यसिद्धासनं वन्देमन्त्रैरेभिर्महेश्वरि।
करोम्यस्मिंश्चक्रमन्त्रदेवतासनमुत्तमम्।।217।।

साध्यसिद्धासनं वन्दे" इन मंत्रों से हे महेश्वरी! मैं आपके लिये उत्तम चक्रमन्त्रदेवासन बिछाता हूँ। (217)

चक्रन्यासं ततः कुर्वे श्रीकण्ठन्यासमुत्तमम्।
केशवादिमहान्यासं कामन्यासं करोम्यहम्।।218।।

उसके बाद चक्रन्यास करुँगा। क्रम- उत्तम श्रीकण्ठन्यास, केशवादि महान्यास, काम न्यास को करता हूँ। (218)

कलान्यासं ततः कुर्वे कुर्वे कामकलाह्वयम्।
पीठन्यासं ततः कुर्वे तत्त्वन्यासं करोम्यहम्। ।219।।

उसके बाद कलान्यास, कामकलाह्वय न्यास, पीठन्यास और तत्त्वन्यास को करता हूँ। (219)

वशिन्याष्टकं न्यासं नवयोगिन्याख्यमुत्तमम्।
षोढान्यासं ततः कुर्वे महाषोढां करोम्यहम्।।220।।

वशिन्याष्टकन्यास, नवयोनि नामक उत्तम न्यास, षोढ़ान्यास और महाषोढ़ान्यास करता हूँ। (220)

षोढान्यासन्तु वै कुर्वस्तेन ब्रह्माण्डरूपकः।
विराड्रूपः परमात्मा शिवः साक्षान्न संशयः।।221।।

षोढान्यास को करते हुए साधक ब्रह्माण्डरूप, विराड्रूप परमात्मा साक्षात् शिव हो जाता है। इसमें कोई संशय नहीं। (221)

46. षोढान्यासस्वरूपम् = षोढान्यास का स्वरूप -

बीजं कूटं क्रमो धातुस्तत्त्वं पञ्चमपञ्चकम्।
पञ्चविंशतिसंख्याका न्यासा एते प्रकीर्तिताः।।222।।

बीज, कूट, क्रम, धातु, तत्त्व, पंचमपंचक-इस प्रकार 25 न्यासों का विधान किया गया है। (222)

वारदीक्षाक्रमश्चैव दीक्षाक्रमस्तथैव च।
न्यासश्चैवं द्विधोक्तौ नित्यं नैव क्रियेत चेत्।।223।।

वारदीक्षाक्रम तथा केवलदीक्षाक्रम न्यास भी दो प्रकार का कहा गया है, यदि नित्य नहीं करते हैं तो। (223)

अङ्गषोढां कुलेशानि कुर्यात्पूर्वोक्तवर्त्मना।
महाषोढाह्वयं न्यासं ततः कुर्यात्समाहितः।।224।।

हे कुलेशानी! पूर्वोक्त पद्धति से अंगषोढान्यास करें और उसके बाद समाहित होकर महाषोढाह्वयन्यास को करें। (224)

47. अधराम्नायषोढान्यासः (रविवासरे)= अधराम्नाय का षोढान्यास (रविवार में करने) -

रवौ पद्मे शिवकला ग्रहा दोषनिवारकाः।
दिक्पालडाकिनीतारादिकं पीठञ्च विन्यसेत्।।225।।

रविवार के दिन मूलाधार में शिवकला, दोषनिवारकग्रह, दिक्पाल, डाकिनी, तारादि सहित पीठ का विन्यास करें। (225)

48. पूर्वाम्नायषोढान्यासः (सोमवासरे)= पूर्वाम्नाय का षोढान्यास (सोमवार में करने)-

परापरात्परान्यासौ परात्परातीता तथा।
चित्परा चित्परात्परा सोमे स्वाधिष्ठाने तथा।।226।।
सा चित्परात्परातीता तथेयं भुवनेश्वरि।
(शेष अनुपलब्ध है।) **।।।227।।**

पूर्वाम्नाय षोढान्यास (सोमवार में) सोमवार के दिन स्वाधिष्ठान में हे भुवनेश्वरी! परा, परात्परा, परात्परातीता, चित्परा, चित्परात्परा और चित्परात्परातीता न्यासों का विन्यास करें। (226-227)

49. दक्षिणाम्नायषोढान्यासः (मङ्गलवासरे)= दक्षिणाम्नाय का षोढान्यास (मङ्गलवार में करने) -

हंसो मन्त्रो लघुश्चैव महाषोढा तथा स्मृतः।
ग्रहश्च राशिनक्षत्रयोगाः करणमेव च।।228।।
पञ्च संवत्सराः काल्या मनून् भौमे न्यसेत्तथा।
(शेष अनुपलब्ध है।) **।।229।।**

मंगलवार के दिन मणिपूर में हंसमंत्र, लघुषोढा, महाषोढा, ग्रह, राशि, नक्षत्र, योग, करण और पंच संवत्सर न्यासों का विन्यास करें। (228-229)

50. पश्चिमाम्नायषोढान्यासः (बुधवासरे)= पश्चिमाम्नाय का षोढान्यास (बुधवार में करने) -

घोराष्टकं त्रिखण्डा चैवाक्षरो देवपञ्चकम्।
डाद्यष्टकस्य न्यासोऽपि षोढान्यास उदाहृतः।।230।।

बुधवार के दिन अनाहत में घोराष्टक, त्रिखण्डा, अक्षर, देवपंचक, डाद्यष्टक और षोढान्यास करने का विधान है।(230)

ग्रन्थिन्यासं तथा घोरं द्वादशाङ्गं षडङ्गकम्।
मालिनी शब्दराशिश्च षड्दूतं रत्नपञ्चकम्।।231।।

नवात्मा नवघोराश्च षोढा चैव त्रिविद्यया।
त्रिखण्डं मन्त्रखण्डन्तु मातृखण्डं तथैव च॥232॥
रुद्रखण्डमिति प्रोक्तमनाहतं बुधवासरे।
रक्ष मां कुब्जिके देवि रक्ष मां कुब्जिकेश्वरि॥233॥

ग्रन्थिन्यास, घोर द्वादशांग, षडंग, मालिनी, शब्दराशि, षड्दूत, रत्नपंचक, नवार्णव, नवघोरा, त्रिविद्या सहित षोढा, त्रिखण्ड, मन्त्रखण्ड, मातृखण्ड और रुद्रखण्ड न्यासों को करने को कहा गया है। (231–233)

रक्ष रक्ष महादेवि अस्मदीयमिदं वपुः।
कुलदेवीति विख्याता कैलासशिखरालये॥234॥
सा कुब्जिका महामाया स्थातु श्रीर्मम मस्तके।
वर्मपाठे महत्पुण्यं तेन भवति निर्भयः॥235॥
वर्मणा रक्षां प्राप्नोति तस्मान्नित्यं पठेन्नरः।
(शेष अनुपलब्ध है।) **॥236॥**

तदनन्तर कवच पाठ करें– "हे महादेवी! हमारे इस शरीर की रक्षा करें रक्षा करें। कैलासशिखरालय में कुलदेवी नाम से आप विख्यात हैं। वह आप कुब्जिका महामाया श्री मेरे मस्तक पर स्थित होवें।" कवचपाठ करने पर महान् पुण्य होगा जिससे साधक निर्भय होता है। कवच से रक्षा होगी इसलिये नित्य पाठ करें। (234–236)

51. उत्तराम्नायषोढान्यासः (गुरुवासरे) = उत्तराम्नाय का षोढान्यास (गुरुवार में करने) –

उग्रमातृक्रमः कालीकुलपीठानि योगिनी।
देवतामन्त्ररूपाणि न्यासोऽयं कालिकाक्रमे॥237॥
षोढान्यासे विशुद्धेस्तु विन्यसेच्च क्रमात्तथा।
(शेष अनुपलब्ध है) **॥238॥**

ततश्च लघुषोढा स्यान्महाषोढा ततः परम्।
महानिर्वाणषोढा च सर्वे शेषे प्रकीर्तिताः॥239॥

गुरुवार के दिन विशुद्धिचक्र में उग्रमातृक्रम, काली, कुल, पीठ, योगिनी, देवता रूप और मन्त्ररूप–यह न्यास कालिक्रम में कहा गया है तथा क्रमशः षोढान्यास लघुषोढा, महाषोढा, महानिर्वाणषोढा – इन सबको अन्त में करने को कहा गया है। (237–239)

52. ऊर्ध्वाम्नायलघुषोढान्यासः (शुक्रवासरे) = ऊर्ध्वाम्नाय का लघुषोढान्यास (शुक्रवार में करने) –

शुक्रवारे गणेशश्च दशविद्यामयो ग्रहः।
नक्षत्रयोगिनीराशिपीठं लघुषोढा स्मृतः।।240।।

शुक्रवार के दिन आज्ञाचक्र में गणेश, दशविद्यामय, ग्रह, नक्षत्र, योगिनी, राशि, पीठ और लघुषोढा न्यासों को करें। (240)

53. ऊर्ध्वाम्नायमहाषोढान्यासः (शनिवासरे) = ऊर्ध्वाम्नाय का महाषोढान्यास (शनिवार में करने) –

कूटैर्बीजैर्विना देवि षोढान्यासो न सिद्ध्यति।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कूटमन्त्राणि योजयेत्।।241।।

हे देवी! कूट और बीजों के विना षोढान्यास सिद्ध नहीं होता। इसलिये पूरा प्रयास करके कूट और बीज का न्यास करना चाहिये। (241)

प्रपंचो भुवनं मूर्तिमन्त्रदैवतमातरः।
महाषोढाह्वयं न्यासमाज्ञायां विन्यसेत्सदा।।242।।

न्यास क्रम – प्रपंच, भुवन, मूर्ति, मंत्र, देवता, मातृगण नामक महाषोढान्यास को आज्ञाचक्र में ही सदा विन्यास करें। (242)

सास्मदीयं शिरः पातु सदा तिष्ठतु भैरवी।
या विशाला विशालाक्षी निर्मला मूलवर्जिता।।243।।
सा योगिनी महामाया स्थातु श्रीर्मस्तके मम।
सिद्धेश्वरी परापरे महाविद्या महाकला।।244।।

इसका कवच – "वह हमारे सिर की रक्षा करें। भैरवी सदा स्थित रहे। जो विशाल, विशालाक्षी, निर्मला, मूलवर्जिता है। वह सिद्धेश्वरी, परापर, महाविद्या, महाकाली, महामाया, योगिनी, श्री मेरे मस्तक में स्थित हो।(243-244)

बीजकलाऽवरोहश्च सहस्रारे शनौ न्यसेत्।
एतत्पाठे महापुण्यं न्यासो देवस्वरूपगः।।245।।
केवलं न्यासपाठेन तत्र तिष्ठन्ति देवताः।
केवलं स्मृतिमात्रेण तृप्यन्ति सर्वदेवताः।।246।।
न्यासं षोढा महाषोढायुक्तं पूर्णं विधाय च।
अनाख्याभासयोः पूजा कार्या नित्यं हि चक्रयोः।।247।।

पूर्व में बीज और कूट आदि कलाओं को जिस आरोहक्रम से न्यास

किया गया था अब उसके विपरीत अवरोह क्रम से शनिवार के दिन सहस्रार में करना है। इस (पाठ) न्यास को करने पर महापुण्य होगा क्योंकि यह न्यास देवस्वरूपगत है। केवल न्यास पाठ से देवता बैठते हैं और केवल स्मरणमात्र से सभी देवता तृप्त होते है। पूर्वरूप से महाषोढा युक्त षोढान्यास को करके अनाख्या और भासा की पूजा इन दोनों चक्रों (आज्ञा और सहस्रार में क्रमशः) में नित्य ही करनी चाहिये। (245-247)

54. अथ महाषोढान्यासफलश्रुतिः = अब महाषोढान्यास का फल -

एवं न्यासे कृते देवि साक्षात्परशिवो भवेत्।
मन्त्री न चात्र सन्देहो निग्रहानुग्रहक्षमः।।248।।

हे देवी ! उक्त प्रकार से न्यास करने पर साधक साक्षात् पर शिव होता है। वह निग्रह और अनुग्रह करने में सक्षम होता है। इसमें कोई संशय नहीं। (248)

महाषोढाह्वयं न्यासं यः करोत दिने दिने।
देवाः सर्वे नमस्यन्ति तं नमामि न संशयः।।249।।

महाषोढान्यास को जो नित्य करता है उसको सभी देवतालोग नमस्कार करते हैं और मैं भी नमस्कार करता हूँ। इसमें कोई संशय नहीं है। (249)

महाषोढाह्वयं न्यासं यत्र मन्त्री न्यसेत्ततः।
दिव्यक्षेत्रं समुद्दिष्टं समन्ताद्दशयोजनम्। ।250।।

जहाँ साधक इस महाषोढान्यास को करता है वह क्षेत्र 10 योजनविस्तार पर्यन्त दिव्यक्षेत्र हो जाता है-ऐस कहा गया है। (250)

कृत्वा न्यासमिमं देवि यत्र गच्छति मानवः।
तत्र श्रीर्विजयो लाभः सम्मानं पौरुषं प्रिये।।251।।

हे देवी! हे प्रिये! इस न्यास को करके साधक जहाँ भी जाता है वहाँ उसे श्री (लक्ष्मी), विजय और पुरुषोचित सम्मान प्राप्त होता है। (251)

महाषोढाकृतन्यासः क्रुद्धो यं वीक्ष्य वन्दते।
षण्मायान्मृत्युमाप्नोति यदि त्राता शिवः स्वयम्।।252।।

इस महाषोढ़ान्यास करनेवाला साधक क्रुद्ध होकर जिसको देख करके अभिवादन भी करता है। तो उसका छः मास में ही मृत्यु हो जायेगा, भले शिव ही स्वयं उसका रक्षक हो। (252)

वज्रपंजरनामानमेनं न्यासं करोति यः।
दिव्यन्तरिक्षभूशैलजलारण्यनिवासिनः। ।253।।

उद्दण्डभूतवेतालदेवरक्षोग्रहादयः ।
भयग्रस्तेन मनसा नेक्षन्ते साधकं प्रिये ॥254॥

हे प्रिये! जो वज्रपिंजरा नामक इस महाषोढान्यास को करता है इस साधक को द्युलोक, भूलोक, अन्तरिक्षलोक, जल और अरण्य के निवासी उद्दण्डभूत–प्रेत, वेताल, देवगण, रक्षसगण, ग्रह आदि भयग्रस्त होकर मन से भी देखने की हिम्मत नहीं करते। (253–254)

महाषोढाह्वयं न्यासं ब्रह्मविष्णुशिवादयः।
देवाः सर्वे प्रकुर्वन्ति ऋषयश्च मुनीश्वराः ॥255॥

महाषोढानामक इस न्यास को ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि सभी देवतालोग सहित ऋषिगण, मुनीश्वर आदि करते हैं। (255)

बहुनोक्तेन किं देवि सुशिष्याय प्रकाशयेत्।
अक्षय्यां लभजे सिद्धिं रहसि न्यासमाचरेत् ॥256॥

इसलिये हे देवी! ज्यादा क्या कहूँ मैं इस न्यास को केवल सुशिष्य को ही बताना चाहिये और इसे एकान्त में (सबके सामने प्रदर्शित न करते हुए) करें तो यह अक्षय सिद्धि को देता है। (256)

अस्मात्परतरः साक्षाद्देवताभावसिद्धये।
लोके नस्ति न संदेहः सत्यं सत्यं न संशयः ॥257॥

इससे बढ़कर साक्षात् देवताभाव की प्राप्ति के लिये इस लोक में कोई और साधन नहीं है इसमें कोई संशय नहीं है। यह सत्य है, यह सत्य है, इसमें संशय नहीं है। (257)

ऊर्ध्वाम्नाय प्रवेशाय पराप्रासादचिन्तनम्।
महाषोढापरिज्ञानं नाल्पस्य तपसः फलम् ॥258॥

ऊर्ध्वाम्नाय में प्रवेश, परप्रसाद चिन्तन और महाषोढान्यास का ज्ञान होना यह कोई कम तपस्या का फल नहीं, अर्थात् अनेकजन्मों के तपस्या का फल ही है। (258)

55. श्रीगुरुप्रणामरहस्यम् = श्रीगुरु को प्रणाम करने का रहस्य –

स्वरूपरूपणे हेतौ श्रीगुरौ प्रथमा नतिः।
स्वच्छप्रकाशविमर्शहेतवे तु द्वितीयका ॥259॥

स्वरूप प्रकाशन के लिये प्रथम साष्टांग नमस्कार श्री गुरु के चरणों में करना है। स्वच्छप्रकाश का विमर्श के लिये दूसरा प्रणाम करें। (259)

स्वात्मारामविलीनाय तेजसे स्यात्तृतीयका।
योगक्षेमस्य सिद्ध्यर्थेऽव्यस्तहस्ता नतिर्मम।।260।।

स्वात्मारामता में विलीन होने के लिये तीसरा नमस्कार करें और योगक्षेम की सिद्धि के लिये आधा नमस्कार (अव्यस्तहस्त) अर्थात् खड़े हुए झुककर हाथ जोड़ के प्रणाम करें। (260)

सार्धत्रिवारं प्रणमेच्छ्रीगुरुं शिवरूपिणम्।
सर्वदण्डप्रणामादीन् कुर्याच्छास्त्रोक्तवर्त्मना।।261।।

इस प्रकार साढ़े तीन प्रणाम द्वारा शिवरूपी गुरु को प्रणाम करना चाहिये। शिर:साष्टांग आदि नमस्कार शास्त्रोक्त विधि से करना चाहिये। (261)

56. श्रीदण्डप्रणामरहस्यम् = श्रीदण्ड को प्रणाम करने का रहस्य –

स्पृष्ट्वा पूर्वाम्नायग्रन्थिं प्रणमेद्भक्तिभावतः।
पुण्ये मतिर्भवेत्तेन साधकस्य न संशयः।।262।।

(प्रत्येक ग्रन्थि को स्पर्शकर प्रणाम करने का फल अलग-अलग है। अत: शुभफलवाले ग्रन्थियों को स्पर्श करके ही प्रणाम करें, अन्यों का स्पर्श किये विना प्रणाम करना है) पूर्वाम्नाय के ग्रन्थि को स्पर्श करके भक्तिभाव से प्रणाम करें तो उससे उस साधक के मति में पुण्य उत्पन्न होगा इसमें कोई संशय नहीं। (262)

दक्षिणाम्नायग्रन्थिं च स्पृष्ट्वा चेत्प्रणमेद्यतिः।
क्रूरकर्मणि तस्याशु मतिस्तत्र यतेर्भवेत्।।263।।

दक्षिणाम्नाय के ग्रन्थि को स्पर्श करके प्रणाम करे तो उस समय वह साधक अतिक्रूर कर्म करने में शीघ्र उन्मुख होता है। (263)

नैर्ऋत्याम्नायजां ग्रन्थिं स्पृष्ट्वा चेत्प्रणमेद्यतिः।
पापबुद्धिर्भवेत्तस्य नात्र कार्या विचारणा।।264।।

नैर्ऋत्याम्नाय के ग्रन्थि को स्पर्श करके प्रणाम करे तो उस साधक का मति में पाप उत्पन्न होगा, इस विषय में और विचार करने की जरूरत नहीं (अर्थात् ऐसे ग्रन्थियों को स्पर्श कर कभी भी प्रणाम नहीं करें यह अभिप्राय है।) (264)

पश्चिमाम्नायजां ग्रन्थिं स्पृष्ट्वा चेत्प्रणमेद्यतिः।
क्रियाप्रवृत्तिर्जायेत साधकस्य न संशयः।।265।।

यदि पश्चिमाम्नाय के ग्रन्थि को स्पर्श करके प्रणाम करें तो साधक की प्रवृत्ति क्रिया में होगी इसमें कोई संशय नहीं। (265)

वायव्याम्नायग्रन्थिं च स्पृष्ट्वा दण्डं नमेद्यतिः।
गमनादौ भवेद् बुद्धिर्नात्र कार्या विचारणा।।266।।

वायव्याम्नाय के ग्रन्थि को स्पर्श कर प्रणाम करे तो उस साधक की बुद्धि गमनादि (अर्थात् भ्रमण करने, तीर्थयात्रा आदि) में प्रवृत्त होती है, इस विषय में और विचार न करें। (266)

उत्तराम्नायजां ग्रन्थिं स्पृष्ट्वा दण्डं नमेद्यतिः।
रतिः प्रीतिर्भवेत्तस्य साधकस्याचिराद् ध्रुवम्।।267।।

उत्तराम्नाय के ग्रन्थि को स्पर्शकरके प्रणाम करें तो उस साधक के मति में निश्चित रूप से रति और प्रीति शीघ्र ही उत्पन्न होगी।(267)

ईशानाम्नायजां ग्रन्थिं स्पृष्ट्वा दण्डं नमेद्यतिः।
द्रव्यादिदाने सामर्थ्यं साधकस्य प्रजायते।।268।।

ईशानाम्नाय के ग्रन्थि को स्पर्श करके प्रणाम करे तो उस साधक में द्रव्य आदि दान देने का सामर्थ्य उत्पन्न होगा। (268)

अधराम्नायजां ग्रन्थिं स्पृष्ट्वाऽधोभागमादरात्।
वैराग्यविज्ञानमतिर्जायते तत्क्षणाद्यतेः ।।269।।

अर्थात् अधराम्नाय के ग्रन्थि को स्पर्श करके अत्यन्तादरभाव से दण्ड के अधोभाग को प्रणाम करे तो उसी क्षण से वैराग्य और विज्ञान उस साधक के मति में उत्पन होगा। (269)

सर्वैश्वर्यस्य लाभार्थं मध्यग्रन्थिं स्पृशन्नमेत्।
यतिरैश्वर्यलाभाय प्रणमेद्दण्डमादरात् ।।270।।

सर्वैश्वर्यों के लाभ के लिये मध्य ग्रन्थि को स्पर्श करते हुये प्रणाम करें तथा कुछ साधक ऐश्वर्यमात्र के लाभ के लिये आदरपूर्वक दण्डमात्र को प्रणाम करें। (270)

षडाम्नायमहाषोढां प्रणवस्य कलास्तथा।
सरहस्याः परिज्ञाय पुरश्चर्यासमन्वितः।।271।।

षडाम्नाय, महाषोढा, प्रणव के मात्राओं को रहस्यों के सहित जानकर पुरश्चरण से युक्त होते हुये। (271)

साम्राज्यदीक्षासम्पन्नो लोकरक्षणशक्तिमान्।
दण्डप्रणाममात्रेण सद्यः सिद्धिं लभेद्यतिः।।272।।

दण्ड प्रणाम मात्र से सद्य ही साम्राज्यदीक्षा से सम्पन्न और रक्षण शक्तिवाला होकर सिद्धि को प्राप्त करता है। (271-272)

ईशानाम्नायग्रन्थ्या वै निर्जराकर्षणं भवेत्।

(शेष अनुपलब्ध है) **।।273।।**

ईशानाम्नाय की ग्रन्थि से देवताओं का आकर्षण होता है। (273)

प्रातः श्रीभुवनेश्वर्याः षोढान्यासं समाचरेत्।
श्रीमहाभुवनेश्वर्या महाषोढां तथा न्यासेत्।।274।।
स्वाधिष्ठाने तु न्यस्तव्याः पूर्वाम्नायक्रमादिमे।
मध्याह्ने दक्षिणा काल्या महाषोढां च विन्यसेत्।।275।।

पूर्वाम्नाय के क्रम से स्वाधिष्ठान में प्रातःकाल में श्रीभुवनेश्वरी षोढान्यास और श्रीमहाभुवनेश्वरी के महाषोढान्यास का विन्यास करें। (274-275)

मणिपूराख्यचक्रे तु भक्तिभावसमन्वितः।
महोग्रतारादेव्यास्तु मूलाधारे न्यसेत्सदा।।276।।

दक्षिणाम्नाय क्रम को आश्रित होकर मणिपूरनामक चक्र में मध्याह्नकाल में भक्तिभाव से समन्वित होकर दक्षिणकाली के षोढान्यास का विन्यास करें। (275-276)

महाषोढाह्वयं न्यासं दक्षिणाम्नायमाश्रितः।
कुब्जिकाया महाषोढां सायंकाले सदा न्यसेत्।।277।।

तथा मध्याह्न में ही मूलाधार चक्र में महोग्रतारादेवी महाषोढानामक न्यास का विन्यास करें। (276-277)

पश्चिमाम्नायमाश्रित्य हृच्चक्रेऽनाहते सदा।
उत्तराम्नायमाश्रित्य प्राक् प्रातःकृत्यतश्चरेत्।।278।।

पश्चिमाम्नाय क्रम को आश्रित होकर हृदयचक्र यानि अनाहतचक्र में सायंकाल में सदा कुब्जिका के महाषोढानामक न्यास का विन्यास करें। (277-278)

प्रागेव ब्राह्ममुहूर्तात्कुर्यात् षोढाचतुष्टयम्।
बालायाः पंचदश्याश्च श्रीमहाषोडश्यास्तथा।।279।।
महात्रिपुरसुन्दर्या आज्ञाचक्रे तु विन्यसेत्।
सर्वरक्षाकरं वश्यसहितं तु यशस्करम्।।280।।

पश्चिमाम्नाय क्रम को आश्रित करके प्रातःकृत्य करने से पहले यानि ब्रह्ममुहूर्त से पहले (मध्यरात्रि में) चार प्रकार का षोढान्यास आज्ञाचक्र में करना है

– बाला, पंचदशी, महाषोडशी और महात्रिपुरसुन्दरी। ये चार सर्वरक्षाकर है और वश्यसहित यशः प्रदायक है। (278–280)

57. नित्यदण्डग्रहणमन्त्रः = नित्य दण्ड को ग्रहण करने का मन्त्र –

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ देवेश देवानां हितकाम्यया।
देवस्यारिविनाशाय सदा मम करे भव।।281।।

हे देवेश! देवताओं के हित की कामना से और देवताओं के शत्रुओं के विनाश के लिये आप जागें, आप जागें और मेरे हाथ में सदा रहें। (281)

58. दण्डतर्पणम् = दण्ड का तर्पण –

द्वादश दण्डमूले तु दण्डाग्रेऽपि तथैव हि।
मुद्रायां द्वादश प्रोक्तं प्रतिपर्वं त्रिधा मतम्।।282।।

दण्ड के मूल में और दण्ड के अग्र में बारह –बारह बार तर्पण करें। तथा मुद्राओं पर भी 12 बार तर्पण करें किन्तु प्रत्येक पर्व पर केवल तीन–तीन बार तर्पण करें। (282)

द्विधालोड्य च मध्येन मूले प्रोक्तं नवांकितम्।
अग्रे सप्तांकितं प्रोक्तमिति दण्डस्य तर्पणम्।।283।।

मूल में नवार्णवमन्त्र से, अग्र में सप्तार्णवमन्त्र से तथा मध्य में दो प्रकार से आलेडन करने (अर्थात् नवार्णव + सप्तार्णव का दोबार आवृत्ति करने) को दण्ड का तर्पण कहते हैं। (283)

शिरःप्रोक्षणमग्रेण मूलेन पादप्रोक्षणम्।
(शेष अनुपलब्ध है) **।।284।।**

तत्पश्चात् दण्ड का अग्रभार से सिर पर प्रोक्षण कर लें और मूलभाग से पैरों पर प्रोक्षण करें। (284)

सुरास्तिष्ठन्ति दण्डाग्रे दण्डमूले तु पूर्वजाः।
प्रतिग्रन्थि तु गन्धर्वा मध्ये तिष्ठन्ति मानवाः।।285।।

दण्ड के अग्रभाग में देवतालोग रहते हैं, दण्ड के मूल में पूर्वज लोग, प्रत्येक ग्रन्थि में गन्धर्व और मध्य में मानव रहते हैं। (285)

अस्माकं कुले ये जाता नामगोत्रविवर्जिताः।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु दण्डसम्बन्धिवारिणा।।286।।

हमारे कुल में जो उत्पन्न हुये हैं जिनके नाम–गोत्र आदि को नहीं जानते वे सब दण्ड सम्बन्धि इस जल से तृप्त होवें। (286)

समाप्य यस्य समृत्येति शक्रादिकगुरून्नमेत्।
ततोऽध्यात्मग्रन्थानां श्रवणादिकमाचरेत्।।287।।

'यस्य स्मृत्या' इत्यादि मन्त्र से दण्डपूजन कर्म समाप्त करके शक्र (इन्द्र) आदि सहित गुरुजनों को प्रणाम करें। तत्पश्चात् आध्यात्मिक ग्रन्थों का श्रवणादि करें। अर्थात् स्वाध्याय करें। (287)

59. दण्डवन्दनं तदा करणीयं च =दण्ड की वन्दना, उस वक्त करने योग्य कर्म–

हृदये हस्तं निधाय श्रीनाथादि(द्य)गुरुपारम्पर्येण यावत्स्वगुरुपादाम्बुजं तावत्प्रणमामीति(संकल्प्य)शिरसि हस्तं निधाय (प्रणामाः कर्तव्या, कथमिति चेत् –) **''ॐ नारायणाय नमः, ॐ पद्मनाभाय नमः, ॐ वसिष्ठाय नमः, ॐ शक्त्यै नमः, ॐ पराशराय नमः, ॐ व्यासाय नमः, ॐ शुकाय नमः, ॐ गौडपादाचार्येभ्यो नमः, ॐ गोविन्दभगवत्पूज्यपादाचार्येभ्यो नमः,** (ॐ श्रीभगवत्पादाद्यशंकराचार्येभ्यो नमः, ॐ विश्वरूपाचार्येभ्यो नमः, ॐ पद्मपादाचार्येभ्यो नमः, ॐ हस्तामलकाचार्येभ्यो नमः, ॐ त्रोटकाचार्येभ्यो नमः,) **ॐ समस्तब्रह्मविद्यासम्प्रदायप्रवर्तकाचार्येभ्यो नमः, ॐ गुं गुरुभ्यो नमः, ॐ पं परमगुरुभ्यो नमः, ॐ पं परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः, ॐ पं परात्परगुरुभ्यो नमः,** (वामस्कन्धे –) **ॐ गं गणपतये नमः,** (दक्षिणस्कन्धे –) **ॐ दुं दुर्गायै नमः,** (वामकुक्षौ –) **ॐ क्षं क्षेत्रपालाय नमः,** (दक्षिणकुक्षौ –) **ॐ सं सरस्वत्यै नमः,** (नाभौ –) **ॐ पं परमात्मने नमः,** (हृदये –) **ॐ पं परब्रह्मणे नमः।** *ततो हृदयकमलमध्ये सर्वतेजोमयं परं ब्रह्मस्वरूपं प्रणवं ध्यात्वा हृदयमालभेत।। षट्प्राणायामान् कृत्वा प्रणवेन करशुद्धिं कुर्यात्। यथा –*

प्रकोष्ठे मणिबन्धे च कूर्पयोर्हस्तयोस्तले।
तत्पृष्ठे च तदग्रे च करशुद्धिरुदाहृता।।288।।

1. हृदय पर हाथ रख के – श्रीनाथादि गुरुपरम्परा से आरम्भ कर अपने गुरुजी पर्यन्त गुरुजनों के चरणकमलों को प्रणाम करें। 2. सिर पर हाथ रख के– 19 मन्त्रों से मानसिक रूप से प्रणाम करें। 3. बाये कन्धे पर–"ऊँ गं गणपतये नमः।" 4. दाहिने कन्धे पर – "ऊँ दुं गुर्गायै नमः।" 5. बायीं कोख में–"ऊँ क्षं क्षेत्रपालाय नमः।" 6. दायीं कोख में–"ऊँ सं सरस्वत्यै नमः।" 7. नाभि पर – "ॐ पं परमात्मने नमः, ऊँ परब्रह्मणे नमः।" 8. पुनः हृदय पर – हृदयकमल

के मध्य में परब्रह्मस्वरूप प्रणव का ध्यान करके हृदय का स्पर्श करें। छः बार प्राणायाम करके प्रणव से ही हाथों को शुद्ध कर लें। हाथों को शुद्ध करने का तात्पर्य बताया गया है कि – प्रकोष्ठ में (कोहनी से नीचे की भुजा), मणिबन्ध (कलाई), कूर्प=कूर्पर (कोहनी), करतल, करपृष्ठ और कराग्र – इन छः हाथ के उपांगों यानि परस्पर एक दूसरे हाथों को प्रणव का उच्चारण करते हुए स्पर्श करना ही कर शुद्धि है।(288)

60. न्यासाः = न्यास

ॐ भूरज्ञानात्मने तुषारवर्णायाङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ भुवः प्राजापत्यात्मने रक्तवर्णाय तर्जनीभ्यां नमः, ॐ स्वः सूर्यात्मने श्यामवर्णाय मध्यमाभ्यां नमः, ॐ महः ब्रह्मात्मने नीलवर्णायानामिकाभ्यां नमः, ॐ जनः ज्ञानात्मने कृष्णवर्णाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः, ॐ तपः सत्यात्मने श्वेतवर्णाय करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। ***एवं हृदयादिन्यासः कर्तव्यः।***

ततः प्लुतोच्चारणेन प्रणवेन हृदयादारभ्य शिरःप्रभृतिपादाङ्गुष्ठपर्यन्तं त्रिवारं व्यापकं कुर्यात्। ततःतालत्रयं कृत्वा बाणमुद्रया छोटिकात्रयं च विधाय प्रणवेन दिग्बन्धः –

ॐ हं हं *– इति बीजेन आकाशप्रकारं विचिन्त्य,* **ॐ यं यं** *– इति बीजेन वायुप्रकारं विचिन्त्य,* **ॐ रं रं** *– इति बीजेन अग्निप्रकारं विचिन्त्य,* **ॐ वं वं** *– इति बीजेन जलप्रकारं विचिन्त्य,* **ॐ लं लं** *– इति बीजेन पृथिवीप्रकारं विचिन्त्य, कराग्रं च ब्रह्मरन्ध्रे निधाय* **ॐ सं सं** *– इति बीजेन परमाकाशं विचिन्तयेत्।*

स्फुरत्तारकसंकाशं विद्युत्पुंजसमप्रभम् ।
हृदिस्थं सर्वदा ध्यायेदोमिति ज्योतिरूपकम्।।289।।

करन्यास और हृदयादि न्यास करके प्रणव को प्लुत (लम्बी) उच्चारण करते हुये सिर से पादांगुष्ठ तक तीन बार व्यापक न्यास करें। तदनन्तर तीन बार ताली बजाकर बाणमुद्रा दर्शाके तीन बार चुटकी बजायें। प्रणव से ही दिग्बन्ध करें और–

1. ऊँ हं हं – इस बीज से आकाशतत्त्व के प्राकार का चिन्तन करें।
2. ऊँ यं यं – इस बीज से वायुतत्त्व के प्राकार का चिन्तन करें।
3. ऊँ रं रं – इस बीज से अग्नितत्त्व के प्राकार का चिन्तन करें।
4. ऊँ वं वं – इस बीज से जलतत्त्व के प्राकार का चिन्तन करें।

5. ॐ लं लं – इस बीज से पृथिवीतत्त्व के प्राकार का चिन्तन करें।

6. कराग्र को ब्रह्मरन्ध्र पर रख के 'ॐ' बीज से परमाकाश का चिन्तन करें। परमाकाश का चिन्तन के बारे में कहा गया है–हृदय में जो स्थित है, विद्युत्पुंज के समान प्रभावाला है, चमकता हुआ तारे के समान प्रकाशवाला है, ऐसा ज्योतिर्मय ॐ का सर्वदा ध्यान करें। (289) इसके बाद "ॐ नमो नारायणाय" मंत्र को 8 बार जपें।

ततः **ॐ नमो नारायणाय** – *इत्यष्टवारं जपेत्।*

61. प्रणवस्याक्षरादीनां विनियोगः –

ॐ प्रणवस्यान्तर्यामी ऋषिर्देवीगायत्रीच्छन्दः, परमात्मा देवता, लातव्यगोत्रोत्पन्नो ब्रह्मपुत्रकः, श्वेतो वर्णः, उदात्तस्वरो, ज्ञानाग्निर्मुखं, ॐ अं बीजं, ॐ उं शक्तिः, ॐ मं कीलकं, मम मोक्षार्थे जपे विनियोगः।

ॐ अकारस्याग्निर्ऋषिर्देवीगायत्रीच्छन्दो, ब्रह्मा देवता, क्लीं बीजं, क्रिया शक्तिः, पीतो वर्णः, जाग्रदवस्था, भूः स्थनमुदात्तः स्वरः, ऋग्वेदो, गार्हपत्योऽग्नी, रजो गुणः, प्रातः सवनं, विश्वात्मा, पृथिवीतत्त्वं, सृष्टिक्रियाव्याप्त्यर्थे विनियोगः।

ॐ उकारस्य वायुर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः, विष्णुर्देवता, श्रीं बीजं, ज्ञानं शक्तिर्विद्युद्वर्णः, स्वप्नावस्था, भुवः स्थानमनुदात्तः स्वरो, यजुर्वेदो, दक्षिणाग्निः, सत्त्वगुणो, माध्यन्दिनं सवनं, तैजस आत्माऽन्तरिक्षं तत्त्वं, स्थितिक्रियोत्कर्षार्थे विनियोगः।

ॐ मकारस्य सूर्य ऋषिर्जगतीच्छन्दः, ईश्वारो देवता, ह्रीं बीजं, द्रव्यं शक्तिः, श्वेतो वर्णः, सुषुप्त्यवस्था, स्वः स्थानं, स्वरितः स्वरः, सामवेदः, आहवनीयोऽग्निस्तमो गुणः, सायं सवनं, प्राज्ञ आत्मा, द्यौस्तत्त्वं, संहारक्रियार्थे विनियोगः।

ॐ अर्धमात्राया वरुण ऋषिर्विराट् छन्दः, पुरुषो देवता, क्लीं बीजं, विज्ञानं शक्तिः, सर्वे वर्णास्तुरीयावस्था, भूर्भुवःस्वः स्थानानि, उदात्तानुदात्तस्वरिताः स्वराः, अथर्ववेदो नादो वा संवर्तकः, सर्वे गुणाः, सर्वाणि सवनानि, सर्व आत्मानः, पृथिव्यन्तरिक्षदिवस्तत्त्वानि, सृष्टिस्थितिसंहारक्रियार्थे विनियोगः।

ॐ ध्वनेः ब्रह्मा ऋषिर्गायत्रीच्छन्दः, परमानन्दो देवता, हंसो बीजं, चिच्छक्तिर्नादः स्वरूपं, ब्रह्मात्मा, स्वःस्थानमुन्मन्यवस्था, मम मोक्षार्थे जपे विनियोगः।

62. पंचोपचारपूजनम् –

ॐ लं पृथ्वीगन्धतन्मात्रप्रकृत्यानन्दात्मने परमेश्वराय गन्धं परिकल्पयामि।
ॐ हं आकाशशब्दतन्मात्रप्रकृत्यानन्दात्मने परमेश्वराय पुष्पं परिकल्पयामि।
ॐ रं अग्निरूपतन्मात्रप्रकृत्यानन्दात्मने परमेश्वराय दीपं परिकल्पयामि।
ॐ वं अमृतरसतन्मात्रप्रकृत्यानन्दात्मने परमेश्वराय नैवेद्यं परिकल्पयामि।
ॐ सं शान्तिसर्वतन्मात्रप्रकृत्यानन्दात्मने परमेश्वराय पुष्पांजलिं परिकल्पयामि।

63. तर्पणम् = तर्पण करना –

'ॐ वं' – इत्यमृतबीजेन धेनुमुद्रया जलेऽमृतरूपं ध्यात्वा **'ॐ'** मन्त्रेण द्वादशवारमभिमन्त्र्याष्टोत्तरशतवारं च तर्पयेत्। ततः **'ऋषीन्तर्पयामि, छन्दांसि तर्पयामि, देवतास्तर्पयाति, हृदयदेवं तर्पयामि, शिरोदेवं तर्पयामि, शिखादेवं तर्पयामि, कवचदेवं तर्पयामि, नेत्रदेवं तर्पयामि, अस्त्रदेवं जर्पयामि।।**

64. अर्घ्यदानम् –अर्घ्य देना है –

ॐ आत्मैवेदं सर्वम्। ॐ ब्रह्मैवेदं सर्वम्।ॐ सर्वं खल्विदं ब्रह्म।
(इति त्रिवारं अंजलिं दद्यात्)। इन तीन मन्त्रों से तीन बार अंजलि से अर्घ्य दें।

65. उत्तरपूजनम् = उत्तरांगपूजन करना–

पूर्ववत्सम्पूज्य स्वहृदये सपरिवारदेवमुद्वासयेत् –

उत्तिष्ठोत्तिष्ठदेवेशि पुनरागमनाय च ।
प्रसीद त्वं महेशानि प्रविश हृदये मम ।।290।।

पूर्ववत्पूजा करके अपने हृदय में ही सपरिवार देव का निम्न मंत्रों से उद्वास करें – हे देवेशी! उठिये, उठिये, पुनारागमन के लिये अब मेरे हृदय में प्रवेश करें। हे महेशानी! आप प्रसन्न होवें। (290) *दक्षिणहस्ते जलमादायप्रणवेन द्वादशवारमभिमन्त्र्य वामकरे निक्षिप्य तदंजलितोयेन शिरः सम्प्रोक्ष्य चाचम्य प्राणायामत्रयं कुर्यात्। जलमादाय संकल्पः*–दाहिने हाथ में जल लेकर प्रणव से 12 बार अभिमन्त्रित करके बायें हाथ में डालें। उस जल से सिर पर प्रोक्षण करके आचमन करने के बाद तीन बार प्राणायाम करें। पुनः दाहिने हाथ में जल लेकर संकल्प करें।

ॐ मनसा चिन्तितं यन्मे वचसा भाषितं पुनः।
कायेन च कृतं कर्म सर्वं ब्रह्मार्पणं भवेत्। ।290 क।।

'जो मेरे द्वारा मन से चिन्तित, वाणि से उच्चारित और शरीर से कृत कर्म है वह सब ब्रह्म को अर्पित होवे'।

66. प्रणवोच्चारणेन दण्डतर्पणम् = प्रणव का उच्चारण द्वारा दण्ड का तर्पण –

द्वादश दण्डमूले तु दण्डाग्रेऽपि तथैव हि।
मुद्रायां द्वादश प्रोक्तं प्रतिपर्वे त्रिधा मतम्।।291।।
द्विधाऽऽलोड्य च मध्येन मूले प्रोक्तं नवांकितम्।
अग्रे सप्तांकितं प्रातरिति दण्डस्य तर्पणम्।।292।।
शिरःप्रोक्षणमग्रेण मूलेन पादप्रोक्षणम्।
नाभावक्षे हृदि चैव मध्येन कुरु तर्पणम्।।293।।
सुरास्तिष्ठन्ति दण्डाग्रे दण्डमूले तु पूर्वजाः।
प्रतिग्रन्थौ च गन्र्धवा मध्ये तिष्ठन्ति मानवाः।।294।।
अस्माकं कुले ये जाता नामगोत्रविवर्जिताः।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु दण्डसम्बन्धिवारिणा।।295।।
समाप्य यस्य स्मृत्येति शक्रादिकगुरून्नमेत्।
ततोऽध्यात्मग्रन्थानां श्रवणादिकमाचरेत्।।296।।

प्रघट्टक (पैरा) संख्या 58 'दण्ड का तर्पण' शीर्षक में श्लोक संख्या 282–287 में उक्त यहाँ पुनः कथन किया गया है, केवल विधि के क्रम को दर्शाने के लिये। अर्थात् वहाँ केवल पदार्थ बताया गया है लेकिन उसका पूजन काल में अनुष्ठान का क्रम के अनुसार यहाँ दिखाया गया है। 291–296 श्लोकों का भावार्थ इस प्रकार है – दण्ड के मूल में और दण्ड के अग्र में बारह –बारह बार तर्पण करें। तथा मुद्राओं पर भी 12 (बारह–बारह) बार तर्पण करें किन्तु प्रत्येक पर्व पर केवल तीन–तीन बार तर्पण करें।(291) मूल में नवार्णवमन्त्र से, अग्र में सप्तार्णवमन्त्र से तथा मध्य में दो प्रकार से आलेडन करने (अर्थात् नवार्णव + सप्तार्णव का दोबार आवृत्ति करने) को दण्ड का तर्पण कहते हैं।(292) तत्पश्चात् दण्ड का अग्रभाग से सिर पर प्रोक्षण कर लें और मूलभाग से पैरों पर प्रोक्षण करें।(293) दण्ड के अग्रभाग में देवतालोग रहते हैं, दण्ड के मूल में पूर्वजलोग, प्रत्येक ग्रन्थि में गन्धर्व और मध्य में मानव रहते हैं।(294) हमारे कुल में जो उत्पन्न हुये हैं जिनके हम नाम–गोत्र आदि को नहीं जानते वे सब दण्ड सम्बन्धित इस जल से तृप्त होवें।(295) 'यस्य स्मृत्या' इत्यादि मन्त्र से दण्डपूजन कर्म समाप्त करके शक्र (इन्द्र) आदि देवताओं सहित गुरुजनों को प्रणाम करें। तत्पश्चात् आध्यात्मिक ग्रन्थों का श्रवणादि करें। अर्थात् स्वाध्याय करें।(296)

67. तुर्यासन्ध्या = चौथी सन्ध्या –

ॐ अजपानाम गायत्री योगिनां सिद्धिदा मता।
हंसः पदं महेशानि प्रत्यहं जपते नरः।।297।।

हे महेशानी! ''अजपा'' नाम की गायत्री जी योगियों को सिद्धि देनेवाली मानी गयी है। उस इस पद (मंत्र) 'हंस' को दिन-रात यह मनुष्य जपता है।(297)

मोहाद्यो वै न जानाति मोक्षस्तस्य न विद्यते।
अजपां जपतो नित्यं पुनर्जन्म न विद्यते।।298।।

लेकिन मोह (यानि अज्ञान) के कारण जो नहीं जानता उसे मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। अजपा को नित्य जपते जपते हुये मरनेवाले का पुनर्जन्म नहीं होता। (298)

हकारेण बहिर्यान्तं विशन्तं च सकारतः।
चिन्तयेत्परमेशानि जीवन्तं पक्षिरूपिणम्।।299।।

'ह' कारोच्चारण करते हुये बाहर जाता है और 'स' कार उच्चारण करते हुये पुनः प्रवेश करता है। हे परमेशनी! इस प्रकार पक्षी रूप से जीता हुआ इस का चिन्तन करें।(299)

श्री गुरोः कृपया देवि ज्ञायते जप्यते सदा।
उच्छ्वास-निःश्वासतया बन्धमोक्षस्तदा भवेत्।।300।।

हे देवी! श्री गुरुदेव की कृपा से जानकर जो जपता है सदा उच्छ्वास और निःश्वास के रूप से तब इसका बन्धन से मोक्ष होता है।(300)

68 न्यासः = न्यास करना –

ॐ हं सां सूर्यायांगुष्ठाभ्यां नमः, ॐ हं सीं सोमाय तर्जनीभ्यां नमः, ॐ हं सूं निरंजनाय मध्यमाभ्यां नमः, ॐ हं सैं निराभासायानामिकाभ्यां नमः, ॐ हं सौं अतनुसूक्ष्माय कनिष्ठिकाभ्यां नमः, ॐ हं सः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। *(एवं हृदयादिन्यास:)*

69. ध्यानम् = ध्यान करें –

ॐ अस्य हंसस्य देवेशि निगमागमपक्षकौ।
उभावपि चाग्निसोमौ वक्षो हंसः शिरो भवेत्।।301।।
बिन्दुत्रयं शिखानेत्रे मुखं नादः प्रकीर्तितः।
शिवशक्तिपदद्वयं कालाग्निपार्श्वयुग्मकम्।।302।।

हंसः परमहंसोऽयं सर्वव्यापी प्रकाशवान्।
सूर्यकोटिप्रकाशश्च स्वप्रकाशेन भासते।।303।।

(ततो यथाशक्ति हंसमन्त्रं प्रजप्य समष्टिव्यष्टिक्रमेणाजपाजपनिवेदनं कुर्यात्।)

हे देवी! इस हंस का निगम और आगम पँख हैं, अग्नि और सोम-ये दोनों (दायां और बायां) वक्ष है, 'हंस' (यह मंत्र ही) सिर है, बिन्दुत्रय शिखा व दोनों नेत्र हैं और नाद को मुख कहा गया है। शिव और शक्ति (हंस के) दो पैर हैं और कालाग्नि दोनों बगल- ऐसा यह हंस सर्वव्यापी कोटीसूर्य का प्रकाश के समान प्रकाशवाला परमहंस जो अपने ही प्रकाश से प्रकाशित होता है। (301-303)

(इसके बाद यथाशक्ति 'हंस' मंत्र का जप करके समष्टि और व्यष्टि क्रम से अजपाजप का निवेदन करें।)

70. अजपाजपनिवेदनम् = अजपाजप का निवेदन करना -

ॐ गतारुणोदयादागाम्यरुणोदयपर्यन्तं श्वासप्रश्वासानुसारं कृतं षट्शताधिकैकविंशतिसहस्राजपाजपेन गणेश-ब्रह्मा-विष्णु-महेश-जीव-परमात्मा-गुरवः प्रीयन्ताम्। चतुर्दले मूलाधारे षट्शतेन साङ्गः सावरणः सायुधः सशक्तिकः सवाहनः श्रीगणेशः प्रीयताम्। षड्दले स्वाधिष्ठाने सहस्रषट्केन साङ्गः सावरणः सायुधः सशक्तिकः सवाहनः ब्रह्मा प्रीयताम्। दशदले मणिपूरे सहस्रषट्केन साङ्गः सावरणः सायुधः सशक्तिकः सवाहनः विष्णुः प्रीयताम्। द्वादशदलेऽनाहतचक्रे सहस्रषट्केन साङ्गः सावरणः सायुधः सशक्तिकः सवाहनः महेशः प्रीयताम्। षोडशदले विशुद्धचक्रे सहस्रेण साङ्गः सावरणः सायुधः सशक्तिकः सवाहनः जीवात्मा प्रीयताम्। द्विदलात्मक-आज्ञाचक्रे सहस्रेण साङ्गः सावरणः सायुधः सशक्तिकः सवाहनः परमात्मा प्रीयताम्। (आचार्येभ्योऽत्र विशेषः -) **ईश्वराय सहस्रं समर्पयामि तेन ईश्वरः प्रीयताम्, सदाशिवाय सहस्रं समर्पयामि तेन सदाशिवः प्रीयताम्। ब्रह्मरन्ध्रे सहस्रारे सहस्रेण श्रीगुरुः प्रीयताम्।।**

(टिप्पणम् :- अजपा समर्पणं त्रिभिः प्रकारैर्भवति। तत्र प्रथमे प्रकारे सहस्रदले गुरव एव सर्व समर्प्यते। द्वितीये प्रकारे गणेश-ब्रह्मा-विष्णु-महेश-जीव-परमात्मा-गुरुभ्यः शिष्यः समर्प्यते। तृतीयप्रकारे गणेश-ब्रह्मा-विष्णु-जीव-ईश्वर-सदाशिव-गुरुभ्यः शिष्यः समर्प्यते। अस्मिन् क्रमे आज्ञाचक्रत दशचक्राणां चिन्तनमपि भवति।)

(अजपाजप का निवेदन (समर्पण) 3 प्रकार से किया जाता है। उनमें से प्रथम प्रकार में सहस्रदलपद्म में गुरुदेव को ही सबका समर्पण करेंगे। दूसरे प्रकार में क्रमशः गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, जीवात्मा, परमात्मा और गुरुजन के लिये समर्पण करना है। तीसरे प्रकार में क्रमशः गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, जीवात्मा, ईश्वर, सदाशिव और गुरुजन के लिये समर्पण करना है। लेकिन इस तीसरे क्रम में आज्ञाचक्र से ऊपर में स्थित दसचक्रों का चिन्तन भी करना है।) (304)

गुह्यातिगुह्यगोप्त्रि त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ।।305।।

हे देवी! हे महेश्वरी! गुह्यातिगुह्य की रक्षा करनेवाली हो तुम, मेरे द्वारा कृत जप ग्रहण कीजिये और आपकी कृपा से मेरा जप सिद्ध हो। (305)

त्रैलोक्यचैतन्यमयीश्वरेशि श्रीसुन्दरि त्वच्चरणाज्ञयैव।
प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं संसारयात्रामनुवर्तयि ये ।।306।।

हे त्रैलोक्यचैतन्यमयि! हे ईश्वरेशी! हे श्री सुन्दरी! अपके श्रीचरणों की आज्ञा से अर्थात् शास्त्रोक्त विधि के अनुसार आपकी प्रसन्नता के लिये प्रातः उठकर (प्राकृतिक क्रियाकलाप को समाप्त कर) संसारयात्रा का अनुवर्तन करुँगा।(306)

एवं सन्ध्योपासनं विधायान्ते स्वाधिकारानुरूपं प्रणवजपं प्रकुर्वीत। तथा चोक्तम्-

जपेद्द्वादशसाहस्रं प्रणवस्य प्रयत्नतः ।
सहस्रं श्रवणार्थी तु योगाभ्यासी शतं जपेत् ।।307।।
निर्विकल्पसमाधिस्तु न जपेत्किंचिदद्वयात्।

इस प्रकार सन्ध्योपासना करके अपने अधिकार के अनुरूप प्रणव का जप करें। इस विषय में कहा गया है - (अन्य किसी साधनाविशेष को न करनेवाला सामान्य साधक) प्रयत्नपूर्वक प्रणव का 12000 जप करें तथा श्रवणाद्यर्थी 1000 और योगाभ्यासी 100 जपें। किन्तु अद्वयभाव के कारण निर्विकल्पसमाधिस्थ में स्थित व्यक्ति जप न करें।(307)

71. जपनिवेदनमन्त्रः = जप का निवेदन करने का मन्त्र -

पुण्डरीकाक्ष विश्वात्मन्मन्त्रमूर्ते जनार्दन।
गृहाणेमं मन्त्रजपं मम दीनस्य शाश्वत ।।308।।

हे पुण्डरीकाक्ष!, हे विश्वात्मा!, हे मन्त्रमूर्ति!, हे जनार्दन!, हे शाश्वत! मुझ दीन के द्वारा कृत इस मन्त्रजप को ग्रहण करें। (308)

72. दण्डस्थापनमन्त्रः = दण्ड को स्थापित करने का मन्त्र –

तिष्ठ त्वं देवदेवेश तिष्ठ त्वं दण्डदैवत।

ऋषिभिर्मुनिभिश्चैव गन्धर्वैश्च समं सदा।।309।।

हे देवदेवेश! आप बैठें, हे दण्डदेवता! आप बैठें। ऋषि, गन्धर्व और मुनियों के समान आप सदा विराजमान हों। (309)

73. दण्डपतने ग्रहणमन्त्रो ध्यानं स्तुतिश्च = दण्ड का गिरने से पुनः ग्रहण करने का मन्त्र, ध्यान और स्तुति –

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भगवन्नारायण जगत्पते।

दण्डरूपिन्महाविष्णो प्रसीद पुरुषोत्तम।।310।।

हे भगवन्! हे नारायण! हे जगत्पते! हे दण्डरुपी महाविष्णु! हे पुरुषोत्तम! आप उठें, आप उठें (और) प्रसन्न हों।(310)

मातृपितृसमो दण्डो भ्रातरो गुरवस्तथा।

पथि साधनहेतुश्च ब्रह्ममुद्रे नमोऽस्तु ते।।311।।

हे ब्रह्ममुद्रा! माता–पिता–भाई और गुरु के समान (आप) दण्ड (हैं) और मार्ग में साधन का (सहकारी) कारण हैं, आपको मेरा नमस्कार हो। (311)

विष्णुहस्ते यथा चक्रं शूलं शिवकरे यथा।

इन्द्रहस्ते यथा वज्रं तथा दण्ड भवाद्य मे।।312।।

हे दण्ड! विष्णु के हाथ में सुदर्शनचक्र के समान, शिव के हाथ में त्रिशूल के समान और इन्द्र के हाथ में वज्र के समान आप आज मेरे हाथ में होवे।(312)

74. यतीनामनाख्याभासाक्रमौ =यतियों के प्रति अनाख्या और भासा क्रम–

दशावरणपूजां कृत्वा श्रीदेवीं प्रतर्प्य च।

उपचारैः षोडशभिः साङ्गं सावरणं शिवम्।।313।।

पूजयेन्मूलमन्त्रेण गुन्धपुष्पाक्षतादिभिः ।

महाषोढोदिताशेषपरिवारांश्च शाम्भवि ।।314।।

प्रणवादिनमोऽन्तेन तत्तन्नाम्ना प्रपूजयेत्।

पूजान्ते तर्पणादिकं कुर्याच्चैवाप्रमादतः।।315।।

हे शाम्भवी! षोडश (16) उपचारों द्वारा दशावरण पूजा करके श्रीदेवी को समर्पण करने के अनन्तर सांग सावरण शिवजी की पूजा करें। मूलमंत्र से गन्धपुष्पाक्षतादि सामग्रियों द्वारा महाषोढासमुदित समस्त परिवार की भी पूजा करें।

प्रणव को आदि में और अन्त में नमः को जोड़कर तत्तद्देवताओं के नाम का चतुर्थ्यन्त से सभी की पूजा करें। (313-315)

75. यतीनां कर्तव्यानि = यतियों के कर्तव्य -

चक्राणां क्रमशो ध्यानं जपनं चिन्तनं तथा।
प्रणवस्य च मात्राणां शक्तेश्च चिन्तनं खलु।।316।।
कर्तव्यानि षडेतानि यतिभिर्नियतं सदा।
सम्प्रोक्तक्रमनिर्वाहादैश्वर्यं प्राप्यते ध्रुवम्।।317।।

चक्रों का क्रमशः ध्यान, जप, चिन्तन तथा प्रणव के मात्राओं और शक्तियों का ध्यान, जप, चिन्तन - ये छः कर्म यतियों द्वारा नित्य नियमित रूप से कर्तव्य है। सम्प्रोक्त क्रम का निर्वाह करने से ध्रुव ऐश्वर्य की प्राप्ति होगी।(316-317)

शौचं स्नानं जपं ध्यानं सुरार्चनं भिक्षाटनम्।
कर्तव्यानि षडेतानि सर्वथा नृपदण्डवत्।।318।।

राजा का शासन (अथवा गुरु आज्ञा) के समान शौच, स्नान, जप, ध्यान, देवपूजन और भिक्षाटन करना-ये छः कर्म सदा यति द्वारा सर्वथा कर्तव्य है। (318)

।। इति श्रीमदाद्यशंकराचार्यविरचितः
श्रीयतिदण्डैश्वर्यविधानान्तर्गतो विभूतिपादः।।

श्रीमदाद्यशंकराचार्यविरचित श्रीयतिदण्डैश्वर्यविधानान्तर्गत
विभूतिपाद की व्याख्या पूरी हुई।।

यतिदण्डैश्वर्यविधाने

अथ तत्त्वपादो नाम द्वितीयः पादः =तत्त्वपाद नामक दूसरा पाद आरम्भ होता है।

1. प्रणवमहिमा = प्रणव की महिमा –

अष्टाङ्गं च चतुष्पादं त्रिस्थानं च पंचदैवतम्।
ओंकारप्रभवं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्।।1।।

आठ अंगोंवाला, चारपादवाला, तीनस्थानवाला, पांचदेवतावाला यह सम्पूर्ण चराचरात्मक तीनों लोक ओंकार से ही उत्पन्न हुआ है।(1)

त्रिस्थानं च त्रिमात्रं च त्रिब्रह्म च त्रयाक्षरम्।
त्रिमात्रमर्धमात्रं वा यस्तं वेद स वेदवित्।।2।।

जो साधक तीन स्थानों को तीन मात्राओं के साथ अभेद को अथवा तीन वेद को तीन अक्षरों के साथ अभेद को अथवा साढ़े तीनमात्राओं को जानता है वह वेदवेत्ता है।(2)

सर्वतत्त्वमयः सर्वमन्त्रदैवतविग्रहः ।
सर्वाम्नायात्मकश्चायं प्रणवः परिपठ्यते।।3।।

इस प्रणव के बारे में कहा गया है कि वह सर्वतत्त्वमय, सर्वमन्त्रमय, सर्वदेवताविग्रहमय और सर्वाम्नायात्मक है।(3)

2. प्रणवस्य मात्रादेवतादिज्ञानावश्यकत्वम् = प्रणव के मन्त्र, देवता आदि का ज्ञान की आवश्यकता –

तस्मात्तत्र प्रणवगा मात्रास्तासां च देवताः।
तन्मात्राश्चापि विज्ञेया यतिभिर्दण्डधारिभिः।।4।।

दण्डधारि यतियों के द्वारा पूर्वोक्त महिमा को ध्यान में रखते हुये प्रणव गत मात्रायें उनका देवता और तन्मात्राओं को भी विशेष रूप से जानना चाहिये।(4)ह्व

3. प्रणवमात्रावर्णनम् = प्रणव के मात्राओं का वर्णन –

अकारः प्रथमा मात्रा उकारस्तदनन्तरम्।
मकारश्चार्धमात्रा च नादबिन्दू ततः परम्।।5।।

अकार प्रथम मात्रा है, तदनन्तर दूसरी मात्रा उकार है, क्रमशः तीसरी और चौथी मात्रायें मकार और अर्धमात्रा है। इनसे परे नाद और बिन्दु हैं।(5)

मात्राषट्कमिदं ज्ञेयं प्रणवस्थितमद्भुतम्।
अर्धमात्रा त्वनुच्चार्या तस्मात्पंचकमेव तत् ।।6।।

इस प्रकार प्रणव में स्थित इन अद्भुत छः मात्रायें जानकर उच्चारण करने योग्य हैं। किन्तु अर्धमात्रा उच्चारण योग्य नहीं मानी गयी, अतः कुल पांचमात्रायें ही हैं।(6)

4. प्रणवस्य मात्राणां वर्णाः = प्रणव की मात्राओं का वर्ण –

अकारः पीतवर्णः स्याद्रजोगुण उदीरितः।
उकारः सात्त्विकः शुक्लः कृष्णो मस्तामसः स्मृतः।।7।।

अकार का पीलारंग है, उसे रजोगुण कहा गया है। उकार का सफेद रंग है और उसे सत्त्वगुण कहा गया है, मकार का काला रंग और उसे तमोगुण बताया गया है।(7)

5. प्रणवस्यान्याः षोडशमात्राः = प्रणव के अन्य 16 मात्रायें –

मात्राः प्रणवस्यान्यास्तु स्मर्यन्ते षोडशेति याः।
ताश्च प्रस्तारभेदेन प्रदर्श्यन्ते ततः परम्।।8।।
कला ततः कलातीता शान्ता शान्त्यतीता ततः।
उन्मन्येकादशी प्रोक्ता द्वादशी तु मनोन्मनी।।9।।
वैखरी मध्यमा पश्चात्पश्यन्ती च परा ततः।
एवं षोडशरूपोऽयं प्रणवः सूक्ष्ममात्रकः।।10।।

अन्य लोगों का मानना है कि प्रणव की 16 मात्रायें हैं, उनको प्रकारभेद से दिखाया जा रहा है। पूर्वोक्त छः मात्राओं के पश्चात् कला, कलातीत, शान्ता, शान्त्यतीता, उन्मनी ग्यारहवीं, बारहवीं मनोन्मनी, वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और परा। इस प्रकार 16 सूक्ष्ममात्राओं वाला यह प्रणव है।(8-10)

6. स्थूलादिभेदेनैतासां मात्रणां चतुःषष्टिमात्रत्वम् = स्थूलादिभेद से इन मात्राओं की 64 मात्रता –

ओंकारस्योक्तरूपस्य मात्राणां पुनरेव हि।
प्रत्येकं वै स्थूलसूक्ष्मबीजतुर्यप्रभेदतः।।11।।
मात्राणां स्युश्चतुःषष्टी रूपाण्यथ सनन्दन।
एता अपि पुनः सर्वा वर्धन्ते चोक्तरूपतः।।12।।

उक्त स्वरूपवाले ऊँकार के प्रत्येकमात्रा का स्थूल, सूक्ष्म, बीज और तुर्य भेद से मात्रायें कुल 64 हो जाते हैं। हे सनन्दन! (अर्थात् हे पद्मपादाचार्य!) उक्त रूप से ही 64 गुणा 4 ये पुनः बढ़ते हें, जिससे इनके कुल रूप 256 होते हैं।(11-12)

7. प्रकृतिपुरुषात्मकतया प्रणवमात्राणां द्वैविध्यम् = प्रकृतिपुरुषभेद से प्रणव की दोरूपता –

प्रकृत्या पुरुषेणैता अष्टाविंशतिकोत्तराः ।
शतमात्राश्च सिद्ध्यन्ति द्वैविध्यं समुपाश्रिताः॥13॥

अथवा उक्त 64 मात्राओं का प्रकृति और पुरुष भेद से कुल 128 मात्रायें होते है। द्विविधता को आश्रय करके यह होता है।(13)

8. सगुणनिर्गुणात्मकतया पुनरपि द्वैविध्यम् =सगुणनिर्गुणभेद से पुनः दोप्रकार–

ततो द्विशतं मात्राः स्युः षट्पंचाशत्पराश्च ताः।
द्वैविध्यं सगुणेनैवं निर्गुणेन समाश्रितः॥14॥

सगुणता और र्निगुणता रूप दो प्रकार (भेद) से उक्त 128 प्रणव के मात्रायें कुल 256 हो जाते हैं।(14)

एता मात्राः क्रमेणाग्रे वक्ष्यन्ते देवतायुताः।
यासां स्मरणमात्रेण नरः सिद्धिमवाप्नुयात्॥15॥

आगे क्रमशः देवताओं से युक्त कर इन मात्राओं को कहेंगे जिनका स्मरणमात्र से यह साधक सिद्धियों को प्राप्त करेगा।(15)

9. प्रणवस्याम्नायक्रमदीक्षास्वरूपम् =प्रणव के आम्नायक्रमदीक्षा का स्वरूप –

यानि तत्र चतुःषष्टी रूपाणि प्रणवस्य तु।
तान्येव तावदाम्नायक्रमदीक्षाः प्रकल्पिताः॥16॥

पूर्वोक्त जो प्रणव के 64 मात्रायें है उतने ही आम्नायक्रमदीक्षा कहे गये हैं।(16)

10. प्रणवस्याम्नायस्वरूपम् = प्रणव के आम्नायस्वरूप –

प्रणवः सर्वविद्यानां यथोत्पत्तिस्थलं स्मृतम्।
तथैवाम्नायरूपत्वं प्रसिद्धं साधनाविधौ॥17॥

जिस प्रकार सकलविद्याओं के उत्पत्ति स्थान प्रणव बताया गया है उसी प्रकार साधना विधि में प्रणव ही आम्नाय रूप से प्रसिद्ध है।(17)

11. आम्नायानां मूलतः षड्भेदाः = आम्नाय के मूलतः 6 भेद –

दिशश्चतस्रः पूर्वाद्या ऊर्ध्वाधोदिग्युतास्तथा ।
षडाम्नायाः साधनायां तन्त्रविद्भिः प्रकीर्तिताः॥18॥

पूर्वादि चार दिशायें और ऊर्ध्व एवं अधः दिशाओं को जोड़कर (कुल मिलाकर) छः आम्नाय साधना में बताये गये हैं तन्त्रवेत्ताओं के द्वारा।(18)

इदं षोढात्मकं रूपं प्राणिनां देहसंस्थितम्।
षट्चक्रस्वरूपेण राजतेऽध्यात्ममूलकम्॥19॥

यह छः प्रकार का आम्नाय प्राणियों के देह में षट्चक्रों के रूप से संश्रित होकर विराजमान हैं। (19)

चक्रषट्कमिदं स्थूलं तथा सूक्ष्मं च विद्यते।
अतिसूक्ष्मस्वरूपन्तु षोढातः परिवर्धते ॥20॥

यह अध्यात्म (स्थूलशरीर) मूलक स्थूलषट्चक्र हैं, इनके समान सूक्ष्म भी हैं। अति सूक्ष्म स्वरूप तो छः से आगे बढ़ता है ओंकररूप से ही।(20)

ओंकाररूपतैवैषां चक्राणां नामभेदतः।
क्रमदेवादिव्यवस्था वर्ण्यतेऽत्र विशेषतः॥21॥

इन चक्रों का नामभेद से क्रम-देव-आदि व्यवस्था अब यहाँ विशेष रुप से वर्णन करते हैं। (21)

12. प्रणवस्य कूटात्मकं महानिर्वाणस्वरूपम् = प्रणव का कूटात्मकता और महानिर्वाणरूपता –

अकारो वाग्भवः कूट उकारः कामराजकः।
मकारः शक्तिकूटात्मा नादः श्रीषोडशीतनुः॥22॥

अकार वाग्भवकूट है, उकार कामराजकूट है, मकार शक्तिकूट स्वरूप है और नाद साक्षात् श्रीषोडशी का स्वरूप है।(22)

बिन्दुर्महाषोडशीति नित्यं कूटात्मतास्थितः।
महानिर्वाणरूपोऽयं वर्तते प्रणवः स्वराट्॥23॥

बिन्दु महाषोडशी है – इस प्रकार नित्य कूटत्रय के रूप में स्थित यह स्वरूप ही स्वप्रकाश प्रणव का महानिर्वाण स्वरूप है।(23)

13. प्रणवमात्रास्वाम्नायव्यवस्था = प्रणवमात्राओं में आम्नायव्यवस्था –

अ, उ, म, नाद, बिन्दू च मात्राः पंचयथाक्रमम्।
पंचाम्नायाः समाख्याताः पूर्वादिक्रमतो बुधैः॥24॥

अ-उ-म-नाद और बिन्दु – ये पाँच मात्रायें क्रमशः पूर्वादि क्रम से आम्नाय बताये गये हैं।(24)

अर्धमात्रा त्वनुच्चार्या तस्मादत्र विचारणा।
यतिभिर्नैव विहिता कार्यस्तत्र न संशयः ।।25।।

अर्धमात्रा को उच्चारण के योग्य नहीं माना गया इसलिये यतियों ने उसके आम्नाय स्वरूप का विधान नहीं किया है, इस विषय में संशय नहीं करना चाहिये।(25)

14. प्रणवमात्राणां सृष्ट्यादिक्रमः = प्रणवमात्राओं के सृष्ट्यादिक्रम –

अकारादिकबिन्द्वन्ता मात्रा याः प्रणवस्थिताः।
सृष्टिस्थितिलयानाख्याभासास्ता एव संस्मृताः ।।26।।

अकारादि से बिन्दु पर्यन्त जो प्रणव की मात्रायें हैं उनमें क्रमशः सृष्टि, स्थिति, लय, अनाख्या और भासा क्रम को समझें।(26)

15. दिक्क्रमेण सृष्ट्यादिक्रमेण च प्रणवमात्राव्यवस्था =दिक्क्रम और सृष्ट्यादि-क्रम से प्रणव के मात्राओं की व्यवस्था –

अकारः पूर्व आम्नायः कथितः सृष्टिबोधकः।
उकारो दक्षिणः प्रोक्त आम्नायः स्थितिवाचकः ।।27।।

अकार पूर्वाम्नाय और सृष्टि क्रम का बोधक कहा गया है, उकार दक्षिणम्नाय और स्थिति क्रम का बोधक है।(27)

मकारः पश्चिमाम्नायरूपः स्याल्लयसंज्ञितः।
नादः स्यादुत्तराम्नायोऽनाख्याक्रमबोधकः ।।28।।

मकार पश्चिमाम्नाय का स्वरूप और लय क्रम का वाचक है, नाद उत्तराम्नाय और अनाख्याक्रम का बोधक है।(28)

बिन्दुः स्यादूर्ध्व आम्नायो भासाभावस्य सूचकः।
अधराम्नाय एतेषां सदा विश्रान्तिको भवेत् ।।29।।

बिन्दु ऊर्ध्वाम्नाय और भासाक्रम का सूचक है। अधराम्नाय इन सब का विश्रान्ति स्थान है।(29)

अधरस्य समष्टिस्तु दक्षिणे प्रभविष्यति।
यथैवोत्पद्यते वाणी यथावद् बीजरूपतः ।।30।।

अधराम्नाय को समष्टिरुप से दक्षिण में माना गया है। जहाँ से वाणी उत्पन्न होती है अथवा जैसे बीजरूप से नीचे जमीन में वृक्ष होता है उसी प्रकार दक्षिण जो पृथिवी के अधरभाग में निश्चत है, अतः उसी में अधराम्नाय कहा गया है।(30)

अनेनैव क्रमेणात्र मात्राणां स्थितयो मताः।
बिन्दौ चतस्रश्चान्यत्र तिस्रः स्युर्गुणिताः क्रमात्॥31॥

इसी क्रम से यहाँ मात्राओं की स्थिति को भी मानते हैं। अन्यशास्त्र में एक को ही क्रमशः तीनगुणा करके बिन्दु में ही चार बताया गया है।(31)

पूर्वाम्नायः सृष्टिरूपः स्थितिरूपश्च दक्षिणः।
संहारः पश्चिमो ज्ञेयो ह्यन्तर्लीनस्तथोत्तरः॥32॥
ऊर्ध्वश्चानुग्रहो भूयश्चाधो विश्रान्तिको भवेत्।
एषाऽऽम्नाय व्यवस्थैव तन्त्रे सर्वत्र वर्णिता॥33॥

पूर्वाम्नाय सृष्टिरूप, दक्षिणाम्नाय स्थितिरूप, पश्चिमाम्नाय लयरूप, उत्तराम्नाय अन्तर्लीनरूप, ऊर्ध्वाम्नाय भूयो अनुग्रहरूप और अधराम्नाय विश्रान्तिरुप है। यह आम्नाय व्यवस्था तन्त्रशास्त्रों में सर्वत्र वर्णित है।(32-33)

मन्त्रयोगं विदुः पूर्वे भक्तियोगं च दक्षिणे।
पश्चिमे कर्मयोगं च ज्ञानयोगं तथोत्तरे॥34॥
ऊर्ध्वे विज्ञानयोगं च शब्दयोगं तथाऽपरे।
चिन्तयित्वा क्रियां कुर्यात् ततः सिद्धिमवाप्नुयात्॥35॥

पूर्व में मन्त्रयोग, दक्षिण में भक्तियोग, पश्चिम में कर्म योग, उत्तर में ज्ञानयोग, ऊर्ध्व में विज्ञानयोग और अधर में शब्दयोग का चिन्तन करके क्रिया करें। उससे सिद्धि (अन्तःकरणशुद्धि) की प्राप्ति होगी।(34-35)

16. आमनायानामुपासनाफलम् = आम्नायों के उपासना का फल -

एकैकाम्नायजा मन्त्रा भुक्तिमुक्तिफलप्रदाः ।
एकाम्नायं च यो वेत्ति स मुक्तो नात्र संशयः॥36॥

प्रत्येकाम्नाय में विद्यमान मन्त्र भक्ति और मुक्ति (उभय) फलदायक होते हैं। इसलिये किसी भी एक आम्नाय को जो जानता है वह मुक्त होता है, इस में कोई संशय नहीं।(36)

किं वा पुनः षडाम्नाय वेत्ता साक्षाच्छिवो भवेत्।
अतस्तु तत्तन्मात्राणां ज्ञानं कर्तव्यमेव हि॥37॥

अधिक क्या कहें कि छः आम्नायों को जाननेवाला तो साक्षात् शिव ही है। इसलिये प्रत्येक आम्नाय के सभी मंत्रों को अवश्य जानना चाहिये।(37)

17. प्रणवमात्रासु शिवस्वरूपपूर्वकं सृष्ट्यादिव्यवस्था = प्रणव के मात्राओं में शिवस्वरूपता और सृष्ट्यादि की व्यवस्था –

अकारः सृष्टिरूपो यः पूर्वाम्नायात्मना स्थितः।
स च तत्पुरुषाख्यस्तु स्मृतो वाग्भवकूटवान्॥38॥

अकारमात्रा सृष्टिरूप और पूर्वाम्नाय के रूप में स्थित है, तत्पुरुष नामक देवतावाला और वाग्भवकूटवाला है।(38)

उकारः स्थितिरूपः स्याद्दक्षिणाम्नायरूपकः।
अघोरनाम्ना विख्यातः कामराजस्य कूटवान्॥39॥

उकारमात्रा स्थितिरूप है, दक्षिणाम्नाय के रूप में स्थित है, अघोर नामक देवतावाला और कामराजकूटवाला है।(39)

मकारो लयरूपः स्यात्पश्चिमाम्नायरूपधृक्।
सद्योजात इति ख्यातः शक्तिकूटात्मना स्थितः॥40॥

मकारमात्रा लयरूप है, पश्चिमाम्नाय के रूप में स्थित है, सद्योजात नामक देवतावाला और शक्तिकूटवाला है।(40)

अर्धमात्रायाः कालाग्निरुद्राख्यस्तु शिवः स्मृतः।
अधराम्नायो व्याख्यातः कादिकूटसमन्वितः॥41॥

अर्धमात्रा कालाग्निरुद्ररूप शिव ही है, अधराम्नाय के रूप में व्याख्यात है और कादिकूट से समन्वित है। यद्यपि अधराम्नाय सादिकूटात्मक है तथापि उसे कादिकूट समन्वित कहा गया है।(41)

सोमात्मकं परं प्रोक्तं सदा साक्षि सदाऽच्युतम्।
पातालानामधोभागे कालाग्निर्यः प्रतिष्ठितः॥42॥

(यह कालाग्निरुद्र क्या है? इसका जवाब में कहा गया है कि) सोमात्मक, पर = निरतिशय, सदा साक्षी, सदा अच्युत और पातालों के नीचे जो प्रतिष्ठित है वह कालाग्निरुद्र है।(42)

नादोऽनाख्यारूप उक्तो महाषोडशिकायुतः।
वामदेवाभिधः सोऽयं सदा सप्तदशीयुतः॥43॥

नादमात्रा अनाख्यारूप है, महाषोडशिका से युक्त है।(पाठ भेद – सदा अनुग्रहकारक है) वामदेवनामकदेवतावाला है और सप्तदशी से युक्त है।(43)

बिन्दुरूर्ध्वाम्नाय उक्तो भासारूपावबोधकः।
ईशानः शिवविख्यातो नित्यमष्टादशीयुतः॥44॥

बिन्दुमात्रा ऊर्ध्वाम्नाय के रूप में स्थित है, भासा रूप है, ईशान नामक शिव देवतावाला और नित्य ही अष्टादशी से युक्त है।(44)

18. अकारमात्रायाश्चक्रविद्याक्रमाम्नाया: = अकारमात्रा सम्बन्धी चक्र, विद्या, क्रम और आम्नाय –

अकारस्य विशुद्धं च स्वाधिष्ठानमनाहतम्।
भवन्ति त्रीणि चक्राणि कादिविद्या तथैव च॥45॥
वाग्भवं कूटमाम्नातं कुण्डलिक्रम उच्यते।
उत्तरः प्राक्पश्चिमश्चेत्याम्नायास्त्रय एव हि॥46॥

अकारमात्रा सम्बन्धी तीन चक्र हैं –विशुद्धि, स्वाधिष्ठान और अनाहत, विद्याओं में कादि विद्या और कूटों में वाग्भवकूट कहा गया है, क्रमों में कुण्डलि क्रम तथा आम्नायों में तीन –पूर्व, उत्तर और पश्चिम।(45-46)

19. कादिहादिसादिक्रमकूटव्यवस्था = कादि, हादि, सादि, क्रम और कूट की व्यवस्था –

सौम्यैन्द्रीपश्चिमाम्नायत्रितयात्मा च वाग्भवः।
कादिः स एव कथितः कूट आगमवेदिभिः॥47॥

पूर्व, उत्तर और पश्चिम आम्नाय स्वरूपवाला है वाग्भवकूट, इसीको कादिकूट भी कहते हैं आगमवेत्तागण। (47)

याम्याधरोर्ध्वत्रितयाम्नायात्मा कामराजकः।
हादिः स एव कल्पितः कूटस्तन्त्रविशारदैः॥48॥

तन्त्रविशारदलोगों का कहना है कि दक्षिण, अधर और ऊर्ध्व आम्नाय स्वरूपवाला है कामरजकूट, इसी को हादिकूट भी कहते हैं।(48)

उपाम्नायप्रभेदानां संस्मृतः शक्तिकूटकः।
सादिः स एव कथितः कूटक्रमविवेचकैः॥49॥

कूटक्रम के विवेचकों का मानना है कि – उपाम्नाय प्रभेदों के स्वरूपवाला शक्तिकूट है, इसी को सादिकूट भी कहते हैं।(49)

20. कूटत्रयस्य देवताः = कूटत्रय के देवता –

कादिः काली समाख्याता हादिः श्रीसुन्दरी मता।
सादिश्च तारिणी प्रोक्ता क्रमज्ञैस्तत्त्वदर्शिभिः॥50॥

क्रम के ज्ञाता तत्त्वदर्शियों का कहना है कि कादिकूट का देवता काली, हादि कूट का देवता श्री सुन्दरी और सादिकूट का देवता तारिणी है।(50)

21. कादिविद्यानां क्रमः = कादि विद्याओं के क्रम –

कादिः कुण्डलिनी प्रोक्ता हादिर्हंसक्रमो मतः।
कहादिसादिस्तत्त्वज्ञैः संवरोधिक्रमः स्मृतः॥51॥

कादिविद्या को कुण्डलिनी क्रम, हादिविद्या को हंसक्रम और कहादि सादिविद्या को संवरोधिक्रम नाम से तत्त्वज्ञों द्वारा कहा गया है और शास्त्रों में स्मृत है।(51)

22. कादिक्रमाणां प्रणवमात्राक्रमः = कादिक्रमों के प्रणवमात्राक्रम –

अकारः कादिरूपः स्यादुकारो हादिरूपकः।
कहादिसादिरूपश्च मकारस्तत्र वर्णितः॥52॥

अकार कादिरूप है, उकार हादिरूप है और मकार कहादिसादिरूप है – ऐसे इस विषय में वर्णन किया गया है।(52)

काली कादेः सुन्दरी च हादेः शक्तिः समीरिता।
कहादिसादिर्भेदानां तारिणी शक्तिरीरिता॥53॥

कादि का काली, हादि का सुन्दरी और कहादिसादि की तारिणी शक्ति कही गई है।(53)

23. प्रतिकूटं क्रमः कादिक्रमाणां सृष्ट्यादिसन्धानं च = प्रतिकूट के क्रम और कादिक्रमों के सृष्ट्यादिसन्धानं –

कादिहादिसादिकालीसुन्दरीतारिणीति च।
पूर्वपंचसु सृष्ट्यादौ सन्दध्यात्सततं बुधः॥54॥

कादि, हादि और सादि के क्रम में काली, सुन्दरी और तारिणी देवियाँ समझें और इनको सृष्टि आदि पांच में अनुसन्धान (चिन्तन) करें।(54)

कादिः सृष्टिस्तथा हादिः स्थितिरूपः सदैव हि।
कहादिसादिः संहाररूप उक्तो महात्मभिः॥55॥

कादि को सृष्टि में, हादि को स्थिति में, कहादि सादि को लय में अनुसन्धान करने महात्माओं ने कहा है।(55)

सृष्टिः स्थितिश्च संहारोऽनाख्याभासाभिधः क्रमात्।
प्रतिकूटं भवेत्पंच पंचेति गदितं क्रमात्॥56॥

सृष्टि, स्थिति, लय (संहार), अनाख्या और भासा क्रमशः प्रत्येक कूट पाँच – पाँच को कहा गया है।(56)

कादित्वाद्ब्रह्मरूपत्वं हादित्वाच्छिवरूपता।
चिच्छक्तिः कादिरूपा हादिश्चिज्ज्ञानगोचरा॥57।।

कादि ब्रह्मारूप है, हादि शिवरूप है तथा कादि चिच्छक्ति रूप है और हादिचिज्ज्ञानविषया है।(57)

चिदानन्दरूपाख्यं शिवशक्त्यात्मकं महः ।
कादिस्तु कामराजोऽस्ति हादिर्लोपामुद्रेरिता।।58।।

(लोपापुरेरिता, लोपामुदेरिता इति च पाठभेदः कैश्चित्कल्प्यते)।

चिदानन्दस्वरूप नामक शिवशक्ति-उभयात्मक कादि पूज्यनीय है जो की कामराजकूट है। हादि कूट को लोपामुद्रा द्वारा कथित समझें।(58)

एवं हि शास्त्रसम्मत्या पारिभाषिकमीरितम्।
(शेषोऽनुपलब्धः) **।।59।।**

इस प्रकार शास्त्र सम्मत पारिभाषिक कुछ बातें कही (बतायी) गयी हैं।(59)

24. अकारस्य मात्रायाः शक्तयः = अकारमात्रा की शक्तियां -

(कादिवाग्भवकूटकुण्डलिनीक्रमोत्तरपूर्वपश्चिमाम्नायाः)

अकारमात्राः कथ्यन्ते सिद्धिलक्ष्म्यादिनामतः।
भरतोपासिता गुह्यकालीनाम्ना प्रतिष्ठिता।।60।।

(कादि वाग्भवकूट कुण्डलिनीक्रम पूर्वोत्तरपश्चिमाम्नाय) अकार आदि 16 मात्राओं को सिद्धिलक्ष्म्यादि नाम से कहा गया है। भरत के द्वारा गुह्यकाली नाम से प्रतिष्ठित कर उपासना किया गया था।(60)

रामेणोपासिता गुह्यकाली चैव तथा भवेत्।
चण्डकपालिनी गुह्यकाली चैव सदा स्मृता।।61।।

इसी प्रकार राम के द्वारा भी गुह्यकाली नाम से प्रतिष्ठित कर उपासना किया गया था। अतः गुह्यकाली और चण्डकपालिनी नाम से सदा स्मृत है।(61)

कामकला गुह्यकाल्युन्मनी पूर्णेश्वरी स्वयम्।
भुवना भुवनेशी च भुवनेश्वर्येव संस्मृता।।62।।
समया घोरवीरे च वज्राऽघोरे हि कुब्जिके।
कर्मकुब्जिका चेति वै मात्राः षोडश सूचिताः।।63।।

कामकला, गुह्यकाली, उन्मनी, पूर्णेश्वरी, भुवना, भुवनेशी, भुवनेश्वरी, समया, घोरा, वीरा, वज्रा, अघोरा, कुब्जिका, कर्मकुब्जिका, चण्डकपालिनी और

सिद्धिलक्ष्मी–ये 16 मातृकाशक्ति अकारमात्रा के हैं। ऐसे स्वयं सूचित किया गया है (देवी से) और शास्त्रों में स्मृत है।(62–63)

विशुद्धचक्रगा देव्य उत्तराम्नायवर्णिताः।
पंचात्र डाकिनी चक्रदेवतासहिता मताः॥64॥

विशुद्धि चक्र में उत्तराम्नाय में वर्णित 5 देवियों (प्रथम पांच) के सहित डाकिनी देवी और चक्राधिष्ठातृदेवता हैं।(64)

स्वाधिष्ठानस्य पंच स्युः पूर्वाम्नायस्य देवताः।
काकिनी चक्रदेवी च मता ह्यत्र तथा परम्॥65॥

स्वाधिष्ठानचक्र में पूर्वम्नाय में वर्णित पाँच देवियों (द्वितीय पांच) के सहित काकिनी देवी और चक्राधिष्ठातृदेवता हैं।(65)

पश्चिमाम्नायदेव्यः स्युरनाहतागताश्च षट्।
राकिनी देवता तत्र दर्शता क्रमपूर्वकम्॥66॥

अनाहतचक्र में पश्चिमाम्नाय में वर्णित शेष छः देवियों के सहित राकिनी और चक्राधिष्ठातृदेवता हैं। इस प्रकार क्रम पूर्वक दर्शाया गया है।(66)

25. उकारमात्रायाश्चक्रविद्याकूटक्रमाम्नायाः = उकार मात्रा सम्बन्धी चक्र, विद्या, कूट, क्रम और आम्नाय –

मणिपूरं मूलाधारमाज्ञाचक्रं तथैव च।
चक्राण्युकारस्यैतानि हादिविद्या च तद्गता॥67॥
कूटं श्रीकामराजस्य क्रमो हंसाख्य एव च।
दक्षिणाधरोर्ध्वाम्नायास्त्रय एवात्र सिद्धिदाः॥68॥

उकारमात्रा सम्बन्धी तीन चक्र हैं –मूलाधार, मणिपूर और आज्ञा, विद्याओं में हादि विद्या, कूटों में श्रीकामराजकूट, क्रमों में हंस नाम का क्रम तथा आम्नायों में तीन –दक्षिण, अधर और ऊर्ध्व। ये सब उकारमात्रा में विद्यमान हैं एवं सिद्धिदायक हैं।(67–68)

26. उकारस्य मात्रायाः शक्तयः = उकारमात्रा की शक्तियां –

(हादिकामराजकूटहंसक्रमदक्षिणाधरोर्ध्वाम्नायाः)

आद्याकाली च महाद्याकाली चैव तथा भवेत्।
श्यामाकाली सिद्धिकाली दक्षिणाकालिका ततः॥69॥
तारिण्येकजटा चोग्रतारा नीलसरस्वती।
महानीला महोग्रा च शारदा चैव सम्मताः॥70॥

बालादित्रिपुरा बालासुन्दरी बालाभैरवी।
बालापूर्वा या त्रिपुरा भैरवी सैव सुन्दरी।।71।।

(हादि, कामराजकूट, हंसक्रम, दक्षिणाधरोर्ध्वाम्नाय) आद्याकाली, महाद्याकाली, श्यामाकाली, सिद्धिकाली, दक्षिणाकाली, तारिणी, एकजटा, उग्रतारा, नीलसरस्वती, महानीला, महोग्रा, शारदा, बालादित्रिपुरा, बालासुन्दरी, बालाभैरवी, बालात्रिपुरा (जो बालात्रिपुरा है वही भैरवी है, वही सुन्दरी है)।(69-71)

उकारस्यापि तत्तन्त्रे मात्राः षोडा सिद्धिदाः।
दक्षिणाम्नायदेवीनां पंचकंचात्र दर्शितम्।।72।।
मणिपूरगताश्चैता लाकिनीदेवता मता।
अधराम्नायदेवीनां पंचकंच ततः परम्।।73।।
मूलाधारगताश्चैताः साकिनीदेवता मता।
ऊर्ध्वाम्नायस्य देवीनां षट्कमाज्ञागतं मतम्।।74।।
हाकिनीदेवता तत्र चक्रस्यापि समाश्रिता।
एवं देहस्य चक्रेषु देव्य एताः सनायिकाः।।75।।

इस प्रकार तत्तत्तन्त्रों में उकारमात्रा की सिद्धिदायिनी 16 देवियाँ बताई गई हैं। इन में आदि पाँच मणिपूरगत दक्षिणाम्नाय में वर्णित देवियों के सहित लाकिनी देवी और चक्राधिष्ठातृदेवता है। उसके बाद के पाँच देवियाँ मूलाधार गत अधराम्नाय में वर्णित देवियों के सहित साकिनी और चक्राधिष्ठातृदेवता है। शेष छह देवियाँ आज्ञागत ऊर्ध्वाम्नाय में वर्णित देवियों के सहित हाकिनी और चक्राधिष्ठातृदेवता है। इस प्रकार देह के चक्रों में ये सनायिका देवियाँ हैं।(72-75)

27. मकारमात्राया अधोमुखचक्रविद्याकूटक्रमाम्नायाः=मकार मात्रा सम्बन्धी चक्र, विद्या, कूट, क्रम और आम्नाय -

प्रणवस्य मकाराख्या मात्रा या वर्णिता पुरा।
उपाम्नायात्मिका सा तु प्रथिता तन्त्रवित्तमैः।।76।।

जो पहले प्रणव के मात्राओं में मकारमात्रा वर्णित है उसको उप-आम्नायात्मक रूप से श्रेष्ठतन्त्रवेत्ताओं में प्रसिद्धि है। (76)

अनाहतं मणिपूरं श्लिष्ट्वा नैर्ऋत्यदिग्भवेत्।
मणिपूरं स्वाधिष्ठानं मिलित्वाग्नेय उच्यते।।77।।

उप आम्नाय का लक्षण-अनाहत और मणिपूर को मिलाकर नैर्ऋत्य दिगुपाम्नाय होता है तथा मणिपूर और स्वाधिष्ठान को मिलाकर आग्नेयदिगुपाम्नाय होता है।(77)

स्वाधिष्ठानविशुद्धे च मिलित्वेशानदिग्भवेत्।
विशुद्धानाहते श्लिष्ट्वा वायव्यात्मकतां व्रजेत्॥78॥

स्वाधिष्ठान और विशुद्ध को मिलाकर ईशानदिगुपाम्नाय होता है तथा विशुद्ध और अनाहत को मिलाकर वायव्यदिगुपाम्नाय होता है।(78)

अधोमुखनि चक्राणि सन्त्येतानि स्थितानि हि।
सादिविद्या शक्तिकूटं संवरोधः क्रमः स्मृतः॥79॥

ये सब चक्र अधोमुख होते हैं। विद्याओं में सादिविद्या, कूटों में शक्तिकूट, क्रमों में संवरोधिक्रम कहा गया है।(79)

उपाम्नायाश्च दिक्कोणा नैर्ऋत्याग्नीशवायवः।
परस्परं समाश्लिष्टा भवन्त्येव न संशयः॥80॥

उपाम्नाय जो नैर्ऋत्याग्नेयेक्षानवायव्य चारदिक्कोण में हैं ये परस्पर पूर्वादिदिशाओं को संमिश्रण से जैसे होते हैं वैसे ही चक्रों के संश्लेष से अधोमुख चक्र भी बनते हैं। इसमें कोई संशय नहीं।(80)

उपाम्नायसमष्टौ तु वामदक्षिणभेदतः।
क्रमद्वयं फलापेक्षावशात्संसूचितं ततः॥81॥

उपाम्नाय समष्टि में वाम (बाँयाँ) और दक्षिण (दाहिना) भेद से क्रमद्वय फल की अपेक्षा से संसूचति किय गया है।(81)

वामावर्तक्रमस्तत्रानुग्रहाख्य उदीरितः।
दक्षिणावर्तसंज्ञस्तु निग्रहाभिध उच्यते॥82॥

वामावर्तक्रम को अनुग्रह नाम से और दक्षिणावर्त क्रम को निग्रह नाम से भी कहते हैं।(82)

डाकिनीसहितो ब्रह्मा मूलाधारे हि तिष्ठति।
राकिनीसहितो विष्णुः स्वाधिष्ठाने व्यवस्थितः॥83॥

चक्राधिष्ठातृदेवता कौन-कौन है? उत्तर - मूलाधार में डाकिनी सहित ब्रह्मा स्थित हैं। स्वाधिष्ठान में राकिनी सहित विष्णु व्यवस्थित हैं।(83)

लाकिनीसहितो रुद्रो मणिपूरे सुरेश्वरि।
अनाहते महापद्मे काकिनीसहितो हरः॥84॥

लाकिनी सहित रुद्र मणिपूर में प्रतिष्ठित हैं। हे सुरेश्वरी! अनाहतरूपी महापद्म (चक्र) में काकिनी सहित हर स्थित हैं।(84)

विशुद्धाख्ये वसेन्नित्यं साकिनी च सदाशिवः।
हाकिनी परशिवश्चाज्ञाचक्रे सुरेश्वरि ।।85।।

विशुद्धनामक चक्र में नित्य ही साकिनी सहित सदाशिव हैं और हे सुरेश्वरी! आज्ञा चक्र में हाकिनी सहित परशिव प्रतिष्ठित हैं।(85)

उपर्युक्तः क्रमो वामावर्तेनात्र तु वर्णितः।
वायव्येशानाग्निकोणा नैर्ऋत्यश्चेति दक्षिणे।।86।।

उपरि उक्त क्रम (नैर्ऋत्य, आग्नेय, ईशान और वायव्य) वामावर्तक्रम का वर्णन था। लेकिन दक्षिणवर्त क्रम इसके विपरीत है – वायव्य, ईशान, आग्नेय और नैर्ऋत्य।(86)

28. मकारस्य मात्रायाः शक्तयः = मकारमात्रा की शक्तियां –

(सादिविद्याशक्तिकूटसंवरोधक्रमोपाम्नायाः)

प्रतीचीस्था तु मातंगी मोहिनी श्रीसरस्वती।
दक्षिणस्था तथा तारा भद्रकाली हि नैर्ऋतेः।।87।।
बगला दक्षिणस्था महालक्ष्मीः कमला तथा।
भवत्याग्नेयकोणस्था महालक्ष्मीश्च सर्वथा।।88।।

पश्चिम में मातंगी तथा मोहिनी और सरस्वती दक्षिण में स्थित हैं एवं तारा और भद्रकाली नैर्ऋत्य में स्थित हैं। दक्षिण में बगला और महालक्ष्मी तथा आग्नेय कोण में सर्वथा कमला और महालक्ष्मी स्थित कहा गया है।(87-88)

पूर्वस्य सिद्धिलक्ष्मीश्च महाकाली (पंचवक्त्रा) **तथोत्तरा।**
पूज्या चेशानकोणस्था महाकाली दशानना।।89।।

पूर्व में सिद्धिलक्ष्मी, उत्तर में पंचवक्त्रा महाकाली और ईशान कोण में दशानना महाकाली पूज्या है।(89)

प्रतीच्याश्चण्डमातंगी छिन्नमस्ता तथोत्तरा।
वायव्ये च समाराध्या महापूर्वा सरस्वती।।90।।

पश्चिम में चण्डमातंगी, उत्तर में छिन्नमस्ता, वायव्य में आराध्य है महासरस्वती।(90)

त्रिशक्तियुक्ता चामुण्डा सम्भूयेमा भवन्ति हि।
उपाम्नायगताश्चैताः शक्तयः समुदीरिताः।।91।।

ये सब मिलकर त्रिशक्तियुक्ता चामुण्डा है। उपाम्नाय में विद्यमान शक्तियों को बताया गया है।(91)

अर्धमात्रा नादबिन्दू ऊर्ध्वाम्नायगता इमे।
तस्माच्चक्रादिकं नात्र सूचितं पूर्वसूरिभिः।।92।।

अर्धमात्रा, नाद और बिन्दु ऊर्ध्वाम्नायगत हैं, इसलिये उनके चक्रादियों के बारे में विद्वानों ने यहाँ सूचित (संकेत) नहीं किया है।(92)

29. अर्धमात्रायाः शक्तयः = अर्धमात्रा की शक्तियां -

अर्धचन्द्रस्य मात्रासु पंचदश्यादिसंस्मृता।
लघुषोडशी षोडशी तथा च दीर्घषोडशी।।93।।

अर्धचन्द्राकार अर्धमात्रा में पंचदशी आदि देवियों का वर्णन है। लघुषोडशी, षोडशी तथा दीर्घषोडशी।(93)

तथा सप्तदशी चैव पूज्या तथा चाष्टदशी ततः।
चतुःपूर्वा तु समया नित्या सैव प्रकीर्तिता।।94।।

सप्तदशी, अष्टदशी, चतुःसमया, नित्या उसी को कहते हैं। ये सब पूज्य हैं। 94)

वर्णिता च चतुष्कूटा महात्रिपुरसुन्दरि।
रश्मियुक्ताः शाम्भवाश्च वर्णिताः क्रमपूर्वकम्।।95।।

इस प्रकार चतुष्कूटा महात्रिपुरसुन्दरी का वर्णन हो गया और रश्मियुक्त शाम्भवों का क्रमपूर्वक वर्णन हो गया।(95)

30. नादमात्रायाः शक्तयः = नादमात्रा की शक्तियां -

प्रणवस्य ततोऽप्यग्रे नादे तु पंचपंचिका ।
पंचसिंहासना भाति पराप्रासादनाम्न्यपि।।96।।
श्रीप्रासादा यथा वर्ण्या दशचक्रेश्वरी तथा।
तथा च षोडशी नित्या महाषोडशशालिनी।।97।।

उससे (अर्धमात्रा से) भी आगे प्रणव का नादमात्रा में पंचपंचिका पंचसिंहासना भावित होता है। पराप्रासाद नामक में जैसे श्रीप्रासाद वर्ण्य है उसी प्रकार दशचक्रेश्वरी, षोडशी और नित्या महाषोडशी स्वभाववाली का वर्णन है।(96-97)

चक्रेश्वरी ततः साक्षान्महात्रिपुरसुन्दरी।
अर्धचन्द्रस्य मात्रासु शोभते गुरुपादुका।।98।।

उससे आगे श्रीचक्रेश्वरी महात्रिपुरसुन्दरी सहित अर्धचन्द्र की मात्रा में श्रीगुरुपादुका सुशोभित है। (98)

सम्मिल्यासां त्रिनवतिर्मातृणां भवति स्फुटम्।
तस्मात्सूक्ष्मे च मात्राणां मानस्येव च पूजनम्।।99।।

ये सब मिलाकर 93 मातृदेवतायें सुस्पष्ट है।(99)

31. बिन्दुमात्रायाः शक्तयः = बिन्दुमात्रा की शक्तियां -

बिन्दुमात्रासु वर्ण्यन्ते सर्वमन्त्रेश्वरी तथा।
आम्नायानां तथा षण्णां साकं निर्वाणविद्यया।।100।।

बिन्दुमात्रा में वर्णन किय गया है कि - सर्वमन्त्रेश्वरी, निर्वाणविद्या सहित छः आम्नाय हैं।(100)

नवरत्नकुब्किाश्च पंचापि समयाश्च ताः।
नवरत्नसुन्दरी च यथा चैव तथा स्मृता।।101।।

नवरत्नकुब्जिका, पंचसमया, नवरत्नसुन्दरी-ये देवियाँ जैसे हैं वैसे स्मृत हैं।(101)

तथा षोडशकूटैश्च महात्रिपुरसुन्दरी।
अन्ते तत्र च महानिर्वाणेश्वरभैरवः।।102।।

तथा षोडशकूट के साथ महात्रिपुरसुन्दरी महानिर्वाणेश्वर भैरव बिन्दुमात्रा में रहते हैं। (102)

संकेतः किन्तु षोडश्याः सप्तसंख्या यतः स्मृता।
तत एव न विश्रान्तिः षोडश्यां कथिता बुधैः।।103।।

षोडशी की सातसंख्या भले ही स्मृत हैं किन्तु उतने से ही षोडशी में विश्रान्ति नहीं कही गई है विद्वानों के द्वारा।(103)

अतश्च क्रमशः सप्तदशी चाष्टदशी तथा।
महानिर्वाणरूपश्च प्रणवस्तत्र मन्यते।।104।।

इसलिये भी क्रमशः सप्तदशी, अष्टदशी और महानिर्वाण रूप प्रणव को भी वहाँ माना गया है।(104)

मूलाधारस्तथा स्वाधिष्ठानं च मणिपूरकम्।
अनाहतं विशुद्धं च तथाऽऽज्ञेति स्मृतानि षट्।।105।।

मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि और आज्ञा- ये छः चक्र शरीर में है।(105)

मूलाधारादिचक्राणि दण्डे संकल्प्य देहवत्।
कार्या तत्तद्देवतानां यतिभिस्तत्र भावना।।106।।

अत: देह में जिसप्रकार ये छ: चक्र हैं ठीक उसी प्रकार दण्ड में भी मूलाधारादि चक्रों की कल्पना करें। यतिजन तत्तद्देवता आदि सहित उन्हें दण्ड में भी भावना करें।(106)

किं वा देहस्थचक्रेषु कृत्वा सम्यगुपासनाम्।
दण्डे विचिन्तयेत्पश्चाद्यतिस्तासां तदात्मताम्।।107।।

अथवा देहस्थचक्रों में उपासना करने के पश्चात् उनका तद्रूप से दण्ड में भी चिन्तन करें।(107)

स्थूलसूक्ष्मलिंगभेदैस्त्रिधाऽयं देह उच्यते ।
त्रिष्वप्येतेषु चक्राणि कल्प्यन्ते योगिभिः पृथक्।।108।।

स्थूल, सूक्ष्म और लिंग (कारण) भेद से शरीर तीन प्रकार का कहा है। इन तीनों शरीरों में यति चक्रों को अलग-अलग कल्पना करता है।(108)

स्थूले पृथिव्यादितत्त्वानि प्रकल्प्यन्ते यथाक्रमम्।
किन्तु तत्र भवेदीषद्भेदः सोऽपि विचार्यताम्।।109।।

स्थूल में पृथिवी आदि तत्त्वों को यथाक्रम कल्पना (चिन्तन) की जाती है किन्तु उसमें थोड़ा अन्तर है, वह भी विचार कर लेना चाहिये।(109)

मूलाधारे मही तत्र मणिपूरे जलं तथा।
स्वाधिष्ठाने भवेद्वह्निरित्यवस्थाविशेषतः।।110।।

मूलाधार में पृथिवी, मणिपूर में जल और स्वाधिष्ठान में अग्नि-यह अवस्था विशेष है।(110)

(ये तीनों श्लोक 108-110 प्रथम पाद में भी आये हैं 1.140-142)

चण्डिका चैव चामुण्डा भद्रकाली तथा स्मृता।
भद्रकाल्या समं दुर्गा तथा चैव सरस्वती।।111।।
तथा मोहिनी मातंगी विपरीतप्रत्यंगिरा।
भद्रकाली महासरस्वती चैव तथा मता।।112।।
कात्यायनीसमं दुर्गा महालक्ष्मीश्च तारिका।
महालक्ष्मीश्चोग्रचण्डा यथानाम तथागुणा।।।113।।
पंचवक्त्रा महाकाली सैवास्ते रक्तदन्तिका।
दशवक्त्रा महाकाली चामुण्डा च त्रिशक्तिभिः।।।114।।

1. चण्डिका, 2. चामुण्डा, 3. भद्रकाली के साथ दुर्गा और 4. सरस्वती ऐसे स्मृतियों में माना गया है। 5. मोहिनी, 6. मातंगी, 7. विपरीतप्रत्यंगिरा, 8. भद्रकाली और 9. महासरस्वती–ऐसा भी मत है। 10. कात्यायनी सहित देवी, 11. दुर्गा, 12. लक्ष्मी, 13. तारिका, 14. महालक्ष्मी और 15. उग्रचण्डा। इन सब के जैसे नाम है वैसा ही गुण है। 16. पाँच मुखवाली महाकाली है, वही रक्तदन्तिका भी है। 17. दसमुखवाली महाकाली है और 18. तीनो शक्तियों से युक्त चामुण्डा है।(111–114)

एता मकारगा मात्रा अष्टादश मताः शुभाः।
उपाम्नायगता देव्यो नैर्ऋत्यादिक्रमस्थिताः।।115।।

ये सब मकारमात्रा की शक्तियाँ है जो कि कुल 18 मानी गयी हैं। ये उपाम्नायगत देवियाँ है जो नैर्ऋत्यादि में क्रमशः स्थित हैं।(115)

यत्र युग्मादिदिशोरेकः कोणो भवत्यथ।
अधोमुखे च कमले प्रत्येकं स्थितिरिष्यते।।116।।

जहाँ दो–दो दिशायें एक हों उसे कोण कहते हैं। उन प्रत्येक में अधोमुख चक्रों की स्थिति स्पष्ट है।(116)

32. कादिहादिसादिकूटानां पाठान्तरं कुण्डलिन्यादिक्रमश्च =कादिहादिसा–दिकूटों के पाठभेद और कुण्डलिन्यादिक्रम –

कादिः कुण्डलिनी प्रोक्ता हादिर्हंसक्रमो मतः।
कहादिसादिस्तत्त्वज्ञैः संवरौधिक्रमः स्मृतः।।117।।

कादि को कुण्डलिनीक्रम कहा गया है। हादि को हंसक्रम माना गया है। कहादि सादि के तत्त्वज्ञ उसे संवरौधिक्रम नाम से स्मरण करते हैं।(117)

सौम्यैन्द्रीपश्चिमाम्नायत्रितयात्मा च वाग्भवः।
कादिः स एव कथितः कूट आगमवेदिभिः।।118।।

आगमवेत्ताओं में सौम्य, ऐन्द्री (अर्थात् उत्तर, पूर्व) और पश्चिमाम्नाय – इस त्रितय स्वरूपवाले को कादि वाग्भव कूट कहते हैं।(118)

याम्याधरोर्ध्वत्रितयाम्नायात्मा कामराजकः।
हादिः स एव कथितः कूटस्तन्त्रविशारदैः।।119।।

याम्य (दक्षिण) अधर, ऊर्ध्व – इस त्रितय स्वरूपवाले को तन्त्रविशारद लोग हादि कामराजकूट कहते हैं।(119)

33. कादिक्रमाणां सृष्ट्यादिसन्धानम् =कादिक्रमों के सृष्ट्यादिसन्धान–

कादिहादिसादिकालीसुन्दरीतारिणीति च।
पूर्वपंचसु सृष्ट्यादौ सन्दध्यात्सततं बुधः।।120।।

कादि, हादि और सादि तथा काली, सुन्दरी और तारिणी – इन्हें विद्वान् सृष्टयादि पांच कर्मों में (सृष्टि, स्थिति, लय, अनुग्रह और निग्रह) निरन्तर अनुसन्धान करें।(120)

उपाम्नायप्रभेदानां संस्मृतः शक्तिकूटकः।
सादिः स एव कथितः कूटक्रमविचारकैः।।121।।

कूटक्रम के विवेचकों ने उपाम्नायभेद सहित शक्तिकूट को ही सादि कहा है।(121)

34. कूटत्रयस्य देवता = कूटत्रय के देवता –

कादिः काली समाख्याता हादिः श्रीसुन्दरी मता।
सादिश्च तारिणी प्रोक्ता क्रमज्ञैस्तत्त्वदर्शिभिः।।122।।

तत्त्वदर्शी क्रम के ज्ञाताओं द्वारा कादिकूट की काली, हादि की सुन्दरी और सादि की तारिणी को देवता कहा गया है।(122)

कादित्वाद्ब्रह्मरूपत्वं हादित्वाच्छिवरूपता ।
चिच्छक्तिः कादिरूपा स्याद्हादिश्चिज्ज्ञानगोचरा।।123।।

कादि होने से ब्रह्मरूपता, हादि होने से शिवरूपता, कादि चिच्छक्तिरूप है, हादि चिज्ज्ञानगोचरा है।(123)

चिदानन्दरूपाख्यं शिवशक्त्यात्मकं महः ।
कादिस्तु कामराजोऽस्ति हादिर्लोपामुद्रेरिता।।124।।

(लोपापुरेरिता, लोपामुदेरिता इति च पाठभेदः कैश्चित्कल्प्यते)।

कादि पूज्य चिदानन्दस्वरूपाख्य और शिवशक्त्यात्मक है। हादि लोपामुद्रा से पूर्वकाल में कहा गया था।(124)

एवं हि शास्त्रसम्मत्या पारिभाषिकमीरितम्।
कादिहादिविभेदेन द्विधाम्नायार्थसंहतिः ।।125।।

इस प्रकार शास्त्रों के सम्मति से पारिभाषिक कुछ बातें बतायी गयी।(125)
(श्लोक संख्या 120–125 पहले इसी दूसरे पाद में 54–59 में आया था)

35. ब्रह्मचारीगृहस्थवानप्रस्थयतीनां श्रीचक्रार्चनक्रमः =
ब्रह्मचारीगृहस्थवानप्रस्थ और यतियों के श्रीचक्रार्चनक्रम -

सृष्ट्यर्चनां ब्रह्मचारी कुरुते बिन्दुयुग्मके।
प्रथमस्तत्र सोऽस्त्येव द्वितीयश्चक्रराड्भवेत्॥126।।
सेव्यसेवकभावोऽयं दासोऽहमिति भावना।
विसर्गरूपौ द्वौ बिन्दू सृष्टिरूपावुदाहृतौ॥127।।

ब्रह्मचारी सृष्ट्यर्चना क्रम को दोबिन्दुओं में करेगा। प्रथम तो वह स्वयं ही है, दूसरा तो चक्रराज ही है। दो बिन्दु (यानि विसर्ग = :) के बारे में कहा गया है कि-यह सेव्यसेवकभाव है अथवा दासोऽहं की भावना-यही सृष्टिरूपता है।(126-127)

स्थित्यर्चने गृहस्थस्तु बिन्दुत्रितयपूजकः।
प्रथमस्तत्र सोऽस्त्येव द्वितीया सहधर्मिणी।।128।।

गृहस्थी स्थित्यर्चना क्रम को तीन बिन्दुओं में पूजेगा। प्रथम तो वह स्वयं ही है, दूसरी बिन्दु उसकी अपनी पत्नी।(128)

तृतीयश्चक्रराट् प्रोक्त ऐक्यमेषां विभावयेत्।
अनुस्वारो विसर्गश्च बिन्दुत्रयमुदाहृतम् ॥129।।

तीसरी बिन्दु चक्रराज ही है। इनकी ऐक्यता की भावना करें। अनुस्वार (ं) और विसर्ग (:) यही बिन्दु त्रय है।(129)

ऐकमत्यं तु पूजायां साधकः कुरुते तथा।
अन्यत्र वै भावयते सेव्यसेवकभावनाम्॥130।।

पूजा काल में ही साधक ऐक्यता की भावना करें। उससे (पूजा से) भिन्न काल में सेव्यसेवकभावादि भेदपूर्वक व्यवहार करें।(130)

वानप्रस्थस्तु संहारपूजां स्वामेकबिन्दुके।
बिन्दुत्रयं विभाव्यैव स्वात्मनोऽभेदभावनाम्।।131।।

वानप्रस्थी संहारपूजा क्रम से एकबिन्दु में पूजा करें और वह एक बिन्दु स्वयं ही है। बिन्दुत्रय (स्वयं, पत्नी और श्रीचक्र इन तीनों)का चिन्तन करके अपने आप से अभेदभावना करें।(131)

करोति तत्र श्रीचक्रे चतूरूपेण संयुताम्।
अनुस्वारोऽत्र सम्प्रोक्तः सृष्टिस्थितिवर्जितः।।132।।

(किसमें अभेद भावना को करें? उत्तर-) श्रीचक्र में, वह भी चारों रूप

के संयुक्तरूप से सृष्टिस्थिति रहित (विसर्ग रहित) अनुस्वार यहाँ कहा गया है।(132)

सर्वेषामत्र पिण्डे स्वे भावयन्नेकरूपताम्।
सोऽहं सन्सुखमाप्नोति श्रीचक्रार्चनसंयुतः।।133।।

सभी का अपने पिण्ड में एकरूपता की भावना करते हुये "सोऽहं" होते हुए श्रीचक्रार्चनयुक्त वह वानप्रस्थी सर्वसुख को प्राप्त करता है।(133)

यतिस्तु दण्डे पिण्डे च श्रीयन्त्रे चैव भावनाम्।
पूर्वं कुर्वन् क्रमादग्रे वर्धते साधकोत्तमः।।134।।

संन्यासाश्रमी यति तो दण्ड, पिण्ड और श्रीयन्त्र में पहले भावना करते हुये क्रमशः वह साधकोत्तम यति आगे बढ़ता है।(134)

चतुर्गुणां पंचगुणां षड्गुणां सप्तरूपकाम्।
भावनां भावयन्नित्यं यतिराड् भवति ध्रुवम्।।135।।

चारगुणा, पाँचगुणा, छः गुणा और सातगुणा नित्य ही भावना करते हुए वह निश्चत रूप से यतिराज होता है।(135)

सप्तचक्राणि क्रमशो नाम्नैतानि भवन्ति हि।
स्वराट्चक्रं विराट्चक्रं सम्राट्चक्रं विराजकम्।।136।।
विश्वरूपं शत्रुजिच्च स्वात्मचक्रं तथैव च।
एवं सप्तकलारूपं चक्रराजं यजेद्यतिः।।137।।

यति 7 चक्रों को क्रमशः पूजन -भजन करें जो कि इन नामों से ज्ञात है - स्वराट्चक्र, विराट्चक्र, सम्राट्चक्र, विराजकचक्र, विश्वरूपचक्र है।(136-137)

चक्रसप्तकमेतत्तु नाहम्भावेन भावयन्।
यन्त्रराजे ब्रह्ममुद्रापर्शुमुद्रायुगे तथा ।।138।।
दण्डे पिण्डे तथाऽऽज्ञातः सहस्रारावधि क्रमात्।
श्रीचक्रे च तथाऽऽज्ञातो मूलाधारावधि क्रमात्।।139।।
सम्पन्ने श्रीचक्रराजे सर्वैक्यं साधयेत्तदा ।
सहकारविलोपेन प्रणवात्मकतां व्रजेत्।।140।।

जब तक सर्वैक्यता की भावना संभव न हो तब तक उक्त इन सात चक्रों के साथ अहंभाव (अभेदभाव) से भावना करते हुए पहले यन्त्रराज (श्रीचक्र) में दण्डगत ब्रह्ममुद्रा और परशुमुद्रा युगल में तथा पिण्ड में सहस्रारावधि पर्यन्त क्रमशः पृथक्-पृथक् भावना करने के पश्चात् श्रीचक्र में तथा पिण्ड में मूलाधार

पर्यन्त क्रमशः भावना सम्पन्न करके तब सर्वैक्यता को साधें यानि सर्वैक्यता की भावना सम्पादन करें। इस प्रकार सहकारियों का लोप होने से यति प्रणवरूपता को प्राप्त करेगा।(138-140)

एवं क्रमात्पंचतत्त्वमनस्तत्त्वजयो भवेत्।
अहन्तत्त्वजयंलब्ध्वा दिव्यसाम्राज्यदीक्षितः॥141॥

इस प्रकार क्रम से पंचतत्त्व और मनस्तत्त्व पर विजय होता है और दिव्यसाम्राज्य में दीक्षित होकर अहंतत्त्व पर भी विजय प्राप्त करके।(141)

परिव्राट् परितो भाति सर्वसिद्धिसमन्वितः।
ऐश्वर्येण समायुक्तो निग्रहानुग्रहक्षमः॥142॥

वह परिव्राजक (संन्यासी यति) सकलसिद्धियों से युक्त, सकल ऐश्वर्य से सम्पन्न और अनुग्रह निग्रह करने सक्षम होकर सभी ओर भासता है।(142)

गुरोराज्ञां समादाय मणिपूरसरोजके।
दशधा प्रजपेद्विद्यां सावधानेन चेतसा॥143॥

तब ही वह यति धर्म की रक्षा करने में समर्थ होता है। इससे बढ़कर इस लोक में कोई और कर्म ही शेष नहीं बचता।(143)

मूलाधारं समेत्याथ प्रजपेद्दशधा मनुम्।
मूलाधारादथाज्ञायामागत्य दशधा जपेत्॥144॥

गुरुदेव की आज्ञा लेकर एकाग्र चित्त होकर मणिपूर चक्र पर ध्यान करते हुये विद्या को दस प्रकार यानि दस बार जपें।(144)

आज्ञाचक्राद्विशुद्धाख्ये जपेद्दश समाहितः।
विशुद्धादग्रतो गत्वा दशधा प्रजपेन्मनुम्॥146॥

आज्ञाचक्र से विशुद्ध नाम चक्र में समाहित होकर 10 बार जपें। तदनन्तर स्वाधिष्ठान पहुँचकर मन्त्र को 10 बार जपें।(146)

ततः स्वाधिष्ठानमेत्य दशधा प्रजपेन्मनुम्।
स्वाधिष्ठानात्समेत्याऽनाहतं तत्र जपेद्दश॥147॥

स्वाधिष्ठान से अनाहत आकर वहाँ भी 10 बार जपें। अब दो - दो चक्रों को मिलाने पर बनेगा कोण (अन्तरालदिशा = उपाम्नाय) चतुष्टय।(147)

द्वौ द्वौ सम्मेलयेत्तेन भवेत्कोणचतुष्टयम्।
तत्र नैर्ऋत्यमाश्रित्य वायव्यान्तं प्रपूजयेत्॥148॥
मोहिनी मातंगी सरस्वती पश्चिमदिग्गता।
दक्षिणस्यामुग्रया च युज्यते जायते तदा॥149॥

नैर्ऋत्याधिष्ठातृकैषा चामुण्डेति निगद्यते।
लोके त्वेषा महामाया भद्रकालीति गीयते।।150।।

वहाँ पहले नैर्ऋत्य को आश्रय कर (आरम्भ कर) वायव्य पर्यन्त स्थित देवियों की पूजा करें। नैर्ऋत्य कोण में मोहिनी, मातंगी, सरस्वती पश्चिमरेखा पर हैं, जब कि दक्षिण दिग्रेखा पर हैं – उग्रतारा। इन से युक्त होकर उत्पन्न होती है तब नैर्ऋत्यकोण के अधिष्ठात्री यह देवी जिसे चामुण्डा कहते हैं। लोक में इसी को महामाया और भद्रकाली भी कहते हैं।(148-150)

पूर्वस्था कमलादेवी बगला याम्यदिग्गता।
संश्लिष्टाऽऽग्नेयकोणस्य महालक्ष्मीर्निगद्यते।।151।।

पूर्वदिग्रेखा पर कमला देवी और दक्षिणदिग्रेखा पर बगला के साथ आग्नेय कोण में स्थित आग्नेयकोण के अधिष्ठात्री देवी को महालक्ष्मी कहा जाता है।(151)

पूर्वस्था सिद्धलक्ष्मीश्च पंचवक्त्रा तथोत्तरा।
मिलित्वा दशवक्त्राऽथ महाकालीति कथ्यते।।152।।
प्रतीच्याश्चण्डमातंगी छिन्नमस्ता तथोत्तरा।
वायव्यस्य मिलित्वा च महासरस्वती ननु।।153।।

पूर्वदिग्रेखा पर सिद्धलक्ष्मी और उत्तरदिग्रेखा पर पंचवक्त्रा के साथ ईशानकोण के अधिष्ठात्री देवी दशवक्त्रा जिसे महाकाली कहते हैं वह ईशानकोण में स्थित हैं। पश्चिमदिग्रेखा पर चण्डमातंगी और उत्तरदिग्रेखा पर छिन्नमस्ता सहित वायव्य कोण में वायव्यकोण के आधिष्ठात्री महासरसवती है निश्चितरूप से। (152-153)

एतास्तु लम्बिकायां वै पूजनीया विधानतः।
बिन्दौ नवार्णमन्त्रं च पूजनीयं प्रयत्नतः।।154।।

इन सभी की पूजा लम्बिका में विधिवत् करनी चाहिये और बिन्दु में नवार्णवमन्त्र की भी पूजा विशेष प्रयत्नपूर्वक करनी चाहिये।(154)

36. विराट्प्रणवस्वरूपम् = विराट् प्रणव का स्वरूप –

अयुतावयवैर्युक्तो ह्यकारस्तत्र वर्णितः।
शतावयवसंयुक्त उकारः समुदाहृतः ।।155।।

अयुत = 10,000 अवयवों से युक्त अकारमात्रा को तथा उकार मात्रा को शत = 100 अवयवों से युक्त करके ॐकार के मात्राओं के विषय में वर्णित है और विद्वानों से समुदाहृत है।(155)

सहस्रावयवैर्युक्तो मकारस्तु निदर्शितः।
अर्धमात्रश्च प्रणवो ह्यनन्तावयवः स्मृतः।।156।।

मकार मात्रा को सहस्र = 1000 एक हजार अवयवों से युक्त करके दर्शाया गया है, अर्धमात्रा रूपी प्रणव को अनन्त अवयवों से युक्त करके स्मृत है।(156)

विराट् प्रणवः सगुणः संहारो निर्गुणात्मकः।
उभयात्मक उत्पत्तिप्रणवः समुदाहृतः।।157।।

विराट्रूपी प्रणव सगुण है, संहाररूपी प्रणव निर्गुणात्मक है और उत्पत्ति रूपी प्रणव उभयात्क है – ऐसे बताया गया है। (157)

यथार्थकथनः प्रोक्तोऽभिमानोत्पत्तिकः सदा।
संहारश्चोपसंहारः प्रणवः सोऽभिधीयते।।158।।

'यथार्थकथन' ऐसे कहकर अभिमानोत्पत्तिक प्रणव हुआ। ''सर्वोपसंहार' – ऐसे कहते हुए संहार प्रणव हुआ ऐसे कहते हैं।(158)

उभयात्मकत्वादुक्तो विराट् प्रणवनायकः।
दीर्घप्लुतविराट् चैवोत्पत्तिप्रणव आहितः।।159।।

उभयात्मक होने से प्रणव है नायक जिसका ऐसे 'विराट्' प्रणव सगुणात्मक है, अतः उत्पत्तिप्रणव दीर्घविराट् और प्लुतविराट् से आहत है (सम्पन्न है) (159)

प्लुतप्लुत्युपसंहारः प्रणवोऽत्र निगद्यते।
षट्त्रिंशत्तत्त्वसंयुक्तो विराट् प्रणव उच्यते।।160।

उपसंहार प्रणव भी प्लुतप्लुति यानि अधिप्लुति से सम्पन्न है ऐसे कहते हैं। विराट्प्रणव 36 तत्त्वों से संयुक्त है।(160)

जाग्रदाद्याश्चतस्रो या अवस्थाः समुदीरिताः।
ताश्चतुर्मात्रके ह्यस्मिन्योगात्षोडशतां गताः।।161।।

जगत् आदि चार अवस्थायें जो कही गयी हैं उन्हें इस चतुरात्मक प्रणव के साथ गुणा करने से 16 संख्या को प्राप्त होता है।(161)

कूटषोडशयोगाच्च चतुःषष्टिमिताः स्मृताः।
द्वैविध्यात्पुनरेतासां प्रकृतेः पुरुषस्य च।।162।।

4 कूट के साथ 16 का योग होने पर 64 संख्या को प्राप्त होता है – ऐसा बताया गया है। प्रकृति और पुरुषरुपी दो भेद को लेकर।(162)

अष्टाविंशत्युत्तरकाः शतं मात्रास्ततः स्मृताः।
सगुणत्वं निर्गुणत्वं प्राप्य ब्रह्ममयो ह्ययम्।।163।।

वे कुल 128 मात्रा के स्वरूप को धारण करते हैं – ऐसे स्मृत है। सगुणत्व और निगुर्णत्व को प्राप्त कर कुल 256 मात्रावाले होकर ये सब ब्रह्ममय होते हैं।(163)

क्वापीत्थं प्राप्यते -

अकार-उकार-मकार-कलातीतश्चेति तत्र चत्वारः। अकारश्चायुतावयवान्वितः। उकारः शतावयवान्वितः। मकारः सहस्रावयवान्वितः। अर्धमात्रसप्रणवोऽ नन्तावयवान्वितः। सगुणो विराट्प्रणवः। निर्गुणः संहारप्रणवः। उभयात्मक उत्पत्तिप्रणवः। यथार्थकथन इत्युच्चार्याभिमानोत्पत्ति प्रणवः। सर्वोपसंहारेण संहारप्रणवः। उभयात्मकत्वाद्विराट्प्रणवः षोडश मात्रान्वितः। षोडशमात्रात्मकं कथमित्युच्यते - अकारः प्रथमः। द्वितीय उकारः। मकारस्तृतीयः। अर्धमात्रा चतुर्थी। नादः पंचमः। बिन्दुः षष्ठः। कला सप्तमी। शक्तिरष्टमी। शान्तिर्नवमी। समाना दशमी। आत्मनैकादशी। मनोन्मना द्वादशी। वैखरी त्रयोदशी। मध्यमा चतुर्दशी। पश्यन्ती पंचदशी। परा षोडशी। इति षोडशमात्रात्मकः प्रणवः। षोडशमात्रा जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ति तुरीयावस्था- भेदैरेकैकमात्रा चतुर्विध (भेद)मेत्य चतुःषष्टिभेदमेति पुनश्च चतुः षष्टिमात्राः प्रकृतिपुरुषद्वैविध्यादेकैकमात्राः द्वैविध्यमेत्याऽष्टविंशत्युत्तरशत भेदमाप्नोति। सगुणनिर्गुणभेदेऽप्युक्तोऽयं प्रणवः। सर्वाधारः परं ज्योतिरेषः सर्वेश्वरो विभुः। सर्वदेवमयः सर्वप्रपंचाधारे वर्णितः। सर्वाधारमयः कालः सदा सद्भिरीरितः।

कुछ अन्यग्रन्थ में ऐसा भी प्राप्त है : अ, उ, म और कलातीत- ऐसे चार मात्रा प्रणव में हैं। अकार 10000 अवयवयुक्त, उकार 100 अवयवयुक्त, मकार 1000 अवयवयुक्त और अर्धमात्रा प्रणव (कलातीत) अनन्तावयवयुक्त। सगुण विराट् प्रणव, संहार निगुर्णप्रणव और उभयात्मक उत्पत्ति प्रणव है। 'यथार्थकथन' ऐसे उच्चारणकर अभिमानोत्पत्तिकप्रणव, 'सर्वोपसंहार' कह कर संहारप्रणव और उभयात्मक होने से विराट्प्रणव 16 मात्रा से अन्वित है और 36 तत्त्वों से युक्त है। 16 मात्रात्मक आपने कैसे कहा? सुनो – 1. अकार, 2. उकार, 3. मकार, 4. अर्धमात्रा, 5. नाद, 6. बिन्दु, 7 कला, 8. शक्ति, 9. शान्ति, 10. समना, 11. आत्मना, 12. मनोन्मना, 13. वैखरी, 14. मध्यमा, 15. पश्यन्ती और 16. परा। इस प्रकार 16 मात्रा स्वरूपवाला प्रणव होता है। ये 16 मात्रायें पुनः जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुरीय

भेद से चारगुणा होकर कुल 64 मात्रायें होते हैं। वे पुनः प्रकृति और पुरुष (जड़–चेतन) भेद में दोगुना होकर कुल 128 मात्रायें होते हैं। वास्तव में सगुण और निगुर्णात्मक एक ही प्रणव है। यह सर्वाधार, पर, ज्योतिःस्वरूप, सर्वेश्वर और विभु है। सर्वदेवमय रूप से सर्वप्रपंच के आधार पर वर्णित है। सर्वाधारमय काल भी प्रणव ही है – ऐसे सत्पुरुषों द्वारा कहा गया है।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म यदुक्तं ब्रह्मवादिभिः।
शरीरं तस्य वक्ष्यामि स्थानं कालत्रयं तथा॥164॥

ॐ यह एकाक्षर ही ब्रह्म है – ऐसे जो ब्रह्मवादियों के द्वारा कहा गया है उसका शरीर, स्थान और कालत्रय को कहूँगा।(164)

तत्र देवास्त्रयः प्रोक्ता लोका वेदास्त्रयोऽग्नयः।
तिस्रो मात्रा अर्धमात्रा सा प्रत्यक्षा शिवस्य च॥165॥

उस प्रणव में तीन देव, तीन लोक, तीन वेद, तीन अग्नि और तीन मात्रायें कही गयी हैं। अर्धमात्रा वह साक्षाच्छिव ही हैं। अर्थात् शिव का प्रत्यक्ष स्वरूप है। (165)

ऋग्वेदो गार्हपत्यं च पृथिवी ब्रह्म एव च।
अकारस्य शरीरन्तु व्याख्यातं ब्रह्मवादिभिः॥166॥

ब्रह्मवादियों ने अकारमात्रा के शरीर के रूप में – 'ऋग्वेद, गार्हपत्याग्नि, पृथिवी (भूलोक) और ब्रह्मा देवता – कहा है। (166)

यजुर्वेदोऽन्तरिक्षं च दक्षिणाग्निस्तथैव च।
विष्णुश्च भगवान्देव उकारः परिकीर्तिताः॥167॥

उकारमात्रा के शरीर के रूप में–यजुर्वेद, अन्तरिक्ष (भुवः) लोक, दक्षिणाग्नि और भगवान् विष्णु देवता के रूप में कहा गया है। (167)

सामवेदस्तथा द्यौश्चाहवनीयस्तथैव च।
ईश्वरः परमो देवो मकारः परिकीर्तितः॥168॥

मकारमात्रा के शरीर के रूप में कहा है – सामवेद, द्यौः (स्वः) लोक, आहवनीयाग्नि और परमेश्वर (शिव = रुद्र) देव हैं।(168)

सूर्यमण्डलमाभाति ह्यकारश्चन्द्रमध्यगः ।
उकारश्चन्द्रसंकाशस्तस्य मध्ये व्यवस्थितः॥169॥

चन्द्र के मध्य में अकार सूर्यमण्डल के समान भासता है और उकार उसके भी (सूर्यमण्डल के भी) बीच में सोम (चन्द्र) मण्डल के सदृश भासता है।(169)

मकारश्चाग्निसंकाशो विधूमो विद्युता समः।
तिस्रो मात्रास्तथा ज्ञेया सोमसूर्याग्नितेजसः।।170।।

तथा मकार अग्निमण्डल के सदृश उसके भी (सोममण्डल के भी) बीच में भासता है। इस प्रकार सूर्य और अग्नि का तेजोमण्डल के सदृश तीनों मात्राओं को समझें। (170)

शिखा च दीपसंकाशा यस्मिंस्तु परिवर्तते।
अर्धमात्रा तथा ज्ञेया प्रणवस्योपरि स्थिता।।171।।

शिखा तो दीप के सदृश है जो परिवर्तित होता है, इसलिये अर्धमात्रा को प्रणव के ऊपर में स्थित जानें।(171)

पद्मसूत्रनिभा सूक्ष्मा शिखाभा दृश्यते परा।
नासादिसूर्यसंकाशा सूर्यं हित्वा तथा परम्।।172।।

शिखा की आभा जो ऊपर दीखती है वह पद्म (कमल) के सूत्र (केसर) के समान सूक्ष्म होती है, जो की सूर्यनाड़ी (गरमनाड़ी) के सदृश है।(172)

द्विसप्ततिसहस्रं च नाडीर्भित्त्वा तु मूर्धनि।
वरदं सर्वभूतानां सर्वं व्याप्यैव तिष्ठति।।173।।

सूर्य का भेदन कर उसके बाद 72000 नाड़ी भेदन द्वारा मूर्धा में (सिर में) सकलभूतों को वरदेनेवाला होकर सबको व्याप्त करके रहता है।(173)

कस्य घण्टानिनादः स्याद्यदा लिप्यति शान्तये।
ओंकारस्तु तया योज्यः श्रुतये सर्वमिच्छति।।174।।

जिसके प्रति घण्टा नाद शान्ति के लिये जब लेपायमान हो (अर्थात् घण्टानाद सुनते हुए जो समाधिस्थ जैसे होने लगे) तब समझो की श्रुति के लिये (श्रवण इन्द्रिय के लिये) संपूर्ण प्रणव को ही चाहते हुए प्रणव का ही संयोजन करें।(174)

यस्मिन् स लीयते शब्दस्तत्परं ब्रह्म गीयते।
सोऽमृतत्वाय कल्पते सोऽमृतत्वाय कल्पते।।175।।

जिसमें (साधक में) जब वह प्रणव का शब्द (नाद) लीन होता है तब उसे परब्रह्म कहते हैं। अर्थात् प्रणव से तादात्म्यापन्न साधक साक्षात्ब्रह्म ही है। वह अमृतत्व केलिये मान्य है, वह अमृतत्व के लिये मान्य है। अर्थात् वह मुक्त हो जाता है।(175)

37. पंचसमयविद्यानां क्रमव्यवस्था=पांच समयविद्याओं की क्रमव्यवस्था-

द्विधा हि समयाविद्या क्रमः प्रोक्तो महात्मभिः।
स्थूलस्तु प्रथमस्तत्र सूक्ष्मश्चैवापरः स्मृतः।।176।।

महात्माओं ने समयाविद्या को दो प्रकार का कहा है। पहला स्थूलक्रम और दूसरा सूक्ष्मक्रम – यही स्मृति सम्मत भी है।(176)

38. स्थूलक्रमे चक्राणां तदधिनायिकासमयानां च व्यवस्था = स्थूलक्रम में चक्रों का और उसके अधिनायिकासमयों की व्यवस्था-

विशुद्धाख्ये पंकजेऽत्र महात्रिपुरसुन्दरी।
अनाहते च बगला कालरात्रिर्मणौ स्मृता।।177।।

विशुद्धनामक चक्र में महात्रिपुरसन्दरी, अनाहत में बगला और मणिपुर में कालरात्रि स्मृत है।(177)

स्वाधिष्ठाने जयदुर्गा छिन्नमस्ता च मूलके।
आज्ञायां नवरत्नाख्या कुब्जिका समुदीरिता।।178।।

स्वाधिष्ठान में जयदुर्गा, मूलाधार में छिन्नमस्ता, आज्ञा में नवरत्न नाम की कुब्जिका कही गयी है।(178)

बिन्द्वादितः सहस्रारे नवरत्ना हि सुन्दरी।
स्थूलक्रमे च ध्यातव्या न्यस्तव्येति शुभं मतम्।।179।।

बिन्दु आदि से सहस्रार में नवरत्ना नाम की सुन्दरी को स्थूलक्रम में ध्यान करना चाहिये और न्यास करना चाहिये – यह शुभ मत है।(179)

39. सूक्ष्मक्रमे चक्राणां तदधिनायिकासमयानां च व्यवस्था =सूक्ष्मक्रम में चक्रों का और उसके अधिनायिकासमयों की व्यवस्था-

सूक्ष्मक्रमे च सत्ता स्यात्समयानां क्रमाद्यथा।
स्वयम्भूलिंगसत्ताऽस्ति बगलासमया सदा।।180।।

सूक्ष्मक्रम में समयओं की क्रम को सत्ता से युक्तकर कही गई है। जैसे की – अनाहत में बगलासमया स्वयम्भूलिंगसत्ता युक्त है।(180)

बाणलिंगस्य सत्ताऽस्ति कालरात्रीरिति नामतः।
इतरलिंगस्य सत्ता जयदुर्गेति विश्रुता।।181।।

मणिपूर में कालरात्रिसमया बाणलिंगसत्ता युक्त है तथा स्वाधिष्ठान में जयदुर्गासमया इतरलिंगसत्ता युक्त है।(181)

कुलकुण्डलिनीसत्ता छिन्नमस्ता निगद्यते।
सर्वसाक्षित्वचैतन्यसत्ता श्रीसुन्दरी मता।।182।।

40. आम्नायक्रमेण मूलाधारादिचक्रेषु शक्तीनां भैरवानां च क्रमः = आम्नायक्रम से मूलाधारादिचक्रों में शक्तियों और भैरवों का क्रम –

मूलाधारादिचक्राणां शक्तयो भैरवाश्च ये।
आम्नायक्रमतस्तेषां न्यासध्यानादि कथ्यते।।183।।

अब मूलाधारादि चक्रों के शक्तियों और भैरवों का आम्नायक्रम के अनुसार जो हैं उनका न्यास, ध्यानादि का कथन करेंगे।(183)

मूलाधारे साकिनी स्याच्छक्तिर्ब्रह्मा च भैरवः।
स्वाधिष्ठाने काकिनी स्याच्छक्तिर्विष्णुश्च भैरवः।।184।।

मूलाधार में साकिनी शक्ति और ब्रह्मा ही भैरव हैं। स्वाधिष्ठान में काकिनी शक्ति और विष्णु भैरव हैं। (184)

मणिपूरे लाकिनी स्याच्छक्ती रुद्रोऽथ भैरवः।
अनाहते राकिनी स्याच्छक्तिरीश्वरभैरवः।।185।।

मणिपूर में लाकिनी शक्ति और रुद्र भैरव हैं, अनाहत चक्र में राकिनी शक्ति और ईश्वर भैरव हैं।(185)

विशुद्धे डाकिनी शक्तिर्भैरवश्च सदाशिवः।
आज्ञायां हाकिनी शक्तिर्भैरवोऽथ महेश्वरः।।186।।

विशुद्धचक्र में डाकिनी शक्ति और सदाशिव भैरव हैं। आज्ञाचक्र में हाकिनी शक्ति और महेश्वर भैरव हैं।(186)

सहस्रारे याकिनी स्यात्कामेशश्चैव भैरवः।
पूर्वोत्तराधराम्नायक्रमोऽयं गदितः शुभः।।187।।

सहस्रार में याकिनी शक्ति और कामेश्वर भैरव हैं। यह शुभ वचन पूर्वोत्तराधराम्नाय क्रम से कहा गया है।(187)

41. ऊर्ध्वपश्चिमाम्नाययोर्डकिन्यादिस्वरूपम् = ऊर्ध्व और पश्चिमाम्नायों का डकिन्यादिस्वरूप –

ऊर्ध्वपश्चिमयोश्चैव दक्षोपाम्नाययोस्तथा।
शक्तीनां च शिवानां च क्रमोऽत्र निगद्यते।।188।।

ऊर्ध्वाम्नाय, पश्चिमाम्नाय, दक्षिणाम्नाय और आम्नायों के शक्तियों तथा शिवों के क्रम को अब यहाँ कहेंगे।(188)

मूलाधारे डाकिनी स्याच्छक्तिर्ब्रह्मा चैव भैरवः।
स्वाधिष्ठाने राकिनी स्याच्छक्तिर्विष्णुश्च भैरवः॥189॥

मूलाधार में डाकिनी शक्ति और ब्रह्मा भैरव हैं। स्वाधिष्ठान में राकिनी शक्ति और विष्णु भैरव हैं।(189)

मणिपूरे लाकिनी स्याच्छक्ती रुद्रोऽथ भैरवः।
अनाहते काकिनी स्याच्छक्तिरीश्वरभैरवः॥190॥

मणिपूर में लाकिनी शक्ति और रुद्र भैरव हैं। अनाहत में काकिनी शक्ति और ईश्वर भैरव हैं।(190)

विशुद्धे साकिनी शक्तिर्भैरवश्च सदाशिवः।
आज्ञायां हाकिनी शक्तिर्भैरवोऽथ महेश्वरः॥191॥

विशुद्ध में साकिनी शक्ति और सदाशिव भैरव हैं, आज्ञा में हाकिनी शक्ति और महेश्वर भैरव हैं।(191)

सहस्रारे याकिनी स्यात्कामेशश्चैव भैरवः।
अथ वक्ष्येऽजपाजपतर्पणस्य विधिं परम्॥192॥

सहस्रार में याकिनी शक्ति है और कामेश्वर भैरव हैं। अब मैं तुमको अजपाजप तर्पण का श्रेष्ठ विधि बताता हूँ। (192)

मूलाधारादिचक्राणां क्रमेणैव यथासंख्यम्।
यद्दैवतं च तथैव शृणु तत्र यथास्मृतम्॥193॥
षट्शतं च गणेशस्य षट्सहस्रं प्रजापतेः।
विष्णवे षट्सहस्रं च रुद्राय षट्सहस्रकम्॥194॥
ईश्वराय सहस्रं च सहस्रं च सदाशिवे।
सहस्रं गुरवे नित्यमर्पयाम्यजपाजपम् ॥195॥

जो श्वास नित्य निरन्तर चलता रहता है जिसे 'सोऽहं' अजपाजप कहा जाता है, वह 24 घण्टे में कुल 21600 होता है। उसमें से मूलाधारादि चक्रों के क्रम से किस देवता को कितना अर्पण करना है उसका वर्णन करते हैं - 600 गणेशजी को, 6000 प्रजापति (ब्रह्मा) को। 6000 विष्णु को और 6000 रुद्र को। 1000 ईश्वर को, 1000 सदाशिव को और 1000 गुरु को नित्य ही अजपाजप को अर्पण करता हूँ - ऐसे संकल्प पूर्वक अर्पण करें।(192-195)

अकारश्च उकारश्च मकारो बिन्दुरेव च।
अर्धचन्द्रो निरोधश्च नादो नादान्त एव च॥196॥

शक्तिश्च व्यापिनी चैव समना उन्मनी तथा।
समनान्तं पाशजालं तदूर्ध्वं च परः शिवः॥197।।

अकार, उकार, मकार, बिन्दु, अर्धचन्द्र, निरोध, नाद, नादान्त। शक्ति, व्यापिनी, समना और उन्मना यह प्रणव तत्त्व का 12 स्तर या अवस्था है। इनमें से समना पर्यन्त पाशजाल (बन्धन) है और उससे परे यानि उन्मना परशिव है अर्थात् मुक्ति है।(196-197)

अन्तर्यागक्रमश्चैव बहिर्यागक्रमस्तथा।
महायागक्रमश्चैव पूजाखण्डे प्रकीर्तितः।।198।।

पूजा खण्ड में अन्तर्यागक्रम और बहिर्यागक्रम तथा महायागक्रम का कथन किया जायेगा।(198)

।।श्रीमदाद्यशंकराचार्यविरचितः
श्रीयतिदण्डैश्वर्यविधानान्तर्गतस्तत्त्वपादः।।

।। श्रीमदाद्यशंकराचार्यविरचित श्रीयतिदण्डैश्वर्यविधान के अन्तर्गत तत्त्वपाद की व्याख्या पूरी हुई।।

जगद्गुरु-भगवत्पाद-श्रीमदाद्यशङ्कराचार्य-विरचिते

यतिदण्डैश्वर्यविधाने

अथ साधनापादो नाम तृतीयः पादः = साधनापाद नामक तीसरा पाद आरम्भ होता है।

1. ज्ञानमन्त्रकर्मयोगानां पारस्परिकसम्बन्धित्वात्तेषां साधनास्वावश्यक त्वनिरूपणम् = ज्ञानमन्त्रकर्मयोगों का पारस्परिकसम्बन्ध होने से उनकी साधना में आवश्यकता का निरूपण –

यतिदण्डे साधनाया ये ये मार्गाः प्रदर्शिताः।
तेषां सम्यक्सिद्धिलब्ध्यै योगज्ञानमपेक्षितम्।।1।।

यतिदण्ड में जिन-जिन साधना के मार्गों को दर्शाया गया था उनका सम्यक्सिद्धि के लिये योगज्ञान की अपेक्षा है।(1)

तत्र शारीरचक्राणां नाडीनां च विशेषतः।
ज्ञानं सम्प्राप्य कर्तव्या सर्वा एव हि साधनाः।।2।।

उसमें भी शरीरगत चक्रों और नाड़ियों का विशेषतः ज्ञान प्राप्त करके ही सभी साधनाओं को करना चाहिए।(2)

न हि योगं विना मन्त्रो योगो मन्त्रं विना न हि।
कदापि सिद्धिं प्राप्नोति तस्मादुभयमाचरेत्।।3।।

योग के विना मन्त्र कभी सिद्ध नहीं होता और मन्त्र के विना योग कभी सिद्ध नहीं होता, इसलिये दोनों का आचरण करना चाहिए।(3)

न योगेन विना मन्त्रो न मन्त्रेण विना हि सः।
द्वयोरभ्यासयोगो हि ब्रह्मसंसिद्धिकारणम्।।4।।

योग के विना मन्त्र नहीं और मन्त्र के विना योग नहीं। इसलिये दोनों का अभ्यास ही वास्तविक योग है, जिससे ब्रह्म की सम्यक्सिद्धि होगी।(4)

कर्मयोगं विना देवि ज्ञानयोगो न सिद्ध्यति।
ज्ञानेन कर्मणा वापि सिद्धिर्भवति नान्यथा।।5।।

हे देवी ! कर्मयोग के विना ज्ञानयोग सिद्ध नहीं होता (और ज्ञानयोग के विना कर्मयोग सिद्ध नहीं होता), इसलिये कर्मयोग और ज्ञानयोग दोनों का अभ्यास

आवश्यक है, इसके विपरीत किसी और प्रकार से सम्भव नहीं है।(5)

2. योगमाहात्म्यम् = योग की महिमा –

तस्माद्दोषविनाशार्थमुपायं कथयामि ते।
योगहीनं न हि ज्ञानं मोक्षदं भवति ध्रुवम्।।6।।

इसलिये दोषों के विनाश के लिये मैं तुम्हें उपाय कहूँगा क्योंकि योग के विना ज्ञान मोक्ष दे नहीं सकता – यह श्चिय है।(6)

योगो हि ज्ञानहीनस्तु न क्षमो मोक्षकर्मणि।
तस्माज्ज्ञानं च योगं च मुमुक्षुर्दृढमभ्यसेत्।।7।।

ज्ञान रहित योग भी मोक्षफल देने में सक्ष्म नहीं हो सकता। इसलिये मुमुक्षु योग और ज्ञान दोनों का अभ्यास करें।(7)

3. द्विविधाः सिद्धयः = दो प्रकार के सिद्धियाँ –

द्विविधाः सिद्धयो लोकेऽकल्पिताः कल्पितास्तथा।
तासु पूर्वास्तु यतिभिः साधनीया न चापराः।।8।।

कल्पिता और अकल्पिता भेद से दो प्रकार की सिद्धियाँ हैं। उनमें से अकल्पितासिद्धियों के लिये यतिगण प्रयत्न करें, कल्पिता के लिये नहीं।(8)

4. अकल्पिताः सिद्धयः = अकल्पितासिद्धियाँ –

मन्त्राणां जपतो योगाद्धारणाध्यानतस्तथा ।
न्यासात्सम्पूजनाच्चैव सिद्ध्यन्ति सिद्धयस्तु याः।।9।।

जो सिद्धियाँ मन्त्र के जप, योग के धारणा तथा ध्यान से और न्यास एवं पूजा से सिद्ध होते हैं।(9)

अकल्पितास्ताः सम्प्रांप्ताश्चिरकालसुखप्रदाः।
प्रान्ते ब्रह्मपदप्राप्तावपि साहाय्यकारिकाः।।10।।

उन्हें अकल्पिता कहा जाता है। वे चिरकाल तक सुख प्रदायक हैं और अन्त में ब्रह्मपद प्राप्ति में सहकारी करण होते हैं।(10)

5. कल्पिताः सिद्धयः = कल्पितासिद्धियाँ –

रसौषधिक्रियाजालमप्यभ्यासादिसाधनैः ।
सिद्ध्यन्ति सिद्धयो यास्तु कल्पितास्ताः प्रकीर्तिताः।।11।।

रस–ओषधी–क्रियाजाल आदियों के अभ्यासादि साधनों से जो सिद्धियाँ सिद्ध होते हैं उन्हें कल्पिता कहा जाता है।(11)

6. शरीरमाहात्म्यम् = शरीर की महिमा –

दशभिर्वायुभिर्व्याप्तं दशेन्द्रियपरिच्छदम्।
तदाधारसमायुक्तमुपाम्नायविभूषितम् ।।12।।

दस प्रकार के वायु से व्याप्त, दस इन्द्रियों से आवृत, उनके आधारभूत पाँच तन्मात्राओं से युक्त तथा उपाम्नायों से विभूषित यह शरीर है।(12)

शाम्भवीशाम्भवयुतं षडन्वयसुशाम्भवम्।
चतुष्पीठसमाकीर्णं चतुराम्नायदीपनम्।।13।।

शाम्भवी–शाम्भव से युक्त, षडन्वय से सुशाम्भव, चार पीठों से सुबद्ध तथा चार आम्नायों के प्रकाश का साधन यह शरीर है।(13)

बिन्दुनादमहालिंगं शिवशक्तिनिकेतनम् ।
देहः शिवालयः प्रोक्तः सिद्धिदः सर्वदेहिनाम्।।14।।

बिन्दु, नाद से युक्त महान् लिंग (कारण), शिव–शक्ति का निवास स्थान यह देह ही शिवालय है, समस्त देही (जीवात्माओं) को सिद्धि प्रदान करनेवाला यह शरीर ही है – ऐसे कहा गया है।(14)

7. शरीरस्था दशवायवः = शरीर में स्थित दस वायु –

प्राणपानसमानाश्चोदानव्यानौ तथैव च ।
इमे सर्वे शरीरस्थाः प्रधानाः पंच वायवः।।15।।

प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान – ये शरीरस्थ प्रधान 5 वायु हैं।(15)

नागः कूर्मोऽथ कृकरो देवदत्तो धनंजयः।
इमे पंच पुनस्तत्र गदिता उपवायवः।।16।।

नाग, कूर्म, कृकर (कृकल), देवदत्त और धनंजय – ये शरीरस्थ 5 उपवायु कहे गये हैं।(16)

8. वायूनां स्थानानि = वायुओं के स्थान –

हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिमण्डले।
उदानः कण्ठदेशे तु व्यानः सर्वशरीरगः।।17।।

हृदय में प्राण, गुदा में अपान, नाभि मण्डल में समान, कण्ठदेश में उदान और संपूर्ण शरीर में व्यान वायु व्याप्त है।(17)

9. वायूनां वर्णाः = वायुओं के रंग –

अथ वर्णास्तु पंचानां प्रणादीनामनुक्रमात्।
रक्तवर्णो मणिप्रख्यः प्राणवायुः प्रकीर्तितः।।18।

अब प्राणादि पाँच वायुओं के क्रम से रंग बताते हैं। प्राणवायु का रंग लाल है माणिक्य मणि की प्रभा के सदृश है।(18)

नीलरक्तोऽपानवायुरिन्द्रगोपसमप्रभः।
समानस्तु द्वयोर्मध्ये गोक्षीरसदृशप्रभः।।19।।

इन्द्रगोप का रंग के सदृश नीलारंग मिश्रित रक्तरंग वाला अपानवायु है। समान वायु दोनों के बीच गौ के दूध का रंग के सदृश होता है।(19)

अपाण्डुर उदानश्च व्यानो ह्यर्चिः समप्रभः।
ध्यानार्थमेते वर्णास्तु चिन्तनीया विशेषतः।।20।।

सफेदरंग (पीले आभा युक्त सफेद को पाण्डुर कहते है। अतः अपाण्डुर केवल सफेद को कहते है) वाला उदान वायु है। व्यानवायु दीपक की अर्चि यानि लौ के समान रंगवाला है। ध्यान करने केलिये इन रंगो का विशेषरूप से विचारणीय है। (20)

10. प्राणादिवायूनां स्थानानि = प्राणादि वायुओं के विशेषस्थान –

आस्यनासिकयोर्मध्यं हृदयं नाभिमण्डलम्।
पादांगुष्ठमिति प्राणस्थानानि द्विजसत्तम।।21।।

हे द्विजसत्तम! मुख और नासिका के बीच, हृदय, नाभिमण्डल और पैर का अंगूठा–ये प्राण के विशेष स्थान हैं।(21)

अपानश्चरति ब्रह्मन् गुदमेढ्रोरुजानुषु ।
समानः सर्वगात्रेषु सर्वव्यापी व्यवस्थितः।।22।।

हे ब्रह्मन्! अपान वायु के विचरने का स्थान विशेष है – गुदा, मेढ्र (जननेन्द्रिय), ऊरु (जाँघ) और घुटना। समान वायु सम्पूर्ण शरीर में सर्वव्यापी होकर व्यवस्थित रहता है।(22)

उदानः सर्वसन्धिस्थः पादयोर्हस्तयोरपि ।
व्यानः श्रोत्रोरुकटिषु गुल्फस्कन्धगलेषु च।।23।।

उदान वायु सभी सन्धियों में रहते हुये पैरों और हाथों के सन्धि स्थानों में विशेष रूप से रहता है। जब कि व्यान वायु के विशेष स्थान है – श्रोत्र, ऊरु, कटिप्रदेश, गुल्फ (टकना=टखना), कन्धे और गले में।(23)

नागादिवायवः पंच त्वगस्थ्यादिषु संस्थिताः।
तस्मात्स्थानानि तान्येव ज्ञातव्यानि क्रमात्सदा।।24।।

नागादि पाँच वायु चर्म, हड्डि आदि में संस्थित हैं। इसलिये बताये गये स्थानों को ध्यान के लिये क्रमशः जानने योग्य हैं।(24)

11. प्राणादिवायूनां कार्याणि = प्राणादि वायुओं के कार्य -

तुन्दस्थजलमन्नं च रसादीनि च सर्वशः।
तुन्दमध्यगतः प्राणः कुरुते वै पृथक्-पृथक्।।25।।

(पाठभेदः - रसादींश्च समीकृतान्। - अयं पाठ एवेचितमिति मन्ये)

पेट में स्थित अन्न, जल और रसों को पूरे शरीर में पहुँचाने के लिये जो पेट के मध्य में स्थित प्राणवायु है वह पृथक्-पृथक् करता है।(25)

अपानवायुर्मूत्रादेः करोति च विसर्जनम्।
प्रसवं चापि कुरुते वायुरेष निरन्तरम्।।26।।

अपान वायु मूत्रादियों का विसर्जन निरन्तर करता है और यह वायु प्रसव का भी कारण हे।(26)

प्राणापानादिचेष्टास्तु क्रियन्ते व्यानवायुना।
उज्जीर्यते शरीरस्थमुदानेन नभस्वता।।27।।

व्यान वायु प्राण - अपानादि सकल चेष्टाओं को करता है। उदान वायु शरीर में स्थित को उल्टी के द्वारा बाहर फेंकता है।(27)

पोषणादिशरीरस्थं समानः कुरुते सदा।
नागादीनां च वायूनां कार्याण्यपि वदाम्यहम्।।28।।

समान वायु शरीर में स्थित होकर पोषणादि कार्य को करता है। नागादि वायु के भी कार्य बताता हूँ।(28)

उद्गारादिक्रियां नागः कूर्मो नेत्रादिमीलनम्।
कृकरः क्षुत्करो ज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भकृत्।।29।।

डकार आना इत्यादि क्रिया नागवायु करता है। आँखों के पलकों का बन्द होना व खुलना रूपी क्रिया कूर्मवायु करता है। भूख को लगाने की क्रिया कृकरवायु करता है। जम्भाई, आलस्यादि अभिव्याक्ति की क्रिया देवदत्तवायु करता है।(29)

मृतगात्रस्य शोभादिकृदुक्तोऽस्ति धनंजयः।
न जहाति मृते वापि शरीराणि धनंजयः।।30।।

मृतशरीर का फूलना, जीवित शरीर में शोभा बढ़ाना आदि क्रिया धनंजय वायु करता है। अतः वह मृतशरीर को भी नहीं त्यागता–यह धनंजय की विशेषता है।(30)

प्राणिनो भौतिके देहे क्रियामात्रा भवन्ति हि।

वायोस्साहाय्यतस्ताः तां विना किमपीह न।।31।।

प्राणियों के भौतिक देह में वायु की सहायता से ही समस्त क्रियायें होती रहती हैं। अतः वायु के विना इस में कुछ भी नहीं हो सकता।(31)

वायोर्वशान्मनोवश्यं तत इन्द्रियसंयमः।

तस्माद्वायोर्वशीकारमुत्तमं योगसाधनम्।।32।।

वायु के वश में होने से मन वश में आजाता है। उससे इन्द्रिय का संयम अनायास होता है। इसलिये वायु को अपने वश में करना ही योग का सर्वोत्तम लक्ष्य है।(32)

इति विज्ञाय वायूनां सर्वा व्यानादिकाः क्रियाः।

गुरूपदेशतो ज्ञेया योगसिद्ध्यै महात्मभिः॥33।।

ऐसे जानकर वायुओं के सम्बन्धी सभी ध्यानादि क्रियाओं को गुरुपदेश से जानना चाहिये, विशेषतः महात्माओं केलिये जानना जरूरी है, योगसिद्धि के लिये।(33)

12. दशेन्द्रियपरिच्छदः = दस इन्द्रियों से ढकना –

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च।

वाक्पाणिपादाः पायुश्च तथोपस्थ इति क्रमात्।।34।।

श्रोत्र, चक्षु, त्वग्, रसन और घ्राण तथा वाक्, पाणि (हाथ), पाद (पैर), पायु (गुदा) और उपस्थ ये क्रम से पांच ज्ञानेन्द्रियाँ और पांच कर्मेन्द्रियाँ हैं। (34)

दशेन्द्रियपरिवारो ज्ञानकर्मविभागतः ।

सुप्रसिद्धोऽस्ति सर्वत्र ज्ञात्वा तं योगमाचरेत्।। 35।।

यह 10 इन्द्रियों का परिवार है जो ज्ञान और कर्म के साधनविभाग रूप से सर्वत्र प्रसिद्ध है। इन्हें जानकर योगाभ्यास करें।(35)

समीकृतानस्यैतान्वै परिच्छदति संभूय।

तस्माच्छुभं प्रतीयते बीभत्सोऽपि प्रियश्च स्यात्।।36।।

इस शरीर को यह सब मिलकर ढकते हैं, इसलिये सह अत्यन्त भयावह होने पर भी सुन्दर व प्रिय लगता है।(36)

तस्माद्योग्यस्य सत्यत्वं परित्यज्य प्रयोगं च।
कर्तव्यं मुक्तये सदा कर्तव्यो नात्र संशयः।।37।।

इसलिये (साधना केलिये) सुयोग्य शरीर में सत्यत्व को त्यागकर मुक्ति केलिये इसका प्रयोग करते हुये सदा कर्तव्य कर्म आदि को करना चाहिये, इसमें कोई संशय नहीं।(37)

13. शरीरस्थाधारादिचक्रवर्णनम् (कालीकल्पे) = शरीरस्थ मूलाधारादि चक्रों का वर्णन (कालीकल्प के अनुसार)-

अथ चक्राणि वक्ष्यन्ते स्थितिर्येषां शरीरगा।
पूर्वं ह्यधः सहस्रारं विषुवं मूलचक्रकम्।38।।
स्वाधिष्ठानं तदग्रे तु ततस्तु मणिपूरकम्।
स्वस्तिकं चैवानाहतं विशुद्धं चैव लम्बिका।39।।
आज्ञाचक्रमिति प्रोक्तान्यूर्ध्ववक्त्राणि वर्ष्मणि।
स्वाधिष्ठानं मणिपूरमनाहतमथापि वा।40।।
हृदि स्थाने स्थितं पद्मं तस्य वक्त्रमधोमुखम्।
विशुद्धं चेति चक्राणि सन्त्यधोमुखानि हि।41।।

अब चक्रों के बारे में कहेंगे जिनका शरीर में स्थिति है। 1. अधःसहस्रार जो अन्य सब की अपेक्षा सबसे नीचे है, 2. विषुव चक्र है, 3. मूलाधार चक्र है। उससे ऊपर 4. स्वाधिष्ठान, उसके बाद 5. मणिपुर, उसके ऊपर 6. स्वस्तिक = अनाहत, 7. विशुद्ध = लम्बिका और 8. आज्ञाचक्र - यह पूर्वोक्त सब ऊर्ध्वमुख होते हैं। उक्त के अलावा मार्ग में 9. स्वाधिष्ठान 10. मणिपुर और 11. अनाहत (अनाहत की व्याख्या हृदय स्थान में स्थित पद्म उसका मुख अधोमुख है) और 12. विशुद्ध नामक चक्र है। ये सब अधोमुख ही हैं, ये चक्रों के सम्मिश्रण से बनते हैं)।(38-41)

एवं द्वादश चक्राणि कालीकल्पे भवन्ति वै।
आज्ञाचक्रं विभक्तं स्यात्कल्पयोरुभयोरपि।।42।।

इस प्रकार 12 चक्र कालीकल्प में बताये गये हैं। केवल आज्ञाचक्र दोनों कल्पों में विभक्त है।(42)

कालीकल्पे च सुन्दर्याः कल्पे चैव विशेषतः।
सुन्दर्यां भवति सदा दुर्गायाः पूजनं तथा।।43।।

दोनों कल्प यानि कालीकल्प और सुन्दरी कल्प में से सुन्दरी कल्प में विशेषतः दुर्गा जी का पूजन सदा किया जाता है।(43)

14. शरीरस्थाधारादिचक्रवर्णनम् (सुन्दरीकल्पे) = शरीरस्थ मूलाधारादि चक्रों का वर्णन (सुन्दरीकल्प के अनुसार)-

सुन्दरीकल्पचक्राणां संख्या षोडश विद्यते।
तेषां नामानि वर्ण्यन्ते योगतन्त्रानुसारतः।।44।।

सुन्दरी कल्प के अनुसार चक्रों की संख्या 16 है। योग और तन्त्र के अनुसार उनके नामों का वर्णन करते हैं।(44)

आज्ञाचक्रं मनश्चक्रं सप्तकोषाख्यमेव च।
बिन्दुः कला रोधनी च नादो नादान्त एव च।।45।।
शक्तिश्च व्यापिका चैव समनाग्रे तथैव हि।
गुरोः पद्मं तदग्रे च दलैर्द्वादशभिर्युतम्।।46।।
अधोमुखं मनश्चक्रं पत्रैर्द्वादशभिर्युतम्।
उन्मनी षोडशदलमधोवक्त्रं च नीरजम्।।47।।
महाबिन्दुस्तदग्रे च चक्राण्येतानि सन्ति वै।
एतान्यावृत्य लसति सहस्रारमधोमुखम्।।48।।

1. आज्ञाचक्र, 2. मनश्चक्र, 3. सप्तकोषनामकचक्र, 4. बिन्दु, 5. कला, 6. रोधनी, 7. नाद, 8. नादान्त, 9. शक्ति, 10. व्यापिका, 11. समना, 12. गुरुपद्म, जो की बारह दलों से युक्त है, 13. मनश्चक्र - बारह पंकुडियों से युक्त है, 14. उन्मनी - सोलह दलों से युक्त व अधोमुख है, 15. महाबिन्दु उससे आगे का कमल है। 16. इन सब को आवृतकर यानि व्याप्तकर अधोमुख सहस्रार है।(45-48)

आज्ञाचक्रादूर्ध्वभाग एकैकांगुलोपरि ।
स्थितिः षोडशचक्राणां सर्वदा योगिसम्मता।।49।।

आज्ञा चक्र के ऊपर भाग में एक-एक अंगुली का अन्तराल में स्थित हैं, जो सर्वदा योगीजन से सम्मत है।(49)

महाषोडश्येवमेव कूटैः षोडशभिर्युता।
आम्नायक्रमतश्चैषां ध्यानं कर्तव्यमेव हि।।50।।

महाषोडशी भी इसी प्रकार 16 कूटों से युक्त है - इनका आम्नाय क्रम से ध्यान अवश्य कर्तव्य है।(50)

(इतः परं चत्वारि अर्थात् 51तः 54 तमान्तानि श्लोकान्यपठितानि सन्ति)।

(इससे आगे के 51-54 तक श्लोक उपलब्ध नहीं)

मूलाधारं समाधारमधराम्नायरूपकम्।
स्वाधिष्ठानं सृष्टिचक्रं पूर्वाम्नायस्वरूपकम्॥55॥

मूलाधार सम्यक् आधारवाला चक्र जो कि अधराम्नाय स्वरूपवाला है। तथा स्वाधिष्ठान सृष्टिचक्र और पूर्वाम्नाय स्वरूपवाला है।(55)

मणिपूरे स्थितं चक्रं दक्षिणाम्नायरूपकम्।
अनाहतं स्यात्संहारचक्रं पश्चिममार्गगम्॥56॥

मणिपूर स्थितिचक्र और दक्षिणाम्नाय स्वरूपवाला है तथा अनाहत संहारचक्र और पश्चिमाम्नाय स्वरूपवाला है।(56)

विशुद्धं स्यादनाख्यमुत्तराम्नायरूपकम्।
आज्ञादिकं च भासा स्यादूर्ध्वाम्नायक्रमात्मकम्॥57॥

विशुद्ध अनाख्यास्वरूप और उत्तराम्नाय स्वरूपवाला है। तथा आज्ञाचक्र भासारूप और ऊर्ध्वाम्नाय स्वरूपवाला है।(57)

(श्लोक संख्या 58 अनुपलब्धः)।

(58वें श्लोक उपलब्ध नहीं है।)

15. चक्राणामधिष्ठात्र्यो देवताः = चक्रों के अधिष्ठात्री देवता -

अधिष्ठात्र्यः प्रवक्ष्यन्ते नामान्यासां यथाक्रमम्।
यासां स्मरणमात्रेण सिद्धिर्भवति वै ध्रुवा॥59॥

इन चक्रों का यथाक्रम अधिष्ठातृदेवताओं के नाम बातऊँगा। जिनके स्मरण मात्र से निश्चित रुप से सिद्धि होती है।(59)

मणिपूरस्याधिष्ठात्री देवी दक्षिणकालिका।
महोग्रतारा देवी च मूलाधारस्य नायिका॥60॥

मणिपूर की अधिष्ठात्री देवी दक्षिणकालिका है और मूलाधार की अधिष्ठात्री देवी महोग्रतारा। (60)

आज्ञाचक्रस्याधिष्ठात्री बालात्रिपुरसुन्दरी।
अधिष्ठात्री विशुद्धस्य गुह्यकाली च देवता॥61॥

आज्ञाचक्र की अधिष्ठात्री देवी बालात्रिपुरसुन्दरी है। तथा विशुद्ध की अधिष्ठात्री देवी गुह्यकाली देवता है।(61)

स्वाधिष्ठानगता देवी स्वामिनी भुवनेश्वरी।
अनाहतस्याधिष्ठात्री देवता कुब्जिका स्मृता।।62।।

स्वाधिष्ठान की अधिष्ठात्री देवी स्वामिनी भुवनेश्वरी तथा अनाहत की अधिष्ठात्री देवी कुब्जिका है।(62)

नैर्ऋत्यकोणाधिष्ठात्री देवता भद्रकालिका।
या देवी भद्रकाली च चामुण्डा सैव कथ्यते।।63।।

नैर्ऋत्यकोण की अधिष्ठात्री देवी भद्रकालिका, उसी देवी को भद्रकाली भी कहते हैं और उसकी को चामुण्डा शब्द से कहते हैं।(63)

महालक्ष्मीर्महादेवी त्वग्निकोणस्य नायिका।
ईशानकोणाधिष्ठात्री महाकाली दशानना।।64।।

अग्निकोण की नायिका अधिष्ठात्री देवी महालक्ष्मी, जिसे महादेवी भी कहते हैं। ईशानकोण की अधिष्ठात्री देवी दशानना महाकाली है।(64)

महासरस्वती देवी वायव्यकोणस्य नायिका।
समष्ट्या तु चतस्रस्तास्तुर्यशक्तिसमन्विताः।।65।।

वायुकोण की अधिष्ठात्री देवी महासरस्वती है। समष्टि से तो वे चार ही देवियाँ है जो कि तुर्यशक्ति से युक्त है।(65)

उपाम्नायसमाश्लिष्टाश्चामुण्डा नायिका भवेत्।
सम्भूय देव्यस्ताः सर्वा नवार्णं भवति ध्रुवम्।।66।।

उपाम्नाय की अधिष्ठात्री देवी चामुण्डा ही है। सब मिलकर ये देवियाँ निश्चित रूप से नवार्ण ही होते हैं।(66)

पश्चिमे तु समाम्नाये साकं भवति कुब्जिका।
एवमाम्नायदेवीनां ध्यानं चक्रेषु सिद्धिदम्।।67।।

(इतः परं 68तः 70तमान्तानि पद्यान्यपठितानि सन्ति)।

पश्चिमाम्नाय में कुब्जिका सहित होती है। इस प्रकार आम्नाय देवियों का ध्यान चक्रों में करने पर सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।(67)

(श्लोक संख्या 68-70 तक उपलब्ध नहीं है।)

प्रयोगकाले मन्त्राणामृषिच्छन्दांसि दैवतम् ।
विनियोगं शक्तिबीजे स्मरेन्नो चेद्वृथा फलम्।।71।।

प्रयोगकाल में मंत्रों के ऋषि, छन्द, देवता, शक्ति, बीज, कीलक और विनियोग का स्मरण अवश्य करना चाहिये। अन्यथा व्यर्थ परिश्रम ही है।(71)

स्वाधिष्ठानं सृष्टिचक्रं प्रकल्प्य क्रमयोगतः।
देवतास्तेषु संचिन्त्या यतिभिर्मोक्षकांक्षिभिः।।72।।

महत्त्वाकांक्षी यति का कर्तव्य है कि वह स्वाधिष्ठान में सृष्टिचक्र की कल्पना करके उस क्रम के अनुसार उसमें देवता का चिन्तन करें।(72)

अथ सृष्ट्यादिचक्रेषु संचिन्त्या वर्णदेवताः।
साधकानां सिद्धिहेतोरुद्दिश्यते क्रमादिह।।73।।

अनन्तर सृष्टि आदियों को चक्रों में चिन्तन करके वर्णगत देवताओं का भी चिन्तन करें, अर्थात् साधकों केलिये सिद्धियों का कारणीभूत उन्हें क्रम से बता रहे है।(73)

दक्षिणः साधरश्चोर्ध्वमुत्तरं पूर्व एव च ।
ततः पश्चिम इत्यत्र बोध्यः सामान्यतः क्रमः।।74।।

उनमें सर्वप्रथम दक्षिणाकाली मणिपूरचक्र के अधिष्ठातृ देवता, तत्पश्चात् मूलाधारचक्र निवासिनी महोग्रतारा का चिन्तन यानि ध्यान करके आज्ञाचक्र में बालात्रिपुरसुन्दरी का ध्यान करें। ये तीनों एकत्र गृहीत होने को ही हादिकूट कहा गया है।(74)

16. सृष्टिचक्रस्थशक्तीनां नामानि = सृष्टिचक्रस्थशक्तियों के नाम –

सृष्टिचक्रे क्रमान्न्यस्या आद्याश्यामा च दक्षिणा।
तत एकजटा पश्चान्महोग्रा तारिणी ततः।।75।।

तदनन्तर विशुद्धचक्रस्थ दशानना गुह्यकाली का ध्यान करके स्वाधिष्ठानस्थ श्री भुवनेश्वरी का ध्यान करना चाहिये।(75)

ततश्च बालात्रिपुरा बालात्रिपुरसुन्दरी।
ततः षडक्षरी हादिर्महात्रिपुरसुन्दरी।।76।।

उसके बाद अनाहत में बहुरूपिणी कुब्जिका का ध्यान करें। इन तीनों का एकत्र ध्यान करने को कादिकूट कहा गया है।(76)

सिद्धिलक्ष्मीः कामकला चोन्मनी भुवनेश्वरी।
समया कुब्जिका पश्चात्तथा च वज्रकुब्जिका।।77।।

तत्पश्चात् नैर्ऋत्यकोण में पूर्वोक्त भद्रकाली का ध्यान करके आग्नेय कोण में पद्मस्वरूपिणी तारा और महालक्ष्मी का ध्यान करना चाहिये।(77)

ततः पंचाक्षरी कादिर्महात्रिपुरसुन्दरी ।
ततः परं भद्रकाली तथा चैव सरस्वती।।78।।

इसके बाद ईशानकोण में पूर्वोक्त महाकाली और तत्पश्चात् वायव्यकोण में यथोक्त महासरस्वती का ध्यान करें। हे भद्रे! इन चारों का एकत्र ध्यान करने को ही सादिकूट कहा गया है।(78)

महासरस्वती पश्चाच्चामुण्डा चोग्रचण्डिका।
चतुर्वर्णा ततः सादिर्महात्रिपुरसुन्दरी ।।79।।

मध्य में चारों अन्वयों के साथ त्रिशक्ति चामुण्डा का चिन्तन करने के पश्चात् उसका भी विलय अनुचारिणियों सहित कुब्जिका में करें।(79)

(श्लोक संख्या 80 अनुपलब्धः)।

17. स्थितिचक्रस्थशक्तीनां नामानि = स्थितिचक्रस्थशक्तियों के नाम –

स्थितिचक्रे क्रमान्न्यस्याः श्यामा काली च दक्षिणा।
महोग्रतारा तत्पूर्व ध्येया नीलसरस्वती।।81।।
पश्चाद् बालासुन्दरी च ततो बालाषडक्षरी।

स्थितिचक्र में क्रमशः न्यास करें – श्यामा, काली, दक्षिणा, महोग्रतारा, नीलसरस्वती और बालासुन्दरी तत्पश्चात् षडक्षरी बाला का ध्यान करें।(81-82)

भरतोपासिता गुह्यकाली कामकला ततः।।82।।
ततः पूर्णेश्वरी ध्येया ततश्च भुवनेश्वरी।
वीरपूर्वा कुब्जिका च तथा च वज्रकुब्जिका।।83।।
उग्रतारा महालक्ष्मीरष्टाविंशतिवर्णका।
ततः परं महालक्ष्मीरन्या ध्येया नवाक्षरी।।84।।

भरत द्वारा उपासित गुह्यकाली, कामकला, पूर्णेश्वरी, भुवनेश्वरी, वीरकुब्जिका, वज्रकुब्जिका, उग्रतारा, महालक्ष्मी और सिद्धलक्ष्मी के अनन्तर नवाक्षरी का ध्यान करें।(82-84)

ततः परं च चामुण्डा पश्चात्कात्यायनीत्यपि।
(शेष उपलब्ध नहीं) **।।85।।**

इसके बाद चामुण्डा कात्यायनी। (श्लोक शेष अनुपलब्ध है)।(85)

18. संहारचक्रस्थशक्तीनां नामानि = संहारचक्रस्थशक्तियों के नाम –

संहारे सिद्धिकाली स्यात्तथा दक्षिणकालिका।
ततो महोग्रा तत्पूर्व महानीलसरस्वती।।86।।
ततो बाला भैरवी स्यात्ततो बालाषडक्षरी।
श्रीरामोपासिता गुह्यकाली कामकला ततः।।87।।

संहारचक्र में क्रमश न्यास करें - सिद्धिकाली, दक्षिणकालिका, महोग्रा, महानीलसरस्वती, बाला और भैरवी, तदनन्तर षडक्षरी बाला का ध्यान करें।(86-87)

त्र्यक्षरी भुवना पश्चात्पंचवर्णा भुवनेश्वरी।
अघोरकुब्जिका वज्रकुब्जिका कर्मकुब्जिका॥88।।
ततः परं क्रमाद्ध्येया सप्तार्णा रक्तदन्तिका।
मन्वर्णात्मा महाकाली महाकाली नवाक्षरी॥89।।

श्रीराम द्वारा उपासित गुह्यकाली, कामकला, भुवना (त्र्यक्षरी), भुवनेश्वरी (पंचार्णा), अधोरकुब्जिका, वज्रकुब्जिका, कर्मकुब्जिका, महारक्तदन्तिका (सप्तार्णा) और महाकाली (मन्वर्णात्मा) तदनन्तर नवाक्षरी महाकाली का ध्यान करें।(88-89)

भद्रकाली चामुण्डा च चतुर्वर्णा स्मृताः क्रमात्।
(शेष उपलब्ध नहीं) **।।90-91।।**

भद्रकाली, चामुण्डा (चतुर्वर्णा) भुवनेशी (शेष श्लोक 90 तथा 91 तक अनुपलब्ध है)।

सिद्धिलक्ष्मीः सिद्धिपूर्वा कराली सिद्धिकालिका।
सिद्धिः कपालिनी न्यस्या गुह्या कामकलात्मिका॥92।।

सिद्धिलक्ष्मी, सिद्धिकराली, सिद्धिकालिका, सिद्धिकपालिनी, गुह्यकामकल-त्मिका देवियों का न्यास करना चाहिये।(92)

(श्लोक संख्या 93 अनुपलब्ध है)

पंचदशी षोडशी च गायत्री ब्रह्मरूपिणी।
श्रीमहाषोडशी पूर्णशाम्भवं च षडन्वयम्॥94।।

पंचदशी, षोडशी और गायत्री साक्षात् ब्रह्मरूपिणी है। श्री महाषोडशी तो पूर्ण है क्योंकि षडाम्नाय युक्त शम्भु से समन्वित है।(94)

सर्वाधिकाररूपं च गायत्री च चतुष्पदा।
पशुपतत्रयं चैव महापूर्णाभिषेचनम्॥95।।

19. प्रणवस्य षोडशमात्राणां कूटरूपत्वं च = प्रणव के 16 मात्रायें और कूटरूपता -चतुष्पदा गायत्री सर्वाधिकाररूपा है। पाशुपतत्रय और महापूर्णाभिषेक के समान है।(95)

अकारः प्रथमः प्रोक्तः उकारश्च द्वितीयकः।
तृतीयोऽथ मकारः स्यादर्धमात्रा तुरीयकः॥96।।

बिन्दुः पंचमकूटः स्यान्नादः षष्ठ उदीरितः।
कला ही सप्तमः कूटः शक्तिरष्टम एव च।।97।।
नवमः शान्तिराख्यातो दशमः समना स्मृतः।
आत्मा त्वेकादशः प्रोक्तो द्वादशश्च मनोन्मनाः।।98।।
त्रयोदशो वैखरी च मध्यमा स्याच्चतुर्दशः।
पश्यन्ती स्यात्पंचदशः षोडशश्च परा भवेत्।।99।।
एवं षोडशकूटात्मा स्मर्तव्यः प्रणवः सदा।
सादिकूटेन दीक्षितैर्न कार्याऽत्र विचारणा।।100।।

पहला कूट अकार, दूसरा कूट उकार, तीसरा कूट मकार, चौथा कूट (तुरीयकूट) अर्धमात्रा, पाँचवाँ कूट बिन्दु, छठाकूट नाद, सातवाँ कूट कला, आठवाँ कूट शक्ति, नौवाँ कूट शान्ति कहा गया है। दसवाँ कूट समना, ग्यारहवाँ कूट आत्मा, बारहवाँ कूट मनोन्मना, तेरहवाँ कूट वैखरी, चौदहवाँ कूट मध्यमा, पन्द्रहवाँ कूट पश्यन्ती और सोलहवाँ कूट परा है। इस प्रकार के सोलहकूट स्वरूप प्रणव का ही स्मरण करना चाहिये।(96-100)

20. नाडीभिश्चक्रनिर्मितिनिरूपणम् = नाड़ियों से चक्रों का निर्माण -

देहस्य कार्यक्षमतासाधनार्थं शरीरगाः।
अनन्ता नाडिका व्याप्ता मस्तिष्कान्निःसरन्ति याः।।101।।

देह के कार्य करने की क्षमता की सिद्धि के लिये शरीर में विद्यमान मस्तिष्क से निकलती हुई अनन्त नाड़ियाँ शरीर में व्याप्त हैं।(101)

अंगप्रत्यंगकार्याणि साधयन्ति स्वभवतः।
सार्धलक्षत्रयं नाड्यस्तासु योगे प्रतिष्ठिताः।।102।।

स्वभाव से अंग प्रत्यंग के कार्य को सिद्ध करते रहते हैं। साढ़ेतीन लाख (3.5 लाख) नाड़ियाँ उन अनन्त नाड़ियों में से विशेषतः प्रतिष्ठित माने गये हैं योग शास्त्रों में।(102)

तत्रापि नाड्यः सम्प्रोक्ताः सहस्राणि द्विसप्ततिः।
एतासु मुख्याः षोडश चित्राप्रभृतिसंज्ञिकाः।।103।।

उनमें से भी 72000 नाड़ियाँ अतिविशिष्ट हैं, उनमें भी चित्रा आदि नाम से प्रसिद्ध केवल 16 मुख्य हैं।(103)

यासामुत्पत्तिभूरेका सुषुम्ना नाडिका मता।
प्रधानाः प्राणवाहिन्यो भूयस्तत्र दश स्मृताः।।104।।

जिनके उत्पत्ति की कारणीभूता एक सुषुम्ना नाड़ी मानी गयी है। प्राणवाहिनी 10 प्रधान नाड़ी हैं।(104)

तत्रापि ब्रह्मनाडी च चित्रा वज्रा तथैव च।
एतास्तिस्रो मिलित्वैव सुषुम्नारूपतां गताः॥105।।

उनमें से ये तीन नाड़ियाँ ब्रह्म, चित्रा और वज्रा मिलकर सुषुम्ना नाड़ी का रूप धारण करते हैं।(105)

लघुमस्तिष्कतो नीचैः सुषुम्नानाडिका स्थिता।
सैवप्रधाना सर्वासां नाडीनां त्र्यग्निरूपिणी॥106।।

लघुमस्तिष्क के नीचे तक सुषुम्ना नाड़ी स्थित है। वही सभी नाड़ियों में प्रधान है, जो की श्रौत अग्नि रूप है (आहवनीय, दक्षिण, गार्हपत्य नामक तीन श्रौत अग्नियों में से आहवनीय अग्नि रूप है)।(106)

तत एव विनिर्यान्ति वामदक्षिणभागयोः।
एकत्रिंशद् ह्येकत्रिंशन्नाडिकाः सूक्ष्मरूपतः॥107।।

उसके ही दाहिने और बायें भाग की ओर 31-31 सूक्ष्म नाड़ियाँ निकलती हैं।(107)

ग्रीवाप्रदेशे ह्यष्टौ च तासु नाड्यो व्यवस्थिताः।
कथ्यन्तेऽनुग्रीविकास्ता नाडिका योगवित्तमैः ।।108।।

इन नाड़ियों में से ग्रीवाप्रदेश में 8 नाड़ी व्यवस्थित हैं। उन्हें योगवित्तम लोग "अनुग्रीविका" नाम से कहते हैं।(108)

पृष्ठदेशे द्वादश च स्थिताः सन्ति तथेतराः।
उच्यन्तेऽनुपृष्ठिकास्ता नामतः किल मेरुजाः।।109।।

मेरुदण्ड से उत्पन्न पृष्ठ भाग में 12 नाड़ियाँ स्थित हैं जिन्हें "अनुपृष्ठिका" नाम से कहते हैं, वे पूर्वोक्त 8 से भिन्न हैं।(109)

कटिप्रदेशे वर्तन्ते पंचनाड्यस्तु संस्थिताः।
कथ्यन्तेऽनुकटिकास्ता योगशास्त्रविचक्षणैः॥110।।

योगशास्त्र के विचक्षण लोगों का मानना है कि कटिप्रदेश में पाँच (5) नाड़ियाँ संस्थित हैं जिन्हें "अनुकटिका" नाड़ी कहते हैं ।(110)

त्रिकप्रदेशे पंचाथ नाडिकाः सन्ति संस्थिताः।
अनुत्रिकास्ताः प्रोच्यन्ते तथैका त्रिकशीर्षकी।।111।।

उसी प्रकार त्रिकप्रदेश में भी पाँच (5) नाड़ियाँ संस्थित हैं जिन्हें "अनुत्रिका" कहा गया है और एक नाड़ी "त्रिकशीर्षकी" नाम की है। अतः कुल 31 हुए (8 + 12 + 5 + 5 + 1)।(111)

एवं द्वाषष्टिनाडीनां वामदक्षिणभागयोः।
गच्छन्तीनां क्रमः प्रोक्तः सुषुम्नाजनितात्मनाम्॥112॥

बायें दायें दोनों ओर फैलती हुई कुल मिलाकर 62 नाड़ियों का क्रम बताया गया जो की सुषुम्ना से उत्पन्न हुये हैं।(112)

अनुग्रीवाऽनुपृष्ठिका या प्रोक्ता चऽनुशीर्षकी।
चानुत्रिका भवन्ति तैर्यथा चक्राणि वै तथा॥113॥

अनुग्रीवा, अनुपृष्ठिका, अनुशीर्षकी तथा अनुत्रिका जो नाड़ियाँ कही गयी हैं उनसे सभी चक्र बनते हैं।(113)

योगादनुग्रीविकानां विशुद्धं जायते ध्रुवम्।
तथैवानुपृष्ठिकानां नाडीनां षट्कयोगतः॥114॥

अनुग्रीविका नामक 8 नाड़ियों के योग से विशुद्ध चक्र बनता है। तथा अनुकटिका नामक छः (6) नाड़ियों के योग से मणिपूर चक्र बनता है। मणिपूर के विषय में यह एक मत है।(114)

अनाहताख्यं चक्रन्तु द्वादशारं भवत्यहो।
मणिपूरोऽनुपृष्ठिकानाडीभिर्निर्मितं व्रजेत्॥115॥

द्वादशपंकुड़ियों (अरायें) वाला अनाहत चक्र अनुपृष्ठिका नामक 12 नाड़ियों में से 6 नाड़ियों के योग से बनता है।(115)

ताभ्य एवावशिष्टानां पंचानां सर्वयोगतः।
मणिपूराभिधं चक्रं दशारं भवति ध्रुवम्॥116॥

अवशिष्ट अनुपृष्ठिका नामक 6 नाड़ियों में से 5 नाड़ियों के योग से दशार (दसपंकुड़ियों वाला) मणिपूर चक्र बनता है। यह मुख्य मत है।(116)

शिष्टयाऽप्येकया युक्तं कटिनाडीद्वयेन वै।
स्वाधिष्ठानाभिधं चक्रं भवत्यथ षड्दलम्॥117॥
तृतीयायाश्चतुर्थ्याश्च कटिनाड्याः प्रमेलनात्।
मूलाधाराभिधं चक्रं समुद्गच्छति निश्चितम्॥118॥

अनुपृष्ठिका की बची हुई एक नाड़ी के साथ अनुकटिका नामक 5 नाड़ियों में से 4 नाड़ियों के योग से स्वाधिष्ठान चक्र बनता है।(117-118)

कटिभागस्यावशिष्टा नाडिकैका तथाऽपरा।
अनुत्रिकाया: पंचाथ त्रिकशीर्षस्य चैकिका।।119।।

अनुकटिका नाम की बची हुई 1 नाड़ी के साथ अनुत्रिकानामक 5 नाड़ियाँ और त्रिकशीर्षकी नाम की एक नाड़ी (कुल 7 नाड़ियाँ) मिलकर मूलाधार चक्र बनता है। अत: विशुद्ध में 8 नाड़ी, अनाहत में 6 नाड़ी, मणिपुर में 5 नाड़ी, स्वाधिष्ठान में 1 + 4 = 5 नाड़ी और मूलाधार में 1 + 5 + 1 =7, कुल मिलाकर 31 नाड़ी। (118-119)

सर्वा मिलित्वा लोकानां सप्तकं साधयन्ति हि।
अत्राप्यूर्ध्वसहस्राराच्चक्राण्यूर्ध्वमुखानि वै।।120।।

ये सब नाड़ियाँ मिलकर सात लोको को सिद्ध करती हैं। इस विषय (चक्रों के विषय) में यह और कहना है कि ऊर्ध्व सहस्रार से ऊपर ऊर्ध्वमुखी चक्र हैं।(120)

तथैवाध:सहस्राराज्जायन्तेऽधोमुखान्यपि ।
तेषामुत्थितिनियम: संक्षेपादिह कथ्यते ।।121।।

तथा अध:सहस्रार के नीचे अधोमुखी चक्र भी होते हैं। उनके उत्पत्ति का नियम यहाँ संक्षेप में कहा जा रहा है।(121)

अनुग्रीवानुपृष्ठिभ्यामधोवक्त्रसमुद्गति:।
अधोमुखं विशुद्धारं चक्रमाद्यं निगद्यते।।122।।

अनुग्रीवा (8 नाड़ी) और अनुपृष्ठिका(12 में से 6 नाड़ी)को मिलाकर पहला अधोमुखी चक्र को उत्पन्न करते है, जिसे अधोमुखी विशुद्धचक्र कहा गया है।(122)

अनुपृष्ठ्यनुकटिकानाडीयोगादधोमुखम् ।
अनाहताख्यमपरं चक्रं तत्र द्वितीयकम्।।123।।

शेष अनुपृष्ठिका के 6 + अनुकटिका के 5 नाड़ियों के योग से अधोमुखी अनाहत नाम का दूसरा अधोमुखी चक्र होता है।(123)

सविशुद्धानाहतयोर्मणिपूरस्य च क्रमात्।
स्वाधिष्ठानस्य चैवाध: परस्परं सुयोगत:।।124।।

विशुद्ध और अनाहत के सहित मणिपूर और क्रमश: सवाधिष्ठान का भी अधोमुखी चक्र परस्पर सुयोग से होते हैं। (जैसे की पूर्व में श्लोक संख्या 115 से 119 में स्पष्ट कहा गया है) ।(124)

अधश्चक्राणि तावन्ति भवन्तीह विशेषतः।
तान्येव कोणचक्राणि गदितानि महर्षिभिः ।।125।।

यहाँ विशेषतः अधोमुखी चक्र इतने ही हैं। उन्हीं को कोणचक्र नाम से भी महर्षियों ने कहा है।(125)

तत्र नाड्यौ द्वे भवतः शुक्रसम्बन्धगे ततः।
चित्राख्या सीवनीनाडी शुक्रमोचनकारिणी ।।126।।

यहां ध्यान देने योग्य विशेष बात यह है कि – दो विशेष नाड़ी हैं जो शुक्र (व शोणित) सम्बन्धी है। सीवनी नाड़ी का नाम है चित्रा, जिससे शुक्र (शोणित) का विमोचन होता है।(126)

निरुद्धा सीवनीनाडी शुक्रसंरोधकारिणी।
मनःसंयमनीनाडी तदा सक्रियतां गता॥127।।

जब वह सीवनी नाड़ी को यानि चित्रा नाड़ी को निरुद्ध किया जाता है। तब मन संयमनी नाड़ी सक्रिय हो जाती है। (127)

आकर्षति मनः सा तु समाधिं प्रति साधिका।
यावान्मनःसंयमनी सक्रियत्वं न गच्छति ।।128।।
तावन्निरुद्धा कर्तव्यपालनं कुरुते न हि।
समाधिस्थे विधिर्नास्ति तथोक्ता योगवित्तमैः ।।129।।

अतः जब तक मनःसंयमनी नाड़ी पूर्णतया सक्रिय नहीं होती तब तक सीवनी (चित्रा) को निरुद्ध करना चाहिये। अन्य कोई भी कर्तव्य पालन भी न करें।(128–129)

21. षोडशनाडीनां नामानि स्थाननिरूपणं च =16 नाड़ियों के नाम और उनके स्थान का निरूपण –

सुशुम्नाया वामभागे मेधा च प्राणधारिणी।
सर्वज्ञानप्रदा चैव मनःसंयमनी तथा ।।130।।
विशुद्धा निरुद्धा चित्रा वज्रा च ब्रह्मनाडिका।
एता नव स्थिता नाड्यस्तथा दक्षिणभागके ।।131।।

सुशुम्ना के बायें भाग में – मेधा, प्राणधारिणी, सर्वज्ञानप्रदा, मनः संयमनी, विशुद्धा, निरुद्धा, चित्रा, वज्रा और ब्रह्मनाड़िका ये नौ नाड़ियाँ स्थित हैं। तथा दाहिनें भाग में ।(130–131)

वायुसंचारिणी तेजःशुष्करी बलपुष्टिकृत्।
बुद्धिसंचारिणी चैव ज्ञानजृम्भणकारिणी॥132।।
सर्वप्राणहरा चैव पुनर्जीवनकारिणी।
एनाः सप्त स्थिता नाड्यो यथानाम तथागुणाः॥133।।

वायुसंचरिणी, तेजःशुष्करी, बलपुष्टिकृत्, बुद्धिसंचारिणी, ज्ञानजृम्भण-कारिणी, सर्वप्राणहरा और पुनर्जीवनकारिणी - ये सात नाड़ियाँ स्थित हैं। इनके जैसे नाम है वैसे गुण है।(132-133)

सर्वप्राणहरा चैव पुनर्जीवनकारिणी।
हस्तयोः पादयोश्चैवांगुष्ठयोश्च स्थितिं गते॥134।।

सर्वप्राणहरा और पुनर्जीवनकारिणी - ये दोनों नाड़ी हाथों और पैरों के अगुष्ठ में स्थित हैं।(134)

बुद्धिसंचारिणी चैव ज्ञानजृम्भणकारिणी।
तर्जनीमध्यमा चैते स्थितिमत्यौ सदैव हि॥135।।

बुद्धिसंचारिणी और ज्ञानजृम्भणकारिणी ये दोनों नाड़ी हाथों और पैरों के तर्जनी और मध्वमा यानि दूसरी और तीसरी अंगुलियों में स्थित हैं।(135)

मनःसंयमनी चैव सर्वज्ञानप्रदायिनी ।
अनामिकाकनिष्ठिकासु स्थितिमत्यौ सदैव हि॥136।।

मनःसंयमनी और सर्वज्ञानप्रदायिनी - ये दोनों नाड़ियाँ हाथ और पैर के अनामिका और कष्ठिका यानि चौथी और पाँचवी अंगुलियों में स्थित हैं।(136)

ब्रह्मनाडी तथा प्राणधारिणी नाम नाडिका।
विशुद्धनाडिका चैव वायुसंचारिणी तथा॥137।।

ब्रह्मनाड़िका और प्राणधारिणी, विशुद्धा और वायुसंचारिणी नाम की नाड़ियां एवं।(137)

(मनःसंयमनी चैव-इति तृतीयपादस्य पाठभेदः। अगले श्लोक क्रमांक रहित है, बचे नाड़ियों को संग्रह करने केलिये अन्यत्र से ग्रहण किया गया है।)

चित्रा निरुद्धा च कुहूर्वज्रेत्यष्टौ क्रमात्पुनः।
जिह्वायां च तथोपस्थे सर्वदा यान्ति नाडिकाः।।137क।।

तथा चित्रा, निरुद्धा, बलपुष्टिकृत् और वज्रा - ये आठ नाड़ियाँ क्रमशः जिह्वा तथा उपस्थ पर्यन्त सदा सर्वदा व्याप्त रहनेवाली नाड़ियाँ हैं। (मेधा, प्राणधारिणी और तेजःशुष्करी इन तीन नाड़ियों के स्थान के बारे में कुछ भी नहीं कहा गया है)।

22. जपप्रकारा: = जप करने का प्रकार –

हस्ते च दक्षिणे पश्चाच्चिन्तयेन्मनसा शिवम्।
चिन्तयेच्च गुरुं मूर्ध्नि यथा वर्णादिकं भवेत्।।138।।

दाहिने हाथ में मन से शिव का चिन्तन करें और तत्पश्चात् मूर्धा (सिर) पर वर्णादि के अनुसार चिन्तन करें। (138)

मन्त्रं ध्यायेत्कण्ठमध्ये पीतवर्णं हिरण्मयम्।
महामायां च हृदये स्वात्मानं गुरुपादयोः।।139।।

कंठ के मध्य में हिरण्मय पीले रंग युक्त मन्त्र का ध्यान करें। हृदय में अपने गुरु के चरणों को प्रणाम करते हुए अपने आप का और महामाया का ध्यान व चिन्तन करें।(139)

आज्ञाचक्रे ततः पश्चाद्गुरोर्मन्त्रस्य चात्मनः।
देव्याश्चाप्येकतां नीत्वा सुषुम्णावर्त्मना ततः।।140।।

तत्पश्चात् आज्ञाचक्र में गुरु, मंत्र, स्वयं और देवी (देव) की एकता का अनुसन्धान करके सुषुम्ना मार्ग से।(140)

एवं विभाव्य तद्रूपं तच्चक्रं प्रतिलंघयेत्।
सर्वचक्रे महामायां क्षणं ध्यात्वा प्रयत्नतः।।141।।

(चिन्तन के पश्चात्) उस चक्र (आज्ञा चक्र) का उल्लंघन करें (त्याग कर) सभी चक्रों में क्षणभर प्रयत्नपूर्वक महामाया का ध्यान करके (141)

लम्बयेन्मूलमन्त्रेण चादिषोडशचक्रकम् ।
आदिषोडशमध्यस्थां साधकानन्ददायिनीम्।।142।।

मूलमन्त्र से आदि 16 चक्रों का लम्बन (प्रत्येक से सम्बन्ध) करें। आदि 16 चक्रों के मध्य में स्थित साधकों को आनन्दप्रदान करनेवाली महामाया का(142)

संचिन्त्य साधको देवीं जपकर्म समारभेत्।
भ्रुवोरुपरि नाडीनां तिसृणां व्रत उच्यते।।143।।

सम्यक् चिन्तन करके ही साधक जप कर्म को आरम्भ करें। अब भौओं के ऊपर के तीन नाड़ियों के व्रत के बारे में कहते है।(143)

तद्व्रतं त्रिपथस्थानं षट्कोणं चतुरंगुलम् ।
रक्तं च कुलयोगज्ञैराज्ञाचक्रमितीरितम्।।144।।

वह व्रत तीनमार्गों का संगम स्थान है। छहकोणवाला, चार अंगुल से परिमित और लाल रंग का है, जिसे कुलयोगज्ञ लोग 'आज्ञाचक्र'–ऐसे कहते हैं। (144)

कण्ठे तिसृणां नाडीनां वेष्टनं विद्यते नृणाम्।
सुषुम्णेडापिंगलान्तं षट्कोणं तत्षडंगुलम्।।145।।

मनुष्यों के कण्ठ में भी उन तीन नाड़ियों का संगम होता है। वे हैं – सुषुम्ना, इड़ा और पिंङला, यहां इनसे एक षट्कोण बनता है और वह छह अंगुलीवाला होता है।(145)

तत्षट्चक्रमिति प्रोक्तं शुक्लं कण्ठस्य मध्यगम्।
तिसृणामपि नाडीनां हृदये चैकता भवेत्॥146।।

उन पूर्वोक्त षट्चक्रों में से इसे विशुद्ध कहते हैं, जो कण्ठ में मध्य में है। तीनों (सुषुम्ना, इड़ा और पिंङला) नाड़ियों की एकता हृदय में भी होता है।(146)

तत्स्थानं षोडशारं स्यात्सप्तांगुलप्रमाणतः।
तत्पीतमुक्तं योगज्ञैरपि षोडशचक्रकम्।।147।।

वह हृदयस्थान षोडशार होता है, सात अंगुल से परिमित है और पीले रंग से युक्त है, उसे योगज्ञलोग षोडशारवाला अनाहतचक्र कहते हैं।(147)

ध्येयानामथ मन्त्राणां चिन्तितस्य जपस्य च।
यस्मादाद्यं तु हृदयं तस्मादादि निगद्यते॥148।।

इसे 'हृदयचक्र' और 'आदिचक्र' नाम से भी कहते हैं क्योंकि ध्येय मन्त्रों का जप तथा चिन्तनीय का चिन्तन – यह सब पहले हृदय में ही होता है।(148)

गुरुं च देवतां मन्त्रं तथा स्वात्मानमेव च।
एकीभूतमिति ध्यायेदादिषोडशचक्रके।।149।।

इस आदिचक्र षोडशारवाला यानि हृदय चक्र में गुरु, देवता, मन्त्र और अपने आपकी एकता का ध्यान करना चाहिए।(149)

एकचित्तः प्रशान्तात्मा ह्यक्षसूत्रकरः शुचिः।
भुग्नग्रीवोन्नतः शान्तः कण्डून्मीलनवर्जितः।।150।।

इस प्रकार गुर्वादि की एकता का चिन्तन कर जपना है। जप कैसे करें? उत्तर – एकाग्रचित्त, प्रशान्तमन, हाथ में माला लिये हुए, शुद्ध, सीधी ग्रीवा, शान्त, खुजली और झपकी आदि रहित(150)

सविसर्गं समात्रं च सबिन्दुं चाक्षरं स्फुटम्।
न द्रुतं नापि विश्रान्तं क्रमान्मन्त्रं जपेत्सुधीः।।151।।

विसर्ग सहित, सभी मात्राओं सहित, अनुस्वार सहित और अक्षरों को सुस्पष्ट उच्चारण करते हुये बुद्धिमान् जप करें। क्रमशः उच्चारण हो न तेज गति से, न रुक रुक कर।(151)

अतिद्रुतो व्याधिहेतुरतिदीर्घो वसुक्षयः ।

अक्षराक्षरसंयुक्तो जपेन्मौक्तिकपंक्तिवत्।।152।।

क्योंकि ऐसे जप करने से धनसम्पत्ति का क्षय होगा। एक अक्षर को दूसरे अक्षर के साथ समुचितरूप से जोड़कर ही जप करें जैसे माला में मणिकायें होते हैं।(152)

तन्निष्ठस्तद्गतप्राणस्तच्चित्तस्तत्परायणः।

तत्पदार्थानुसन्धानं कुर्वन्मन्त्रं शनैर्जपेत् ।।153।।

धीरे-धीरे मन्त्र को जपना चाहिये ताकि आप मन्त्रनिष्ठ, मन्त्रगतप्राण, मन्त्रचित्त और मन्त्रपरायण होकर मन्त्रार्थ का अनुसन्धान करते हुए जप कर सकें।(153)

जपाच्छ्रान्तः पुनर्ध्यायेद्ध्यानाच्छ्रान्तः पुनर्जपेत्।

जपध्यानादिसंयुक्तः क्षिप्रं मन्त्रः प्रसिध्यति।।154।।

जप से थके हों तो ध्यान करें और ध्यान से थके हों तो पुनः जप करना शुरु कर दें। जप और ध्यान से संयुक्त हो तो मन्त्र जल्द ही सिद्ध होता है।(154)

अतिह्रस्वे व्याधिहेतुरतिदीर्घे तपःक्षयः।

प्रजपेत्प्राणसाम्येन ततः सिद्धिर्भवेद्ध्रुवम्।।155।।

अतिह्रस्व (यानि मात्रायें कम करके) जप करेंगे तो वह रोग का कारण होता है और अतिदीर्घ (यानि मात्राओं को बढ़ाकर) जप करेंगे तो वह तप को नष्ट करेगा। इसलिये प्राण के साथ तादात्म्य करके उसके साथ सौम्य -सम-शाक्त-स्वाभाविक गति से जप करें। उससे मन्त्र शीघ्र ही सिद्ध होगा।(155)

नान्यथासिद्धिमाप्नोति हास्यमाप्नोति सुन्दरि।

जपकाले न कुर्याद्वै मौनभंगश्च तन्द्रता।।156।।

हे त्रिपुरसुन्दरी! अन्य किसी भी प्रकार से मन्त्र सिद्ध नहीं होता, वह केवल हास्यता को प्राप्त करेगा।(156)

ततो वै ज्ञानशूलेन ग्रन्थीन्भिन्दन्समुच्चरेत्।

भित्त्वा हृदयग्रन्थिन्तु गतः शब्दः प्रजायते।।157।।

तत्पश्चात् (मन्त्र जप के बाद) शब्द ज्ञान रूपी शूल से ग्रन्थियों का भेदन करते हुए सम्यक् उच्चारण करें। अतः सर्वप्रथम हृदय ग्रन्थि का भेदन करके ही स्पष्ट शब्द उत्पन्न होता है।(157)

य आकाशसमायोगाद् घोषशब्दोपमो भवेत्।
श्रवणांगुलिसंयोगाद्यः शब्दः प्रजायते।।158।।

जो की आकाश में समायुक्त होने पर घोष शब्द के समान होता है। घोष क्या है? श्रवणदेश के साथ अंगुली का संयोग से जो शब्द उत्पन्न होता (अर्थात् भीतर सुनाई देता) है।(158)

दीप्तवह्निस्वननिभः स नादो घोष उच्यते।
कण्ठस्थो विरमेच्छब्दः कण्ठं प्राप्य वरानने।।159।।

अथवा प्रदीप्त अग्नि का शब्द के समान जो नाद है उसे घोष कहते हैं। हे वरानने! कण्ठ को प्राप्त कर कण्ठस्थ वह शब्द क्षणभर विराम को प्राप्त होता है(159)

भिन्दन्स कण्ठदेशन्तु शब्दो धुगधुगायते।
तालुमध्यगतः प्राणो यदा भवति सुव्रते।।160।।

हे सुव्रते! यह उच्चारित शब्द की प्रथमावस्था है, उसके बाद वह घोषात्मक शब्द कण्ठदेश का भेदन करते हुये जब तालुमध्य गत प्राण के साथ सम्बद्ध होता है तब धुग-धुग आवाज करता है।(160)

भिन्दतस्तालुग्रन्थिन्तु शब्दो धुमधुमायते ।
अष्टधा तु स देवेशि व्यक्तः शब्दः प्रकीर्तितः।।161।।

हे देवेशी! उस तालुग्रन्थि का भी भेदन करते हुए शब्द धुम-धुम करने लगता है और शब्द व्यक्त होता है, वह व्यक्त शब्द आठ प्रकार का कहा गया है।(161)

घोषो रावः स्वनः शब्दः स्फोटाख्यो ध्वनिरेव च।
झंकारो ध्वंकृतश्चैवेत्यष्टौ शब्दाः प्रकीर्तिताः।।162।।

घोष, राव, स्वन, शब्द, स्फोट, ध्वनि, झंकार और ध्वंकार- ये आठ प्रकार के व्यक्तशब्द कहे गये हैं।(162)

भ्रुवोमध्यं यदा गच्छेत्स्फोटशब्दस्तु जायते।
बिन्दुं भेदयतो देवि शब्दो धुमधुमायते।।163।।

दोनों भौवों के बीच जब जाता है तब स्फोट शब्द उत्पन्न होता है। हे देवी! बिन्दु का भेदन करते हुए शब्द घुम-घुम करता है।(163)

कपिर्वै नारिकेलेन ह्याचार्यः सह बिन्दुना।
अभिन्नेन कुतो मोक्षः स बाह्याभ्यन्तरं प्रिये।।164।।

हे प्रिये! जिस प्रकार नारियल से बंधा हुआ बन्दर मुक्त नहीं हो सकता उसी प्रकार बिन्दु के साथ अभिन्नता को प्राप्त आचार्य भी मुक्त नहीं हो सकते।(164)

भित्त्वा बिन्दुं ततो देवि अर्धचन्द्रं विभेदयेत्।
भिद्यतश्चार्धचन्द्रस्य भालो झिमिझिमायते।।165।।

इसलिये उस शब्द को बाह्याभ्यन्तर (पूर्ण रूप) से बिन्दु का भी भेदन करने के अनन्तर, हे देवी! अर्धचन्द्र का भी भेदन करें। जब अर्धचन्द्र का भेदन होता है भालप्रदेश में झिम-झिम करने लगता है।(165)

अर्धचन्द्रं तु भित्त्वा वै भेदयेत्तु निरोधिनीम्।
तस्यास्तु भिद्यमानायाः शब्दो मिमिमिमायते।।166।।

अर्धचन्द्र का भी भेदन करके निरोधिनी का भी भेदन करें। जब उसका भेदन होता है तब मस्तिष्क में शब्द मिमि-मिमि करने लगता है, जिसे 'अनाहत नाद' कहते हैं।(166)

अष्टधाऽनाहतः प्रोक्तः शून्यादिप्रतिभेदतः।
शून्यं स्पर्शस्तथा नादो ध्वनिर्बिन्दुस्तथैव च।।167।।
शक्तिर्जीवाक्षरं चेति ह्यष्टधाऽनाहतः स्मृतः।
निरोधिनीं भेदयित्वा ततो नादं व्रजेद् बुधः।।168।।

'अनाहत नाद' भी शून्य आदि भेद से आठ प्रकार का कहा गया है। वे क्रमशः इस प्रकार हैं - शून्य, स्पर्श, नाद, ध्वनि, बिन्दु, शक्ति, जीव और अक्षर। इन्हें ही आठ प्रकार का अनाहतनाद कहते हैं। निरोधिनी का भी भेदन करके ही विद्वान् नाद को प्राप्त करता है।(167-168)

वंशशब्दसमः शब्दस्तत्र सूक्ष्मः प्रजायते।
भेदयेन्नादसंस्थानं ब्रह्मरन्ध्रं सुदुर्भिदम्।।169।।

उस समय बाँस के 'चट-चटा' शब्द के समान सूक्ष्म शब्द उत्पन्न होता है। इसे भेदना अत्यन्त कठिन है फिर भी ऐसा नाद संस्थान रूप ब्रह्मरन्ध्र का भी भेदन करें।(169)

भिद्यतो ब्रह्मरन्ध्रस्य शब्दः शुभशुभायते।
शक्तिमध्यगतः प्राणो वंशनादेन संनिभः।।170।।

उस ब्रह्मरन्ध्र को भेदते समय शुभ-शुभ शब्द होने लगता है, तब शक्ति के बीच में स्थित प्राण बाँस के नाद के सदृश शब्द की अवस्था को प्राप्त होता है।(170)

साधको भेदयेच्छक्तिं दुर्भेद्यां सर्वयोगिनाम्।

भिद्यते च यदा शक्तिः शाब्दः शुभशुभस्ततः।।171।।

साधक सकल योगियों के अभेद्या शक्ति का भी भेदन करें। जब शक्ति का भेदन होता है शुभ-शुभ ऐसा अर्थात् मंगलकारी शब्द सुनाई देता है।(171)

शक्तिं भित्त्वा ततो देवि तच्छेषं व्यापिनी भवेत्।

अनुभूतो भवेत्तत्र स्पर्शो यद्वत्पिपीलिका।।172।।

हे देवी! तत्पश्चात् शक्ति को भी भेदन करके साधक उसका शेष (कारण स्वरूप) व्यापिनी भाव को प्राप्त होता है। उस समय वहाँ पिपीलिका का स्पर्श के सदृश स्पर्श का अनुभव होता है।(172)

भित्त्वा वै व्यापिनीं देवि समनायां मनस्त्यजेत्।

मनसा तु मनस्त्यक्त्वा जीवः केवलतां व्रजेत्।।173।।

हे देवी! व्यापिनी का भेदन करके समना में मन को लीन करें। इस प्रकार मन से ही मन का त्याग करने से यह जीव केवलता को प्राप्त करेगा।(173)

भित्त्वा क्रमेण सर्वाणि ह्युन्मनान्तानि यानि तु।

पूर्वोक्तलक्षणैर्देवि त्यक्त्वा स्वच्छन्दतां व्रजेत्।।174।।

इस प्रकार उन्मना पर्यन्त सब का क्रमसे भेदन करके अर्थात् पूर्वोक्तलक्षणों से उनको पहचानकर उनके प्रति आसक्त न होकर, अलग होना ही उनका त्याग है। ऐसे होने से यह साधक स्वच्छन्दतापूर्वक निर्लिप्त होकर विचर सकता है।(174)

जायते चोन्मनस्त्वं हि देहेनानेन साधके।

संक्रामेत्परदेहेषु क्षुत्तृड्भ्यां बाध्यते नहि।।175।।

उस स्थिति में साधक में इस शरीर से भी उन्मनस्त्व भाव जग उठेगा। तब वह परकाय प्रवेश भी कर सकता है और भूख-प्यास से कभी पीड़ित नहीं होगा। (175)

अतीतानागतं चैव त्रैलोक्ये यत्प्रवर्तते।

प्रत्यक्षं तद्भवेत्तस्य सर्वज्ञत्वं च जायते।।176।।

इन तीनों लोकों में अतीत, वर्तमान और अनागत जो कुछ भी है वह सब उसको प्रत्यक्ष होता है और उस साधक में सर्वज्ञत्व उत्पन्न होगा।(176)

मनः संहृत्य विषयान्मन्त्रार्थगतमानसः ।

न द्रुतं न विलम्बत्वं जपेन्मौक्तिकपंक्तिवत्।।177।।

विषयों से मन को हटाकर, मन्त्रार्थ में ही मन को लगाके जप करें। न शीघ्रता पूर्वक, न धीमि गति से किन्तु उचित व्यवधान के साथ जैसे माला की मणिकायें।(177)

जपः स्यादक्षरावृत्तिर्मानसोपांशुवाचिकैः।
धिया यदक्षरश्रेणीं वर्णस्वरपदात्मिकाम्।।178।।

जप का वाच्यार्थ है अक्षरों की आवृत्ति, वह तीन प्रकार से होता है–मानस, उपांशु और वाचिका (या वैखरी)। मानस जप उसे कहते हैं जब हम मंत्र के वर्ण–स्वर और पदात्मक अक्षरों को मन से ही आवृत्ति करते हैं यानि अर्थचिन्तन के साथ मानस उच्चारण करते हैं।(178)

उच्चरेदर्थमुद्दिश्य मानसः सो जपः स्मृतः।
जिह्वोष्ठौ चालयेत्किंचिद्देवतागतमानसः।।179।।

जिह्वा और होंठ हिलते हुए दिखाई दें, मन्त्र के देवता आदि में मन लगा हो, थोड़ा श्रवण के योग्य हो – ऐसे जपने को उपांशु जप कहा जाता है।(179)

किंचिच्छ्रवणयोग्यः स्यादुपांशुः सो जपः स्मृतः।
षट्कर्मकृद्वाचिकः स्यात्कायिकः कर्मसिद्धिकृत्।।180।।
मानसः साधयेन्मोक्षं ततोऽन्यः क्षुद्रकर्मकृत्।
मानसः जपेन देवता नित्यं स्तूयमाना प्रसीदति।।181।।

(मन्त्र के देवता आदि में मन लगाये हुए पूर्णतया सभी के श्रवण के योग्य वाणी से स्वरादि युक्त सुस्पष्ट उच्चारण पूर्वक जप करने को वाचिक (वैखरी) जप कहते हैं।) शट् कर्मो को करने वाला वाचिका जप करें, कर्म फल सिद्धि के लिये उपांशु जप करें और मोक्ष पाने के लिये मानस जप करें। इन से अन्य प्रकार से जपें तो वह अवश्य ही क्षुद्रकर्म कर्ता ही होगा। क्योंकि जप के द्वारा नित्य ही देवता का स्तुति करने से साधक पर देवता अवश्य प्रसन्न होते हैं।–180–181)

जपात्सिद्धिर्जपात्सिद्धिर्जपात्सिद्धिर्न संशयः।
कृत्वा जपं पुरा चैवं तेजोरूपं समर्पयेत्।।182।।
देवस्य दक्षिणे हस्ते कुशपुष्पार्घवारिभिः।
तथा लक्ष्यानुरोधेन जपसंख्या च कर्तव्या।।183।।

जप से सिद्धि, जप से सिद्धि, जप से सिद्धि अवश्य होगी, इसमें संशय नहीं। देवता के दाहिने हाथ में कुशा, पुष्प, अर्घ्यजल आदि पहले स्मर्पण करके जप करें फिर कृत तेजोमय स्वरूप जप को भी समर्पित करें।(182–183)

एवं जपं पुरा कृत्वा गन्धाक्षतकुशोदकैः।
जपं समर्पयेद्देव्या वामहस्ते विचक्षणः।।184।।

पूर्वोक्त प्रकार से पहले देवी के बायें हाथ में गन्ध, अक्षत, कुशोदक आदि समर्पण करके ही जप करें। फिर कृत उस तेजोमय स्वरूप जप को भी समर्पित करें।(184)
(पाठान्तरम् -)

चित्रा वज्रा च मेधा च ब्रह्मप्राणधरे तथा।
सर्वज्ञानप्रदा चैव मनःसंयमनी तथा।।185।।
विशुद्धा च निरुद्धा च वायुसंचारिणी तथा।
तेजःशुष्ककरी च ततो बलपुष्टिकरी तथा।।186।।
बुद्धिसंचारिणी चैव ज्ञानजृम्भणकारिणी।
सर्वप्राणहरा चैव पुनर्जीवनकारिणी।।187।।
षोडशैतास्तु यो नाडीर्ज्ञात्वा प्राणप्रयोगतः।
भिनत्ति स महायोगी साक्षद्ब्रह्ममयो भवेत्।।188।।

चित्रा, वज्रा, मेधा, ब्रह्मा, प्राणधरा, सर्वज्ञानप्रदा, मनःसंयमनी। विशुद्धा, निरुद्धा, वायुसंचारिणी, तेजःशुष्करी, बलपुष्टिकरी। बुद्धिसंचारिणी, ज्ञानजृम्भण-कारिणी, सर्वप्राणहरा और पुनर्जीवनकारिणी - ये 16 नाड़ियाँ हैं, जिन्हें शास्त्रों से जानकर जो साधक प्रणायामादियों के प्रयोग से इनको पहचानकर भेदन कर लेता है वह महान् योगी साक्षात् ब्रह्ममय होता है।(185-188)

23. षट्चक्रेषु जपफलानि = छःचक्रों में जप का फलभेद -

भूमिकामो जपेन्मन्त्रं मूलाधारे चतुर्दले।
स्वाधिष्ठाने जपादेव महेन्द्रो जायतेऽचिरात्।।189।।

सम्पत्ति (भूमि, मकान, दुकान आदि) की कामनावाला चार दलों वाला मूलाधार में मन को स्थिर करके मन्त्र को जपें। स्वाधिष्ठान में स्थित होकर जपने से शीघ्र ही वह महेन्द्र यानि राजा के तुल्य हो जायेगा।(189)

मणिपूरे जपादेव भवेत्स्वर्गस्य भाजनम्।
अनाहते महापद्मे जपाद् ब्रह्म परं व्रजेत्।।190।।

मणिपूर में जपने से स्वर्ग के भागी होगा और अनाहत चक्र-में जपने पर परब्रह्म को प्राप्त करता है।(190)

विशुद्धाख्ये जपादेव विष्णुलोके वसेद् ध्रुवम्।
आज्ञाचक्रे जपाद्देवि महाद्वीपे वसेत्सदा।।191।।

विशुद्धनामक चक्र में जपने से वह निश्चितरूप से विष्णुलोक में निवास करेगा।(191)

सहस्रारे स्थिरो भूत्वा यदि चाष्टशतं जपेत्।
तत्फलात्कोटिभागैकं भागं चान्यन्न विद्यते।।192।।

सहस्रार में स्थिर होकर यदि 800 बार मन्त्र जपेगा तो उससे प्राप्त फल उतना है कि उसके कोटिभाग के एक भाग का बराबर भी अन्य समस्त साधनों का फल नहीं होगा।(192)

पृथिव्यामव्ययो देही भवत्येव न संशयः।
सर्वशास्त्ररसमेतत्सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।।193।।

वह इस पृथिवी पर अव्यय देही होकर रहेगा, इस में कोई संशय नहीं।(193)

24. दशचक्रेषु जपध्यानफलानि=दसचक्रों में जप व ध्यान का फलभेद–

मूलाधारे जपाद्ध्यानान्मन्त्रस्य चिन्मयं वपुः।
जायते च ततो ध्येयस्यापि चिन्मयरूपता।।194।।

मूलधार में मन्त्र का जप और ध्यान करने से चिन्मय शरीर प्राप्त होता है। तथा ध्येय का भी यदि ध्यान करें तो चिन्मयरूपता की प्राप्ति होगी।(194)

स्वाधिष्ठाने जपाद्ध्यानाज्ज्ञानं मन्त्रप्रयोगजम्।
भवत्यथ ततो ध्येयस्यापि ज्ञानं भवेदलम्।।195।।

स्वाधिष्ठान में मन्त्र का जप और ध्यान से मन्त्रप्रयोगजन्य ज्ञान होता है तथा ध्येय का भी ध्यान करें तो ध्येय का पर्याप्त ज्ञान होता है।(195)

मणिपूरं जपाद्ध्यानान्मन्त्रे प्राणगतिर्भवेत्।
तथा ध्येयस्य मनसि सुरता जायते ध्रुवम्।।196।।

मणिपूर में मन्त्र का जप और ध्यान करने से मंत्र में प्राण की गति होने लगेगी तथा ध्येय का ध्यान करने से मन में निश्चितरूप से सुरत भाव होगा।(196)

अनाहते जपाद्ध्यानादैहिकं चेच्छितं फलम्।
फलं दातुं समर्थः स्याद्ध्येयश्चापि तथा भवेत् ।।197।।
विशुद्धेऽथ जपाद्ध्यानान्मन्त्र एकाग्रतां व्रजेत्।
ध्येयश्च स्थिरतां याति ध्यातुश्चित्ते निरन्तरम्।।198।।

अनाहत में मंत्र का जप और ध्यान करने से दैहिक ऐच्छिक फल प्राप्त होगा और ध्येय का ध्यान करने से फल देने में भी समर्थ हो जायेगा। विशुद्ध में जप और ध्यान से मन्त्र में एकाग्रता प्राप्त होती है। तथा ध्येय का ध्यान चित्त में निरन्तर करने से ध्याता का चित्त में ध्येय स्थिर हो जायेगा।(197-198)

आज्ञाचक्रे जपाद्ध्यानान्मन्त्रे चैतन्यमुद्भवेत्।
ध्येयस्यापि भवेत्तद्वच्चैतन्यं हृदि सर्वथा।।199।।

आज्ञा चक्र में मन्त्र का जप और ध्यान करने से मन्त्र में चैतन्य का उद्‌भव होगा। ध्येय का ध्यान करें तो हृदय में सर्वथा चैतन्यभाव बना रहेगा।(199)

नैर्ऋतेऽथ जपाद्ध्यानात्कामक्रोधादयः समे।
सर्वथा विलयं यान्ति साधना च प्रवर्धते।।200।।

नैर्ऋत्य में मंत्र का जप और ध्यान से काम क्रोध आदि शान्त हो जाते हैं। ध्येय का ध्यान करने से कामादिपरे सदा के लिये विजय प्राप्त हो जायेगा और साधना में अभिवृद्धि होगी।(200)

आग्नेयेऽथ जपाद्ध्यानाद्दह्यन्ते कर्मराशयः।
शुद्धो बुद्धो मुक्तज्ञानस्वरूपश्च भवेद्यतिः।।201।।

आग्नेय में मंत्र का जप और ध्यान करने से समस्त कर्मराशि नष्ट हो जायेंगे (अर्थात् जलकर निर्बीजता को प्राप्त हो जायेंगे) तथा ध्येय का ध्यान करने से यति शुद्ध, बुद्ध, मुक्त होकर ज्ञानस्वरूप हो जाता है।(201)

ईशाने च जपाद्ध्यानादीशशक्तिरवाप्यते।
वांछितं पूर्त्तिमायाति सकलं कल्पवृक्षवत्।।202।।

ईशान में मंत्र का जप और ध्यान करने से ईश की शक्ति प्राप्त होगी तथा ध्येय का ध्यान करने से कल्पवृक्ष के समान वांछित सब कुछ प्राप्त कर लेगा (कामनाओं की पूर्ति होगी)।(202)

वायव्येऽथ जपाद्ध्यानाद्वायुवद् बलवान् भवेत्।
दूरदृष्टिं खेचरत्वं लभते नात्र संशयः ।।203।।

वायव्य में मन्त्र का जप और ध्यान करने से वायु के समान बलवाला होगा तथा ध्येय का ध्यान करने से दूर दृष्टि और आकाशगामित्व सिद्धि की प्राप्ति होगी।(203)

(श्लोक संख्या 204 अनुपलब्ध है)।

25. बहिर्यागान्तर्यागपूर्वकः पूजाविधिः = बहिर्याग और अन्तर्याग पूर्वक पूजा विधि –

तथा च प्रक्रियाऽप्यस्या ज्ञातव्या शास्त्रनोदिता।
यया विना न सिद्धिः स्यात्कल्पकोटिशतैरपि।।205।।

इसकी प्रक्रिया यानि पूजाविधि जिस प्रकार शास्त्रों में विधान किया गया है वह भी जानना चाहिये, जिसके विना करोड़ों कल्प कर्म करने से भी फलप्राप्ति नहीं होगी।(205)

बाह्यान्तर्यागयोस्तत्र क्रमः पूजाविधिस्तथा।
संक्षेपादुच्यते शिष्टं ज्ञातव्यं गुरुवक्त्रतः।।206।।

बहिर्याग और अन्तर्याग भेद से पूजा विधि दो प्रकार की है। यहाँ संक्षेप में कहा जायेगा। शेष गुरुमुख से ही जानना चाहिये।(206)

अनाहते बाह्ययागश्चान्तर्यागो मणौ स्मृतः।
नैर्ऋत्ये च तदा पूजा कर्तव्या सिद्धिमिच्छता।।207।।

बाह्ययाग अनाहत में और अन्तर्याग मणिपूर में करने को कहा गया है। तब वह नैर्ऋत्य में कृत पूजा मानी जायेगी, जो कि सर्वासिद्धिप्रदायिका होगी।(207)

मणिपूरे बाह्ययागः स्वाधिष्ठाने द्वितीयकः।
आग्नेये च तदा पूजा भवत्येषः क्रमो मतः।।208।।

मणिपूर में बाह्ययाग और स्वाधिष्ठान में अन्तर्याग करें तो वह आग्नेय में कृत पूजा मानी जायेगी। सिद्धि को चाहते हुए साधक ऐसे करें।(208)

स्वाधिष्ठाने बाह्ययागश्चान्तर्यागो विशुद्धके।
ईशाने च तदा पूजा क्रियते सधकोत्तमैः।।209।।

स्वाधिष्ठान में बाह्य याग और विशुद्ध में अन्तर्याग करने पर वह पूजा ईशान में कृत पूजा मानी जायेगी। यह क्रमसाधकोत्तमों के द्वारा किया जाता है। (209)

विशुद्धे च बहिर्यागोऽन्तर्यागस्त्वनाहते ।
वायव्ये च तदा पूजा भवत्येषः क्रमो मतः।।210।।

विशुद्ध में बहिर्याग और अनाहत में अन्तर्याग करें तो वह पूजा वायव्य में कृत पूजा मानी जायेगी। यह क्रम स्वीकृत व सर्वसम्मत है।(210)

कालीकल्पमतो ह्येष गदितोऽत्र यथोदितः।
एतत्क्रमोत्तरं कुर्यात्सुन्दरीकल्पसाधनाम्।।211।।

यह क्रम काली कल्प में कहा हुआ है। इस क्रम के पश्चात् सुन्दरीकल्प में जैसा क्रम कहा गया है उस क्रम से भी साधना करें।(211)

आज्ञाचक्रोत्तरं तत्र दश स्थानानि सन्ति हि।
एकैकांगुलमूर्ध्वस्थान्युच्यन्ते तानि साम्प्रतम्।।212।।

आज्ञा चक्र के उत्तर (ऊपर) में दस स्थान (चक्र) माने गये हैं। (सुन्दरी कल्प में) वे सब एक-एक अंगुल के अन्तराल में ऊपर की ओर हैं अब हम उनके बारे में कहेंग, सुनो।(212)

26. देहे चतुर्णां पीठानां स्थितयः = देह में चार पीठों की स्थिति –

मूलाधारे कामराजं जालन्धरमनाहते।
आज्ञायां च पूर्णगिरिमुड्डयानं ब्रह्मरन्ध्रके।।213।।

मूलाधार में कामराजपीठ, अनाहत में जालन्धरपीठ, आज्ञा में पूर्णगिरी पीठ और ब्रह्मरन्ध्र में उड्डयानपीठ स्थित हैं।(213)

चत्वारि पीठान्येतानि देहे तिष्ठन्ति सर्वतः।
आराधनां विधायैषां मुक्तो भवति मानवः।।214।।

देह में (सब प्रकार से विचारकर यह निश्चित होता है कि) ये चार पीठ ही हैं। इनके आराधना करने पर मानव मुक्त होता है।(214)

27. देहे शाम्भवीशाम्भवानां स्थितयः=देह में शाम्भवीशाम्भवों के स्थिति –

परेश्वर्या युतस्तिष्ठत्याज्ञाचक्रे परेश्वरः ।
विश्वेश्वर्या च सहितो विश्वेशस्तु विशुद्धके।।215।।

परेश्वरी सहित परेश्वर आज्ञाचक्र में स्थित हैं तथा विश्वेश्वरी सहित विश्वेश्वर विशुद्ध चक्र में स्थित हैं।(215)

हंसेश्वर्याऽनाहते च हंसेशः सह तिष्ठति।
संवर्तेश्या च मणिके संवर्तेशः सह स्थितः।।216।।

हंसेश्वरी सहित हंसेश्वर अनाहत में स्थित हैं। संवर्तेशी सहित संवर्तेश मणिपूर में विराजमान हैं।(216)

द्वीपेश्वरीद्वीपनाथौ स्वाधिष्ठाने विराजतः।
नवात्मकेश्वर्या युक्तो मूलाधारे विराजते।।217।।
नवात्मकेश्वरो नित्यं शाम्भवो योगसिद्धिदः।
षडन्वयेश्वरीयुक्तः षडन्वयविभुस्तथा।।218।।

द्वीपेश्वरी सहित द्वीपनाथ स्वाधिष्ठान में विराजमान हैं। नवात्मकेश्वरी सहित नवात्मकेश्वर नित्य ही मूलाधार में स्थित शाम्भव हैं जो सकल योगसिद्धि प्रदायक हैं। षडन्वयेश्वरी से युक्त षडन्वयेश्वर सहस्रार में स्थित हैं। इस प्रकार मनुष्यों में शाम्भवियों के साथ शाम्भवगण जिस प्रकार स्थित हैं वह क्रम महात्माओं द्वारा कहा गया वह यहाँ बताया गया।(217-219)

सहस्रारे स्थितो नृणामिति प्रोक्तं महात्मभिः।
शाम्भव्यः शाम्भवा देहे यथा तिष्ठन्ति तत्क्रमः।।219।।

28. देहे बिन्दुनादमहालिंगानां स्थितयः = देह में बिन्दु, नाद और महालिंगों की स्थिति –

आज्ञाचक्रे भवेद् बिन्दुर्नादः स्यात्तत उच्चकैः।
सहस्रारे महालिंगमिति योगे विभावयेत्॥220।।
एवं शिवालये देहे शिवशक्तिनिकेतनम्।
ज्ञात्वैव सर्वदा कार्या साधना तत्त्वदर्षिभिः॥221।।

आज्ञाचक्र, बिन्दु, उससे ऊपर में नाद और सहस्रार में महालिंग – ऐसे योग में वर्णित है। इस प्रकार शिवालयात्मक इस देह में शिवशक्ति का निवास को जानकर ही तत्त्वदर्शियों के द्वारा सर्वदा साधना कर्तव्य है।(220–221)

29. नादबिन्दुयोगलक्षणम् = नाद और बिन्दु के योग का लक्षण –

मणिपूरस्य पद्मस्य कर्णिकायां महारजः।
ताम्रवर्णं च भवति पूरकेण तदुन्नतम्॥222।।
कुण्डलीसहयोगेन कृत्वा पश्चात्सहस्रके।
पद्मेऽथ कर्णिकायां वै शुद्धस्फटिककान्तिना॥223।।
कोटिसूर्यप्रतीकाशतेजोरूपेण बिन्दुना।
मेलयेदेष वै नादबिन्दुयोग इतीरितः॥224।।

मणिपूर में नाद और सहस्रार में बिन्दु रहता है। इन दोनों के योग (मिलन) करने की विधि मणिपूर चक्र में ताम्रवर्ण का महारज (नाद) को पूरक के द्वारा कुण्डलिनीशक्ति का सहयोग से ऊर्ध्वगति प्रदान करके सहस्रार चक्र के कर्णिका में विद्यमान शुद्ध स्फटिक के कान्ति जैसे एवं कोटिसूर्य का तेजोमय प्रकाश सदृश विद्यामन बिन्दु के साथ मिलायें। यही नाद–बिन्दु का योग है। (222–224)

योगिनः साधना सूक्ष्माऽपीयमेवास्ति वर्णिता।
वीर्यमास्ते प्राणशक्तिस्तन्नाशे ह्रसतीह सा।।225।।

यह साधना अत्यन्त सूक्ष्म होने पर भी योगियों केलये ही वर्णित है, क्योंकि वीर्य ही प्राणशक्ति है, उसके नाश होने से साधना से साधक नीचे गिरता ही है।(225)

30. महारजोवीर्ययोगलक्षणम् = महारज और वीर्य के योग का लक्षण –

अपानशक्तेरुत्थानादुदानाग्नेश्च योगतः।
वीर्यस्य प्राणशक्तिस्तु प्रभवत्यूर्ध्वगामिनी।।226।।

अपानशक्ति को ऊपर की ओर उठाने से उदराग्नि का योग से वीर्य के साथ प्राणशक्ति ऊर्ध्वगामी होती है।(226)

न वै स्खलति तद्वीर्यं योगिनस्तादृशस्य च।
उदानवेगस्य बलात्स्वप्नदोषादिषु स्रुतम्।।227।।

इस प्रकार का योगी के वीर्य का स्खलन कभी नहीं होगा। उदानवायु का वेग के बलपर ही स्वप्नदोष आदि में वीर्य स्खलित होता है।(227)

वीर्यं तदुष्णता शक्त्या योनिस्थानस्थितेन वै।
रुधिरेण सम्मिलति प्राणवेगश्च तद्बलात्।।228।।

वीर्य, उसकी गर्मी और योनिस्थान में स्थित शक्ति – ये तीनों जब खून के साथ मिल जाते हैं तब प्राण का वेग के सहयोग से वीर्य–स्खलन होता है।(228)

सुषुम्नायामूर्ध्वगतिं क्रियते क्रिययाऽनया।
महारजोवीर्ययोगो यतिभिः कथितो मुदा।।229।।

उक्त क्रिया से जब वीर्य का सुषुम्ना में ऊर्ध्वगति प्राप्त होती है तो उसको योगियों ने 'महास्वोवीर्ययोग' कहा है।(229)

गुरुं च देवतां मन्त्रं तथा स्वात्मानमेव च।
एकीभूतमिदं सर्वं ध्येयं षोडशचक्रके।।230।।

षोडशचक्रवाले शरीर में गुरु, देवता, मन्त्र और खुद इन सब का एकीभूत होने की भावना = ध्यान करें।(230)

गुरूपदेशमार्गेण सहसैव प्रकाशते।
स्थूलं सूक्ष्मं परं चेति त्रिविधं ब्रह्मणो वपुः।।231।।

गुरु के द्वारा उपदिष्ट मार्ग (साधना) से ब्रह्म (आत्मा) का तीन शरीर – स्थूल, सूक्ष्म और पर(कारण) – सहसा प्रकाशित होते हैं।(231)

अणिमादिकमैश्वर्यमचिरं तस्य जायते।
नास्ति क्रमात्परो मन्त्रो न देवः स्वात्मनः परः।।232।।

अणिमा आदि ऐश्वर्य शीघ्र ही उसमें उत्पन्न होंगे क्योंकि क्रमदीक्षा से बड़कर न मन्त्र, न देवता, न स्वात्मा ही है।(232)

सर्वज्ञं सर्वगं शान्तं सर्वेषां हृदये स्थितम्।
सुरैरवेद्यं श्रीगुरुं ध्यायस्व यतचेतसा।।233।।

एकाग्र चित्त से सभी के हृदय में ही विराजमान देवताओं के द्वारा भी अवेद्य, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, शान्त श्रीगुरु का ध्यान करें।(233)

भिक्षाटनं जपः स्नानं ध्यानं शौचं सुरार्चनम्।
कर्तव्यानि षडेतानि सर्वथा नृपदण्डवत्।।234।।

भिक्षाटन, जप, स्नान, ध्यान, शौच और देवपूजा – इन छह कर्मो को अवश्य करना चाहिये राजाज्ञा (गुर्वाज्ञा) के समान।(234)

प्रणवश्च मात्राश्चैव शक्तयो ध्यानजपे च।
कर्तव्यानि षडेतानि तारमात्राप्रचिन्तनम्।।235।।

प्रणव, उसकी मात्रायें और उसकी शक्तियाँ – इन तीनों के ध्यान और जप अर्थात् इन छह कर्म को अवश्य करना चाहिये प्रणव के चिन्तन सहित।(235)

31. मस्तिष्कशरीरनाडीनां विवरणानि = मस्तिष्क, शरीर और नाड़ियों के विवरण –

मानवस्य शरीरेऽस्मिन् पंचस्थानेषु सर्वदा।
सम्पूर्णावयवानां च चिकित्सा हि विधीयते।।236।।

मानव के इस शरीर में 5 (अथवा 9) स्थानों में सदा संपूर्ण अवयवों की चिकित्सा का विधान किया गया है।(236)

तदाऽस्मिन् प्रथमे स्थाने शरीरे पादनामके।
मेरुदण्डस्थितं पूर्णं नाडीचक्रं च प्रसृतम्।।237।।

इस शरीर में प्रथम स्थान 'पाद' (पैर)है, जिसमें मेरुदण्डस्थ संपूर्ण नाड़ी समूह नीचे की ओर गई हुई है।(237)

अस्मादधोमुखीधारा चोर्ध्वगा जायते तदा।
पादान्मस्तकपर्यन्तं द्वितीयं स्थानमुच्यते ।।238।।

इसलिये यह अधोमुखी धारा ही प्रथम स्थान है। ठीक इसके विपरीत पैर से मस्तिष्कपर्यन्त ऊर्ध्व धारा नाड़ियों की जो है वह द्वितीय स्थान है।(238)

हस्तयोः कर्णयोश्चक्षुस्तृतीयं स्थानमुच्यते।
स्थानं तुरीयं मस्तिष्के कथितं शास्त्रकोविदैः।।239।।

दोनों हाथ, दोनों कान, दोनों चक्षुः – इन्हें तृतीय स्थान कहा गया है। शास्त्रवेत्ताओं ने मस्तिष्क को ही चौथा स्थान कहा है।(239)

तदस्य पंचमं स्थानमनाहतमितीरितम्।
तत्रस्थं हि शरीरं तद्विपरीतमधोमुखम् ।।240।।
शिरश्चाध:स्थितं नित्यं पादावुपरि संस्थितौ।
एषु पंचसु स्थानेषु चांगमुपरि संस्थितम्।।241।।

अनाहत को उस इस शरीर का पाँचवाँ स्थान कहा गया है। उसी में ही यह शरीर स्थित है। उसके विपरीत अधोमुख शरीर कहा गया, जो ऐसे है - सिर नित्य ही नीचे है और पैर ऊपर है। यही विपरीत शरीर है। इन पाँच स्थानों से सम्बद्ध अंग ही शरीर का प्रमुख अवयव है जिसमें शरीर स्थित है।(240-241)

कथ्यतेऽवयवो लोके शास्त्रदृग्भिर्विचक्षणैः।
एतच्छरीरं देहस्य सम्पूर्णस्य प्रचालकम् ।।242।।

वास्तव में यह मस्तिष्क ही असली अवयव है इस लोक में -ऐसे शास्त्र दृष्टिवाले विद्वानों का कहना है क्योंकि संपूर्ण देह का संचालक होने से यही शरीर है।(242)

मूलाधारात्सहस्रारपर्यन्तं चक्रवर्णनम् ।
यथा योगे तथा देहे चक्राणि प्रभवन्ति वै।।243।।

जैसे योग शास्त्र में मूलाधार से सहस्रार पर्यन्त जिन चक्रों का वर्णन किया गया है वे सब चक्र इस शरीर में ही स्थित हैं और वे प्रभाव युक्त हैं।(243)

परकायचिकित्सायां शल्यदाहौषधिस्तथा ।
सूचीवेधक्वाथचापचिकित्साः सन्ति निश्चिताः।।244।।

दूसरे के शरीर की चिकित्सा में शल्य, दाह, औषधियाँ, सूचीवेधन, क्वाथ और चापचिकित्सा (चाप चिकित्सा एक स्वतन्त्र चिकित्सा पद्धति है) आदि अनेक प्रकार के साधन भेद हैं।(244)

यदि पूर्ण शरीरं हि पादे समवतिष्ठते।
कथं न म्रियते तर्हि पादच्छेदेन मानवः?।।245।।

यदि संपूर्ण शरीर ही को पैर में ही (एक अंग में ही) समवस्थित है (ऐसे माने) तो पैर काटने पर यह मनुष्य क्यों नहीं मरता है।(245)

सन्ति संकुचिता नाड्यः परा विकसितास्तथा।
आघातेन समं चैताः संकुचन्ति प्रयत्नतः ।।246।।

कुछ नाड़ी संकुचित (सूक्ष्म) और अन्य कुछ विकसित (स्थूल) होते हैं। आघात आदि होने पर स्थूल नाड़ियाँ अंग के नष्ट होने पर भले ही नष्ट जो जायें लेकिन सूक्ष्मनाड़ियाँ शेष शरीर में संकोच कर रह जाती हैं। (246)

शरीरे विद्यते नाडी पुनर्जीवनकारिणी।
आघातेन समं चैषा द्रुतं संकोचमेष्यति।।247।।

शरीर में प्रमुख 31 नाड़ियों में से पुनर्जीवनकारिणी नाड़ी भी है, वह आधार होने के साथ-साथ शीघ्र ही संकुचित हो जाती है।(247)

यदि संकुचिता न स्यान्नाडी जीवनकारिणी।
तदा मृत्युर्भवत्येव प्राणिनो नात्र संशयः।।248।।

यदि पुनर्जीवनकारिणी नाड़ी संकुचित न होवे तब तो निश्चित रूप से मनुष्य का शरीर मर ही जायेगा, इस में कोई संशय नहीं।(248)

विचित्रश्चित्रकारेण केनायं मस्तकः कृतः।
सूक्ष्मचित्कोषसंयुक्तो भिन्नाकारलयात्मकः।।249।।

कौन से कलाकार के द्वारा यह विचित्र मस्तिष्क बनाया गया है। अन्यन्त सूक्ष्मकोष से संयुक्त है और जाग्रत-स्वप्न रूपी भिन्नाकार को प्राप्त होकर अन्त में लय स्वभाववाला है।(249)

लूताजालमिवाबद्धो नाडीभिः सूक्ष्मतन्तुभिः।
अस्य संरचनां वीक्ष्य विस्मयो जायते महान्।।250।।

लूता (कीटविशेष) का जाल के समान बन्धा हुआ। सूक्ष्मतन्तुओं के समान नाड़ियों से परस्पर बन्धा हुआ है। इसकी संरचना को देखकर महान् आश्चर्य होता है।(250)

मस्तिष्काद्धि ऋते किंचित्कर्म कर्तुं न शक्यते।
सर्वाः क्रियाः प्रवर्तन्ते मस्तिष्कस्य प्रभावतः।।251।।

सक्रिय मस्तिष्क के विना कुछ भी कर्म (कार्य) करना सम्भव नहीं, क्योंकि सक्रिय मस्तिष्क के प्रभाव से ही सारी क्रियायें होती हैं।(251)

यत्किंचिज्ज्ञानविज्ञानं दृश्यते सर्वतोमुखम्।
समुद्भूतं मस्तकाद्धि मस्तके प्रविलीयते।।252।।

जो कुछ भी ज्ञान-विज्ञान सब प्रकार का अनुभव में आता है वे सब मस्तिष्क से उत्पन्न होकर मस्तिष्क में ही विलय हो जाते हैं।(252)

संदृश्यते जगत्सर्वं यत्किंचिद्धि प्रपंचितम्।
तत्सर्वं मस्तकस्यास्ति विषयः सर्वतोमुखः।।253।।

जो कुछ भी इस प्रपंच (जगत्) का विस्तार हम अनुभव करते हैं वे सब सबप्रकार से मस्तिष्क का ही विषय है।(253)

स्थूलदृष्ट्या शरीरस्य मस्तकोऽस्ति प्रचालकः।
परं संसारचक्रस्य सूक्ष्मदृष्ट्या प्रचालकः।।254।।

स्थूल दृष्टि से देखें तो लगता है कि केवल इस शरीर का संचालक मस्तिष्क ही है। किन्तु वास्तव में सूक्ष्मदृष्टि से देखें तो निश्चय होता है की इस संसार चक्र का संचालक भी मस्तिष्क ही है।(254)

अक्षोटकसमः स्थूलः पंचभूतप्रपंचितः।
विभक्तः सप्तभागेशु मानवस्यास्ति मस्तकः।।255।।

पंचभूतों से बना हुआ, अखरोट के आकार के समान आकारवाला स्थूल पिण्डविशेष (नाड़ी व मांसमयी जाल) सात भागों में विभक्त मानव का मस्तिष्क होता है।(255)

तेषां नामानि कार्याणि सर्वाणि च पृथक्पृथक्।
भिन्नभागविभक्तोऽपि संयुक्तो भिन्नशक्तिभिः।।256।।

उन सात विभागों के नामों व कार्यो को अलग-अलग समझें। वे भिन्न-भिन्न भागों में विभक्त होते हुये विभिन्न शक्तियों से संयुक्त हैं।(256)

सप्तभागविभक्तोऽपि सव्यवामेति नामतः।
द्वावेव भागौ प्रमुखौ मस्कस्य विशेषतः।।257।।

सात भागों में विभक्त होने पर भी दाहिने और बायें नाम से मस्तिष्क का विशेषतः दो ही प्रमुख भाग माना गया है।(257)

द्वाभ्यां कराभ्यां यः कश्चित्स्वकार्यं कुरुते नरः।
क्रियाशीलौ मनुष्यस्य तस्य द्वावेव मस्तकौ।।258।।

जब दो हाथों से (या एक हाथ से भी) जो स्वकर्म (अपना कार्य) करता है यह मनुष्य तब इस मनुष्य के मस्तिष्क ये दोनों भाग क्रियाशील रहते हैं।(258)

योऽस्यास्ति प्रथमो भागः सप्तभागेषु विश्रुतः।
विभक्तो ह्यूनपंचाशद्भागेषु च विशेषतः।।259।।

(एवं अन्तर्बहिः सकलेन्द्रियों से होनेवाले कार्यकलाप मस्तिष्क की सक्रियता से ही संपन्न होते हैं।) उक्त विश्रुत सात भागों में से जो प्रथम भाग है वह विशेषतः 50 से कुछ कम भागों (49) में विभक्त है।(259)

चत्वारिंशच्च द्वौ भागाः सर्वेषां कार्यसाधकाः।
अवशिष्टाः सप्तभागाः षड्भिः कार्यं प्रकुर्वते।।260।।

उन में से 42 भाग सब प्रकार के कार्य के साधक (सर्वसामान्य करण) हैं, अवशिष्ट 7 भागों से 6 ज्ञानेन्द्रियों के कार्य करते हैं।(260)

चतुष्षष्टिविभागेषु विभक्तोऽयं द्वितीयकः ।
कलादीक्षास्तथा मात्राश्चास्मिन् भागे प्रतिष्ठिताः।।261।।

यह द्वितीय भाग पुनः 64 भागों में विभक्त है, इस भाग में कलायें 964 (विद्यायें), दीक्षा और मात्रायें (अकारादि) प्रतिष्ठित हैं।(261)

सप्तधा हि विभक्तोऽयं तृतीयो भागनामकः।
यस्मिंश्च सप्तभागेषु शक्तयः सप्तसंस्थिताः।।262।।

यह तीसरा भाग 7 भागों में विभक्त है, जिन सात भागों में 7 प्रकार के शक्तियाँ संस्थित हैं।(262)

अयं भागः सप्तशत्याश्चरित्रमुत्तमं स्मृतम्।
नवाध्यायेशु यस्मिन्वै संस्थिता नवशक्तयः।।263।।
अस्य सप्त प्रधानाश्च नायिकाः सम्प्रकीर्तिताः।
वायव्याम्नायनैर्ऋत्यश्चास्मिन्सम्मिलितः खलु ।।264।।

यह भाग सप्तशति के उत्तम चरित्र है – ऐसे कहा गया है, नौ अध्यायों में जो नौ शक्तियाँ संस्थित हैं, उनमें से सात ही प्रधान और सर्वकार्य सम्पादन करनेवाली मानी गयी हैं। इसमें वायाव्याम्नाय और नैर्ऋत्याम्नाय सम्मिलित हैं। (263-264)

चतुर्थभागश्चास्यास्तिविभक्तः षड्विधः स्मृतः।
अस्मिन्नरशरीरस्य षट्चक्राणि सन्ति वै ।।265।।

इसका (मस्तिष्क का) चौथा भाग 6 भागों में विभक्त है। जिनके सीधे सम्बन्ध इस मनुष्य शरीर के षट् चक्रों से है।(266)

योऽस्यास्ति पंचमो भागो विभक्तः सोऽपि सप्तधा।
अस्यापि समधिष्ठात्र्यः शक्तयः सप्त कीर्तिताः।।266।।
अस्मिन् भागे सप्तशत्याः शक्तयः सप्त संस्थिताः।
चतस्रस्तिस्रः संख्याकाश्चादिमध्यमयोः क्रमात्।।267।।

जो इसका (मस्तिष्क का) पांचवाँ भाग है वह भी सातभागों में विभक्त है। इनके अतिष्ठात्री देवियाँ भी सात शक्ति कहे गये हैं। इस भाग में सप्तशती कि सात शक्तियां संस्थित है।। जिनमें से क्रमशः प्रथम (आदि) चरित्र के चार और मध्यम चरित्र के तीन हैं।(266-267)

षष्ठो भागोऽस्ति यः सोऽपि विभक्तः पंचधा स्मृतः।
ज्ञानयोगक्रियाचर्यासाक्षात्कारं बिभर्त्यसौ ।।268।।

मस्तिष्क का जो छठा भाग है उसमें भी पाँच भाग है। जो ज्ञान, योग, क्रिया, चर्या और साक्षात्कार को धारण की हुई है।(269)

योऽस्यास्ति सप्तमो भागो विभक्तोऽस्ति द्विभागयोः।
झिण्टीशो भौतिकः सद्योजातश्चानुग्रहेश्वरः।
अक्रूरश्च महासेनः स्युरेताः स्वरमूर्तयः ।।270।।

जो इस (मस्तिष्क) का सातवाँ भाग है वह दो भागों में विभक्त है, जिसका एक भाग शरीर का मध्य से और दूसरा लिंग (जननेन्द्रिय प्रदेश) से संबद्ध है। इस सप्तम भाग में विद्युत पुन्ज प्रतिष्ठित है।

ततः क्रोधीशचण्डेशपंचान्तकशिवोत्तमाः ।
तथैकरुद्रकूर्मैकनेत्राख्यचतुराननाः।।

वह विद्युत्पुंज संपूर्ण चराचर जगत् को प्रकाशित करता है। पूर्वोक्त सप्तमभाग के दो भागों में माधुर्या और ऐश्वर्या नामक दो शक्तियाँ है।(270)

ऐश्वर्यनामिकाशक्तेः कार्यमस्ति तथाऽद्भुतम्।
अणिमामहिमादीनां शक्तीनां च प्रदर्शनम् ।।271।।

ऐश्वर्या नामक शक्ति का कार्य अद्भुत है, क्योंकि यह अणिमा-महिमा आदि सिद्धिरूपी शक्तियों को अनुभव कराती है।(271)

माधुर्यनामिकाशक्तेः कार्यमेवास्ति सर्वतः।
भ्रमस्योत्पादनं लोके भूतबाधानिवारणम्।।272।।

जब की माधुर्या नामक शक्ति का मुख्य कार्य है कि इस लोक में सब प्रकार से भ्रम उत्पन्न करना और भूतबाधा आदि का निवारण न करना।(272)

मस्तकान्निर्गताः नाड्यः पादावंगुष्ठेहि लम्बिताः।
मेरुदण्डं समाश्रित्य स्वकार्यकरणे रताः।।273।।

मस्तिष्क से निकलती हुई नाड़ियाँ मेरुदण्ड के सहारे अपने-अपने कार्य करने में लगे हुये पादांगुष्ठ पर्यन्त फैली हुई हैं।(273)

समस्तनाडीसंस्थानं शक्तिकेन्द्रं शरीरिणाम्।
मेरुदण्डस्य मध्यं हि सुस्थितं च विराजते।।274।।

इन जीवों का शक्तिकेन्द्र तथा समस्तनाड़ी संस्थान मेरुदण्ड में आश्रित होकर ही अपने-अपने कार्य करने में लगे हुए हैं।(274)

भौतिकस्य शरीरस्य स्थूला सूक्ष्मा च प्रक्रिया।
नाडीसंस्थानयोगेन सर्वदा हि प्रवर्तते।।275।।

इस भौतिक शरीर की समस्त सूक्ष्म और स्थूल क्रियायें नाड़ीसंस्थानयोग से ही सर्वदा प्रवृत्त होते हैं।(275)

मानवस्य शरीरेऽस्मिंल्लूताजालमिवावृताः ।
सार्धस्त्रिकोट्यो नाड्यश्च सर्वतः सन्ति संकुलाः।।276।।

मानव के इस शरीर में लूता (कीटविशेष) का जाल के समान साढ़ेतीन करोड़ नाड़ियाँ खचाखच व्याप्त हैं।(276)

द्विसप्ततिसहस्राश्च मुख्या नाड्यः प्रकीर्तिताः।
तासु नाडीषु प्रमुखाः द्विसप्तत्यः शरीरिणाम्।।277।।

उनमें से 72000 नाड़ियाँ प्रमुख कहे गये हैं। उनमें से भी केवल 72 नाड़ी मुख्य है इस जीव के जीवन के लिये।(277)

रक्तस्य शोधनं पूर्णे शरीरे रक्तप्रापणम्।
प्राणतत्त्वस्य ग्रहणं नाडीकार्यं हि वर्तते।।278।।

रक्त का शोधन करने तथा पूरे शरीर में रक्त पहुँचाने के लिये प्राण तत्त्व का ग्रहण करना भी नाड़ियों का ही कार्य है।(278)

नूनं नियन्त्रिता नाड्यः सर्वकामदुघा मताः।
सम्यङ् नियमनाल्लोके किन्न कर्तुं क्षमो नरः।।279।।

निश्चितरूप से नाड़ियाँ नियन्त्रित हो तो वे सकल कामनाओं को दोहन करने वाली होंगी। उनके सम्यक्प्रकार से नियमन करने पर इस लोक में क्या करने में सक्षम नहीं होगा यह मनुष्य। अर्थात् सब कुछ करने में समर्थ होगा।(279)

मस्तकस्य विभागाभ्यां द्वात्रिंशत्क्रमपूर्वकम्।
शरीराधः प्रगच्छन्त्यश्चक्रनिर्माणतत्पराः ।।280।।

मस्तिष्क का दो विभाग (दायां व बायां) के अनुसार 32-32 क्रमपूर्वक चक्रों का निर्माण करने तत्पर होकर शरीर के नीचे की ओर जाते हैं।(280)

तत्सर्वं प्रथमं नाड्यो द्वात्रिंशच्च पृथक्पृथक्।
संगता ललनाचक्रे चतुःषष्ट्यो भवन्ति ताः।।281।।

32-32 पृथक्-पृथक् नाड़ियाँ सबसे पहले ललना चक्र के निर्माण के लिये ललनाचक्र के स्थान में एकत्रित होकर वे 64 नाड़ियाँ होते हैं।(281)

यदा ता ललनाचक्राद्विशुद्धं प्रतियान्ति हि।
तदा षोडशसंख्याका नाड्यो न्यूना भवन्ति वै।।282।।

जब वे ललनाचक्र से विशुद्धचक्र के स्थान की ओर गमन करते हैं तब 16 नाड़ियाँ कम हो जाती हैं। अर्थात् 48 नाड़ियाँ रह जाते हैं।(282)

वायव्यकोणचक्रात्तु तदा नाड्यश्चतुर्दश।
आगत्य मिलितास्ताश्च जायन्ते क्रमपूर्वकम्।।283।।

लेकिन वायव्यकोणचक्र से 14 नाड़ियाँ आकर मिलके पुनः क्रमपूर्वक 62 हो जाते हैं।(283)

न्यूना द्वादशसंख्याका अनाहतपद्मनामके।
नैर्ऋत्यकोणादागत्य मिलन्त्येकादश पुनः।।284।।

क्रमपूर्वक जब विशुद्ध से अनाहतचक्र के स्थान की ओर जाते हैं तब 12 नाड़ियाँ कम हो जाती हैं। अर्थात् 56 नाड़ियाँ रह जाते हैं। लेकिन नैर्ऋत्यकोणचक्र से 11 नाड़ियाँ आकर मिलने से पुनः 61 हो जाते हैं।(284)

मणिपूरनामके चक्रे न्यूना नाड्यश्च या दश।
अष्टौ चाग्नेयाकाणाद्वै समागत्य मिलन्ति हि।।285।।

क्रमशः जब अनाहत से मणिपूर चक्र के स्थान की ओर जाती हैं तब 10 नाड़ियाँ कम हो जाती हैं। अर्थात् 51 ही पहुँचते हैं। लेकिन 8 नाड़ियाँ आग्नेयकोणचक्र से आकर मिलने से कुल 59 नाड़ियाँ रह जाती हैं।(285)

स्वाधिष्ठाने हि चक्रेऽस्मिन्न्यूनाः षड् याः प्रकीर्तिताः।
ईशानकोणचक्राद्धि मिलन्त्येकादश पुनः ।।286।।

जब स्वाधिष्ठान चक्र के स्थान की ओर मणिपूर से जाने लगती हैं तब छह नाड़ी कम हो जाती हैं, अर्थात् 53 नाड़ियाँ पहुँचती हैं। लेकिन ईशानकोणचक्र से 11 नाड़ियाँ आकर मिलने से पुनः वे 64 हो जाती हैं।(286)

मूलाधारे चतस्रस्ता न्यूना नाड्यः प्रकीर्तिताः।
आज्ञाचक्रे तु द्वे नाड्यौ न्यूने जाते स्वभावतः।।287।।

मूलाधार में पहुंचने पर 4 कम हो जाती हैं और आज्ञा चक्र में दो नाड़ी कम हो जाती हैं, स्वभाव से ही ऐसा होता है।(287)

अष्टौ नाड्यश्च मिलिताश्चक्रेऽस्मिन्विषुनामके।
षट् तदा कुलचक्रे तु ह्येता नाड्यश्च संगताः।।288।।

इस मूलाधार से नीचे में स्थित विशुनामक चक्र में 8 नाड़ियाँ मिलते हैं। तथा कुलनामक चक्र में ये छः (6) नाड़ियाँ मिलते हैं।(288)

इत्थं मुख्या द्विसप्तत्यो मस्तकाद्धि विनिर्गताः।
मेरुदण्डस्थिता नाड्यो जीवदेहनियन्त्रिताः ।।289।।

इस प्रकार मुख्यरूप से कुल 72 नाड़ियाँ मस्तिष्क से निकलते हैं। मेरुदण्ड में स्थित नाड़ियाँ जीव और देह से नियन्त्रित हैं।(289)

अतिसूक्ष्माः प्रसर्पन्ति सुप्ता नाड्यः प्रयत्नतः।
योगेनोद्बोधिता नाड्यः प्रबोधं यान्ति ताः खलु।।290।।

वे सब अतिसूक्ष्म हैं और निरन्तर प्रवाह युक्त हैं, फिर भी (ज्ञान दृष्टि से) वे नाड़ियाँ सुप्त हैं। प्रयत्नपूर्वक योग से जब हम इन्हें जगायेंगे वे निश्चित रूप से जगेंगे।(290)

भवन्ति योगेन यदा सुप्ता नाड्यो नियन्त्रिताः।
अभीष्टकार्यसिद्ध्यर्थं नाडीतन्त्रं प्रबुध्यते ।।291।।

ये सुप्तनाड़ियाँ जब योग से नियन्त्रित होंगे तब अभीष्टकार्य की सिद्धि के लिये नाड़ी तन्त्र का जागृति के साथ प्रयोग किया जा सकता है।(291)

कार्यं सम्पाद्य सा नाडी स्वयमेव नियन्त्रिता।
स्वस्वभावस्थिता सौम्या जायते नात्र संशयः।।292।।

कार्य सम्पादन करके वे नाड़ियाँ स्वयं नियन्त्रित होकर अपनी-अपनी सौम्य स्वभाव में स्थित हो जाते हैं। इसमें संशय नहीं।(292)

चैतन्यभावमापन्ना नाडी यत्नेन चैकदा।
कामं शान्ता प्रजायेत परं सुप्ता न जायते।।293।।

प्रयत्न से एक बार भी नाड़ी चैतन्यभाव को प्राप्त कर जाये तो वे निश्चितरूप से शान्त भाव को प्राप्त होते हैं और दो बारा सो नहीं जाते।(293)

सूक्ष्मवीक्षणयन्त्रेण यत्नतो वीक्षणादपि।
लूताजालानि लक्ष्यन्ते सम्पृक्तानि समन्ततः।।294।।

सूक्ष्मदर्शिका यन्त्र (microscope) के द्वारा यत्न पूर्वक देखे जाने पर भी लूताजाल के समान पूरे शरीर में परस्पर सम्बद्ध होकर व्याप्त दिखाई देते हैं।(294)

लूतेव नाडिका व्याप्ताः यथोक्ताश्च शरीरिणाम्।
अधश्चोर्ध्वं गताः नाड्यो द्विसप्ततिसंख्यकाः।।295।।

लूताजाल के समान नाड़ियाँ व्याप्त हैं। शरीर के यथोक्त कुल 72 संख्यावाले नाड़ियाँ ऊपर और नीचे की ओर व्याप्त हैं।(295)

आमूलं तत्क्रमं वक्ष्ये शास्त्रोक्तं तन्त्रसम्मतम्।
तदेव योगतन्त्रं यस्तज्जानाति स वेदवित्।।296।।

शास्त्रोक्त और तन्त्र सम्मत उस क्रम को मूलसहित बताऊँगा। वही योगतन्त्र है, जो उसे जानता है वह वेदवित् है।(296)

त्रिपुराया यास्तु नाड्यो नित्याः षड्दर्शनसंख्यकाः।
नाड्यः पंचदश प्राहुः काली नित्या सुविश्रुता ।।297।।

त्रिपुरा की नित्या 16 नाड़ियाँ होते हैं (सुन्दरीकल्प के अनुसार) किन्तु कालीकल्प में नित्या 15 नाड़ियाँ ही सम्यक् श्रुत हैं।(297)

एका तु शाम्भवी नाडी ललनातश्च जायते।
परिव्याप्तं सहस्रारे द्वात्रिंशत्तच्च जालकम्।।298।।

ललना से निकलती हुई एक नाड़ी है जिसका नाम है शाम्भवी। वह सहस्रार में 32 नाड़ियों का जाल बुनकर पूर्णतया व्याप्त है।(298)

आरोहावरोहतस्ताश्चतुःषष्टिर्यतो मताः ।
आज्ञायां विशतो द्वे च विशुद्धे चैव षोडश।।299।।

आरोह और अवरोह भेद से वे 32 गुणा 2 = 64 हो जाते हैं। आज्ञाचक्र में 64 में से 2 नाड़ी प्रवेश करती हें और विशुद्ध चक्र में भी 64 में से 16 नाड़ियाँ प्रवेश करती हैं।(299)

अधोमुखविशुद्धाच्च निर्गच्छन्ति चतुर्दश।
अनाहते विशन्त्येव नाड्यो द्वादशसंख्यकाः।।300।।

अधोमुख विशुद्ध चक्र से उक्त 64 से अतिरिक्त 14 नाड़ियाँ निकलती हैं। अनाहत चक्र में 64 में से 12 नाड़ियाँ प्रवेश करती हैं।(300)

तदधोमुखतश्चैव लसन्त्येकादशैव ताः।
विशन्ति दश नाड्यस्तु चक्रे वै मणिपूरके।301।।

अधोमुख अनाहत चक्र से (उक्त 64 से भिन्न) 11 नाड़ियाँ निकलती हैं। मणिपूरक चक्र में 64 में से 10 नाड़ियाँ प्रवेश करती हैं।(301)

तदधोमुखतश्चैता अष्टनाड्यो भवन्ति वै।
स्वाधिष्ठाने तु शड् नाड्यः पुनश्चक्रे विशन्ति च।।302।।

अधोमुख मणिपुर चक्र से (64 से भिन्न) 8 नाड़ियाँ निकलती हैं। स्वाधिष्ठान चक्र में 64 में से 6 नाड़ियाँ प्रवेश करती हैं।(302)

तदधोमुखतश्चैवमेकादश भवन्ति वै।
मूलाधारे चतस्रश्च नाड्यस्तु प्रविशन्ति च।।303।।

अधोमुख स्वाधिष्ठान चक्र से 11 नाड़ियाँ निकलती हैं। मूलाधार चक्र में 64 में से 4 नाड़ियाँ प्रवेश करती हैं। [मस्तिष्क से निकलकर ऊर्ध्वमुखी 8 चक्रों में (आज्ञा- 2, विशुद्ध-16, अनाहत- 12, मणिपूर-10, स्वाधिष्ठान- 6, मूलाधार-4,

विषु–8 और कुल – 6 = 64) कुलमिलाकर 64 नाड़ियाँ प्रवेश करती हैं। तथा अधोमुखी 4 चक्रों से (विशुद्ध–14, अनाहत–11, मणिपूर– 8 और स्वाधिष्ठान–11 = 44) कुल मिलाकर 44 नाड़ियाँ निकलती हैं। दोनों मिलाकर 64 + 44 = 108 हुये।] इस प्रकार चक्रों में प्रवेश करती हैं और निकलती हैं।(303)

विषुचक्रेऽष्टनाड्यस्तु नाड्यः षट् च कुले तथा।
आविर्भवन्ति चक्रेषु प्रविशन्ति यथाक्रमम्।।304।।

विषुचक्र में भी 64 में से 8 नाड़ियाँ और कुलचक्र में भी 64 में से 6 नाड़ियाँ आविर्भूत होकर यथाक्रम प्रवेश करती हैं।(304)

ताभ्यश्चैकसहस्रन्तु शाखाः प्राहुर्विचक्षणाः।
द्विसप्ततिसहस्रं च नाडीनां जालकं भवेत्।।305।।

उनसे 1000 शाखायें निकलते हैं– ऐसे विद्वान लोग कहते हैं, जिससे 72000 हजार नाड़ियों का जाल होता है।(305)

पंचाशद्वै सहस्रन्तु नाड्यः सन्ति सहायिकाः।
एताश्च सहयोगिन्यः सदा कार्यं प्रकुर्वते।।306।।

पूर्व में कहे अनुसार इस शरीर में कुल 3,50,000 नाड़ियाँ है। अब इनको सात भाग में विभक्तकर प्रत्येक भाग 50,000 नाड़ियाँ का होता है, अब उनके कार्यादि का वर्णन करते हैं। पहला प्रभाग 50,000 नाड़ियाँ सहायिका (दासियों जैसी) होती हैं, वे सहयोगिनी नाड़ियाँ सदा सकल कार्यों को करती हैं।(306)

पंचाशद्वै सहस्रन्तु चान्यस्मिन्सम्प्रविश्य च।
नाड्यः कार्यं प्रकुर्वन्ति प्राणिनीप्राणवाहिकाः।।307।।

दूसरा प्रभाग प्राणवाली होकर प्राण को वहनकरनेवाली 50,000 नाड़ियाँ अन्य नाड़ियों में प्रविष्ट होकर कार्य करती हैं।(307)

पंचाशद्वै सहस्रन्तु परिवर्तनकारिकाः।
एता नाड्यो मनोवृत्तिं यथा परिणमन्ति ताः।।308।।

तीसरा प्रभाग परिवर्तन करने के स्वभाववाली 50,000 नाड़ियाँ मन के वृत्तियों का परिणाम करती रहती हैं।(308)

पंचाशद्वै सहस्रन्तु नाड्यः सन्ति शरीरिणाम्।
विशेषतो दूरदृष्टेः कार्यं संसाधयन्ति ताः।।309।।

चौथा प्रभाग 50,000 नाड़ियाँ ऐसी है जो विशेषतः दूरदृष्टि से युक्त कार्यों को करती हैं।(309)

पंचाशद्वै सहस्रन्तु च सन्ति नाड्यः सहायिकाः।
तत्र गत्वा हितं कार्यं द्रुतं सम्पादयन्ति ताः।।310।।

पांचवां प्रभाग 50,000 नाड़ियाँ अत्यन्त हितकारिणी होने से विषय देश में पहुँचकर (झटिति) अतिशीघ्र हितकार्य का सम्पादन करती हैं।(310)

पंचाशद्वै सहस्रन्तु नाड्यो बोधकरा मताः।
तत्तत्कार्यविधिना हि विशेषेण प्रबोधकाः।।311।।

छठी प्रविभाग 50,000 नाड़ियाँ बोध कराने के स्वाभाववाली होने से शब्दादिज्ञान के तत्तद्विधि यानि इन्द्रिय आदि प्रणालिका से विशेष रूप से ज्ञान उत्पन्न करती हैं।(311)

पंचाशद्वै सहस्रन्तु नाड्यश्चाकर्शिकाः स्मृताः।
आकर्षन्ति मनोवृत्तिं प्राणिनां नात्र संशयः।।312।।

शेष 50,000 नाड़ियाँ आकर्षणस्वभाववाली हैं, इसलिये प्राणियों के मनोवृत्ति को विषयों की ओर खींचकर ले जाती हैं।(312)

अन्याश्च सहयोगिन्यो नाड्यः सन्ति सहस्रशः।
परमाभिर्विना नैताः कार्यसम्पादनक्षमाः ।।313।।

इन (3,50,000) से अतिरिक्त और भी हजारों नाड़ियाँ हैं जो इनके विना कार्य सम्पादन करने में सक्षम नहीं हैं।(313)

आसु नाडीशु वर्तन्ते नाड्यः काश्चन विश्रुताः।
औषधीनां परिज्ञाने स्वयं हि प्रभवनित याः।।314।।

इन नाड़ियों के विषय में यह प्रसिद्धि है कि औषधियों का सम्यक् प्रयोग करने पर स्वयं ही प्रवृत्त होती हैं।(314)

परिज्ञाताश्चौषधयः कार्यं तासां प्रकुर्वते।
प्रविश्यान्यशरीरे ता भेदने योजने रताः।।315।।
ततोऽप्यस्ति च विद्याऽन्या यया भवति वै सर्वं।
सा चातिगोपनीयाऽपि तुभ्यं वक्ष्ये यथाशास्त्रम्।।316।।

सम्प्रयुक्त औषधियाँ नाड़ियों में कार्य करते हैं क्योंकि ये नाड़ियाँ एक दूसरे से मिलेकर भेदन (तोड़ने) और योजन (जोड़ने) का कार्य करते हैं। उससे

भी अलग एक दूसरी विद्या है, जिससे सब कुछ होता है। यद्यपि वह अत्यन्तगोपनीय है तथापि मैं तुम्हें उसे यथाशास्त्र बताऊँगा।(315-316)

रश्मिपंचकरूपा या षट्त्रिंशन्मन्त्ररूपिणी।
प्रतीकस्मृतिविद्या सा प्रथितागमवेदिषु।।317।।

36 मन्त्रात्मक स्वरूपवाला रश्मिपंचक जो आगम वेत्ताओं में प्रसिद्ध है, जिसे प्रतीकस्मृतिविद्या कहते हैं।(317)

प्रतीकस्मृतिविद्येयं जन्मजन्मान्तरोद्भवम्।
ज्ञानं ददाति सततं सिद्धयेच्छाम्भवविद्यया।।318।।

उस प्रतीकस्मृतिविद्या से जन्मजन्मान्तर में उत्पन्न ज्ञान प्राप्त (स्मृत) होता है। यह शाम्भव विद्या से ही सम्भव है।(318)

नाड्यः स्मरणमात्रेण प्रबुद्धा अन्यनाडिभिः।
मिलित्वाऽनेकशः सर्वाः सक्रियाः सम्भवन्ति हि।।319।।

स्मरणमात्र से नाड़ियाँ प्रबुद्ध होकर अन्य नाड़ियों के साथ अनेक प्रकार से मिलकर क्रिया सहित सब कुछ करना व होना सम्भव होता है।(319)

सूर्यवद् भ्राजते भक्तः प्रतीकस्मृतिविद्यया।
मार्गं दर्शयतीयन्तु राजमार्गवदान्तरम्।।320।।

प्रतीकस्मृतिविद्या (शाम्भवविद्या) से भक्त सूर्य के समान तेजस्वी होता है और उस भक्त को राजमार्ग के समान भीतर के मार्ग को दर्शाती है।(320)

व्यासो युधिष्ठिरायादात्स हि पार्थाय चादिशत्।
इन्द्रलोकं गतस्तस्याः पार्थो दिव्यप्रभावतः।।321।।

इस प्रतीकस्मृतिविद्या को पहले व्यास ने युधिष्ठिर को दिया था और उसने अर्जुन को दिया। जिसके दिव्य प्रभाव से अर्जुन इन्द्रलोक गया था।(321)

यानि नामानि विद्याया अस्याः सन्ति विभागशः।
तान्येव नाडीनामानि देवानां च तथैव हि।।322।।

इस विद्या के विभागशः जितने नाम है वे ही नाड़ियों के नाम है और वे ही देवताओं के नाम है।(322)

एतास्वपि च नाडीषु प्रमुखा दश संस्मृताः।
याभिः प्ररोचिता अन्या कार्यं करोति च तथा।।323।।

इन नाड़ियों में भी 10 ही प्रमुखरूप से स्मृत हैं। जिनसे प्रेरित होकर अन्य नाड़ियाँ अपनी–अपनी कार्य करती हैं।(323)

32. वीर्यसंरक्षणप्रक्रिया = वीर्यसंरक्षण करने की प्रक्रिया –

नासाभ्यां प्राणमाकृष्य ह्यपाने योजयेद् बलात्।
तावदाकुंचयेद् गुदं शनैरश्विनीमुद्रया।।324।।

अश्विनीमुद्रा के द्वारा नासिकाओं के भीतर में खींच लिया गया प्राण को बलपूर्वक (प्रयत्नपूर्वक) अपान से मिलाकर यथासम्भव गुदा का आकुंचन (संकोचन) करें।(324)

वीर्यसंरक्षणस्यान्यो विधिः सम्प्राप्यतेऽपि च।
नासामूले च मध्ये च ध्यानाद् बिन्दुः स्थिरो भवेत्।।325।।

वीर्य संरक्षण के अन्य विधियाँ भी प्राप्त हैं। जैसे की नासिका के मूल में अथवा नासिका के मध्य में ध्यान करने से बिन्दु (वीर्य) स्थिर होता है।(325)

गुरूपदिष्टमार्गेण प्रत्यहं यः समाचरेत्।
बिन्दुसिद्धिर्भवेत्तस्य महासिद्धिप्रदायिका।।326।।

गुरु के द्वारा उपदिष्ट मार्ग (साधना) जो व्यक्ति नित्य प्रति आचरण करेगा निश्चितरूप से महासिद्धि (मोक्ष) प्रदायिका बिन्दुसिद्धि को वह प्राप्त करेगा।(326)

कुण्डल्येव भवेच्छक्तिस्तां तु संचालयेद्बुधः।
स्वस्थानादाभ्रुवोर्मध्ये शक्तिचालनमुच्यते ।।327।।

कुण्डलि ही शक्ति होती है, उसे बुद्धिमान् साधक संचालित करें। स्वस्थान (कुण्डलि का स्थान = मूलाधार) से भौवों के मध्य (भ्रूकुटि) तक संचालन करने का नाम ही शक्तिसंचालन क्रिया है।(327)

तत नाड्यस्तु यावत्यस्तिर्यङ्मध्यमधः स्थिताः ।
समानेन समाकृष्टा एकीभूता भवन्ति ताः।।328।।

इसकी प्रक्रिया बताते हैं – मूलाधार में जितनी नाड़ी हैं– जो टेढ़ी, मध्य में या नीचे स्थित हैं, वे सब प्राणायाम से प्रेरित होकर समान वायु द्वारा समाकृष्ट होके एकीभूत हो जाते हैं।(328)

तासु ये वायवस्तेऽपि प्राणे समरसे श्रिताः ।
सामरस्यात्सुषुम्नाया एकीभूता व्यवस्थिताः।।329।।

उन नाड़ियों में जो वायु है वे भी समरसभूत (विषमता रहित) शुद्ध (निरुपाधिक) प्राण में एकीभूत होते हैं। तब सामरस्यता के कारण वे नाड़ियाँ सुषुम्ना के साथ एकीभूत होते हैं।(329)

कुम्भकेन ह्यसंरुद्धा विकसन्ति समन्तत ।

सरस्वती तु या नाडी जिह्वान्ते सा प्रसर्पति।।330।।

तत्पश्चात् वे किसी भी प्रकार से संरुद्ध होने के कारण कुम्भक से पूर्णतया विकसित होते हैं और जिह्वा के अन्त (मूल) में स्थित सरस्वती नाड़ी से एकीभूत होने के लिये ऊपर की ओर चलते हैं।(330)

यावद्गच्छेत्सुषुम्नायां सम्यक्तावत्प्रकाशते।

साधने लभते सिद्धिं वायोः सौक्ष्याददीर्घतः।।331।।

जब तक वे सुषुम्ना में ऊपर की ओर जाते रहते हैं तब तक वे सम्यक् प्रकाशित होते हैं। वायु की सूक्ष्मता के कारण विना लम्बे समय का अभ्यास के ही सिद्धि (लक्ष्य) प्राप्त होगी।(331)

ग्रन्थिपद्मगता नाड्यो देहे याः संव्यवस्थिताः।

रेचकेन समाक्षिप्ता ऊर्ध्वमार्गा भवन्ति ताः।।332।।

देह में विद्यमान प्रत्येक ग्रन्थि (चक्र) के जो नाड़ियाँ व्यवस्थित हैं वे भी रेचक के द्वारा ऊर्ध्व (ऊपर) की ओर नीचे से आते हुये के साथ मिलकर जाने लगते हैं।(332)

मन्त्र आत्मा तथा नाडी चैवं समरसीभवेत्।

रसं रसायनं दिव्यं सिद्धिं दिव्यां लभन्ति ते।।333।।

जब मन्त्र, आत्मा (साधक) और नाड़ी समरसता को प्राप्त होते हैं तब वह साधक रस, दिव्यरसायन और दिव्यसिद्धियों को प्राप्त करता है।(333)

महामुद्रामहाबन्धौ महावेधस्तथाश्विनी।

विपरीतकृतिर्मुद्रा शक्तिसंचालनं तथा।।334।।

इसके प्राप्ति के लिये महामुद्रा, महाबन्ध, महावेध, अश्विनीमुद्रा, विपरीतकरणीमुद्रा और शक्तिसंचालनी क्रिया का अभ्यास करना होगा।(334)

मुद्रा मन्त्र क्रिया योग महोपकरणेन च।

मन्त्रयोगेन देवेशि शीघ्रं सिद्ध्यति मानवः।।335।।

हे देवेशी ! मुद्रा, मन्त्र, क्रिया और योग रूपी महान् उपकरण (साधन) के द्वारा ही सिद्धि (लक्ष्य) प्राप्ति होगी। उनमें भी मन्त्र और योग से शीघ्र ही मानव लक्ष्य को प्राप्त करेगा।(335)

महामुद्रामहाबन्धौ निष्फलौ वेधवर्जितौ।
तस्माद्योगी प्रयत्नेन करोति त्रितयं क्रमात्।।336।।

महावेध के विना महामुद्रा और महाबन्ध निष्फल (व्यर्थ) होंगे, इसलिये योगी प्रयत्नपूर्वक तीनों को क्रम से करता है।(336)

एतत्त्रयं प्रयत्नेन चतुर्वारं करोति यः।
षण्मासाभ्यन्तरं मृत्युं जयत्येव न संशयः।।337।।

इन तीनों को प्रतिदिन जो बार बार अभ्यास करता है वह छह महीने के भीतर मृत्यु को जीत लेता है, इसमें कोई संशय नहीं।(337)

एतत्त्रयस्य माहात्म्यं सिद्धो जानाति नेतरः।
यज्ज्ञात्वा साधकाः सर्वे सिद्धिं सम्यग्लभन्ति वै।।338।।
गोपनीया प्रयत्नेन साधकैः सिद्धिमीप्सुभिः।
अन्यथा च न सिद्धिः स्यान्मुद्राणामेष निश्चयः।।339।।

सिद्धि को चाहनेवाले साधकों द्वारा प्रयत्नपूर्वक इन्हें छिपाये रखना है अर्थात् किसी को भी बताना नहीं की आप इनका अभ्यास कर रहे हैं। अन्यथा ये सिद्ध नहीं हो सकते – यह मुद्राओं के विषय में निश्चय है।(339)

बिन्दुस्थिरीकरण का यौगिक उपाय बताकर अब औषधी से बीज सिद्धि के बारे में ग्रन्थान्तर से उद्धृतकर कह रहे हैं। (सिद्धि पाद के अन्त में मुद्रित है मूलग्रन्थ में, तदनुसार हम उसे वहीं पर ग्रहण किये हैं)।

(सूचना :- ग्रन्थान्ते त्रयोविंशतिश्लोकैर्वीर्यसंरक्षणौषधयः प्रोक्ताः, तत्रैव द्रष्टव्याः = ग्रन्थान्त में 23 श्लोकों द्वारा वीर्यसंरक्षणोपयोगी औषधियां कहे गये है, उन्हें वहीं देखें।)

33. महामुद्राकथनम् = महामुद्रा का वर्णन –

महामुद्रां प्रवक्ष्यामि तन्त्रेऽस्मिन्मम वल्लभे ।
यां प्राप्य सिद्धाः सिद्धिं च कपिलाद्याः पुरा गताः।।340।।

हे मेरे प्रिये! अब मैं इस शास्त्र में महामुद्रा को बताऊँगा। जिसे प्राप्त करके कपिलादि (मुनियों ने) सिद्धों ने सिद्धि प्राप्त की थी।(340)

अपसव्येन सम्पीड्य पादमूलेन सादरम्।

गुरूपदेशतो योनिं गुदमेढ्रान्तरालगाम्।।341।।
सव्यं प्रसारितं पादं धृत्वा पाणियुगेन वै।
नव द्वाराणि संयम्य चिबुकं हृदयोपरि।।342।।

सावधानी से दाहिने पैर के मूल को अपनी ओर (यानि सीवनी नाड़ी की ओर) मोड़ के गुरु के उपदेशानुसार गुदा और मेढ्र के अन्तराल में स्थित योनि को दबाकर के सामने फैली हुई बायें पैर को दोनों हाथों से पकड़कर पूरे नौ द्वारों को संयमित (बन्द) करके अपने चिबुक (ठुड्डि) को छाती पर झुकाकर रखें। (341-342)

चित्तं चित्तपथे दत्त्वा भेदयेद्वायुचालनम्।
महामुद्रा भवेदेषा सर्वतन्त्रेषु गोपिता।।343।।

चित्त को चित्तपथ (भ्रूमध्य) में स्थापित कर संचालित वायु का भेदन करें (अर्थात् शरीर से यथासम्भव पूरे वायु बाहर करके कुम्भक करें) और स्थिर रहें। सकल शास्त्रों में सुरक्षित व गोपनीय यह महामुद्रा है।(343)

वामांगेन समभ्यस्य दक्षांगेनाभ्यसेत्पुनः।
प्रणायामं समं कृत्वा योगी नियतमानसः।।344।।

बायें पैर से अभ्यास करके अब दाहिने पैर से भी अभ्यास करें। इस प्रकार योगी एकाग्र मनवाला होकर समप्राणायाम करके ही महामुद्रा करें।(344)

अनेन विधिना योगी मन्दभाग्योऽपि सिद्ध्यति।
सर्वासामेव नाडीनां चालनं बिन्दुधारणम्।।345।।
जीवनन्तु कषायस्य पातकानां विनाशनम्।
कुण्डलीतापनं वायोर्ब्रह्मरन्ध्रप्रवेशनम् ।।346।।
सर्वरोगोपशमनं जठराग्निविवर्धनम् ।
वपुषः कान्तिरमला जरामृत्युविनाशनम्।।347।।
वांछितार्थफलं सौख्यमिन्द्रियाणां च मारणम्।
एतदुक्तानि सर्वाणि योगारूढस्य योगिनः।।348।।

इस विधि से योगी मन्दभाग्यवाला भी क्यों न हो समस्त नाड़ियों का चालन करने में सिद्ध हो जाता है और बिन्दु रक्षित हो जाता है। इससे अतिरिक्त भी अनेक फल मिलते हैं। जैसे जीवन में कशाय और पातकपापों का नाश होता है, कुण्डलि का तपन, ब्रह्मरन्ध्र में वायु का प्रवेश, सकल रोगों का नाश, जाठराग्नि

की वृद्धि, शरीर की निर्मलकान्ति तथा जन्म-मृत्यु के चक्कर का नाश। अभीष्ट फल की प्राप्ति, सौख्य, इन्द्रियों का मारण (वशीकरण) - ये सब फल योगारूढ योगी को प्राप्त होते है।(346-348)

भवेदभ्यासतोऽवश्यं नात्र कार्या विचारणा।
तस्माद्यत्नेन कर्तव्यं योगविद्भर्मुमुक्षुभिः ।।349।।

योगाभ्यास करते हुए को अवश्य ये फल मिलेंगे, इस विषय में संशय नहीं करना चाहिये। इसलिये योग को जानने वाले मुमुक्षु लोग यत्नपूर्वक अवश्य अभ्यास करना चाहिये।(349)

गोपनीया प्रयत्नेन मुद्रेयं सुरपूजित।
यां तु प्राप्य भवाम्बोधेः पारं गच्छन्ति योगिनः।।350।।

हे देवताओं से पूजित! इस मुद्रा को प्रयत्नपूर्वक रक्षा करें। (छिपाये रखें) क्योंकि यह ऐसी चीज है कि इसे प्राप्तकर योगी भवसागर को तर जाता है।(350)

मुद्रा कामदुघा ह्येषा साधकानां मयोदिता।
गुप्ताचारेण कर्तव्या न देया यस्य कस्यचित्।।351।।

यह मुद्रा कामधेनु के समान है क्योंकि यह साधक के सकल कामनाओं को पूरी करनेवाली है। गुप्त तरीके से ही करना चाहिये और जिस किसी को नहीं देना व बताना चाहिये।(351)

34. महाबन्धकथनम् = महाबन्ध का वर्णन -

पूर्ववद्वामपादं वै योनिस्थाने नियोजयेत्।
ततः प्रसारितं पादं विन्यसेत्तमुरूपरि।।352।।

फैलाये गये पैर को जाँघ के ऊपर रख लें (अर्थात् अर्ध सिद्धासन में बैठें), प्राणायाम करके तीनों बन्ध लगायें (जालन्धर, उड्डयान और मूल)।(352)

गुदयोनिं समाकुंच्य कृत्वा चापानमूर्ध्वगम्।
योजयित्वा समानेन कृत्वा प्राणमधोमुखम्।।353।।

तत्पश्चात् गुदा व योनि का संकोचन करते हुए अपान वायु को ऊपर की ओर खीचें और समान वायु के साथ मिलाकर प्राण को अधोमुख बनाये रखें (अर्थात् जालन्धर और उड्डयान बन्ध को न खोले)।(353)

बन्धयेदूर्ध्वगत्यर्थं प्राणापानेन यः सुधीः।
कथितोऽयं महाबन्धः सिद्धिमार्गप्रदायकः।।354।।

जब प्राणायाम के द्वारा ऊर्ध्वगति को रोकता है तब बुद्धिमान् साधक समझें कि 'महाबन्ध' हो रहा है, जो कि सिद्धिमार्ग को प्रशस्त करता है।(354)

नाडीजालाद्रसव्यूहो मूर्धनं याति योगिनः।
उभाभ्यां साधयेत्पद्भ्यामेकैकं सुप्रयत्नतः।।355।।

नाड़ी जाल से रसव्यूह मूर्धा की ओर जाता है, इसलिये योगी का कर्तव्य है कि वह महाबन्ध को दोनों पैरों से एक-एक बार क्रमशः सम्यक् प्रयत्न से करें।(355)

भवेदभ्यासतो वायुः सुषुम्नामध्यसंगतः।
अनेन वपुषः पुष्टिर्दृढबन्धोऽस्थिपंजरे।।356।।

इस अभ्यास से सुषुम्ना के मध्य में स्थित वायु इस शरीर रूपी पिंजरे में हाडमांस का दृढ़बन्ध के साथ शरीर को पुष्ट भी करेगा।(356)

सम्पूर्णहृदयो योगी भवन्त्येतानि योगिनः।
बन्धनेनानेन योगीन्द्रः साधयेत्सर्वमीप्सितम्।।357।।

तृप्तहृदयवाले योगी को उक्त सब फल मिलते हैं और इस महाबन्ध के द्वारा वह योगीन्द्र सकल अभीष्ट को सिद्ध कर लेता है।(357)

35. महावेधकथनम् = महावेध का वर्णन -

अपानप्राणयोरैक्यं कृत्वा त्रिभवनेश्वरि ।
महाबन्धस्थितो योगी कुक्षिमापूर्य वायुना।।358।।

हे त्रिभुवनेश्वरी! प्राण और अपान का ऐक्य करके महाबन्ध में स्थित योगी जालन्धर और उड्डयान बन्ध को खोल कर (मूलबन्ध न खोलें) धीरे-धीरे पेट को वायु से भरें।(358)

स्फिचौ सन्ताडयेद्धीमान्वेधोऽयं कीर्तितो मया।
रुद्रग्रन्थिं च वै विष्णुग्रन्थिं भिनत्ति वै तथा।।359।।

बुद्धिमान् योगी अब दोनों कूल्हों (चूतडों) को ताडित करें (अर्थात् हाथों के बल पर उठायें और जमीन पर पटकें व संकोचन करें)। यह महावेध है, जो मेरे द्वारा कहा गया है।(359)

वेधेनानेन संविध्य वायुना योगिपुगवः।
ग्रन्थिं सुषुम्नामार्गेण ब्रह्मग्रन्थिं भिनत्त्यसौ।।360।।

योगिगण इस वेधन के द्वारा वायु का सम्यग्वेधन करके सुषुम्ना मार्ग में चलते हुए ग्रन्थियों का भेदनकरते हुये ब्रह्मग्रन्थि का भी भेदन करेगा।(360)

यः करोति सदाभ्यासं महावेधं सुगोपितम्।
वायुसिद्धिर्भवेत्तस्य जरामरणनाशिनी ।।361।।

जो साधक सुगोपित इस महावेध को सदा अभ्यास करता है वह जरामरणनाशिनी वायुसिद्धि को प्राप्त करेगा।(361)

चक्रमध्ये स्थिता देवाः कम्पन्ते वायुताडनात्।
कुण्डल्यपि महामाया कैलासे सा विलीयते।।362।।

वायु का ताडन रूपी महावेध से चक्रों में स्थित देवगण भी थर-थर कांपते हैं और महामाया कुण्डलिनी भी कैलास (सहस्रार) पहुंचकर शिव में विलीन होती है।(362)

36. विपरीतकरणीमुद्रा = विपरीतकरणीमुद्रा का वर्णन -

भूतले स्वशिरो दत्त्वा खे नयेच्चरणद्वयम्।
विपरीतकृतिश्चैषा सर्वतन्त्रेषु गोपिता ।।363।।

जमीन पर सिर रखके आकाश में (ऊपर की ओर) पैरों को उठायें, यह सर्वशास्त्रों में सुरक्षित व कहे गये विपरीतकरणीय मुद्रा है (सर्वांगासन जैसे किया जाता है) ।(363)

एतस्याः कुरुते नित्यमभ्यासं याममात्रतः।
मृत्युं जयति योगीशः प्रलये नैव सीदति।।364।।

इस मुद्रा को एक याम (3 घंटे) नित्य जो योगी अभ्यास करता है वह मृत्यु को जीत लेता है और प्रलय में नष्ट नहीं होता है।(364)

कुरुतेऽमृतपानं यः सिद्धानां समतामियात्।
स सेव्यः सर्वलोकानां बन्धमेनं करोति यः।।365।।

जो इस प्रकार अमृत पान को करता है वह सिद्धों के समता को प्राप्त करता है और जो इस बन्ध (मुद्रा) को करता है वह समस्त लोकों में (लोगों) सभी के द्वारा सेव्य (पूज्य) होता है।(365)

नाभेरूर्ध्वमधश्चापि तानं पश्चिममाचरेत्।
उड्ड्यानबन्ध एष स्यात्सर्वदुःखौघनाशनः।।366।।

नाभि के ऊर्ध्व और अधःभाग को पीठ की ओर खींच के (श्वास को पूर्णतया निकाल कर) स्थिर रहने का नाम उड्डयान बन्ध है, जो समस्त दुःखों का नाशक है।(366)

उदरे पश्चिमं तानं नाभेरूर्ध्वन्तु कारयेत्।
उड्ड्यानाख्योऽत्र बन्धो यो मृत्युमातंगकेसरी।।367।।

उदर में विद्यमान वायु को निकालकर पेट को अन्दर की ओर और नाभि से ऊर्ध्व की ओर खींच के धारण करना उड्डयान नामक बन्ध है, जो मृत्युरूप मातंग (हाथी) को मारनेवाला केसरी (सिंह) है।(367)

नित्यं यः कुरुते योगी चतुर्वारं दिने दिने।
तस्य नाभेस्तु शुद्धिः स्याद्येन शुद्धो भवेन्मरुत्।।368।।

जो योगी इसे प्रतिदिन चार बार करता है उसका नाभिस्थान की शुद्धि होती हे, जिससे प्राण भी शुद्ध होत है।(368)

षण्मासमभ्यस्यन्योगी मृत्युं जयति निश्चितम्।
तस्योदराग्निर्ज्वलति रसवृद्धिः प्रजायते।।369।।

योगी 6 मास निरन्तर अभ्यास करेगा तो निश्चित रूप से मृत्यु को जीत लेता है और उसके जाठराग्नि दीप्त होने से शरीर की पुष्टि बढ़ेगी।(369)

अनेन सुतरां सिद्धिर्विग्रहस्य प्रजायते।
रोगानां संक्षयस्यापि योगिनो भवति ध्रुवम्।।370।।

इससे इस शरीर की सिद्धि अनायास ही हो जाती है और योगी के शरीर में स्थित समस्त रोग निश्चित रूप से नष्ट होते हैं।(370)

गुरोर्लब्ध्वा प्रयत्नेन साधयेत्तु विचक्षणः।
निर्जने सुस्थिते देशे बन्धं परमदुर्लभम्।।371।।

गुरु से अच्छी तरह से इसको प्राप्त कर बुद्धिमान् योगी निर्जन एवं सुव्यवस्थित देश में इस परमदुर्लभ बन्ध को साधें।(371)

37. शक्तिचालनमुद्रा = शक्तिचालनमुद्रा का विवरण –

आधारकमले सुप्तां चालयेत्कुण्डलीं दृढाम्।
अपानवायुमारुह्य बलादाकृष्य बुद्धिमान्।।372।।

बुद्धिमान् योगी अपान वायु को ऊपर उठाकर मूलाधार में दृढ़तापूर्वक यानी गहरी नींद में सोई जैसी पड़ी हुईकुण्डलिनी को चलायें अर्थात् जगायें।(372)

शक्तिचालनमुद्रेयं सर्वशक्तिप्रदायिनी।
गुप्ताचारेण कर्तव्या मुद्रेयं सुरपूजिते।।373।।

यह शक्तिचालनमुद्रा सकल प्रकार की शक्ति प्रदायिका है। हे सुरपूजते! इस मुद्रा को गुप्त रखते हुये अभ्यास करना चाहिये।(373)

वायुना शक्तिचालेन प्रेरितं च यथा रजः।

याति बिन्दुस्तदैकत्वं भवेद्दिव्यं वपुस्तदा।।374।।

वायु से प्रेरित धूल जैसे ऊपर उड़ता है ठीक उसी प्रकार शक्तिचालन के द्वारा (वीर्य) बिन्दु ऊपर उठकर (अर्थात् कुण्डलिनीरूपी बिन्दु ऊर्ध्वगति को प्राप्त कर) सहस्रार पहुँचकर चिच्छक्तिरूप शिव से ऐक्यता को प्राप्त करता है जब तब यह शरीर भी दिव्य हो जाता है।(374)

शक्तिचालनमेवं हि प्रत्यहं यः समाचरेत्।

आयुर्वृद्धिर्भवेत्तस्य रोगानां च विनाशनम्।।375।।

उक्त प्रकार से जो नित्य शक्तिचालन का अभ्यास करता है उसके रोगों के नाशपूर्वक आयु की वृद्धि होगी।(375)

विहाय निद्रां भुजंगी स्वयमूर्ध्वं भवेत्खलु।

तस्मादभ्यसनं कार्यं योगिना सिद्धिमिच्छता।।376।।

निद्रा को त्यागकर सर्पिणीरूपी कुण्डलिनी स्वयं ऊर्ध्व गति को प्राप्त होती है। अतः लक्ष्य प्राप्ति को चाहता हुआ योगी को नित्य अभ्यास करना चाहिये।(376)

यः करोति सदाभ्यासं शक्तिचालनमुत्तमम्।

येन विग्रहसिद्धिः स्यादणिमादिगुणप्रदा।।377।।

जो योगी इस उत्तम साधन शक्तिचालन का सदा अभ्यास करता है उसको शरीर की सिद्धि के साथ साथ अणिमा आदि ऐश्वर्य की प्राप्ति होगी।(377)

गुरूपदेशविधिना तस्य मृत्युभयं कुतः।

मुहूर्तद्वयपर्यन्तं विधिना शक्तिचालनम्।।378।।

लेकिन गुरु से इसकी विधि का उपदेश प्राप्त करके ही करना है, उस विषय को मृत्युभय कैसे? विधिवत् दो मुहूर्त (48 गुणा 2 = 96 मिनट) नित्य शक्तिचालन का अभ्यास करें।(378)

बिन्दुं चन्द्रेण संयुक्तो रजः सूर्येण संगतम्।

तयोः समरसैकत्वं यो जानाति स योगवित्।।379।।

बिन्दु चन्द्र से संयुक्त होकर और रज सूर्य से संयुक्त होकर, इन दोनों के सामरस्यता के साथ एकत्व को जो योगी जानता है वही योगवित् है।(379)

यः करोति प्रयत्नेन तस्य सिद्धिरदूरतः।

युक्तासनेन कर्तव्यं योगिभिः शक्तिचालनम्।।380।।

योगि द्वारा युक्तासन (पहले से सिद्धासन आदि में कम से कम 3 घण्टे निःस्पन्द बैठने का अभ्यास कर लिया हो वह इस अभ्यस्त स्थिर आसन) में बैठकर शक्तिचालन को प्रयत्न पूर्वक करना चाहिये उसके प्रति सिद्धियाँ दूर नहीं होती।(380)

एतत्समुद्रादशकं न भूतं न भविष्यति ।

एकैकाभ्यासतः सिद्धिः सिद्धो भवति नान्यथा।।381।।

यदि मुद्राओं सहित करने में असमर्थ होकर पृथक्-पृथक् अभ्यास करते रहने से लक्ष्य सिद्ध कभी न हुआ है और कभी न होगा। क्योंकि इन सब का साथ-साथ अभ्यास के विना किसी और प्रकार से सिद्ध नहीं होगा।(381)

38. अश्विनीमुद्रा = अश्विनीमुद्रा का विवरण -

मुद्रा या ह्यश्विनी प्रोक्ता तथा या शक्तिचालनी।

समानीय तु पक्षौ द्वावूर्ध्वरेतस्त्वसाधना।।382।।

शक्तिचालिनी मुद्रा जो कही गई उसके साथ जो अश्विनी मुद्रा करना है, उसे ऐसा करना है - शरीर के दोनों भागों को समवस्थित रखें (सुखासन, पद्मासन आदि में बैठें) अब ऊर्ध्वरेतस्व की साधना करनी है।(382)

आकुचयेद् गुदद्वारं प्रकाशयेत्पुनः पुनः।

सा भवेदश्विनीमुद्रा शक्तिबोधनकारिणी।।383।।

बार-बार गुदा सहित उस क्षेत्र के मांसपेशी व नाड़ियों का संकोच करें, पुनः विकसित करें। (ढीला छोड़ें) इसका नाम है अश्विनी मुद्रा, जो शक्ति को जगाने वाली है।(383)

अश्विनी परमा मुद्रा गुह्यरोगविनाशिनी।

बलपुष्टिकरी चैव ह्यकालमरणं हरेत्।।384।।

यह मुद्रा एक श्रेष्ठ मुद्रा है, समस्त (गुप्त) रोगों का नाशक है। बल व पुष्टि प्रदायक और अकालमृत्यु का नाशक है।(384)

मर्मस्थानानि नाडीनां स्थानानि च पृथक्पृथक्।

वायुसंस्थानकर्माणि विदित्वा ध्यानमाचरेत्।।385।।

इसलिये नाड़ियों के स्थानों को, मर्म स्थानों को और वायु के स्थान व कर्म को जानकर ध्यान करना चाहिये।(385)

पृथिवी लयतां याति जलं तेजोमयं भवेत्।
तेजो वायुस्तथा वायुराकाशं तत्प्रकाशकम्।।386।।

ध्यान में तत्त्वों के लय का चिन्तन करना है – पृथिवी का जल में विलय, जल का अग्नि में, अग्नि का वायु में, वायु का आकाश में, क्योंकि पूर्व-पूर्व कार्य है और उत्तरोत्तर कारण है। कार्यो का कारण में लय होना स्वाभाविक है।(386)

सिद्धासनं समासाद्य कर्णचक्षुर्नसो मुखम्।
अंगुष्ठातर्जनीमध्यानामिकाभिश्च साधयेत्।।387।।

सिद्धासन में बैठकर कान, आँख, नासिका और मुँह को अंगूठा, तर्जनी, मध्यमा और अनामिका अंगुलियों से बन्द करें।(387)

प्राणं संस्कृत्य काकाभिः समाने योजयेत्ततः।
षट्चक्राणां क्रमं ध्यात्वा हूँ हंसमनुना सुधीः।।388।।

आयाम (प्राणायाम) के द्वारा (प्रयास विशेष से) प्राण को संस्कारित करके (इड़ा और पिंगला को सम करके) समान वायु के साथ मिलायें, फिर छः चक्रों का क्रम से ध्यान करके 'हूँ' अथवा 'हंस' मंत्र से बुधिमान् साधक।(388)

सु सुम्नामार्गेण बिन्दुस्थाने शिरसि गच्छति।
अश्विनीमुद्रयाऽपि वीर्यस्योर्ध्वीकरणं भवेत्।।
यस्याः स्मरणमात्रेण शिवता जायते नृणाम्।
ज्ञात्वा समस्तं पुरुषो लभेन्मुक्तिं चतुर्विधाम्।।389।।

सुषुम्ना मार्ग से बिन्दु स्थान पर (सिर में) पहुंचें, इस प्रकार की अश्विनी मुद्रा से भी वीर्य को ऊर्ध्वगति प्रदान कर सकते हैं। जिसका स्मरण मात्र से मनुष्यों को शिवता की प्राप्ति होती है, ऐसी अश्विनी मुद्रा को जानकर पुरुष (साधक) चतुर्विध मुक्ति को प्राप्त कर सकता है।(389)

वाणी चित्रायते तेन वाचः सिद्धिः प्रजायते।
स्थिरवीर्येण सरस्वतीनाडी विकसति तेन वाग्मित्वम्।।
पाण्डित्यं च कवित्वं च शीघ्रं सम्पद्यते नृणाम्।
मन्त्रं जपेत्तथा रीत्या प्राणशक्तिर्विवर्धते।। 390।।

इससे वाणी एक आश्चर्यमय स्थिति को प्राप्त करती है, जिससे वाक्सिद्धि उत्पन्न होगी। क्योंकि स्थिरवीर्य से सरस्वती नाड़ी जाग्रत होती है,

जिससे वाग्मित्व प्राप्त होता है। पाण्डित्य और कवित्व सिद्धि भी प्राप्त होगी। साथ में मंत्र जप करने से शीघ्र ही प्राणशक्ति की वृद्धि होगी।(390)

39. मूत्रोत्सर्गमुद्रा = मूत्रोत्सर्गमुद्रा का वर्णन –

नासाभ्यां प्राणमाकृष्य ह्यपाने योजयेच्छनैः।
बलादाकुंचयेत्सम्यगश्विनीमुद्रया गुदम् ।।391।।

नासिकाओं से प्राण (वायु) को भीतर खींच कर अपान के साथ धीरे-धीरे मिलायें, तत्पक्ष्वात् अश्विनीमुद्रा से गुदा क्षेत्र का बलपूर्वक संकोच करें।(391)

स्वमुत्रोत्सर्गकाले यो बलादाकृष्य वायुना।
स्तोकं स्तोकं त्यजेन्मूत्रमूर्ध्वमाकृष्य तत्पुनः।।392।।

40. कुण्डलिनीजागरणविधिः = कुण्डलिनीजागरण की विधि – [यहां से आगे 101 श्लोक यानि 393 से 493 तक के श्लोक इन्द्रवज्रा छन्द में है। जिसका लक्षण है – ''स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ यगौ गः।'' अर्थात् जिस पद्य के प्रत्येक पाद क्रमशः त (गुरु गुरु लघु), त और य (लघु गुरु लघु) गणों से युक्त होकर अन्त में ग ग यानि दो गुरुवर्ण हो उसे इन्द्रवज्रा छन्द कहते हैं। अत एव प्रत्येक पाद में 11 अक्षर हैं।]

वन्दे गुरूणां चरणारविन्दे सन्दर्शित स्वात्मसुखावबोधे।
जनस्य ये जांगलिकायमाने संसारहलाहलमोहशान्त्यै।।393।।

मैं गुरु के चरणारविन्दों में प्रणाम करता हूँ जो स्वात्मसुख का अवबोध कराये। जंगली मनुष्यों के जैसे जो लोक संसारचक्र में फसे हुये हैं उनमें से जो लोग मोहजाल से निकलकर शान्ति चाहते हैं वे लोग (क्या करे?)।(393)

गुरोः सकाशादधिगत्य दीक्षां स्वसाधनायां प्रविविक्षुरादौ।
ध्यायेद्गुरोः श्रीचरणारविन्दं समर्चयेन्मानसिकोपचारैः ।।394।।

योग्य सद्गुरु के पास जाकर दीक्षा प्राप्त करके अपनी साधना में प्रवेश करने के इच्छुक साधक सबसे पहले गुरु के चरणारविन्दों का ध्यान करें और मानसिक उपचारों से पूजा करें।(394)

गुरुं सहस्रारगतं तमेवं ध्यात्वा तदाज्ञामुपलभ्य पश्चात्।
प्रविश्य यत्नान्मणिपूरचक्रे जपं चरेत्साधक आत्मतन्त्रः।।395।।

सहस्रार में स्थित गुरु का ध्यान करके उनसे आज्ञा प्राप्त कर मणिपूर चक्र में यत्नपूर्वक प्रवेश करके स्वतन्त्र यानि निर्भयता से साधक मन्त्र जपें।(395)

चक्राच्च चक्रान्तरसम्प्रवेशे सार्धं त्रिरावृत्त्य परिक्रमेत्तु तत्।
संचिन्तयन्नुर्ध्वमुखं च चक्रमधोमुखं चापि समन्त्रजापम्।।396।।

एक चक्र से दूसरे चक्र में प्रवेश करने से पहले साढ़ेतीन परिक्रमा लगाकर आगे बढ़ें। मन्त्र जपते हुये अधोमुख और ऊर्ध्वमुख चक्रों का चिन्तन करते हुए ही करना है।(396)

चक्रं यदेतन्मणिपूरसंज्ञं तद्दक्षिणाम्नायमुशन्त्यभिज्ञाः ।
भवेज्जपादत्र मनुः सजीवस्तथात्र संसिद्ध्यति भक्तियोगः।।397।

वह यह जो मणिपूर संज्ञक चक्र है, उसमें जप करने से अभिज्ञ साधक दक्षिणाम्नाय में स्थित होता है और उसे भक्तियोग संसिद्ध होता है।(397)

काल्याख्यनाड्या मणिपूरचक्राद्विनिर्गतः कालधमन्यभिख्याम्।
नाडीं प्रविश्य प्रजपन्स्वमूलाधारं विशेच्चाधारमार्गचक्रम् ।।398।

मणिपूर चक्र से 'काली' नामक नाड़ी द्वारा निकलकर 'कालधमनी' नाम की नाड़ी में प्रवेश करके जप करते हुए मूलाधार के मार्ग में स्थित स्वाधिष्ठान चक्र होते हुए मूलाधार चक्र में प्रवेश करें।(398)

भवेज्जपादत्र मनोः शरीर पुष्टं क्रियाचारविधिक्षमं च।
वाक्शक्तिरत्र स्फुरति स्वतन्त्रा ब्रूतेऽत्र मन्त्रः स्वयमीरयेच्च।।399।।

यहाँ मंत्र का जप करने से शरीर पुष्ट होता है, क्रिया का आचारण करने में सक्षम होता है, स्वतन्त्र वाक्शक्ति स्फुरित होती है और स्वयं मन्त्र प्रकाशित होता है।(399)

विश्रान्तियोगोऽत्र भवेत्सुसिद्धः इलातलायास्तत एत्य नाड्यः।
आधारपद्मे कुलकुण्डलिन्या ध्यानं सुयोगी कुरुते तदा सा।।400।

विश्रान्तियोग भी यहाँ सिद्ध होता है। यहीं से निकलती हुई इड़ा और पिंगला नाड़ियों को प्राप्तकर मूलाधार में विराजमान कुण्डलिनी का ध्यान सुयोगी साधक जब करता है तब पूर्वोक्त फल प्राप्त होते हैं।(400)

यत्सर्वदेहावयवात्मकं सद्विभाति तत्पादतलं प्रविश्य।
तत्र स्थितान्यपि पंकजानि संचेतयन्ती कुरुते विकासम्।।401।।

वह कुण्डलिनी सर्वदेहावयवात्मक होकर भासित हो रही है और वह आपादतल पर्यन्त प्रवेश करके शरीर में स्थित सभी चक्रों को जगाते हुए विकास करती हैं।(401)

तदंगुलीचारुपथेन भूयः सुषुम्नयाऽऽज्ञां विशति प्रकामम्।
गन्धारिकां चाप्यनुसृत्य नाडीं विशेत्तदाज्ञामूर्ध्वं चक्रम्।।402।।

तदनन्तर वह पतला सा-सुन्दरसा सुषुम्ना नामक मार्ग से चलकर स्वेच्छापूर्वक आज्ञा चक्र में प्रवेश करती है। अथवा ''गन्धारिका'' नाम की एक दूसरी नाड़ी से ऊपर में स्थित आज्ञा चक्र में प्रवेश करती है।(402)

आज्ञाभिधं चक्रमतिप्रसिद्धमाम्नायमूर्ध्वं कथितं तदत्र।
मन्त्रस्वरूपं विदितं जपात्स्याद्विज्ञानयोगश्च भवेत्सुसिद्धः।।403।।

उस आज्ञाचक्र के बारे में कह दिया गया है कि वह ऊर्ध्वाम्नाय से सम्बन्धित है, यहाँ जपने से मन्त्रों के स्वरूप का बोध होता है और सुप्रसिद्ध विज्ञानयोग भी प्राप्त होता है।(403)

ततो विनिर्गत्य च हस्तिजिह्वानाड्याः समाश्रित्य च मातृकाख्याम्।
विशुद्धिचक्रं प्रविशेत्सुयोगी यदुत्तराम्नायपथानुदर्शी।।404।।

वहाँ के 'हस्तिजिह्वा' नामक नाड़ी से निकलकर 'मातृका' नाम की नाड़ी को आश्रयकर वह सुयोगी विशुद्ध चक्र में प्रवेश करता है जो उत्तराम्नाय मार्ग का अनुदर्शी है। (404)

जपादिह ज्ञानजयोगसिद्धिर्मन्त्रस्वरूपार्थविनिश्चयश्च ।
ततश्च तिक्तापथमाश्रितः सन्वामे करे तद्गतनाडिकानाम्।।405।।
चैतन्यमापाद्य पुनः प्रविश्य भ्रम्याऽथ सव्ये गतिमत्र कुर्यात्।
दक्षे करे तद्गतनाडिकानां चैतन्यमापाद्य पुनः प्रविक्ष्य।।406।।

यहाँ जपने से ज्ञानयोग कि सिद्धि होगी, मन्त्रों का स्वरूपार्थ विनिश्चय होता है। वहाँ तिक्तापथ नामक नाड़ी को आश्रय कर वह पहले बायें हाथ और उसमें विद्यमान सकल नाड़ियों को चैतन्यता प्रदान करके पुनः 'भ्रम्या' नामक नाड़ी को आश्रय का दाहिनें हाथ और उसमें स्थित सकल नाड़ियों को चेतनता प्रदान करती है।(405-406)

ततश्च बालाभिधनाडिकानां विनिर्गतस्तद्वदवन्तिकाख्याम्।
आश्रित्य नाडीं प्रविशेत्पुनः स्वाधिष्ठानचक्रं तत एव योगी।।407।।

वहाँ से वह ''बाला'' नामक नाड़ी में प्रवेश करके पूर्ववत् 'अवन्तिका' नाम की नाड़ी को आश्रय कर स्वाधिष्ठान चक्र में प्रवेश करती है अथवा वह योगी प्रवेश करता है।(407)

पूर्वाभिधाम्नायगते तत्र चक्रे जपाद्भवेन्मन्त्रजयोगसिद्धिः।
ज्ञायेत मन्त्रावयवस्वरूपं यथार्थतश्चात्र जपप्रभावात्।।408।।

पूर्वाम्नाय से सम्बद्ध इसमें जप करने से मन्त्रजपयोग की सिद्धि होती है। मंत्र के अवयवों का स्वरूप यथार्थतः जानेगा।(408)

ततो विनिर्गत्य च शंखिनीति प्रसिद्धनाड्यामनुविश्य पीताम्।
अनाहतं चक्रमियात्प्रसिद्धं यत्पश्चिमाम्नायमुशन्ति सन्तः।409।

वहाँ वह शंखिनी नाड़ी द्वारा निकलकर 'पीता' नाम के नाड़ी को आश्रयकर अनाहत चक्र को प्राप्त करता है यानि पहुँचता है। जो की पश्चिमाम्नाय से सम्बद्ध है।(409)

जपात्पुनः स्यादिह कर्तयोगसिद्धिर्मनोर्दिव्यतनोः क्रमेण।
ततो विनिर्गत्य सुखेन नीलानाड्याः सकोणामनुविश्य ताराम्।।410।।
नैर्ऋत्यमाम्नायमुपैतुमादौ पुनर्विशेत्तन्मणिपूरमादौ ।
अनाहतं यन्मणिपूरकं च तदन्तरे निर्ऋतिकोणचक्रम्।।411।।

यहाँ जप करने से 'कर्मयोग' की सिद्धि होगी। दिव्यशरीर रूपी मन से क्रमशः वहाँ से भी 'नीला' नामक नाड़ी से निकलकर कोण में अवस्थित 'तारा' नामक नाड़ी को आश्रय करके पुनः नैर्ऋत्याम्नाय में प्रवेश करने के लिये पहले मणिपूर में ही प्रवेश करती/करता है। अनाहत और मणिपूर के बीच में नैर्ऋत्यकोण चक्र है।(410-411)

अधोमुखं पद्ममनाहतस्य समन्वयः स्यादिह कर्मभक्त्योः।
जपादिह स्युर्विजिताश्च सर्वे कामादयोऽभीष्टफलागमश्च।।412।।

अनाहत का सम्बन्धी अधोमुखचक्र है, यहाँ जपने से कर्म और भक्ति का समन्वय सिद्ध होता है। कामादियों पर विजय होगी और अभीष्ट फलों की प्राप्त होती है।(412)

भोगेन सर्वेष्वपि भौतिकेशु सुखेशु जाते सुदृढं विरागे।
स्याद्भक्तियोगोदय इष्टलाभाभिलाषो मन्त्रतनौ प्रवेशः।।413।।

समस्त भौतिक पदार्थो के भोग से प्राप्त होने वाला सुखों में जिसको दृढ़ वैराग्य है उसी को भक्तियोगादि साधनों में व इष्ट (मोक्ष अथवा परमात्मा की प्राप्ति) की अभिलाषा से मन्त्र शरीर में प्रवेश होता है।(413)

मन्त्रार्थतत्त्वप्रविवेकशक्तिः कामादिवृत्तेः सुतरां जयश्च।
ततः स्वतः सत्त्वगुणस्य वृद्धी रजस्तमोवृत्तिपराभवश्च।।414।।

उससे मन्त्रार्थ और तत्त्वविवेक की शक्ति जाग उठती है तथा कामादिवृत्तियों पर विजय अनायास ही होगा। सत्त्वगुण की वृद्धि और रजोगुणीयवृत्तियों एवं

तमोगुणीयवृत्तियों पर पराजय होगा।(414)

निर्यंस्ततो विज्जलिकाख्यनाड्या विश्वां श्रयेद्दक्षिणपूर्वमार्गम्।
ततश्च गत्वा पुनरग्रतः स्वाधिष्ठानचक्रं प्रविशेत्सुयोगी।।415।।

वहाँ से 'विज्जलिका' नामक नाड़ी से निकलकर 'विश्वा' नाड़ी को आश्रय करके दक्षिणपूर्व (आग्नेय) कोण में प्रवेश करता/करती है। वहाँ से भी आगे बढ़ते हुये पुनः स्वाधिष्ठान चक्र में वह सुयोगी प्रवेश करता है। (415)

चक्रं तदेतन्मणिपूरकस्वाधिष्ठानयोर्मध्यगतं सकोणम्।
अधोमुखं पद्ममिति प्रसिद्धं स्थानं तदेतन्मणिपूरकस्य।।416।।

वह यह आग्नेयकोण चक्र मणिपूर और स्वाधिष्ठान के मध्य में स्थित कोण है, मणिपूर सम्बन्धी अधोमुखचक्र करके प्रसिद्ध है। अतः यह स्थान मणिपूर से सम्बन्धित है।(416)

आग्नेयमाम्नायमिमं वदन्ति स्यादत्र भक्त्या सह कर्मयोगः।
दग्धं जपेदत्र जपात्समग्रं नरस्य पूर्वार्जितकर्मजालम्।।417।।

इसको आग्नेयाम्नाय नाम से कहते हैं। यहाँ भी भक्ति के साथ कर्मयोग है। यहाँ जप करने से मुनष्य के पूर्वजन्मों में कृत कर्मजाल जलकर नष्ट हो जाते हैं।(417)

ततश्च जीवो भवति स्वभावाच्छुद्धश्च बुद्धश्च स नित्यमुक्तः।
ऐश्वर्यरक्षा भवति प्रकामं मायोन्मुखी वृत्तिदमश्च तत्र॥418।।

तब यह जीव स्वभावतः शुद्ध, बुद्ध और नित्यमुक्त हो जाता है। स्वतः ही ऐश्वर्य की रक्षा होगी और मायोन्मुखी वृत्तियों का दमन भी होगा।(418)

शनैरिदन्ताप्रशमोऽत्र दृष्टोऽहंभावशान्तिश्च सहैव दृष्टा।
सिद्ध्यर्थिनां साधनमार्गशुद्धिः समागमोऽलौकिकपूरुषैश्च।। 419।।

धीरे-धीरे इदन्ता वृत्ति का प्रशम के साथ अहंभाववृत्ति भी शान्त होता देखा गया है। सिद्धि को चाहनेवालों के लिये सिद्धि मार्ग प्रशस्त होता है और अलौकिक पौरुष का समागम होगा।(419)

ततश्च सूत्राभिधयाऽन्यनाड्यानिर्गत्य नाडीममृतां निविश्य।
तयोत्तराम्नायविशुद्धिचक्रमीशानकोणं प्रविशन्नुपेयात्।। 420।।

उससे 'सूत्र' नामक नाड़ी द्वारा निकलकर 'अमृता' नाम के नाड़ी को आश्रय करके ईशान कोण में प्रवेश करने के लिये उत्तराम्नायरुप विशुद्ध चक्र में प्रवेश करती है।(420)

ईशानमाम्नायमितीर्यते स्वाधिष्ठानसम्बद्धविशुद्धिचक्रम्।
अधोमुखपद्ममुशन्ति च स्वाधिष्ठानचक्रस्य तदेतदार्याः।।421।।

स्वाधिष्ठान से सम्बद्ध अधोमुख चक्र को ईशानाम्नाय कहते हैं। आर्यलोग कहते हैं की यह स्वाधिष्ठान चक्र से सम्बन्धित अधोमुख चक्र है।(421)

ज्ञानाधियोगस्य च मन्त्रयोगस्य चापि जायेत तदात्मताऽत्र।
जपादिह स्यान्नर ऊर्ध्वरेताः कामे दुरन्ते विजयश्च तस्य।।422।।

यहाँ पर जपने से ज्ञानाधियोग, मन्त्रयोग और तादात्म्यभाव की प्राप्ति होगी। फलस्वरुप वह ऊर्ध्वरित होता है और तुरन्त सकल (अनन्त) कामनाओं पर विजय प्राप्त करता है।(422)

अल्पज्ञतां स्वात्मगतां व्युदस्य त्रिशक्तयः स्वात्मगता हि तस्य।
ओजस्वितामेत्य च दिव्यभावो जीवोऽधिगच्छेत्परात्मनैक्यम्।।423।।

अपने विद्यमान अल्पज्ञता को त्यागकर उसके आत्मगत होती है। तीनों शक्तियाँ ओजस्विता को प्राप्त कर दिव्य भाव में स्थित होकर परमात्मा के साथ ऐक्यता को प्राप्त करती हैं।(423)

ओजस्विता दैवतभावयोग एकात्मता स्वात्मपरात्मनोश्च।
एकात्मभावः परमात्मना यः सोऽस्यावभासेत हृदीशदेवः।424।

ओजस्विता, दैवतभावयोग, स्वात्मा और परमात्मा का एकात्मता और परमात्मा के साथ एकात्मभाव होने के साथ उसके हृदय में वह यह ईशदेव अनुभव में आता है।(424)

यथोपलब्धस्मृतिमात्रतोऽपि परस्य च स्वस्य च रुङ्निवृत्तिः।
ततो विनिर्गत्य सरस्वतीतो वृन्दां श्रितोऽनाहतचक्रमीयात् ।425।

यथोपलब्ध स्मृतिमात्र (अल्पस्मृतिशक्ति) से ही स्वयं को और दूसरों के रोगों को निवृत्त कर सकता है। इसके बाद वह 'सरस्वती' नाड़ी के द्वारा निकलकर 'वृन्दा' नाड़ी को आश्रय कर अनाहतचक्र में पहुँचती है।(425)

प्रतीच्युदीच्यद्वयमध्यकोणं निर्याति वृन्देति विदां प्रवादः।
विशुद्धिसंयुक्तमनाहतं यद्वायव्यकोणस्य निदेशकं तत्।।426।।

पश्चिम और उत्तर के मध्य में स्थित वायव्यकोण की ओर लेजाती है वृन्दा, ऐसे नाड़ी वेत्ता में प्रसिद्धि है। विशुद्ध से युक्त अनाहत है जो वह वायव्यकोण का निर्देशक है।(426)

अधोमुखं पद्ममिदं प्रसिद्धं विशुद्धिचक्रस्य न चान्यदेतत्।
ज्ञानाधियोगस्य च कर्मयोगस्य चात्र जायेत तदात्मभावः।।427।

यह अधोमुखी चक्र है– ऐसे प्रसिद्ध है, यह विशुद्ध चक्र से सम्बन्धित है, अन्य (पृथक्) कोई स्वतन्त्र चक्र नहीं। ज्ञानाधियोग, कर्मयोग और तादात्म्यभाव यहाँ उत्पन्न होते हैं।(427)

सम्यग्जपाच्चिन्तनतोऽपि चात्र श्रीप्राप्तिरुक्ता किल साधकस्य।
स्वोपासकानामभिलाषपूर्तौ कल्पद्रुवत्स्यात्स तदा समर्थः।।428।।

सम्यक्जप और चिन्तन यहाँ करने से पूर्वोक्त के साथ श्रीप्राप्ति भी कही गई है। साधक के भक्तों के भी अभिलाषाओं की पूर्ति होगी क्योंकि वह तब कल्पवृक्ष के समान समर्थ होता है।(428)

स्याज्ज्ञानविज्ञानसमृद्धिरत्र यथोपलब्धप्रतिपादनं च ।
ततः सुषुम्नास्थितब्रह्मनाड्या यायाच्च योगी ललनाख्यचक्रम्।।429।।

यहाँ ज्ञानविज्ञान की समृद्धि होगी, यथोपलब्ध का प्रतिपादन करने का सामर्थ्य होता है। वहाँ से सुषुम्ना स्थित ब्रह्मनाड़ी द्वारा निर्गमन कर ललना नामक चक्र को योगी प्राप्त होता है यानि पहुँचता है।(429)

तदा ह्युपाम्नायचतुष्टयस्य समन्वयात्कल्पितमेकपद्मम्।
अत्र प्रवेशात्सहजां दशां स्वां जीवः समेतीशकृपावशेन।।430।।

तब उपाम्नायचतुष्टय (कोण चतुष्टय) का समन्वय होने से चारों का समन्वित एक चक्र की कल्पना की गई है। उसमें प्रवेश करने से ईश की कृपा के वजह से यह जीवन अपनी सहज दशा (अवस्था) को प्राप्त करता है।(430)

नैर्ऋत्यमैश्वर्यसुखं समग्रमाग्नेयमारोग्यसुखाद्यचिन्त्यम्।
ईशानजाचिन्त्यफलादिकं च वयव्यजज्ञानसकर्मयोगः।।431।।

नैर्ऋत्य कोण का फल ऐश्वर्यसुख, आग्नेय का फल अचिन्त्य आरोग्य सुखादि, ईशान का फल अचिन्त्य भक्तियोग सहित ज्ञानयोग और वायव्य का फल कर्मयोग सहित ज्ञानयोग।(431)

सर्वं तदेतल्ललनाख्यचक्रे दृढीभवत्याशु सुयोगभाजाम्।
आज्ञोपरिस्थं ललनात उद्यन्मनः स्वचक्रं स्फुरदूर्ध्वचक्रम्।।432।।

ये समस्त फल ललना नामक इस चक्र में सम्यग् योगाभ्यासी के प्रति शीघ्र ही दृढ हो जाता है। आज्ञा के ऊपर में स्थित ललनाचक्र से निकलते हुये स्फुरित होता हुआ अपना चक्र (सहस्रार) चक्र, जो ललना से भी ऊपर है, उसमें मन (साधक) पहुँचता है।(432)

उपास्यमानं परतः क्रमेण जीवं शिवं तद्विदधाति नूनम्।
सम्प्राप्यतेऽस्मादणिमादिकाद्याः सिद्धीश्च सर्वा निखिलाश्च शक्तीः।।433।।

मन क्रमश उपासना करते हुय जीव और शिव की एकता को अनुभव करता है। इसमें आणिमादि सकल सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं और समस्त शक्तियों की प्राप्ति भी होगी।(433)

ततः समर्चा त्रिपुराम्बिकायाः प्रारभ्यते तत्र यथाक्रमेण।
बिन्द्वर्धचन्द्रादथ रोधिनीं च नादं च नादान्तमथापि शक्तिम्।।434।।
तां व्यापिकाख्यां समनोन्मने च प्राप्य त्रिकं जायत एकरूपम्।
अहं गुरुः सा त्रिपुरेति कश्चिन्न साधकस्यात्र विभाति भेदः।।435।।

तत्पश्चात् त्रिपुराम्बा की पूजा यथाक्रम आरम्भ होती है। बिन्दु, अर्धचन्द्र, रोधिनी, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिनी (व्यापिका), समना, उन्मना – यह क्रम है। तत्पश्चात् त्रिक को प्राप्त करके एकरूपता होती है। यहाँ पर (इस अवस्था में) मैं (साधक), गुरु और त्रिपुरा – इस प्रकार के भेद को साधक थोड़ा भी अनुभव नहीं करता।(434-435)

आज्ञां प्रविष्टस्य ततश्च भूयो न साधकस्यानुविधेयमस्ति।
यास्तस्य बाह्यान्तरसाधनास्ताः प्रवर्तिताः स्युः स्वत एव सर्वाः।।436।।

आज्ञा चक्र में प्रविष्ट साधक के प्रति और अधिक कुछ विधेय नहीं होता। क्योंकि उसकी बाह्य और आन्तर साधनायें स्वतः ही प्रवृत्त होते हैं।(436)

चक्राणि षट्चोर्ध्वमुखानि नित्यं चत्वारि चाप्येवमधोमुखानि।
चिन्त्यानि सम्यग्ललनायुतानि यावन्न जायेत परानुभूतिः।।437।।

सदा ही षट्चक्र ऊर्ध्वमुखी होते हैं और चार कोणचक्र सदा अधोमुखी होते हैं। ललना सहित सबका चिन्तन निरन्तर करना चाहिये जब तक परतत्त्व की अनुभूति नहीं होती।(437)

ततः परं सैव परोर्ध्वचक्रे वथो भ्रमन्ती तनुते सुखानि।
क्रमस्तदीयोऽपि विशिष्य बोध्यो योगप्रविष्टेन सुसाधकेन।।438।।

एक बार सम्यक् प्रकार से कुण्डलिनी जागृत हो जाये तो उसके बाद वह स्वयं ही पर, ऊर्ध्व और अधः सभी चक्रों में आवश्यकता के अनुसार भ्रमन् करती

हुई सुखों का विस्तार करती है और योग में प्रविष्ट सुसाधक के द्वारा उसके क्रम को भी विशेष तौर पर जानना चाहिये।(438)

समेति नाडी ललनाख्यचक्रात्ततश्च शक्तौ परतश्च बिन्दौ।
ततोऽर्धचन्द्रे च ततः प्रयाति नादान्तमध्येऽतति रोधिनी च।।439।।
सा व्यापिकायां व्रजति प्रकामं ततोऽपि सेयात्समनाख्यचक्रे।
गत्वोन्मनायां च ततस्ततः सा संयाति नित्यं गुरुपद्ममध्ये।।440।।
ततो महाबिन्दुमनुप्रविष्टा स्वेष्टस्वरूपेण विराजमाना।
तत्रैव जीवात्मपरात्मनोश्च सम्पादयेत्सा किल सामरस्यम्।।441।

ललना नामक चक्र से 'समा' नाम की नाड़ी द्वारा शक्ति में, फिर बिन्दु में, इसके बाद अर्धचन्द्र जाती है। वहाँ से नाद और क्रकाः नादान्त के मध्य में विहार कर रोधिनी में जाती है। फिर वह व्यापिका में जाती है। स्वेच्छापूर्वक वहाँ से भी वह समना चक्र में जाकर, उधर से उन्मना में जाती है। उसके बाद वह नित्य गुरुकमल में लौटती है। अनत में महाबिन्दु में अनुप्रवेश करती है जहाँ वह अपने इष्ट रूप के रूप में एक होकर विराजती हुई वहीं पर वह जीवात्मा और परमात्मा का सामरस्यता (ऐक्यता) का सम्पादन करती है।(439-441)

विसतन्तुतनीयसी परा या विदधात्येवमलं गतागतम्।
तदनुक्रमतश्च साधकोऽप्यनुचिन्त्यैति सुसिद्धिमीप्सिताम्।।442।।

बिसतन्तु (कमल नाल) के सदृश सुषुम्ना नाड़ी में ही भ्रमण करने वाली पराशक्ति गतागत सबका पर्याप्त विधान करती है। उसी का अनुसरण करते हुये साधक भी अनुचिन्तन कर सुसिद्धि को चाहते हुए चिन्तन व अभ्यास करता है।(442)

(443 उपलब्ध नहीं है।)

सदाशिवोक्तानि सपादलक्षलयावधानानि हि सन्ति लोके।
नादानुसन्धानसमाधिमेकं मन्यामहे मान्यतमं लयानाम्।।444।।

इस लोक में सदाशिव के द्वारा उक्त लय की प्रक्रिया लगभग सवालाख है। उनमें से नादानुसन्धान पूर्वक समाधि ही सकल लयप्रक्रियाओं में श्रेष्ठतम मानता हूँ।(444)

सरेचपूरैरनिलस्य कुम्भैः सर्वासु नाडीशु विशोधितासु।
अनाहताख्यो बहुभिः प्रकारैरन्तः प्रवर्तेत सदा निनादः।।445।।

रेचक, पूरक और कुम्भक के द्वारा सकल नाड़ियों का शोधन होने पर बहुत प्रकार से भीतर में सदा प्रवृत्त "अनाहत" नाम का नाद सुनाई देता है।(445)

नादानुसन्धान नमोऽस्तु तुभ्यं त्वत्साधनं तत्त्वपदस्य ज्ञाने।
भवत्प्रसादात्पवनेन साकं विलीयते विष्णुपदे मनो मे।।446।।

उस नाद के अनुसन्धान रूप साधन को मैं नमस्कार करता हूँ क्योंकि मैं तत्त्वपद का साधन आप ही को जानता हूँ। पवन (प्राण) सहित आपकी कृपा से मेरा मन विष्णुपद में विलीन होगा।(446)

जालन्धरोड्ड्याणसुमूलबन्धान् जल्पन्ति कण्ठोदरपायुमूले।
बन्धत्रयेऽस्मिन् परिचीयमाने बन्धः कुतो दारुणकालपाशात्।।447।।

जो व्यक्ति जालन्धर, उड्डयान और मूल – इन तीनों बन्धों को क्रमश कण्ठ, उदर और पायुमूल में लगाने की कला से सुपरिचित हो गया है वह दारुण कालपाश रूपी बन्धन में कैसे रह सकता है।(447)

ओड्ड्याणजालन्धरमूलबन्धैरुन्निद्रितायां सुरनायिकायाम्।
प्रत्यङ्मुखात्सम्प्रविशन्सुषुम्नां गमागमौ मुंचति गन्धवाहः।।448।।

जालन्धर, ओड्डयाण, मूल –इन तीन बन्धों से जिसने जगा लिया है सुरनायिका कुण्डलिनी को और उन्मुख कर उसको सुषुम्ना में प्रवेश कराये हुये योगी का प्राण गमागम से मुक्त हो जाता है।(448)

उत्थापिताधारहुताशनोत्थैराकुंचनैः शश्वदपानवायोः।
सन्तापिता चन्द्रमसं पतन्तीं पीयूषधारां पिबतीह धन्यः।।449।।

उत्थापित मूलाधार रूपी अग्नि से निष्पन्न आकुंचनों के द्वारा अपान वायु को नित्य ही सन्तापित किये जाने पर (ललना चक्र से टपकती हुई) अमृतधारा को पीकर साधक धन्य होता है।(449)

बन्धत्रयाभ्यासविपाकजातां विवर्जिता रेचकपूरकाभ्याम्।
विशोषयन्ती विषमप्रवाहं विद्यां भजे केवलकुम्भरूपाम्।।450।।

बन्धत्रय के अभ्यास की परिपक्वावस्था से उत्पन्न तथा रेचक और पूरक से रहित जो विशप्रवाह को सुखाती रहती है कुण्डलिनी उस साधक का जो केवलकुम्भकरूपा विद्या को भजता है।(450)

अनाहते चेतनसाधनैरभ्यासशूरैरनुभूयमाना ।
संस्तम्भितश्वासमनःप्रचारा सा जृम्भते केवलकुम्भकश्रीः।।451।।

चेतन की सावधानता (संयम) से साधक श्रेष्ठों के द्वारा बताये गये साधना से श्वास के प्रचलन रहित स्थिति में वह केवल कुम्भक रूपी ऐश्वर्य से युक्त होकर 'अनाहत' नाद का अनुभव करता है।(451)

सहस्रशः सन्तु हठेषु कुम्भः सम्मान्यते केवलकुम्भ एव।
कुम्भोत्तमे यत्र तु रेचपूरौ प्राणोऽस्य न प्राकृतवैकृताख्यौ।।452।।

हठयोग की प्रक्रिया में हजारों प्रकार के कुम्भक का भले ही वर्णन हो लेकिन सम्माननीय तो 'केवल कुम्भक' ही है। कुम्भोत्तम अर्थात् केवलकुम्भक वह है जिसमें प्राण का रेचक और पूरक जिन्हें प्राकृत और वैकृत भी कहा जाता है, वे नहीं किये जाते हैं या नहीं होते हैं।(452)

त्रिकूटनाम्नि स्तिमितेऽन्तरंगे खेऽस्तं गते केवलकुम्भकेन।
प्राणार्पितौ भानुशशांकनाड्यौ विहाय सद्यो विलयं प्रयातः।।453।।

जब प्राण त्रिकूट नामक स्तब्ध अन्तरंगवर्ति आकाश में स्थित होता है तब सूर्यचन्द्रनाड़ियाँ (इड़ा और पिंगला) प्राण में ही अर्पित होने के कारण अपने कार्य को त्यागकर सद्य ही विलय हो जाते हैं।(453)

प्रत्याहृता केवलकुम्भकेन प्रबुद्धकुण्डल्युपभुक्तशेषः।
प्राणः प्रतीचीनपथेन मन्दं विलीयते विष्णुपदान्तराले।।454।।

केवलकुम्भक से जब सकल इन्द्रियों का प्रत्याहार हो या और जागृत कुण्डलिनी से शेष (प्रतिबन्धककर्म) का उपभोग हो गया हो तब प्राण धीरे-धीरे विष्णुपद के बीच में पश्चिममार्ग (विलय प्रक्रिया) से विलीन हो जाता है।(454)

निरंकुशानां श्वसनोद्भवानां निरोधनैः केवलकुम्भकाख्यैः।
उदेति सर्वेन्द्रियवृत्तिशून्यो मरुल्लयःकोऽपि महामतीनाम्।।455।।

निरोधनात्मक केवलकुम्भक रूपी क्रिया के द्वारा जब निरंकुश चलता रहा श्वसन प्रक्रिया सहित सर्वेन्द्रियों के वृत्तियाँ नहीं होते तब महमति व भाग्यशाली योगियों के प्राणलय होता है।(455)

न दृष्टिलक्ष्याणि न चित्रबन्धो न देशकालौ न च वायुरोधः।
न धारणाध्यानपरिश्रमो वा समेधमाने सति राजयोगे।।456।।

एक बार इस राजयोग के सम्पन्न होने पर न इन्द्रियों के विषय, न विचित्र बन्धन, न देश और काल, न प्राणायाम, एवं न तो धारणध्यानादि करने रह जाते हैं किन्तु ये सब केवल परिश्रम ही रह जाते हैं।(456)

अशेषदृश्योज्झितहृद्द्वयानामवस्थितानामिह राजयोगे ।
न जागरो नापि सुषुप्तिभावो न जीवितं नो मरणं विचित्रम्।।457।।

इस राजयोग में सकल दृश्य का उच्छेद हो जाने पर हृदयस्थ द्वैत का उच्छेद हो जाने के कारण जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ति अवस्थात्रय, जीवन-मरण आदि सब कुछ समाप्त हो जाता है।(457)

अहंममत्वाद्यपहाय सर्वं श्रीराजयोगे स्थिरमानसानाम्।
न द्रष्ट्टता नास्ति च दृश्यभावः सा जृम्भते केवलसंविदेव।।458।।

श्री राजयोग में स्थित है मन जिनका उनके अंहताममता आदि निवृत्त हो जाने से न राष्ट्रभाव, न दृश्यभाव आदि रह जाते हैं, इसलिये केवल ज्ञान ही अनुभव में आता है।(458)

नेत्रे यथोन्मेषनिमेषशून्ये वायुर्यथा वर्जितरेचपूरः।
मनश्च संकल्पविकल्पशून्यं मनोन्मनी सा मयि संनिधत्ताम्।।459।।

नेत्रों के उन्मेष-निमेष क्रिया रहित, प्राण के रेचक-पूरक रहित और मन के संकल्प-विकल्प से रहित जो अवस्था वह मनोन्मनी अवस्था मुझ मे संनिहित हो।(459)

चित्तेन्द्रियाणां चिरनिग्रहेण श्वासप्रचारे शममेति तेषाम्।
निर्वाणदीपा इव निश्चलांगा मनोन्मनीमग्नधियो भवन्ति।।460।।

चित्त और इन्द्रियों का चिरकालीन निग्रह का अभ्यास और श्वासप्रक्रिया का अभाव के कारण स्वतः वे शम को प्राप्त हो गये है। इसलिये बुझा हुआ दीपक के समान समस्त अंग निश्चल हो जाने से बुद्धि मनोन्मनी अवस्था में निमग्न (डूबी) रहती है।(460)

उनमन्यवस्थाधिगमाय विद्वन्नुपायमेकं तव निर्दिशामः।
पश्यन्नुदासीनतया प्रपंचं संकल्पमुन्मूलय सावधानः।।461।।

इस मनोन्मनी अवस्था से भी आगे उन्मनी अवस्था पाने के लिये मैं तुम्हारे लिये एक उपाय का निर्देश करता हूँ। हे विद्वन्! प्रपंच को देखते हुये उदासीनभाव में रहकर साधना से संकल्प का उन्मूलन करें।(461)

प्रसह्य संकल्पपरम्पराणां सम्भेदने सन्ततसावधानम्।
आलम्बनाशाय प्रचीयमानं शनैः शनैः शान्तिमुपैति चेतः।।462।।

संकल्प की परम्परा (धरा) को जबरदस्ती नष्ट करने में सावधान रहकर आलम्ब (विषयाभिलाषा) को नाश करने के लिये वैराग्य का अभ्यास को बढ़ाते रहने से धीरे-धीरे चित्त शान्तभाव को प्राप्त हो जायेगा।(462)

निःश्वासलोपैर्निभृतैः शरीरैर्नेत्राम्बुजैरर्थनिमीलितैश्च।
आविर्भवन्तीममनस्कमुद्रामालोकयामो मुनिपुंगवानाम्।।463।।
अमी यतीन्द्राः सहजाऽमनस्कादहंममत्वे शिथिलायमाने।
मनोऽतिगं मारुतवृत्तिशून्यं गच्छन्ति भावं गगनावशेषं।।464।।

मुनिपुंगवों में ये जो यतीन्द्र हैं वे निःश्वास का लोप होने से शरीर एवं नेत्रादि इन्द्रियों से विषयग्रहण न होने से आविर्भूत (प्रकट) होता हुआ अमनस्कमुद्रा (अमनस्क अवस्था) का अनुभव करते हैं, जिससे यानि उस सहज अमनस्कावस्था के कारण अंहममभाव का शिथिल होने पर, प्राण वृत्ति शून्य होकर मन भी अपने विषयों का अतिक्रमण करने पर आकाश शेष भाव यानि बिल्कुल शान्ति भाव को प्राप्त करते हैं।(463-464)

निवर्तयन्तीं निखिलेन्द्रियाणि प्रवर्तयन्तीं परमात्मयोगम्।
संविन्मयीं तां सहजाऽमनस्कां कदा गमि यामि गतान्यभावः।।465।।

जो समस्त इन्द्रियों को निवृत्त करती हुई परमात्मयोग को प्रवृत्त कराती हुई ज्ञानमयरूपता को अनुभव कराने वाली है ऐसी उस सहज अमनस्क भाव जिससे भेद का अभाव होता है उसको मैं कब प्राप्त करुँगा।(465)

प्रत्यग्विमर्शातिशयेन पुंसां प्राचीनगन्धेषु पलायितेषु।
प्रादुर्भवेत्काचिदजाड्यनिद्रा प्रपंचचिन्तां परिवर्जयन्ती।।466।।
विच्छिन्नसंकल्पविकल्पमूले निःशेषनिर्मूलितकर्मजाले।
निरन्तराभ्यासनितानतभद्रा सा जृम्भते योगिनि योगनिद्रा।।467।।

पुरुष के अपने प्रत्यगात्मस्वरूप का अनुभव होने से जन्मान्तरीय वासनाओं के विनाश होने पर एक जड़ता रहित (जागरुकता से मुक्त) एक विलक्षण निद्रा उत्पन्न होती है जो प्रपंच की चिन्ता को निवृत्त करती हुई संकल्प का मूल (कामना) का विच्छेद होने के कारण कर्मजाल पूर्णतया नष्ट हो जाने पर निरन्तर अभ्यास से उत्पन्न शाश्वत कल्याणभावरूपा वह योगनिद्रा योगियों में प्रकट होती है।(466-467)

विश्रान्तिमासाद्यतुरीयतल्पे विश्वाद्यवस्थात्रितयोपरिस्थे ।
संविन्मयीं कामपि सर्वकालं निद्रां सखे निर्विश निर्विकल्पाम्।।468।।

हे सखे! (हे बुद्धि) विश्व आदि तीन अवस्थाओं से परे जो तुरीयरूपी बिस्तर पर विश्वशान्ति को प्राप्त करके निर्विकल्प रूप को ज्ञानमयी निद्रा में सदा के लिये प्रवेश कर जाओ।(468)

प्रकाशमाने परमात्मभानौ नश्यत्यविद्यातिमिरे समस्ते।
अहो बुधा निर्मलदृष्टयोऽपि किंचिन्न पश्यन्ति जगत्समग्रम्।।469।।

परमात्मा रूपी सूर्य प्रकाशित होने पर अविद्यारूपी अन्धकार पूर्ण रूपसे नष्ट हो गया। इसलिये देखो यह महान् आश्चर्य को कि विद्वान् लोग निर्मल दृष्टिवाले होने पर भी कुछ भी जगत् को नहीं देखते हैं।(469)

सिद्धिं तथाविधमनोविलये समाधौ, श्रीशैलशृंगकुहरेषु कदोपलक्ष्ये।
गात्रं यदा मम लताः परिवेष्टयन्त्यः, कर्णे यदा विरचयन्ति खगाश्च नीडान्।।470।।

जब मेरे इस शरीर को विषय रूपी लतायें लिपटी रहेंगी और जब तक कान मे वेद रूपी चिड़ियाँ अपने घर बनाये हुये हैं तो पूर्वोक्त मन की विलय अवस्था (अमनस्कावस्था) रूपी समाधि में हिमालय के चोटियाँ में विद्यमान गुफाओं अर्थात् हृदय रूपी गुफा में स्थिर होकर कब मैं उस अमनस्कावस्था रूपी सिद्धि को प्राप्त करुँगा।(470)

(इतोऽग्रे केचन श्लोका अपठिताः सन्ति। अतस्तेषां गणनाऽत्र न विहिता। -इसके बाद के कुछ श्लोक पढ़े नहीं जा सके इसलिये उनकी गणना यहाँ नहीं की गई है)

विचरतु मतिरेषा निर्विकल्पे समाधौ,
कुचकलशयुगाढ्ये कृष्णसारेक्षणानाम्।
चतुरजडमते वा सज्जनानां मते वा,
मतिकृतगुणदोषा मां विभुं न स्पृशन्ति।।471।।

मेरी बुद्धि इस निर्विकल्प समाधि में विचरें (विहार करें)। फलस्वरूप भले ही कुच (स्तन) जो कलशाकार से सुशोभित को मेरे मृगनयन जैसे आँखें देखते रहें अथवा जड़बुद्धि से या सज्जनों के मत में व्यवहार को लेकर जो गुण-दोष विचार अभिव्यक्त होते हों तो भी वे मुझ व्यापक आत्मा को स्पर्श नहीं करते।(471)

41. मणिपूरचक्रम् = मणिपूरचक्र का वर्णन -

चक्राग्रगण्ये मणिपूरचक्रे भवन्ति चत्वारि दलानि पूर्वे।
दलानि चत्वारि तु पश्चिमे वा उदीच्यवाच्योर्दलमेकमेकम्।।472।।

चक्रों में अग्रगण्य है मणिपूरक चक्र, जिसमें 10 दल (कमल के पँखुड़ियों के सदृश) होते हैं। 4 दल पूर्व में, 4 पश्चिम में, एक उत्तर में और एक दक्षिण में होता है।(472)

धूलिध्वजो नाम फवर्णयुक्तस्थवर्णकश्चाक्षतिनामवायुः।
दवर्णसंज्ञश्चप्रकम्पनोऽयं धवर्णनामास्ति समानवायुः ।।473।।
पवर्णयुक्तो हि नभःस्थवायुस्तथा णवर्णो मृगवाहनश्च।
खलूद्वहोऽयं हि नवार्णनामा डवर्णयुक्तोऽस्ति च कम्पलक्ष्मा।।474।।
वासो हि नामास्ति ढवर्णयुक्तस्तवर्णवान् वाति प्रसिद्धनामा।
गतिं प्रकुर्वन्ति यथालवाले प्रचालयन्तो मणिपूरचक्रम्।।475।।

ये दल 'ड' से 'फ' वर्ण से युक्त और 10 प्रकार के वायु का प्रतीक हैं – 'ड' वर्ण से युक्त है कल्पलक्ष्मा नाम का वायु एवं 'ढ' वर्ण से युक्त हे 'वास' नाम का वायु, 'ण' वर्ण युक्त है 'मृगवाहन', 'त' वर्ण से युक्त 'प्रसिद्ध' नाम का वायु, 'थ' वर्ण से युक्त है 'अक्षति / अक्षलि' नाम का वायु, 'द' वर्ण से युक्त है 'प्रकम्पन', 'ध' वर्ण से युक्त का नाम है 'समान', 'न' वर्ण से युक्त है 'उद्वह' नाम का वायु, 'प' वर्ण से युक्त है 'नभस्थ' नामक वायु और 'फ' वर्ण से युक्त है 'धूलिध्वज' नामक वायु। ये सब वायु मिलकर मणिपूर चक्र को उसी प्रकार संचालन करते हैं जिस प्रकार दसों दिशाओं में बहती हवा पेड़ के हौद (वृक्ष के निचला भाग में पानी ठहरने के लिये चारों ओर थोड़ा गड्डा सा जो बनाया जाता है) में विद्यमान जल को कम्पाते हैं।(472-475)

42. मूलाधारचक्रम् = मूलाधारचक्र का वर्णन –

कन्दर्पवायुर्वहति स्वयम्भूलिंगस्य वै नित्यमधोविभागे।
समन्ततस्तिष्ठति प्राणरूपः स मूलचक्रस्य गतिं विधत्ते।।476।।

मूलाधार चक्र में 4 विदिशाओं में स्थित 4 दल हैं, जो कि 'व-श-ष-स' इन चार वार्णो से अंकित हैं। ये 4 वर्ण भी 4 वायु के प्रतीक हैं, जिनसे मूलाधार चक्र प्रचलित है। स्वयम्भूलिंग का निचले भाग में नित्य ही 'कन्दर्प' (काम) नामक वायु बहता है। लिंग के चारों तरफ प्राण रूप जो वायु विशेष है वही 4 दलों में मूलाधारचक्र को गति प्रदान करते हैं।(476)

मूलस्थितः कोऽपि समीरनामा ववर्णयुक्तो वहति प्रकामम्।
सदाग्निकोणस्थित एश वायुः प्रचालयंस्तिष्ठति प्राणमुलम्।।477।।

वर्ण 'व' से युक्त 'समीर' नामक वायु स्वेच्छा पूर्वक बहती है, यह सदा अग्निकोण में स्थित रहकर प्राणमूल को प्रचलित करता रहता है।(477)

शवर्णयुक् चैह्यजगद्धि नामा नैर्ऋत्यकोणे स्थितिमाबबन्ध।
प्राणाः प्रकुर्वन्ति नु जन्ममृत्यू प्रवाति वायुः श्वसनात्मकोऽयम्।।478।।

'श' वर्ण से युक्त 'अजगत्' नाम का वायु नैर्ऋत्यकोण में अपनी स्थिति से निबद्ध है। श्वसनात्मक यह वायु जन्म-मृत्यु कारक है और पाँच प्राणों का प्रवर्तक है।(478)

प्रकम्पनो नाम षवर्णयुक्तः सर्वात्मना विष्ठति वायुकोणे।
इडा सुषुम्ना खलु पिंगला च त्रयः स्वरा यासु चलन्ति नित्यम्।।479।।

'ष' वर्ण से युक्त वायु का नाम है 'प्रकम्पन' जो वायुकोण में पूर्णरूपेण स्थित है। इससे इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नामक तीनों स्वर (नाड़ी) संचालित हैं।(479)

ईशानकोणस्थित आवकोऽसौ सवर्णयुक्तः प्रगतिं दधानः।
विभिन्नकोणेषु विराजितास्ते मूलस्वरूपं प्रविचालयन्ति।।480।।

'स' वर्ण से युक्त व ईशानकोण में स्थित वायु का नाम है 'आवक', प्रगति को धारण करना ही इसका मुख्य कार्य है।(480)

43. आज्ञाचक्रम् = आज्ञाचक्र का वर्णन -

चक्रं ह्यथाज्ञा कथितं मुनीन्द्रैः प्रवर्तयत्येश समस्तचक्रम्।
निःश्वासिनी नाम हवर्णसंज्ञः क्षवर्णयुक्तोऽस्ति महाबलोऽयम्।।481।।

मुनीन्द्रों ने बताया है कि यह आज्ञा चक्र अन्य समस्त चक्रों को प्रवृत्त कराता है। यह दलद्वय और वर्णद्वय से युक्त है। 'ह' वर्ण युक्त वायु का नाम है 'निःश्वासिनी' और 'क्ष' वर्ण युक्त वायु का नाम है 'महाबला'।(481)

ध्यान देने योग्य यहाँ पर दो बातें हैं। पहली बात है कि आज्ञा से जुड़ा एक मनश्चक्र माना गया है जो कि 8 दलोंवाला है और 8 वायु से युक्त है, वर्णो के बारे में नहीं कहा गया है। 8 वायुओं का नाम है - मनुवह, शब्दवह, स्पर्शवह, रूपवह, रसवह, गन्धवह, सार्थकस्वप्नवह और निरर्थकस्वप्नवह। कुछ अन्यों का मानना है कि - तीन मनश्चक्र हैं - 1. आज्ञाचक्र के ऊपर, 2. हृदयकमल के दाहिने भाग में कुक्षिदेश में और 3. गुरुपद्म के दाहिने भाग में। पहला और दूसरा 8 दलोंवाला है

जब की तीसरा 12 दलवाला है। दूसरी बात यह है कि आज्ञा चक्र के प्रविभाग सप्तकोण भी है - बिन्दु, कला, रोधिनी, नाद, नादान्त (अर्धचन्द्र), महानाद और उन्मनी नाम से कहे गये हैं। शेष गुरुगम्य है।

44. विशुद्धचक्रम् = विशुद्धचक्र का वर्णन -

विशुद्धचक्रं नृशरीरचक्रे शुभ्रं सदा षोडशवायुयुक्तम्।
नभःस्वरप्राणपरावहश्च विहंगवायुर्वहतीह शश्वत् ।।482।।

मनुष्य का शरीर में विद्यमान चक्रों में 'विशुद्ध' नामक चक्र सदा शुद्ध रहता है (जहर को भी पचा लेने वाला है) और 16 वर्णों से युक्त 16 पंखुड़ियों (दलों) वाला है। आकाशतत्त्व, स्वरवर्ण और प्राणों को प्रकृष्टरूप से वहन करनेवाले विहंग वायु से यह निरन्तर चलते रहता है।(482)

अवर्णयुक्तोऽस्ति विहंगनामा आवर्णवानस्ति नभःस्वरश्च।
इवणवान् प्राणविशिष्टनामा ईवर्णसंज्ञो हि परावहश्च ।।483।।
उवर्णसंज्ञो ह्यजगत्प्रसिद्धः ऊवर्णनामा पवमान एशः।
ख्यातो नभःप्राण ऋवर्णसंज्ञ ॠवर्णवानस्ति हरिः प्रसिद्धः ।।484।।
लृवर्णकः सार इति प्रसिद्धस्तनुर्लॄवर्णः खलु सर्वव्यापी।
एकारवानस्ति इडा प्रसिद्धा ऐकारसंज्ञो हि सदागतिश्च ।।485।।
ओकारवान् पृषदश्वः स्मृतोऽयं औकारवर्णः खलु गन्धवाहः।
अंवर्णयुक्तोऽस्ति च वाहनामा अःवर्णयुक्तोऽस्ति नु भौगिकान्तः ।।486।।

अकारादि से 'अः' तक 16 वर्णो से युक्त 16 वायु क्रमश इस प्रकार है -'अ' वर्ण युक्त वायु का नाम है 'विहंग', 'आ' वर्ण से युक्त 'नभस्वर', 'इ' वर्णवाला है 'प्राणविशिष्य, 'ई' वर्णवाले का नाम है 'परावह', 'उ' वर्णवाला है 'अजगत्प्रसिद्ध', 'ऊ' वर्ण से सम्बद्ध है यह 'पवमान' नामक वायु, 'ऋ' वर्ण से युक्त का नामक 'नभःप्राण' करके प्रसिद्ध है, 'ॠ' वर्णवाला है 'हरिप्रसाद', 'लृ' वर्णवाला है 'सार', 'लॄ' वर्ण से सम्बद्ध है 'सर्वव्यापीतनु', 'औ' वर्णवाला है प्रसिद्ध 'इड़ा', 'ऐ' करारवाले का संज्ञा है 'सदागति', 'ओ' वर्ण से युक्त है 'पृषदश्व', 'औ' वर्णवाला है 'गन्धवाह', 'अं' वर्ण से युक्त है 'वाह' नामवाला वायु और 'अः' वर्ण से सम्बद्ध वायु का नाम है 'भोगिकान्त'। (483-486)।

45. स्वाधिष्ठानचक्रम् = स्वाधिष्ठानचक्र का वर्णन -

चक्रं ह्यधिष्ठानमथ प्रसिद्धं बवर्णवांश्चंचलवायुरेशः।
वृषाम्पतिर्दक्षिणदिग्विभागेस्थितः समाश्रित्य भवर्णयुक्तः।।487।।
मसंज्ञकश्चैष ह्यपानवायुर्नैर्ऋत्यकोणे स्थितिमाबबन्ध।
यवर्णकोऽयं विवहात्मकश्च प्रभंजनो वाति हि प्रतीच्याम्।।488।।
रनामधेयः खलु वातसंज्ञो वायुः सदा वाति हि चोत्तरस्याम्।
प्रभंजनो नाम लसंज्ञकश्च प्राच्यां स्थितो वाति शरीरभागे।।489।।

6 दलों से युक्त 6 वायु से प्रेरित स्वाधिष्ठान चक्र प्रवृत्त होता है। क्रमशः वे इस प्रकार हैं – 'न' वर्ण से युक्त वायु है 'चंचल', दक्षिणदिशा से युक्त दल में विद्यमान 'भ' वर्ण से सम्बद्ध वायु का नाम है 'वृषापति', नैर्ऋत्यकोण में दृढ़ता से स्थित और 'म' वर्ण से युक्त वायु है 'अपान', सदा पश्चिमदिशा में युक्त दल में विराजमान 'य' वर्णवाला है 'विवह' नामक वायु, उत्तरदिशा में बहती हवा जो 'र' वर्ण से युक्त है उसका नाम है 'वात' और 'प्रभंजन' नामक वायु 'ल' वर्ण से युक्त है जो की पूर्व दिशा में स्थित रहकर शरीर के सब भागों में प्रवृत्त होता है।(487–489)

46. अनाहतचक्रम् = अनाहतचक्र का वर्णन –

अनाहतचक्रमिदं शरीरे ख्यातं परं द्वादशवायुयुक्तम्।
ईशानकोणे स्थिरतां विधत्ते नैर्ऋत्यवायव्यधनंजयेषु।।490।।
उदाननामास्ति जवर्णयुक्तो व्यानः प्रसिद्धो हि कवर्णसंज्ञः।
गवर्णनामाऽऽशुगमः स्मृतोऽयं निःश्वासनामास्ति छवर्णयुक्तः।।491।।
ङवर्णसंज्ञः पवनः प्रसिद्धो गान्धारिनामा कथितो झवर्णः।
विश्वासवायुर्हि टवर्णयुक्तः खवर्णसंज्ञः कथितो ह्युदानः।।492।।
घवर्णवान्वै मरुतो ञवर्णः समीरणोऽयं हि जगत्प्रसिद्धः।
फणिप्रियानाम चवर्णयुक्तः सुखासनामास्ति ठवर्णसंज्ञः।।493।।

यह अनाहत चक्र शरीर में प्रसिद्ध है जो की 12 दलवाला, 'क' से 'ठ' तक 12 वर्णो से संबद्ध 12 वायु से युक्त है। ईशान, नैर्ऋत्य, वायव्य और धनंजय (आग्नेय) कोणों में स्थिरता का विधान करते हैं। 'क' वर्ण – व्यान, 'ख' वर्ण – उदान, 'ग' वर्ण – आशुगम, 'घ' वर्ण – मरुत, 'ड' वर्ण – पवन, 'च' वर्ण – 'फणिप्रिया', 'घ' वर्ण – निःश्वास, 'ज' वर्ण – उदान, 'स' वर्ण – गान्धारि, 'भ' वर्ण–समीरण, 'ह' वर्ण – विश्वास और 'ठ' वर्ण – सुखास। इस प्रकार क्रमश,

'क' वर्ण से 'ठ' वर्ण तक के 12 वर्णो से युक्त ये 12 वायुओं की संज्ञायें प्रसिद्ध हैं और शास्त्रों से ज्ञात है।(490-493)

47. चक्रनामानि = चक्रों के नाम -

अथ चक्राणि वक्ष्यन्ते स्थितिर्येषां शरीरगा।
अधःसहस्रारं पूर्वं मूलाधारं ततः परम्।।494।।
सवाधिष्ठानं तदग्रे तु ततस्तु मणिपूरकम्।
स्वस्तिकं चैवानाहतं विशुद्धं चैव लम्बिका।।495।।
आज्ञाचक्रमिति प्रोक्तान्यूर्ध्ववक्त्राणि व र्मणि।
स्वाधिष्ठानं मणिपूरमनाहतमथापि वा।।496।।
विशुद्धं चेति चक्राणि सन्त्यधोमुखगानि हि।
एवं द्वादशचक्रणि कालीकल्पे भवन्ति हि।।497।।

(कालीकल्प में 12 चक्रों के नाम का वर्णन निम्न प्रकार से है ।) शरीर में स्थित चक्रों का वर्णन करते हैं जिनका क्रम इस प्रकार है। सर्वप्रथम अधःसहस्रार, मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, कल्याणकारक अनाहत, विशुद्ध, लम्बिका और आज्ञा - ये कुण्डलिनी के मार्ग में स्थित ऊर्ध्वमुखी 8 चक्र हैं। अधोमुखी 4 चक्र है। वे इस प्रकार हैं - स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत और विशुद्ध।(494-497)

आज्ञाचक्रं विभक्तं स्यात्कल्पयोरुभयोरपि।
तेषां नामानि वर्ण्यन्ते योगतन्त्रानुसारतः।।498।।

दोनों कल्पों (सुन्दरीकल्प और कालीकल्प) में आज्ञाचक्र का वर्णन विभाग पूर्वक किया गया है। उनके नामों का वर्णन किया जाता है योग और तन्त्र शास्त्रों के अनुसार।(498)

आज्ञाचक्रं मनश्चक्रं सप्तकोशाख्यमेव च।
बिन्दुः कला रोधिनी च नादो नादान्त एव च।।499।।
शक्तिश्च व्यापिका च समनाग्रे तथैव हि।
गुरोः पद्मं ततोऽग्रे च दलैर्द्वादशभिर्युतम्।।500।।
अधोमुखं मनश्चक्रं पत्रैर्द्वादशभिर्युतम्।
उन्मनी षोडशदलमधोवक्त्रं च नीरजम्।।501।।
महाबिन्दुस्तदग्रे च चक्राण्येतानि सन्ति वै।
एतान्यावृत्य लसति सहस्रारमधोमुत्राम्।।502।।

आज्ञाचक्रादूर्ध्वभाग एकैकांगुलकोपरि ।
प्रोक्ता षोडश चक्राणां संस्थितिर्योगिसम्मता। ।503।।

आज्ञाचक्र, मनश्चक्र, सप्तकोश, बिन्दु, कला, रोधिनी, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिका, समना, गुरुपद्म, बारहदलों से युक्त अधोमुखी मनश्चक्र, बारहदलों से युक्त उन्मनी और सोलहदलों से युक्त महाबिन्दु। ये कुल 15 हुये इन सब को आवृत्त करके अधोमुख सहास्रार (16वाँ) चक्र चमकता हुआ विराजमान है। आज्ञाचक्र के ऊर्ध्वभाग में एक-एक अंगुल फरक में ऊपर-ऊपर की ओर इन सभी 16 चक्रों की स्थिति योगियों के सम्मत है।(499-503)

महाषोडशी चेयन्तु कूटैः षोडशभिर्युता।
आम्नायक्रमतश्चैषां ध्यानं कर्तव्यमेव हि।।504।।

यह महाषोडशी सोलह कूटों से युक्त है, आम्नाय के क्रम से ही इनका ध्यान करना चाहियें।(504)

आधारनादसूत्रेण ध्यायेद्वर्णमणीन् क्रमात्।
अकुलं च महाबिन्दुश्चोन्मना समना तथा।।505।।
व्यापिका शक्ति नादान्तनादरोधार्धचन्द्रकाः।
बिन्दुराज्ञा ततश्चैवं लम्बिकाथ विशुद्धिका।।506।।
अधोमुखविशुद्धिश्च शुद्धिश्चानाहतं ततः।
अधोमुखं मणिपूरं मणिपूरमधामुखम्।।507।।
स्वाधिष्ठानं ततोऽधश्च मूलाधारं तथैव च।
विषुवं कुलसंज्ञं च कुलत्थेति प्रकीर्तितम्।।508।।

आधारनादसूत्र से वर्णमणियों का क्रमश ध्यान करना चाहिये। ऊपर से नीचे चक्रों का क्रम इस प्रकार भी कहा गया है- अकुलचक्र, महाबिन्दु, उन्मना, समना, व्यापिका, शक्ति, नाद, नादान्त, रोधन, अर्धचन्द्रिका, बिन्दु, आज्ञा, लम्बिका, विशुद्ध, अधोमुखविशुद्ध, अनाहत, अधोमुख अनाहत, मणिपूर, अधोमुखमणिपूर, स्वाधिष्ठान, अधोमुख स्वाधिष्ठान, मूलाधार, विषुव, कुल, कुलोत्थ।(505-508)

48. चक्राणां मानव्यवस्था = चक्रों के नाप की व्यवस्था -

अधश्चोर्ध्वं सुषुम्नायाः सहस्रदलसंयुतम्।
रक्तं श्वेतं च साहस्रं तच्छक्तिभिर्युतम् ।।509।।

सुषुम्ना का नीचे और ऊपर क्रमशः लाल और सफेद रंग के सहस्रदलों से युक्त चक्र हैं। प्रत्येकदल में शक्ति पृथक्-पृथक् होने से एक-एक हजार शक्तियों से युक्त हैं।(509)

ऊर्ध्वाऽधोमुखमीशानि कर्णिकाकेसरान्वितम्।

शक्तिरूपं महेशानि कुलाकुलमयं शुभम् ।।510।।

नीचेवाला ऊर्ध्वमुखी और ऊपरवाला अधोमुखी होता है। हे ईशानी! कर्णिका और केसरों से युक्त है। हे महेशानी! वे शक्तिरूप हैं, शुभ हैं, ऊपरवाले का नाम कुल और नीचेवाले का नाम अकुल है।(510)

पंकजद्वयमीशानि स्थितं शाश्वतमव्ययम्।

शक्तिरूपं शिवाकारं शर्वाण्याः सन्निजालयम्।।511।।

हे ईशानी! हे शर्वाणी! ये दोनों कमल (चक्र) शाश्वत और अव्यय हैं। नीचे का शक्तिरूप और ऊपर का शिवरूप है। वास्तव में शिव-शक्ति ऐक्य होने से दोनों शक्ति का ही निजालय (स्व निवास स्थान) है। इसलिये पूर्वश्लोक में दोनों को शक्तिरूप कहा था।(511)

तयोर्मध्ये सुषुम्नातस्त्रिदशाधारपंकजम्।

तेषां रूपं क्रमं चैव क्रमाद्वक्ष्येऽधुना शृणु।।512।।

इन दोनों के बीच में सुषुम्ना से सम्बद्ध 13 चक्र हैं। उनके स्वरूप और क्रम मैं क्रमशः अब कहूँगा, सुनो।(512)

अधः पद्मं सहस्रारं कर्णिकाकेसरान्वितम्।

तैजसं रक्तवद्दीप्तं तद्दलस्थितशक्तिभिः।।513।।

सर्व प्रथम अकुलनामक (सुषुम्ना का मूल में) नीचे वाला अधःसहस्रार चक्र, जो कि कर्णिका और केसरों से युक्त है। तैजस होने से और उसके प्रत्येक दल में विद्यमान शक्तियों के कारण लाल रंगवाला होकर दीप्त है।(513)

प्रतिकिंजल्कसंस्थाभिः शक्तिभिश्चावृतं प्रिये।

कणिकामध्यतो देवि कुलदेवी च संस्थिता।।514।।

हे प्रिये! उसके प्रत्येक पंखुड़ी में स्थित शक्तियों से आवृत है। हे देवी! कर्णिका के मध्य में कुल देवि स्थित है।(514)

तत्पद्मोर्ध्वं सुषुम्नायां मध्ये त्वेकांगुलोपरि।

पद्ममष्टदलैर्युक्तमष्टग्रन्थिसमन्वितम्।।515।।

सुषुम्ना के बीच में उस कमल (अधःसहस्रार) से एक अंगुल ऊपर आठ ग्रन्थियों से युक्त एक 8 पंखुड़ियों वाला कमल (चक्र) है।(515)

रक्तं सुकर्णिकोपेतं रक्तकिंजल्कशोभितम्।
ग्रन्थ्यग्रस्तत्रिशृंगे च ब्रह्माण्याद्यष्टभैरवैः।।516।।

सुन्दरकर्णिकाओं से युक्त लालरंग के पंखुड़ियों से शोभित, ग्रन्थियों के अग्रभाग में स्थित त्रिशृंग (त्रिकूट नामक पहाड़ के आकार सदृश आकारवाला केसर) वाले उन पंखुड़ियों में अष्ट भैरवों के साथ ब्रह्माण्यादि अष्टदेवियाँ स्थित हैं।(516)

अष्टपद्मस्थितग्रन्थिस्थितवर्णोक्तशक्तिभिः।
तदन्यशक्तिभिश्चैव संगताभिः समावृतम्।।517।।

अष्टकमल में स्थित ग्रन्थियों में स्थित वर्णो से युक्त उक्त शक्तियों के साथ उन से अन्य शक्तियाँ भी समावृत्त हैं (विराजमान हैं)।(517)

तन्मध्ये कौलशक्त्या च सेवितं संस्मरेत्ततः।
एकांगुलिप्रमाणोर्ध्वं षड्दलं कुलपंकजम्।।518।।

उसके मध्य में कुलशक्ति के अंशभूता कैलशक्ति से सेवित का संस्मरण करें। तत्पश्चात् उससे एक अंगुली प्रमाण (नाप) ऊपर 6 दलों वाला एक कुलकमल (चक्र) है।(518)

गुदमेढ्रान्तरे देवि पंचागुलसमुच्छ्रितम्।
गुदमेकांगुलं मध्ये चांगुलद्वयविस्तृतम्।।519।।

गुदा और मेढ्र (लिंग-जननेन्द्रिय) के बीच में और वह पाँच अंगुल ऊँचा (उभरा हुआ) है। हे देवि! गुदा से एक अंगुल दूर और बीच में दो अंगुल विस्तृत है।(519)

तस्य मूले महायोनिस्त्रिकोणाकाररूपिणी।
सुषुम्नायोनिमध्यस्था तस्य मूले महेश्वरि।।520।।
आधारपंकजं पीतं चतुष्पत्रं सकेसरम्।
अधोमुखं च तन्मध्ये कुण्डली परमेश्वरी।।521।।

उसके मूल में त्रिकोणाकार रूपी महायोनि देदीप्यमान है, जो कि सुषुम्ना व योनि के मध्य में है। हे महेश्वरी! उसके भी मूल में मूलाधार चक्र है। पीले रंगवाले केसरों से युक्त चार पंखुड़ियाँ है। वह अधोमुख है, उसके बीच में परमेश्वरी कुण्डलि (कुण्डलिनी) के रूप में विराजमान है।(520-521)

तयार्मध्ये सुषुम्नान्तस्त्रिदशाधारपंकजम्।
तेषां रूपं क्रमं चैव क्रमाद्वक्ष्येऽधुना शृणु।।522।।
मर्माण्यंगुष्ठगुल्फांघ्रिपृष्ठजंघाख्यजानुषु ।
ऊरुसीवनिकामुष्कमेढ्रनाभिषु पार्श्वयोः।।523।।
हृदयस्तनकण्ठांसकृकारीकर्णमूर्द्धसु।
शंखयोः पल्लनासादिमध्यान्तस्य कपोलतः।।524।।

512 वें श्लोक का पुनः कथन मतान्तर दर्शाने के लिये है, क्योंकि मतान्तर के अनुसार शरीर में 38 स्थान हैं, प्रत्येक में चक्र माना गया है। वे क्रमशः इस प्रकार है - अंगूठा(2), टखना(2), पैर(2), पीठ(1), पिण्डलि(2), घुटना(2), जांघ(2), सीवनी(1), अंडकोष(2), जननेन्द्रिय(1), नाभि(1), बगल(2), हृदय(1), स्तन(2), कण्ठ(1), अंसभुजा(2), गर्दन(1), कान(2), मस्तक(1), मस्तक की हड्डी (2), जिह्वा और नाक के आदि, मध्य और अन्त कपोल के अनुसार (6) - कुल 38 हैं।(522-524)

अष्टत्रिंशदिति प्रोक्तान्येषु वायोस्तु धारणात्।
परकायप्रवेशश्च स्वेच्छोत्क्रान्तिश्च सिद्ध्यति।।525।।

कुल 38 चक्र कहे गये हैं क्योंकि इन सभी स्थानों में वायु विशेष रूप से धारित है। इन सबको जगाने (जागृत करने) पर परकायप्रवेश और इच्छामृत्यु सिद्ध होता है।(525)

स्वयं भ्रूमध्यगा चिन्त्या वराभीतिसमन्विता ।
पार्थिवं पंकजं बाह्ये तस्याधः पंकजं परम्।।526।।

वर और अभय मुद्राओं से युक्त स्वयं का भ्रूमध्य में चिन्तन करें। जिस प्रकार बाहर में पार्थिव कमल होते हैं उसी प्रकार अपने शरीर के अन्दर नीचे में विद्यमान इस कमल को जानो।(526)

तैजसं परमेशानि तन्मध्यस्थितशक्तयः।
निष्कलाः परमेशानि विद्युत्पुंजनिभाः स्मरेत्।।527।।

हे परमेशानी! वह कमल भी तैजस है और उस के मध्य में स्थित शक्तियाँ निष्कल हैं। हे परमेशानी! उन्हें विद्युत (बिजली) के पुंज (समूह) का प्रकाश के समान ध्यान करें।(527)

तदूर्ध्वं कर्णिकामध्ये वह्निबिम्बं तदूर्ध्वगम्।

पूर्णपीठं च तस्योर्ध्वं शाकिनी संस्थिता प्रिये।।528।।

उसके ऊपर कर्णिका के बीच में अग्नि के सदृश तेज है, उसके ऊपर पूर्णपीठ जिसके ऊपर हे प्रिये! शाकिनी देवी संस्थित है।(528)

आधारपंकजस्योर्ध्वं सार्धद्व्यंगुलकोपरि ।

तैजसं साष्टपत्रं च पीतकर्णिकया युतम्।।529।।

मूलाधार चक्र से ढाई अंगुल ऊपर, 8 पंखुड़ियों वाला एक चक्र है जिसके बीच में पीले रंग की कर्णिका है।(529)

हृल्लेखाकर्णिकामध्ये स्थिताऽनंगादिसेविता।

एतस्माद्द्व्यंगुलादूर्ध्वे स्वाधिष्ठानं षडस्रकम्।।530।।

हृल्लेखा के सदृश कर्णिका के बीच में कामदेव आदि से सेवित देवी का ध्यान करें। उससे दो अंगुल ऊपर 6 पंखुड़ियों वाला स्वाधिष्ठान चक्र है।(530)

अधोमुखानि चक्राणि मिश्रणाच्च तथा द्वयोः।

भवन्ति तेषां नामानि व्यवस्थां च प्रदर्शये।।531।।

अधोमुख चक्र पूर्व में बताये हुये के अनुसार दो चक्रों का सम्बन्ध से बनते हैं उनके नाम और नाप की व्यवस्था दर्शाऊंगा।(531)

अधोमुखस्य पद्मस्य कर्णिकावर्तनं भवेत्।

अधोमुखे त्वधिष्ठाने सम्प्रोक्ताश्चक्रवेदिभिः।।532।।

चक्रवेत्ताओं के द्वारा बताया गया है कि अधोमुख अधिष्ठान में अधोमुख चक्र व कर्णिका होते हैं।(532)

49. मूलाधारचक्रं तद्वर्णास्तथा वायवः = मूलाधारचक्र, तत्रस्थवर्ण और वायु –

ववर्णवान्संवाहोऽयं स्वयम्भूलिंगनामकः ।

ह्यधोमुखो हि वहति चाग्निकोणस्थितः सदा।।533।।

प्रथम पंखुडी में 'संवह' (समीर) नामक वायु 'व' वर्ण से युक्त है, जो कि सदा अग्निकोण में स्थित रहकर नीचे की ओर ले जाता है तथा स्वयंभूलिंगवाला है।(533)

सदा नैर्ऋत्यकोणस्थः शयुक्तो ह्यजगन्मतः।
जन्ममृत्यू प्रवर्तेते यत्प्रभावेण जन्मिनाम् ।।534।।

सदा नैर्ऋत्यकोण में स्थित 'श' वर्ण से युक्त 'अजगत्' नामक वायु जीवों के जन्म और मृत्यु को प्रवृत्त कराता है।(534)

सावित्रीपरनामायं वायुरस्ति प्रकम्पनः।
सावित्र्या ह्यनया सत्यं प्रचलन्ति स्वरास्त्रयः।।535।।

'सावित्री' यह पर्याय नाम वाला 'प्रकम्पन' नामक वायु है। इस सावित्री के साथ निश्चिरूप से तीनों स्वर चलते हैं।(535)

षकाराक्षरसंयुक्ता सुषुम्नापिंगले इडा ।
सकारवर्णसंयुक्तो वायुरावकनामकः ।।
सुप्रसिद्धोऽस्ति हीशानकोणस्थानकृतालयः।।536।।

यह 'ष' कार वर्ण से संयुक्त है। वे तीन स्वर हैं- इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा एवं 'स' कार वर्ण युक्त है 'आवक' नाम का वायु, जो कि ईशानकोणस्थान को अपने निवास स्थान बनाया हुआ है।(536)

स्वाधिष्ठानगताश्चैवं त्रयो वर्णाः समीरिताः।
विशुद्धस्याष्टवर्णाः स्युरेवमेकादश स्थिताः।।537।।

स्वाधिष्ठान गत तीनवर्ण और विशुद्ध के 11 वर्ण को मिलाकार कुल 14 वर्ण होते हैं, ऐसे कहा गया है।(537)

अष्टौ वर्णाः प्रलुप्ताश्च विशुद्धस्य भवन्ति हि।
म य र ओ औ अं अःअ आ इ ई च सुवर्णकाः।।
ब भ ल उ ऊ ऋ ॠ ऌ ल ए ऐ च सुवर्णकाः।
वर्णा एकादश ध्येया ईशाने मण्डले सदा।।
तत्र चाबधिपो विश्णुस्त्रिपुरा मंचदेवता।।538।।

किन्तु 8 वर्ण विशुद्ध के लुप्त हैं। म, य, न, ओ, औ, अं, अः, अ, आ, इ, ई – ये शोभनवर्ण एवं ब, भ, ल, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ – ये शोभन वर्ण हैं। अतः ईशानमण्डल में सदा ये 11 वर्ण ध्येय हैं। उसमें जल के अभिमानी विष्णु देवता ओर त्रिपुरा देवी मंचस्थदेवता हैं।(538)

स्वाधिश्ठानमधः पद्मं महाकाल्या युतं मतम्।

अप्सु च बन्धिनीं शक्तिं पूर्वाभिः शक्तिभिर्वृताम्।।539।।

अधोमुखी स्वाधिष्ठान चक्र महाकाली से युक्त है- ऐसी मान्यता है। जल को बान्धने की शक्ति व पूर्वादि शक्तियों से युक्त काकिनी का ध्यान करें।(539)

काकिनीमभिचिन्त्याथ नाभावष्टांगुलोपरि।

मणिपूरं दशदलं चाधःपद्माष्टकं तथा ।।540।।

उससे 8 अंगुल ऊपर दस दल वाला मणिपूर और उससे सम्बद्ध 8 दलवाला अधोमुखी चक्र की स्थिति है।(540)

अधोमुखे मणिपूरे प्रोक्तास्तु तत्त्वदर्शिभिः।

स्वाधिष्ठानस्य वर्णाः स्युस्त्रयो हि मणिपूरगाः।।541।।

पंचवर्णाः समाख्याता एवम टौ भवन्ति ते।

भ ब ल त थ द ध ना वर्णाश्चैव सुवर्णकाः।।

ड ढ ण म य र प फा वर्णाश्चैव सुवर्णकाः।।542।।

अधोमुख मणिपूर में तत्त्वदार्शियों ने कहा है कि स्वाधिष्ठान के तीन वर्ण और मणिपूर के 5 वर्ण हैं, मिलाकर कुल वे 8 वर्ण होते हैं। भ, ब, ल, त, थ, द, ध, न-ये शोभन वर्ण एवं ड, ढ, ण, म, य, र, प, फ,- ये शोभन वर्ण हैं। (541-542)

एवमष्टौ चिन्तनीया वर्णाक्त्वाग्नेयमण्डले।

तत्र तेजःपती रुद्रस्त्रिपुरा मंचदेवता।।543।।

इस प्रकार 8 वर्णो का अग्निमण्डल में चिन्तन करें। वहाँ तेजस्वति रुद्र और त्रिपुरादेवी मंचस्थ देवता हैं।(543)

महालक्ष्म्या युतं ध्येयं मणिपूरमधोमुखम्।

मणिपूरमूर्ध्वमुखं दशपत्रं सुशोभनम् ।।544।।

अधोमुख मणिपूर को महालक्ष्मी से युक्त ही ध्यान करें। फिर दस पंखुड़ियों वाला ऊर्ध्वमुखी मणिपूर चक्र सुशोभित है।(544)

50. अधोमुखस्वाधिष्ठानचक्रं तद्वर्णास्तथा वायवः = अधोमुखस्वाधिष्ठानचक्र, तत्रस्थवर्ण और वायु –

बवर्णश्चंचलः प्रोक्तो भवर्णः पृषताम्पतिः। उवर्णो हि जगत्प्राण ऊवर्णः

बवर्णश्चंचलः प्रोक्तो भवर्णः पृषताम्पतिः।
उवर्णो हि जगत्प्राण ऊवर्णः पवमानकः॥545॥
ऋवर्णश्च नभःप्राणः ॠवर्णो हरिनामकः।
लृवर्णश्च स्मृतः सारो लवर्णस्तनुव्यापकः॥546॥
इला एवर्ण संयुक्तश्चैवर्णो हि सदागतिः।
प्रभंजनो लवर्णो हि भेदाश्चैकादश स्मृताः॥547॥

'ब वर्ण से सम्बद्ध वायु का नाम है चंचल एवं 'भ' वर्ण का पृषताम्पति, 'उ' वर्ण का जगत्प्राण, 'ऊ' वर्ण का पवमान, 'ऋ' वर्ण का नभः प्राण, 'ॠ' वर्ण का हरि, 'लृ' वर्ण का सार, 'लॄवर्ण' का तनुव्यापक, 'ए' वर्ण का इला, 'ऐ' वर्ण का सदागति,'ल' वर्ण का प्रभंजन – इस प्रकार अधोमुख स्वाधिष्ठानगत 11 वर्ण और उनसे सम्बन्धित 11 वायुओं का नाम है।(545–547)

51. स्वाधिष्ठानचक्रं तद्वर्णास्तथा वायवः=स्वाधिष्ठानचक्र, तत्रस्थवर्ण और वायु–

बवर्णश्चंचलो वायुश्चाग्निकोणस्थितः सदा।
याम्य`भवर्णयुक्तश्च स्थितोऽयं पृषताम्पतिः॥548॥
ह्यपानोऽयं हि नैर्ऋत्ये स्थितो नित्यं मवर्णवान्।
यवर्णयुक्तो विवहः पश्चिमायां सदा स्थितः॥549॥
रवर्णवान्वाति वायुर्वातिनामा सदोत्तरे।
लवर्णयुक्तः पूर्वस्यां स्थितो वायुः प्रभंजनः॥550॥

'ब' वर्ण से सम्बद्ध वायु का नाम है चंचल और वह सदा अग्निकोण में स्थित है। एवं 'भ' वर्ण का वायु पृषताम्पति है, जो कि दक्षिण में स्थित है। नैर्ऋत्य में 'म' वर्ण से सम्बधित 'अमान' नामक वायु स्थित है। 'य' वर्ण से युक्त वायु है विवह, जो पश्चिम में सदा स्थित है। 'र' वर्ण का वायु है वाति, जो कि सदा उत्तर में स्थित है तथा 'न' वर्ण युक्त है प्रभंजन नामक वायु, जो पूर्व में स्थित है।(548–550)

52. अधोमुखमणिपूरचक्रं तद्वर्णास्तथा वायवः = अधोमुखमणिपूरचक्र, तत्रस्थवर्ण और वायु –

डवर्णः कम्पलक्ष्मा हि ढवर्णो वाद्यसंज्ञकः।
यवर्णो विवह प्रोक्तो णवर्णो मृगवाहनः।।551।।
लाकिनीमध्यगं तच्च डामर्यादिभिरावृतम्।
चतुर्दशांगुलादूर्ध्वेऽनाहताख्यं च पंकजम्।।552।।
अनाहतं चोर्ध्वमुखं दलैर्द्वादशभिर्युतम्।
अधोमुखेऽनाहताख्ये वर्णाः प्रोक्ता महर्षिभिः।।553।।
पंचार्णामणिपूरस्यानाहतस्थास्तु षट् तथा।
संयोजने तु ते जाता एवमेकादशार्णकाः।।554।।

'ड' वर्ण से सम्बद्ध वायु का नाम है कल्पलक्ष्मा, 'ढ' वर्ण का वाद्य, 'य' वर्ण का विवह, 'ण' वर्ण का मृगवाहन, डामर्यादिशक्तियों से आवृत लकिनी उनके मध्य में स्थित है। मणिपूर से 14 अङ्गुल ऊपर अनाहत चक्र है। ऊर्ध्वमुखी अनाहत चक्र 12 दलों वाला है। उससे संलग्न अधोमुखी अनहात चक्र में 11 वर्ण महर्षियों ने बताया है। उनमें से 5 वर्ण मणिपूर के और 6 वर्ण अनाहत के हैं। इस प्रकार दोनों (5+6) को मिलाकर कुल 11 वर्ण होते हैं।(551-554)

ड ढ ण घ ङ च छ ज झ ञाक्चैव पफौ तथा।
क ख ग च छ ज झ ञाक्चैव तथा।।
चक्रे सदा चिन्तनीया नैर्ऋत्येऽत्र भवन्ति हि।।555।।

वे ग्यारह वर्ण इस प्रकार है - ड, ढ, ण, घ, ङ, च, छ, ज, स, ओर ञ तथा प, फ, क, ख, ग, च, छ, ज, झ, ञ - ये शोभन वर्ण है एवं अधोमुख मणिपूर चक्र में जो कि नैर्ऋत्य कोण में सदा चिन्तनीय है।(555)

वाय्वधिपतिस्तत्र ईश्वरो मंचदेवता।
अधोमुखस्य च मणेक्चामुण्डा देवता मता।।556।।

वहाँ वाय्वधिपति ईश्वर ही मंचदेवता है और इस अधोमुख मणिपूर चक्र का चामुण्डा देवी चक्राधिष्ठात्री है।(556)

तदूर्ध्वं स्वस्तिकं चक्रं दला टकविभूषितम्।
अ क च ट त प य शा वर्णाः कर्णिकायां ञ्शुभाः।।557।।

उससे ऊपर आठदलों से विभूषित एक स्वस्तिक चक्र है। उसके दलों में अ, क, च, ट, त, प, य, और श वर्ण अंकित हैं।(557)

तन्मध्यं प्रेतबीजं च सर्वदैव प्रकाशते।
नैर्ऋत्यकोणचक्रेऽपि स्वस्तिकं मन्यते बुधैः।।558।।

इसके बीच प्रेतबीज सर्वदा प्रकाशित है। नैर्ऋत्य कोणस्थ चक्र में ही विद्वान् लोग इस स्वस्तिक चक्र को मानते हैं।(558)

अनाहतं चोर्ध्वमुखं दलैर्द्वादशभिर्युतम्।
राकिनीमध्यगं तच्च द्वादशारमनाहतम्॥559॥

ऊर्ध्वमुखी अनाहत चक्र 12 दलों से सुशोभित है, जिसके बीच राकिनी देवी विराजमान है। वह 12 अराओं वाला अनाहत चक्र है।(559)

मवर्णवानपानश्च रवर्णो वातसंज्ञकः।
धूलिध्वजः फवर्णश्च पवर्णो हि नभःस्थगः॥560॥
डवर्णः कम्पलक्ष्मा हि ढवर्णो वाद्यसंज्ञकः।
यवर्णो विवहः प्रोक्तो णवर्णो मृगवाहनः॥561॥

'म' वर्ण से सम्बद्ध अपान नामक वायु है और 'र' वर्ण से युक्त है वात नामक वायु है। तथा 'फ' वर्णवाला है धूलिध्वज, 'प' वर्णवाला नभःस्थप्राण, 'ड' वर्णवाला कम्पलक्ष्मा, 'ढ' वर्णवाला 'वाद्य', 'य' वर्णवाला विवह और 'ण' वर्णवाला मृगवाहन।(560-561)

53. मणिपूरचक्रं तद्वर्णास्तथा वायवः = मणिपूरचक्र, तत्रस्थवर्ण और वायु -

दक्षिणोत्तरयोरेकं पूर्वे चत्वारि पश्चिमे।
दलानि दश चक्रेऽस्मिन् प्रवदन्ति हि योगिनः॥562॥

मणिपूर चक्र के बारे में योगी जन कहते हैं कि यह चक्र दक्षिण और उत्तर में एक-एक तथा पूर्व और पश्चिम में चार-चार दलों से युक्त होने से 10 दलवाला है तथा ऊर्ध्वमुखी है।(562)

वातिस्तवर्णयुक्तोऽयमक्षतिर्हि थवर्णवान्।
उद्वहो हि नवर्णः स्याद्दवर्णश्च प्रकम्पनः॥563॥

'त' वर्ण से युक्त है वाति नामक वायु, 'थ' वर्णवाला है अक्षति, 'व' वर्णवाला उद्वह, 'द' वर्णवाला प्रकम्पन।(563)

धवर्णवान्समानोऽयं मवर्णो मृगवाहनः।
कल्पलक्ष्मा डर्णश्च ढवर्णो वास उच्यते॥564॥

'ध' वर्णवाला समान, 'म' वर्णवाला मृगवाहन, 'ड' वर्ण का कम्पलक्ष्मा, 'प' वर्णवाले का नभः स्थप्राण।(564)

धूलिध्वजः फवर्णोऽयं ढवर्णो वास उच्यते।
इत्थं हि मणिपूरस्य विश्रुतानि दलानि वै॥565॥

'फ' वर्णवाला धूलिध्वज, 'ढ' वर्णवाला वास-इस प्रकार मणिपूर चक्र के दलस्थ वर्ण एवं तत्सम्बन्धी वायु के बार में कहा गया है और विश्रुत (प्रसिद्ध) है।(565)

54. अधोमुखमनाहतचक्रं तद्वर्णास्तथा वायवः = अधोमुखानाहतचक्र, तत्रस्थवर्ण और वायु -

कवर्णवान्स्मृतो व्यानो ह्युदानश्च खवर्णकः।
गवर्णश्चाशुगः प्रोक्तो घश्वासो हि टवर्णवान्।।566।।

'क' वर्ण से सम्बद्ध वायु का नाम है व्यान, 'ख' वर्णवाले का नाम उदान, 'ग' वर्णवाला आशुग कहा गया है, 'ट' वर्णवाला घश्वास (विश्वास) है।(566)

सुखासोऽयं ठवर्णो हि ञवर्णश्च समीरणः।
थवर्णश्चाक्षतिःप्रोक्तस्तवर्णो वातिसंज्ञकः।।567।।
समानोऽधवर्णः स्याद्दवर्णश्च प्रकम्पनः।
नवर्णश्चोद्वहः प्रोक्तो भेदाश्चैकादश स्मृताः।।568।।

'ठ' वर्ण का सुखास, 'ञ' वर्ण का समीरण, 'थ' वर्णवाला अक्षति, 'त' वर्ण का उद्वह कहा गया है। इस प्रकार 11 वर्णो वाला और 11 वायुओं से विभूषित यह चक्र है - ऐसे स्मृत है।(567-568)

पत्रस्थकालरात्र्यादिशक्तिभिश्च समावृतम्।
मध्यस्थसूर्यबिम्बे तु नादाड्ड्यानाख्यपीठकम्। ।569।।

दलों में स्थित कालरात्री आदि देवियों से समावृत, मध्य में स्थित सूर्यबिम्ब में नादोड्डूयान नामक पीठ देदीप्यमान है।(569)

तस्मादेकांगुलादूर्ध्वं विशुद्धाख्यमधोमुखम् ।
अस्मिन्ननाहतस्योक्ता वर्णाः शिष्टाः शडेव हि। ।570।।
विशुद्धस्या टमिलिताश्चत्वारो दश एव च।
उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ठ ट क ख ग घास्तथा।।
अ आ इ ई घ ङ च छ ज झ ओ औ अं अस्तथा।।571।।
एताश्चैवेति विज्ञेया अधोमुखविशुद्धके।
चतुर्दशैवात्र चिन्त्या वर्णा वायव्यकोणके।।572।।

उससे एकांगुल ऊपर अधोमुखी विशुद्ध नामक चक्र है। इसमें अनाहत में कह गये शेषभूत 6 वर्ण और विशुद्ध चक्र के 8 वर्ण मिलकर 14 वर्ण कहे गये

हैं। उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, ॡ, ए, ऐ, ठ, ट, क, ख, ग, घ तथा अ, आ, इ, ई, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ओ, औ, अं, अः – वायव्य कोणस्थ अधोमुख विशुद्ध में ये 14 वर्ण ही चिन्तनीय हैं।(570–572)

पृथिव्यधिपतिस्तत्र ब्रह्मा वै मंचदेवता।
महासरस्वती ध्येया चक्रेऽस्मिन्साधकैः सदा।।573।।

उसमें पृथिव्यधिपति ब्रह्मा ही मंचदेवता हैं, वे और महासरस्वती ही इस चक्र में साधकों द्वारा सदा ध्येय हैं।(573)

कण्ठदेशे विशुद्धन्तु दलैः शोडषभिर्युतम्।
मध्यगा डाकिनी बाह्यपत्रेषु परमेश्वरी।।574।।

कण्ठ देश में स्थित विशुद्ध चक्र 16 दलों से युक्त है जिसके मध्य में डाकिनी विराजमान और बाह्यदलों में परमेश्वरी स्थित हैं।(574)

अमृताद्यक्षरान्तस्था चन्द्रबिम्बं तदूर्ध्वतः।
आकाशश्च विशुद्धाख्ये चक्रे वायुरनाहते।।575।।

अमृताद्यक्षरान्तस्थ चन्द्रबिम्ब से युक्त है। उससे ऊपर है जो यह विशुद्ध नामक आकाशतत्त्ववाला चक्र। अनाहत में वायु तत्त्व है।(575)

साधनायां क्रमश्चायं स्वयं विपरिवर्तते।
स्वाधिष्ठाने जलं चैव मणिपूरे च पावकः।।576।।

साधनाकाल में उसका क्रम स्वयं बदलता है। स्वाधिष्ठान में जलतत्त्व और मणिपूर में अग्नि तत्त्व है।(576)

वयसो वृद्धिमायाते स्वयं विपरिवर्तते।
ये सुषुम्नास्पर्शवन्त ऊर्ध्वाधोमध्यवर्तिनः।।577।।

व्यक्ति की आयु जैसे-जैसे बढ़ती है वैसे-वैसे स्वयं परिवर्तन होती है। उसमें जो ऊर्ध्व मध्य ओर अधःवर्ती सुषुम्ना को स्पर्शवाले होते हैं अर्थात् अनुभव करते हैं।(577)

द्वयोश्चक्रयोर्वर्णाः स्युर्यावत्संख्यान्विता इह।
तेषामर्धाः सदा चिन्त्याः क्रमो ह्येष सुनिश्चितः।।578।।

दोनों चक्रों के वर्ण मिलाकर जितनी संख्या बनती है उसके आधे वर्णो का ही चिन्तन (ध्यान) करना चाहिये-यही क्रम इस विषय में निश्चित किया गया है। (578)

यथा विशुद्धानाहतयोर्वर्णयोगोऽष्टविंशतिः।
चतुर्दश तदर्द्धाः स्युर्वायव्येमण्डले ततः।।
एतेनैव क्रमेणात्र चक्रे वन्ये वपि स्थिताः।।579।।

जिस प्रकार विशुद्ध और अनाहत के वर्णों का योग 28 है तो उसका आधा हुआ चौदह वर्ण, जो की वायव्यकोणस्थ चक्र के वर्ण हैं। इसी क्रम को अन्य सभी अधोमुखी चक्रों में समझें। (579)

बाह्योदीच्याः पश्चिमायास्तथान्तर्यागो वायव्यस्य मध्ये प्रविष्टः।
बाह्यः प्रतीच्या दक्षिणायास्तथान्तर्यागो नैर्ऋत्यस्य मध्येऽथ बोध्यः।।580।।

पश्चिम व उत्तर दिक् में होनेवाले बाह्ययाग और अन्तर्याग वायव्य के मध्य में प्रविष्ट हैं तथा पश्चिम और दक्षिण दिक् में होनेवाले बाह्ययाग और अन्तर्याग नैर्ऋत्य के मध्य में प्रविष्ट है - ऐसे समझें।(580)

स्थिता नैर्ऋत्यवायव्यकोणे यस्य सुधासरित्।
ईशाने कल्पवृक्षो हि चाग्निकोणे जलस्थलम्।।581।।

जिस साधक के नैर्ऋत्य और वायव्यकोण में सुधासरित् स्थित हो उसके ईशान में कल्पवृक्ष ओर आग्नेयकोण में जल स्थल अवश्य स्थित है-ऐसे समझें।(581)

55. अनाहतचक्रं तद्वर्णास्तथा वायवः = अनाहतचक्र, तत्रस्थवर्ण और वायु -

कवर्णवानयं व्यानो ह्युदानश्च खवर्णकः।
गवर्णश्चाशुगः प्रोक्तो घवर्णोऽयं मरुत्स्मृतः।।582।।
ङवर्णः पवनः प्रोक्तश्चवर्णस्तु फणिप्रियः।
छवर्णयुक्तो निःश्वासो ह्युदानो हि जवर्णवान्।।583।।
झवर्णवान् हि गान्धारी ञवर्णो हि समीरणः।
टवर्णनामा खश्वासः सुखासश्चष्ठवर्णकः।।584।।

'क' वर्ण से सम्बद्ध वायु का नाम है व्यान, 'ख' वर्ण से युक्त वायु का नाम है उदान। तथा 'ग' वर्ण का आशुग कहा गया है, 'ध' वर्णवाला मरुत्, 'ङ' वर्णवाला पवन कहा गया है, 'च' वर्ण का कणिप्रिय, 'छ' वर्ण से युक्त है निःश्वास, 'ज' वर्णवाला (भी) उदान है, 'झ' वर्णवाला गान्धारी, 'म' वर्णवाला समीरण, 'ट' वर्णवाले का नाम है खश्वास (विश्वास, घश्वास), 'ठ' वर्णवाला सुखास नामक वायु है।(582-584)

बाह्यो यागो दक्षिणायाश्च प्राच्या अन्तर्यागो वह्निकोणे प्रविष्टः।
बाह्यः प्राच्या उत्तरस्यास्तथान्तर्यागः प्रोक्तः शम्भुकोणे सुधीभिः। ।585।।

दक्षिण और पूर्व दिक् सम्बन्धी बाह्याग और अन्तर्याग को वह्निकोण यानि आग्नेय में प्रविष्ट तथा पूर्व और उत्तर दिक्सम्बन्धी बाह्ययाग और अन्तर्याग ईशाणकोण प्रविष्ट समझना चाहिये- ऐसे विद्वानों के द्वारा कहा गया है।(585)

सम्प्रदायप्रभेदाद्वा गुरुनिर्दिष्टमार्गतः ।
लुप्तवर्णेषु भेदोऽपि यत्र तत्र प्रजायते।।586।।

सम्प्रदाय का भेद से और गुरु से उपदिष्ट मार्ग से लुप्त वर्णो में भेद भी जहाँ तहाँ हो जाते हैं।(586)

वर्णाश्चिन्तनमायान्ति तत्र कार्यो न संशयः।
तस्मादष्टदलं पद्मं रसिकादिभिरावृतम्।।587।।

जहाँ वर्णो के चिन्तन का प्रसंग आता है वहाँ चिन्तन अवश्य करना चाहिये, इसमें संशय नहीं। इसलिये यहां रसिका आदि देवियों से आवृत 8 दलोंवाला कमल का ध्यान करें।(587)

आज्ञाचक्रं द्विपत्राब्जं हक्षद्विदलसंयुतम् ।
हंसवतीक्षमापार्श्वद्वये मध्ये तु हाकिनी।।588।।

आज्ञाचक्र दो दलवाला चक्र है, 'ह' और 'क्ष' ये दो वर्ण दलों में अंकित हैं तथा हंसवती और क्षमा नामक देवियों से अगल-बगल में आवृत होकर बीच में हाकिनी देवी स्थित हैं।(588)

ततो ललाटगं वृत्तं बिन्द्वावरणमूर्ध्वतः ।
सूर्यकोटि प्रतीकाशमतिदीप्तं महद्गुणम्।।589।।

उससे ऊपर बिन्दु को आवृत्त करता हुआ ललाट मध्यस्थ एक वृत्ताकार चक्र है जो कि करोड़ो सूर्यो के प्रकाश के सदृश युक्त अत्यन्तदीप्त और महद्गुण वाला है।(589)

तन्मध्ये दशकोटीनां संख्यायोजनपंकजम्।
कण्ठोर्ध्वे परमेशानि लम्बिका चतुरंगुले।।590।।

उसके बीच में 10 करोड़ (अर्थात् असंख्य के समान) संख्यायुक्त कमल (चक्र) विराजमान है। हे परमेशानी! कण्ठ के ऊर्ध्व में 4 अंगुल ऊपर 'लम्बिका' नाम का चक्र है।(590)

चतु:षष्टिदले पद्मे राजन्ते ह्यक्षरास्तथा।
महाकाली महालक्ष्मीर्महापूर्वा सरस्वती।।591।।
त्रिशक्तिचामुण्डा मध्ये लम्बिकायां सुशोभिताः।
त्रिषष्टिश्चतु:षष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः।।592।।

64 दलवाला इस पद्म में अक्षर भी उसी तरह अंकित हैं। महालक्ष्मी, महाकाली और महासरस्वती के सहित त्रिशक्तिचामुण्डा लम्बिका के मध्य में सुशोभित हैं। 63 या 64 वर्ण शिवमत में स्वीकृत है।(591-592)

56. अधोमुखविशुद्धचक्रं तद्वर्णास्तथा वायवः = अधोमुखविशुद्धचक्र, तत्रस्थवर्ण और वायु -

अवर्णो हि विहंगोऽयमावर्णश्च नभःस्वरः।
इवर्णवान्स्मृतः प्राण ईवर्णश्च परावहः।।593।।
घवर्णश्च मरुत्प्रोक्तो ङवर्णः पवनः स्मृतः।
फणिप्रियश्चवर्णश्च निःश्वासो छवर्णकः।।594।।
जवर्णवानुदानश्च गान्धारी हि झवर्णकः।
औवर्णो गन्धवाहः स्यादोवर्णश्च समीरणः।।।595।।
अंवर्णो वाहसंयुक्तो भोगिकान्तो तु ह्यः स्मृतः।
एवं विशुद्धचक्रस्य प्रोक्ता वर्णाश्चतुर्दश।।596।।

'अ' वर्ण से सम्बद्ध वायु का नाम है विहंग, 'आ'वर्ण से युक्त वायु का नाम है नभः स्वर, 'इ' वर्णवाला है प्राण, 'ई' वर्ण का परावह, 'ध' वर्ण का मरुत्, 'ङ' वर्ण का पवन, 'च' वर्ण का फणिप्रिय, 'छ' वर्ण का निःश्वास, 'ज' वर्णवाला उदान, 'झ' वर्ण का गान्धारी, 'ओ' वर्णवाला गन्धवात, 'औ' वर्ण का समीरण, 'अं' वर्ण से संयुक्त है वाह, 'अः' वर्ण का भोगिकान्त नामक वायु है। इस प्रकार अधोमुखी विशुद्धचक्र के 14 वर्ग और उनसे युक्त 14 वायु हैं।(593-596)

57. विशुद्धचक्रं तद्वर्णास्तथा वायवः = विशुद्धचक्र, तत्रस्थवर्ण और वायु -

अवर्णवान्विहंगो हि चावर्णश्च नभःस्वरः।
इवर्णः कथितः प्राण ईवर्णो हि परावहः।।597।।
उवर्णो ह्यजगत्प्राण ऊनामा पवमानकः।
ऋवर्णवान्नभःप्राण ॠयुक्तो हरिरुच्यते।।598।।
लृसारो लस्तनुव्यापी इला एवर्णसंयुतः।
ओवर्णः पृषदश्वः स्यादैयुक्तोऽयं सदागतिः।।599।।

औवर्णो गन्धवाहोऽयं अंयुक्तो वाह उच्यते।
अःसंयुक्तो भोगिकान्तो वायुः ख्यातः क्रमादिह।।600।।

'अ' वर्ण से सम्बद्ध वायु का नाम है विहंग, 'आ' वर्ण का नमः स्वर, 'इ' वर्ण का प्राण, 'ई' वर्ण का परावह, 'ड' वर्ण का अजगत्प्राण, 'ऊ' वर्ण का पवमान, 'ऋ' वर्ण का नाम प्राण, 'ॠ' वर्ण का हरि कहा गया है। 'लृ' वर्ण का सारः, 'लॄ' वर्ण का तनुव्यापी, 'ए' वर्ण से संयुक्त है इला, 'ऐ' से युक्त सदागति, 'ओ' वर्ण का पृषदश्व, 'औ' कारवाला गन्धवाह, 'अं' वर्ण का वह और 'अः' वर्ण का भोगिकान्त है–इस प्रकार विशुद्धचक्र के वर्ण और वायु के बारे में कहा गया है।(597–600)

58. आज्ञाचक्रं तद्वर्णास्तथा वायवः = आज्ञाचक्र, तत्रस्थ वर्ण और वायु –

श्वसिनीनामको वायुर्हवर्णेन हि संयुतः।
महाबलः क्षवर्णश्च ह्याज्ञाचक्रप्रचालकौ।।601।।
प्राकृते संस्कृते वापि स्वयं प्रोक्ताः स्वयम्भुवा।
अनुस्वारो विसर्गश्च क ᳵ पौ चापि पराश्रयौ।।602।।
दुःस्पृष्टश्चेति विज्ञेयो लृकारः प्लुत एव च।
चतुर्णामेव चक्राणामैक्याद्यल्ललनाभिधम्।।603।।
चक्रं सम्पद्यते तस्य चतुःषष्टिदलानि वै।
भवन्ति मातृकास्तत्र तावत्यः समुपासिताः।।604।।
ताराया मातृका एव वर्णरूपेण संस्थिताः।
त्रिषष्टिवर्णा विख्याताः सन्ति तत्र महौजसः।।605।।
महाबिन्दुस्तथा पूर्णश्चतुः षष्ट्यंगको मतः।
वियतोऽधिपतिस्तत्र देवता तु सदाशिवः।।606।।

श्वसिनी नामक वायु 'ह' वर्ण से युक्त है। महाबल नामक वायु 'क्ष' वर्ण से सम्बद्ध है। ये ही दोनों आज्ञा चक्र के प्रचालक हैं। जो स्वयम्भू के द्वारा स्वयं कहा गया है तथा प्रकृति से निपतित और विशिष्ट प्रक्रिया से संस्कारित वर्ण ऐसे हैं – अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय – जो पराश्रित होकर उच्चारित हैं तथा दुःस्पृष्ट – 'ळ'और 'ह्ळ' (ड को ळ और ढ को ह्ळ उच्चारण होता है) तथा प्लुत और लृकार। चार चक्रों का ऐक्य से जो चक्र बनता है वह 'ललना' नाम का चक्र है। उस चक्र का सम्पादन 64 दलों से होता है। वहाँ मातृकायें भी उतनी ही है, अतः उतनी की ही उपासना की जाती है। तारा (प्रणव) के ही मातृकायें वर्णरूपेण

संस्थित हैं। इसलिये महान् ओजस्वी 63 वर्ण विख्यात हैं। महाबिन्दु को मिलाकर 64 संख्या की पूर्ति होती है। आकाश का अधिपति सदाशिव ही देवता हैं। (601- 606)

तत्कर्णिकासमासीनः शान्त्यतीतेश्वरः प्रभुः।
पंचवक्त्रो दशभुजो विद्युत्पुंजनिभाकृतिः।।607।।

उसके कर्णिका में समासीन है शान्त्यतीतेश्वर प्रभु जो की पंचमुखी, दशभुजावाले और विद्युत्समूह के समान आकृतिवाले हैं।(607)

निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्याशान्तिरनुक्रमात्।
परिवार्य स्थिताश्चैताः शान्त्यतीतस्य सुन्दरि।।608।।

हे सुन्दरी! शान्त्यतीत के साथ में निवृत्ति, प्रतिष्ठा,विद्या और शान्ति क्रमशः चारों तरफ से आवृत करते हुए स्थित हैं।(608)

वामभागे समासीनाः शान्त्यतीता मनोन्मनी।
पंचवक्त्रधराः सर्वा दशबाह्विन्दुभूषणाः।।609।।

बायें भाग में शान्त्यतीता मनोन्मनी, पंचवक्त्रधारिणी, दशबाहु और चन्द्र से विभूषित है।(609)

बिन्दुतत्त्वं समाख्यातं कोट्यर्बुदशतैर्वृतम्।
सहस्रारं महापद्मं सप्तभागविभाजितम्।।610।।

बिन्दुतत्त्व के बारे में कहा गया है कि एक करोड़ अरब संख्याकदलों से अर्थात् असंख्य दलोंवाला सहस्रार चक्र है। यह महापद्म है और यह 7 भागों में विभक्त है।(610)

भागाः सप्त समाम्नाता मस्तिष्कस्य मनीषिभिः।
एको भागस्तु सर्वेषां निसर्गात्सक्रियो मतः।।611।।
अर्धमन्यस्य भागस्य यत्नैर्भवति सक्रियम्।
सुषुप्तमिव शिष्टन्तु भागान्तं सार्धपंचकम्।।612।।

विद्वानों के द्वारा वर्णन किया गया है कि मस्तिष्क के 7 भाग हैं, एक भाग तो सभी में स्वभाव से ही सक्रिय रहता है। दूसरे भाग के भी आधा ही भाग की सक्रियता यत्न साध्य है। बाकी सोये हुये के समान होने से विशेष प्रयत्न से उन्हें सक्रिय करना होता है। वे साढ़ेपाँच भाग हैं। (611-612)

शक्तिपुं भवेज्जाग्रन्न विना तत्त्वसाधनम्।
शाम्भवादिक्रमेणैवं साधने सक्रियो भवेत्।।613।।

शक्तिपुंज जाग्रत होता नहीं विना तत्त्वानुसन्धान किये। शाम्भव आदि कम से साधन करने पर सक्रिया होते है।(613)

59. आधारचक्रस्य भुवनानि = आधारचक्र के भुवनें –

1. भुवनानि = भुवनें –

शार्वो हि भुवनं ख्यातं ववर्णस्य विशेषतः।
गन्धतत्त्वं च सम्प्रोक्तं तन्त्रशास्त्रविशारदैः।।614।।

'व' वर्ण का विशेषतः 'शार्व' भुवन प्रसिद्ध है। वह गन्धतत्त्व प्रधान है ऐस तन्त्र शास्त्र के विद्वान् लोग कहते हैं।(614)

स्थाण्वादिभुवनान्यश्टौ शवर्णस्य स्मृतानि वै।
आकाशतत्त्वं सम्प्रोक्तं तन्त्रशास्त्रविशारदैः।।615।।

'श' वर्ण से सम्बन्धित 'स्थाण्वादि' आठ भुवन कहे गये हैं। वे आकाशतत्त्व प्रधान हैं –ऐसे तन्त्रशास्त्र के वेत्ताओं द्वारा कहा गया है।(615)

भीमादिभुवनान्यष्टौ षवर्णस्य स्मृतानि वै।
वायुतत्त्वं च सम्प्रोक्तं तन्त्रशास्त्रविशारदैः।।616।।

' ष' वर्ण के भीमादि 8 भुवनों में सम्बन्ध बताया गया है। जो कि वायुतत्त्व प्रधान है – ऐसे तत्त्व शास्त्र के ज्ञानियों ने बताया है।(616)

भैरवादिभुवनान्यष्टौ सवर्णस्य स्मृतानि वै ।
तेजस्तत्त्वं च सम्प्रोक्तं तन्त्रशास्त्रविशारदैः।।617।।

'भैरवादि' 8 भुवनों को 'स' वर्ण से सम्बद्ध कहे गये हैं। वे सब तेजस्तत्त्व प्रधान है– ऐसे तन्त्रशास्त्र के विशारदों का कहना है।(617)

2. ध्यानफलम् = ध्यान का फल –

वक्ता श्रेष्ठो मनुष्येषु सर्वविद्याविशारदः।
आरोग्यानन्दचित्तश्च जायते काव्यकोविदः।।618।।

मनुष्यों में साधक श्रेष्ठ वक्ता होता है, सकल विद्याओं का विशारद, आरोग्यरूपी धन और आनन्दरूपी धनवाला होता है।(618)

चतुष्कोणं हि यन्त्रं च स्थानं योनिः स्मृतं सदा।
नामतत्त्वं च पृथिवी हस्ती वै बीजवाहनः।।619।।

मूलाधार का यन्त्र चतुष्कोण है और इसका स्थान योनि (जननेन्द्रिय) के पास नीचे बताया गया है। पृथिवी नामक तत्त्व प्रधान है और इसका बीज 'लं' को हाथी ने धारण किया हुआ है।(619)

देवो ब्रह्मा देवशक्तिर्डाकिनी रक्तवर्णकः।
लोके चाधारचक्रस्य भुवनानि स्मृतानि वै।।620।।

देव ब्रह्मा, देवी डाकिनी, जो कि दोनों लालरंगवाले हैं। लौक में प्रसिद्ध भुवनों का आधार चक्र से सम्बन्ध बताया गया है।(620)

60. स्वाधिष्ठानचक्रस्य भुवनानि =स्वाधिष्ठानचक्र के भुवनें –

1. भुवनानि = भुवनें –

मित्रस्य भुवनं ख्यातं बवर्णस्य विशेषतः।
कश्यपं भुवनं प्रोक्तं भवर्णस्य च सुन्दरम्।।621।।
भीमं हि भुवनं ख्यातं मवर्णस्य विशेषतः।
ईशानभुवनं प्रोक्तं यवर्णस्य मनोहरम्।।622।।
भुवनं वै पाशुपतं रवर्णस्य मनोहरम्।
भवस्य भुवनं ख्यातं लवर्णस्य विशेषतः।।623।।

मित्रदेवता का भुवन को 'ब' वर्ण से सम्बद्ध कहा गया है। विशेषतः कश्यप के सुन्दरभवन को 'भ' वर्ण का कहा गया है, भीम के भुवन को 'म' वर्ण का विशेषतः बताया गया। ईशान का मनोरम भुवन 'य' वर्ण से सम्बद्ध कहा गया है। पाशुपत के मनोहर भुवन 'र' वर्ण का कहा गया तथा 'ल' वर्ण का विशेषतः भव का भुवन कहा गया है।(621–623)

2. ध्यानफलम् = ध्यान का फल –

अहंकारविनाशश्च श्रेष्ठो योगिषु जायते।
निर्मोही गद्यपद्यानां रचनासु प्रशिक्षितः।।624।।
चन्द्राकारं हि यद्यन्त्रं जलं तत्त्वं दलानि षट्।
स्थानं मेढ्रं च सिन्दूरो वर्णः शक्तिर्हि राकिनी।।625।।

अहंकार का विनाश योगियों में उत्पन्न होने वाला श्रेष्ठ फल है। निर्मोही होते हुए गद्य और पद्यों की रचना में प्रशिक्षित होगा। चन्द्राकार यन्त्र है और जल तत्त्व प्रधान है, 6 दलों से बना हुआ है। इसका स्थान मेढ्र (जननेन्द्रिय से किंचित् ऊपर), सिन्दूर रंग का है तथा शाकिनी इसकी देवी है। इसका बीज 'वं' को मगरमच्छ वहन करता है।(624–625)

61. मणिपूरचक्रस्य भुवनानि = मणिपूरचक्र के भुवनें –

1. भुवनानि = भुवनें –

स्थलेश भुवनान्यष्टौ ढवर्णश्च प्रकीर्तितः।
चन्द्रस्य भुवनं चित्ते श्रोत्रे दिग्भवनं तथा।।626।।
सूर्यस्य भुवनं नेत्रे तद्वायोर्भुवनं त्वचि।
पृथिव्या भुवनं घ्राणे जिह्वायां वरुणस्य च।।627।।
तदग्नेर्भुवनं वाचि चेन्द्रस्य भुवनं करे।
तद्विष्णोर्भुवनं पादे भुवनानि स्मृतानि वै।।628।।

'ढ' वर्ण के सम्बन्धी 'स्थलेश' नामक 8 भुवन हैं, चित्त में चन्द्र का भुवन 'ड' वर्ण सम्बन्धी है। श्रोत्र में 'ण' वर्ण सम्बन्धी दिक् का भुवन है, सूर्य का भुवन नेत्र में 'त' वर्ण सम्बन्धी है। वायु का भुवन त्वचा में 'भ' वर्ण से युक्त है। पृथिवी का भुवन घ्राण में 'द' वर्ण से युक्त है। अग्नि का भुवन वाणी में 'न' वर्ण का सम्बन्धी है जब कि वरुण का भवन जिह्वा में 'ध' वर्ण से युक्त है। इन्द्र का भुवन हाथ में 'व' वर्ण से सम्बन्धित है तथा विष्णु के भुवन पाद में स्थित होकर 'फ' वर्ण से युक्त है।(626-628)

2. ध्यानफलम् = ध्यान का फल -

संहारपालने शक्तश्चतुरो वचनेषु च।
सरस्वती च जिह्वायां सदा तस्य प्रनृत्यति।।629।।
बीजस्य वाहनं मेषः तत्त्वमग्निर्दलं दश।
देवश्चेन्द्रो देवशक्तिर्लाकिनी नीलवर्णकः।।630।।
यन्त्रं त्रिकोणं नाभिश्च स्थानं प्रोक्तं मनीषिभिः।
इत्थं हि मणिपूरस्य विश्रुतानि फलानि वै।।631।।

साधक संहार और पालन में समर्थ होता है तथा बोलने में अत्यन्त चतुर होता है। उसकी जिह्वा पर मानो सरस्वती सदा नृत्य कर रही है। इसके बीज 'रं' का वहन मेष करता है। तत्त्व - अग्नि और इसके 10 दल होते हैं। नीलवर्णवाले इन्द्र देव हैं और लाकिनी देवी है। यन्त्र त्रिकोणात्मक है, स्थान इसका नाभि है - ऐसे विद्वानों ने बताया है।(629-631)

62. अनाहतचक्रस्य भुवनानि = अनाहतचक्र के भुवनें -

1. भुवनानि = भुवनें -

तत्त्वं वायुर्देवशक्तिः काकिनी वाहनं मृगः।
दलं द्वादशसंज्ञं च यन्त्रं षट्कोणनामकम्।।632।।

स्थानं च हृदयं देवश्चेशानोऽरुणवर्णवान्।
वाय्वादीनि च वर्णाश्च कादिठान्तास्तथायुताः।।633।।

इस चक्र का तत्त्व वायुतत्त्व है जो कि देवताओं की शक्ति है तथा देवी काकिनी है। इसके बीज यं को वहन मृग करता है, 12 दल हैं, और यन्त्र षट्कोणात्मक है। इसका स्थान हृदय है और देवता अरुणरंगवाला ईशान है। वाय्वादि भुवन हैं 'क' से 'ठ' पर्यन्त वर्ण दलों में अंकित हैं।(632-633)

2. ध्यानफलम् = ध्यान का फल -

वचनेषु समर्थश्च सिद्धिरीशत्वभाग्भवेत् ।
योगीश्वरो ज्ञानवाँश्च राज्यशक्तिर्जितेन्द्रियः।।634।।
परकायप्रवेशे हि समर्थः पृथिवीतले।
एवमेव हि शास्त्रतः प्रोक्तानि वै फलानि ते।।635।।

योगी बोलने में समर्थ, सिद्धि और ईशत्व का भागी होता है। साधक जितेन्द्रिय, ज्ञानवान्, योगीवर और राज्यशक्ति से युक्त होता है। हस पृथिवीतल पर वह परकाय प्रवेश करने में समर्थ होता है। इस प्रकार का फल शास्त्रों में बताया गया है।(634-635)

63. चक्राणां भेदनप्रक्रमेण नादोत्पत्तिः = चक्रों का भेदन क्रम से नाद की उत्पत्ति -

आत्मनो ग्रहणं कुर्याद्दीक्षाकाले गुरुर्धियाम्।
प्रविभज्यात्मानात्मानं सृष्ट्वा भावान् पृथग्विधान्।।
सर्वशक्तिसुसंपन्नः स्वप्ने भोक्ता प्रपद्यते।
भित्त्वा बिन्दुं ततो देवि अर्धचन्द्रं विभेदयेत्।।636।।

जिस प्रकार स्वप्न काल में सर्वशक्ति सम्पन्न होने से यह भोक्ता सकल जड़चेतनभेदयुक्त भावपदार्थो को अलग-अलग सृजन कर भोगता है ठीक उसी प्रकार साधक का कर्तव्य है कि दीक्षा काल में अपनी बुद्धि में अपने ही आत्मा को अपने गुरु के रूप में ग्रहण करना चाहिये। तब वह बिन्दु का भेदन कर हे देवी! अर्धचन्द्र का भेदन करें।(635-636)

भिद्यतश्चार्धचन्द्रस्य ललाटे झिमझिमायते।
अर्धचन्द्रं सुभित्त्वा वै भेदयेत्तु निरोधिनीम्।।637।।

जैसे ही अर्धचन्द्र का भेदन होता है ललाट प्रदेश में 'झिम-झिम' नाद होने लगता है। तदनन्तर यानि अर्धचन्द्र का भेदन के अनन्तर (नि)रोधिनी का भेदन करें।(637)

तस्यां तु भिद्यमानायां शब्दः सिमसिमायते।
ततः सद्यो भवेदात्मा तां तां गतिमवाप्नुयात्।।638।।

उसका भेदन होने पर 'सिम-सिम' इस प्रकार का नाद उत्पन्न होता है। उससे साधक की आत्मा सद्य ही अभीष्ट तत्तद् गति को प्राप्त कर लेता है।(638)

निरोधिनीं भेदयित्वा ततो नादं व्रजेदधः।
वंशशब्दसमः शब्दस्तत्र सूक्ष्मः प्रजायते।।639।।

निरोधिनी का भेदन करके उससे नीचे नाद का भेदन करें तो बाँस का शब्द के समान शब्द वहाँ सूक्ष्मरूप से उत्पन्न होता है।(639)

भेदयेन्नादसंस्थानं ब्रह्मरन्ध्रं सुदुर्भिदम्।
शक्तिं भित्त्वा ततो देवि यथेष्टं व्यापिनी भवेत्।।640।।

नादस्थान का भी भेदन करें। तदनन्तर अत्यन्त दुर्भेद्य ब्रह्मरन्ध्र स्थान और शक्तिस्थान का भी भेदन करके हे देवी! व्यापिनी हो जायें।(640)

अनुभवो भवेत्तत्र स्पर्शो यद्वत्पिपीलिका।
भित्त्वा वै व्यापिनीं देवि समनायां मनस्त्यजेत्।।641।।

तब वहाँ शरीर पर चींटी चलने जैसे स्पर्श का अनुभव होता है वैसे स्पर्श का अनुभव होता है। हे देवी! उस व्यापिनी का भी भेदन करके समना में मन को लीन करें।(641)

मनसा तु मनस्त्यक्त्वा जीवः केवलतां व्रजेत्।
उन्मना सा तु विज्ञेया मनः संकल्च उच्यते।।642।।

मन का मन से ही त्याग करके जीव केवलता को प्राप्त होवे। उसी अवस्था को उन्मना कहा जाता है। मन संकल्प रूप है ऐसे कहा जाता है।(642)

संकल्प्य क्रमतो ज्ञानमुन्मना युगपत्स्थितम्।
क्रमश ऊर्ध्वगतिश्च कथं विज्ञायते शृणु।।643।।

ज्ञान का ही संकल्प करके यह मन क्रमशः उत्तरोत्तर चक्र में उत्तरोत्तर अवस्था प्राप्त करते हुये अन्त में एक साथ उन्मना भाव में समाविष्ट होकर स्थित होता है। वह ऊर्ध्वगति कैसे क्रमशः होती है यह जानना चाहते हो तो सुनो।(643)

मूलाधारस्थवह्न्यात्मतेजोरूपा व्यवस्थिता।
जीवशक्तिः कुण्डलाख्या प्राणाकारेण तेजसा।।644।।

जीवशक्ति कुण्डल नाम से यानि कुण्डलि अथवा कुण्डलिनी नाम से मूलाधारस्थ वह्न्यात्मक तेज और प्राणात्मक तेज रूप से मूलाधार में व्यवस्थित है।(644)

पूर्वाम्नायो बिन्दुरूपं षट्कोणं दक्षिणः स्मृतः।
अष्टपत्रं पश्चिमं तूत्तरं स्यात्षोडशच्छदम्।।645।।

पूर्वाम्नाय बिन्दुरूप है, दक्षिणाम्नाय षट्कोणात्मक है, पश्चिमाम्नाय अष्टकोणरूप है और उत्तराम्नाय षोडशादलात्मक है।(645)

ऊर्ध्वत्रिकोणरूपं स्यात्पातालं च त्रिवृत्तकम्।
उपाम्नायपराम्नाया वलयद्वयरूपिणः ।।646।।

ऊर्ध्व त्रिकोण रूप है ऊर्ध्वाम्नाय और त्रिवृत्त पाताल है यानि अधराम्नाय है। बाह्य दो वलय जो है वे उपाम्नाय और पराम्नाय स्वरूप हैं।(646)

आनन्दं भूपुरस्यैकं रहस्यं वलयद्वयम्।
गुह्यातिगुह्यगोप्त्री द्वौ वलयद्वयनिष्ठौ वै।।647।।

भूपुर के तीन वलयों में से एक आनन्द रूप है बाकी दो वलय रहस्य रूप हैं। (गुह्यगोप्त्री और अतिगुह्यगोप्त्री नाम से दो रहस्यमयी रूप है जो वलयद्वयनिष्ठ हैं) ।(647)

चिन्तनं प्रथमे चक्रे कुण्डलीक्रम उच्यते।
चिन्तनं द्वितीये चक्रे मिश्रणाख्यो भवेत्क्रमः।।648।।

प्रथम चक्र में चिन्तन करने का नाम कुण्डलिक्रम है। द्वितीय चक्र में चिन्तन करने का नाम मिश्रक्रम है।(648)

तृतीयं लम्बिकाचक्रे तत्तुर्याक्रमचिन्तनम्।
संवरोधिक्रमश्चैव कथ्यते बुधैः सदा।।649।।

लम्बिकाचक्र में चिन्तन करने का नाम तुर्याक्रम चिन्तन अथवा उसको संवरोधिक्रम नाम से भी विद्वानों के द्वारा कहा गया है।(649)

शाम्भवक्रमतश्चैव चिन्तयेत्परमेश्वरीम्।
तत्पंचमोर्ध्वं च क्रमाज्ञायां हंसक्रमेण वै।।650।।

शाम्भ क्रम से भी परमेश्वरी का ध्यान कर सकते हैं। पंचम (विशुद्धि) चक्र से आरम्भ कर आज्ञाचक्र में चिन्तन (ध्यान) करने को हंसक्रम कहते हैं।(650)

बैन्दवादिमहाबिन्दुक्रमेण वै सुचिन्तयेत्।
पूर्ववद् भ्रमयेद्देवि तत्कुण्डलिक्रमेण च।।651।।

बैन्दवादि में बैन्दवक्रम (पूर्वाम्नाय श्लोक संख्या 645) से आरम्भ कर महाबैनदवक्रम (श्लोक संख्या 650) पर्यन्त बताये गये क्रमों में अधिकारी भेद से साधक अपनी योग्यता के अनुसार किसी भी क्रम से चिन्तन आरम्भ कर सकता है। लेकिन हे देवी ! आरम्भिक साधक के लिये कुण्डलिक्रम से (पूर्व में बताये रीति से) ही चिन्तन करना चाहिये।(651)

षष्ठं वै चिन्तयेद्देवि गुरुपद्मे तु लम्बिकाम्।
सप्तमं चिन्तयेद्देवि समाधिं सौविकल्पितम्।।652।।

हे देवी! अथवा षष्ठ (आज्ञाचक्र) में चिन्तन करें अथवा गुरुपद्म यानि लम्बिका में चिन्तन करें, जो कि सप्तम है। इस प्रकार समाधि के सुविकल्पिता तक का साधन क्रम बताया गया है।(652)

महावैभवसंयुक्तः साक्षाच्छिवमयो भवेत्।
तेनातिमन्दभाग्योऽपि कुबेरस्याधिपो भवेत्।।653।।

साधक महावैभव से युक्त होकर साक्षात् शिवमय हो जाता है। उससे अतिमन्दभाग्यवाला भी क्यों न हो वह भी कुबेर का अधिपति हो जायेगा।(653)

क्रमदीक्षासमायुक्तो चिन्तयेच्चक्रमुत्तमम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तं सर्वैश्वर्यप्रदायकम्।।654।।

क्रमदीक्षा से युक्त साधक सर्वपापों से रहित, सर्वैश्वर्य प्रदायक, सर्वोत्तम चक्र (श्रीचक्र) का ही चिन्तन करें।(654)

64. शिरःस्थनाडीविवरणम् = सिर में स्थित नाड़ियों का विवरण –

सुषुम्नान्तर्गतं विश्वं तस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितम्।
न शनानाडीप्रस्रवणं सर्वभूतान्तरात्मनि ।।655।।

सुषुम्ना के अन्तर्गत संपूर्ण नाड़ियाँ हैं क्योंकि उसीमें सब कुछ प्रतिष्ठित है। अनेक नाड़ियों का बहाव सर्वभूतों के अन्तरात्मा में ही एकीभूत होने के लिये है जैसे सभी नदियों का बहाव केवल समुद्र में एकीभूत होने के लिये होता है।(655)

ऊर्ध्वमूला अध:शाखा वायुमार्गे च सर्वगाः।
द्विसप्ततिसहस्राणि नाड्यः स्युर्वायुगोचराः।।656।।

वायुमार्ग (प्राणमार्ग) के विषय में ही सब ओर बहती हुई कुछ ऊपर की ओर और कुछ नीचे की ओर विशेष रूप से बहती हैं। अतः कुल मिलाकर संक्षेप में कहा जाय तो 72000 नाड़ियाँ वायुविषयक विशेष है।(656)

एतासु मुख्या या नाड्यस्तासां मन्त्रनिदर्शनम्।
क्रियते साधना कर्मसमृद्ध्यै मुख्यरूपतः।।657।।

इनमें से मुख्य जो नाड़ियाँ हैं उनके मन्त्र निदर्शन किया जाता है, मुख्यरूप से कर्म और साधना की समृद्धि के लिये।(657)

वलयाकाररूपेण रसनोपस्थ एव हि।
पृथग्भूत्वा क्रमेणैवं श्रोत्रं चक्षुश्च मस्तकम्।।658।।
सर्वस्य प्राणिनो लोके यदा वै जन्म जायते।
तदा कुण्डलिनी तस्य प्रबुद्धैव सदा भवेत्।।659।।

वलयाकार रूप से रहनेवाली कुण्डलिनी वास्तव में जब बच्चे का जन्म होता है तब (उस बच्चे में वह कुण्डलिनी) जगी हुई ही रहती है। यह केवल मनुष्यों में ही नहीं बल्कि इस लोक में सभी प्राणियों में बराबर है। रसना (जिह्वा), उपस्थ (जननेन्द्रिय), श्रोत्र, चक्षु और मस्तक में पृथक्-पृथक् व्यवस्थित होकर जगी रहती है।(658-659)

जन्मकाले तु जिह्वायामुपस्थे सक्रिया सती।
बालस्यादौ भावयते ज्ञानं सा स्वादजं सदा।।660।।

जन्मकाल में यह जिह्वा में और उपस्थ में सक्रिय रहती है। बालक को इसलिये जो ज्ञान भावित होता है वह केवल स्वाद का ही होता है।(660)

नेत्रयोः सा कुण्डलिनी जायते सक्रिया ततः।
तत्र दृष्टिभवं ज्ञानमुत्पादयति नित्यशः।।661।।

उसके बाद वह नेत्रों में सक्रिय होती है तब जाकर दृष्टिविषयक ज्ञान नित्यप्रति उत्पन्न होने लगता है।(661)

कर्णयोश्च ततो बुद्धा श्रुतिसौख्यं प्रयच्छति।
ततो नासिकायां घ्राणशक्तिमुत्पादयत्यहो।।662।।

तत्पश्चात् कानों में वह विशेष रुप से सक्रिय होती है तब श्रवण का

सुखप्राप्त होने लगता है। तदनन्तर वह नासिका में विशेषरूप से सक्रिय होती है तब घ्राणशक्ति गन्धानुभव को उत्पन्न करने लगती है।(662)

मस्तिष्के च ततो ज्ञानं विद्यां वर्धयते ततः।
क्रमादुपस्थे सक्रियतां व्रजतीति सुनिश्चितम्।।663।।

उससे मस्तिष्क में ज्ञान उत्पन्न होता है और उससे बुद्धि बढ़ती है। क्रमशः उपस्थेन्द्रिय भी सक्रियता की ओर जाती है इसमें कोई संशय नहीं।(663)

तदैव साधनां कृत्वा वीर्यसंरोधकारिणीम्।
निरुद्धां बोधयेत्तर्हि वीर्यमोचनकारिणी।।664।।

उसी वक्त वीर्य को स्तम्भित करने वाली साधना करके वीर्य को मुक्तकरने (निकालने) वाली शक्ति को निरुद्धावस्था प्राप्त करायें।(664)

चित्राऽवरुद्धा भवति ततो वीर्यं निरोधयेत्।
महारजसि तत्तुन्दे शुक्रं मिलति निश्चितम्।।665।।

चित्रा नाड़ी जब अवरुद्ध हो जाती है तब वीर्य निरुद्ध हो जाता है। तब निश्चित रूप से पेट में विद्यमान वह शुक्र महारज में मिल जाता है।(665)

तन्मेलनादूर्ध्वरेता जायते क्रमशस्तदा।
ओजस्तेजश्च वर्धेते तत्प्रभावात्पुनस्तदा।।666।।
तथैव साधनां कृत्वा मणिपूरादग्रे च तम्।
चक्रान्तरे गमयेच्च यावल्लक्ष्यस्य न सिद्धिः।।667।।

उस मेलन से यह साधक क्रमशः ऊर्ध्वरिता हो जाता है। ओज और तेज दोनों बढ़ते हैं उसके प्रभाव से। पुनः यदि उसको शरीर में स्वास्थादि के लिये उपयोग न करके मणिपूर चक्र से आगे ऊपर की ओर चक्रान्तरों में तब तक ले जायें जब तक लक्ष्य की प्राप्ति न हो।(666-667)

मस्तिष्काग्रेऽणिमादीनां भागो जागर्ति सर्वदा।
तत एव च संसिद्धिं लभते मोक्षरूपिणीम्।।668।।

मस्तिष्क का अग्रभाग में अणिमादि सिद्धियों का भाग जग उठता है। उससे ही मोक्षरूपी संसिद्धि का लाभ (प्राप्त) होगा।(668)

कुण्डलिन्याः स्वरूपन्तु पारदाभं प्रचक्षते।
यतः पारदवन्नित्यं भिद्यते युज्यते सदा।।669।।

कुण्डलिनी के स्वरूप तो पारद के समान चमकीला अनुभव में आता है। इसलिये भी पारद के समान नित्य ही बार-बार अलग-अलग होता है और एकीभूत भी होता है।(669)

तथाऽप्येकाकारैव तिष्ठन्ती योगिनोऽधिपा।
शरीरे बोधमापन्ना सिद्धिं यच्छति सर्वदा।।670।।

फिर भी योगियों के प्रति एकाकार रूप से ही रहती है। कुण्डलिनी पर अधिकार प्राप्त कर उसका पालन (रक्षण) करने वाले योगियों के प्रति शरीर में जाग्रत हो जाने पर सदा वह सिद्धि को ही देती है।(670)

सर्वपापहरा नाडी नासातो राजदन्तगा।
सव्यापसव्यमार्गेण सर्वपापक्षयंकरी।।671।।
विभक्तसर्वतत्त्वा च राजदन्ता स्थितोदरे।
कुरुते सर्वजीवानां शरीरपोषणं ततः।।672।।

सकल पापों को हरने वाली नाड़ी नासिका से निकलती हुई राजदन्त के रास्ते दाहिने -बायें मार्ग से वह सर्व पापों को क्षयकरनेवाली नाड़ी सकल तत्त्वों को विभक्त कर राजदन्त से लेकर उदर पर्यन्त फैली हुई है जो की सभी जीवों के शरीर का पोषण करती है।(671-672)

सूक्ष्मतत्त्वं प्राणिदेहे रसनोपस्थभागयोः।
नाड्यन्या बोधयन्ती च प्रकाशते सदा तथा।।673।।

प्राणियों के देह में रसनेन्द्रिय से आरम्भ कर उपस्थभाग पर्यन्त व्याप्त एक दूसरी नाड़ी सूक्ष्मतत्त्वों का बोध कराती हुई सदा प्रकाशमान है।(673)

सर्वशास्त्रार्थबोधिनी नाडीष्वन्यतमा स्मृता।
मस्तकात्पादपर्यन्तं निष्क्रम्य व्याप्यते सदा।।674।।

एक अन्यतमा नाड़ी सर्वशास्त्रार्थबोधिनी मानी गई है जो मस्तक से पादपर्यन्त निकलकर व्याप्त है।(674)

घातावघातयोर्योगक्रिययोद्‌बोध्यते सदा।
ग्रन्थानां स्पर्शमात्रेण ज्ञानं वै जायते तदा।।675।।

घात और अवघात, योग और क्रिया इत्यादि को सदा उद्‌बुद्ध करनेवाली तथा ग्रन्थों का स्पर्शमात्र से ज्ञान करानेवाली वह नाड़ी होती है। जब वह जागृत हो जाये तब वह उक्त कार्य करती है।(675)

नाडीष्वेका विशिष्टात्मतत्त्वज्ञानप्रबोधिनी ।
यया तत्त्वगतं ज्ञानं समस्तं ज्ञायते किल।।676।।

नाड़ियों में एक ऐसी भी नाड़ी है जो विशिष्ट रूप से आत्मतत्त्व का ज्ञान को जगाती है, जिससे तत्त्वगत संपूर्ण ज्ञान उत्पन्न हो जाता है।(676)

तत्त्वज्ञानेन तेषां वै तत्त्ववीक्षणशक्तता।
क्षमत्वमाधिपत्येऽपि भवतीति सुनिश्चितम्।।677।।

योगियों की क्षमता इतनी होगी की वह तत्त्व ज्ञान के द्वारा तत्त्वों का सम्यक् वीक्षण करने की क्षमता के साथ-साथ निश्चितरूप से वह तत्त्वों पर आधिपत्य प्राप्त कर लेगा।(677)

निद्रापहारिणी नाडी यया निद्रधिपो भवेत्।
सहस्रवर्षपर्यन्तमिच्छानिद्रा नु जायते।।678।।

निद्रापहारिणी नाड़ी वह है जिससे निद्रा पर राज करने का सामर्थ्य प्राप्त होता है और एक हजार वर्ष पर्यन्त ऐच्छिक निद्रा होगी।(678)

तत्त्वेशु ननु न्यूनेषु पूरणे पोषणे क्षमा।
तत्त्वपूरणिका ख्याता सर्वतत्त्वप्रपोषिणी।।679।।

सकल तत्त्वों का पोषण करनेवाली तत्त्वापूरणिका नाम से प्रसिद्ध नाड़ी के जागृत होने पर योगी को तत्त्वों में विद्यमान न्यूवता का पूरण करने व पोषण करने का सामर्थ्य प्राप्त होता है।(679)

भोजनादिषु तत्त्वानां या वै विभजते क्षमा।
विभक्तसर्वतत्त्वा वै तत्त्वातत्त्वविभाजनात्।।680।।

विभक्तसर्वतत्त्वा नाम की नाड़ी भोजनादियों में विद्यमान तत्त्व-अतत्त्व (यानि पोषक-रोगकारक) का विभाजन कर तत्त्वों को पृथक् कर धारण करने की सामर्थ्यवाली है।(680)

शीतोष्णसुखदुःखानां भावनाक्षयकारणात्।
द्वन्द्वक्षयकरी नाडी द्वन्द्वव्यूहविमुक्तिदा।।681।।

द्वन्द्वक्षयकरी नाड़ी द्वन्द्वव्यूह से मुक्तिप्रदान करनेवाली शीतोष्ण-सुखदुःख-भूखप्यास (शरीर, मन और प्राण) रूपी द्वन्द्वों के सम्बन्धी भावना का क्षय होने के कारण सुख-शान्ति प्राप्त होती है।(681)

सर्वेषामतिसूक्ष्माणां तत्त्वानां ग्राहणे क्षमा।
निम्नातिनिम्नगमनादूर्ध्वं सम्प्रेषणात्तथा।।682।।
अतीन्द्रियसुखं सर्वमिन्द्रियाणां यतो हि या।
अनुभावयते नाडी सर्वानन्दकरी तु सा।।683।।

सकल अतिसूक्ष्मतत्त्वों को ग्रहण करने की क्षमता होने से तथा निम्न से अतिनिम्न में गये हुये को ऊपर उठाकर संप्रेषण करने की क्षमता होने से और

इन्द्रियों से अतीन्द्रिय सर्वसुख अनुभव होता हो ऐसी एक नाड़ी है जो सर्वानन्दकरी नाम से सुप्रसिद्ध है।(682-683)

एतासां ज्ञानतो योगाभ्यासः सम्पद्यते नृणाम्।

इन नाड़ियों के ज्ञान से मनुष्यों का योगाभ्यास सम्पन्न होता है।(684)

गुदलिंगान्तरे चक्रमाधाराख्यं चतुर्दलम्।।684।।
प्रकृतिर्महदहंकारतन्मात्रा दलानि हि।
परमाः सहजास्तावदानन्दो धीरपूर्वकः।।685।।

गुदा और लिंग के बीच में चारदलोंवाला मूलाधार चक्र है। चार दलों का तात्पर्य है प्रकृति, महत्तत्व, अहंकार ओर तन्मात्रायें। परम व सहज आनन्द का अनुभव होता है यदि धैर्यपूर्वक इसको जागृत किया जाये।(684-685)

योगानन्दश्च तस्य स्यादैशानादिदले फलम्।
तत्र कुण्डलिनी ब्रह्मशक्तिराधारपंकजे।।686।।

ईशानादि दलों का फलस्वरूप ऐसे योगी को योगानन्द भी प्राप्त होगा क्योंकि उस मूलाधार चक्र में ब्रह्मशक्ति ही कुण्डलिनी के रूप में है।(686)

आब्रह्मरन्ध्रमृजुतां नीते या साऽमृतप्रदा।
स्वाधिष्ठानं लिंगमूले षट्पत्रं चक्रमस्य तु।।687।।

ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त उसे जगाकर सीधे ले जायें तो वह अमृत प्रदायिका होती है। उसके ऊपर लिंग के मूल में 6 दलोंवाला स्वाधिष्ठान चक्र है।(687)

पत्राणि विषयाभासौ वृत्तिःकान्तिः स्थितिर्लयः।
पूवादिशु दलेष्वाहुः फलान्येतान्यनुक्रमात्।।688।।

इसके 6 दल में विषयाभास (दो प्रकार के सत् और असत्) अथवा विषय और आभास के वृत्ति, कान्ति, स्थिति और लय हैं। इन्हें पूर्वादि दल में क्रमशः कहा गया है, उनके ही अनुसार उनका फल भी प्राप्त होता है।(688)

प्रश्रयः क्रूरतागर्वनाशौ मूर्च्छा ततःपरम्।
अवज्ञा चाप्यविश्वासः कामशक्तेरिदं गृहम्।।689।।

वे फल इस प्रकार हैं - शिथिलता, क्रूरता, गर्वनाश, मूर्च्छा, अवज्ञा और अविश्वास। यह चक्र कामशक्ति का घर भी है।(689)

नाभौ दशदलं चक्रं मणिपूरकसंज्ञकम्।
विकृतिप्रत्ययौ बिम्बचैतन्यं सूक्ष्मदर्शनम्।।690।।

उत्कण्ठोपाधिनिर्बन्धशिक्षाव्याजा दलानि च।
सुषुप्तिरथ तृष्णा स्यादीर्ष्या पिशुनता तथा।।691।।
लज्जा भयं घृणा मोहः कषायोऽथ विषादिता।
क्रमात्पूर्वादिपत्रेषु स्याद्भानुभवनं च तत्।।692।।

नाभि में दसदलों वाला मणिपूर नामक चक्र है। इन दलों में विकृति, प्रत्यय, बिम्ब, प्रतिबिम्ब, सूक्ष्मदर्शन, उत्कण्ठा, उपाधि, निर्बन्ध, शिक्षा और व्याज (बहाना) – ये दस हैं। इनका फल भी क्रमशः इस प्रकार – सुषुप्ति, तृष्णा, ईर्ष्या, पिशुनता, लज्जा, भय, घृणा, मोह, कषाय और विशाद पूर्वादि दलों से प्राप्त होता है। यह सूर्य का भवन है।(690–692)

हृदयेऽनाहतं चक्रं शिवस्य प्रणवाकृतिः।
पूतास्थानं तदिच्छन्ति दलैर्द्वादशभिर्युतम्।।693।।

हृदय में अनाहत चक्र शिव के प्रणव को आकृति में है। 'पूता' (अतिपवित्र) स्थान मानते हैं और वह 12 दलोंवाला है।(693)

अवहेला विसंवादो व्याहारोऽप्यवलम्बनम्।
शरीरस्याध उत्सेधः प्रकर्षः संविभागिता।।694।।
कैतवं दानवैक्लव्ये सर्वशेषे विचारणा।
फलं च साम्प्रतं वच्मि तत्र तत्र समुद्भवम्।।695।।

इन दलों का विषय इस प्रकार है – अवहेलना, विसंवाद, व्याहार (परस्पर लेन–देन), अवलम्बन, शरीर के निचले भाग का गिरना (चरित्रहनन), श्रेष्ठता (उभरना), प्रकर्ष, संविभागिता, कैतव (चालाकी), दम्भ, वैक्लव्य (घबराहट) और सर्वशेष में विचार करना (अथवा सर्व विचारणा और शेष विचारणा – यह दो)। जिस – जिस दल के सक्रिय होने पर जो जो फल मिलता है अब वह मैं कहूँगा।(694–695)

लौल्यं प्रणाशः कपटं वितर्कोऽथानुतापिता।
आशाप्रकाशश्चिन्ता च समीहा समता तथा।।696।।
क्रमेण दम्भो वैक्लव्यं विवेकोऽहंमदस्ततः।
फलान्येतानि पूर्वादिदलस्थस्यात्मनो जगुः।।697।।

लौल्य, प्रणाश, कपट, वितर्क, अनुपात, आशाप्रकाश, चिन्ता, समीहा, समता, दम्भ, वैक्लव्य, अहम्मदः – क्रम से प्राप्त होते हैं। तदनन्तर विवेक होता

है। ये फल पूर्वादिदलस्थ विषयभिव्यक्ति होने से आत्मा को (साधक) को प्राप्त होते हैं – ऐसे विद्वान् लोग कहते है।(696-697)

कण्ठोऽस्ति भारतीस्थानं विशुद्धिषोडशच्छदम्।
क्रमेण वक्ष्यमाणानि छदनानि निशामय।।698।।
क्षयः प्रभावो विच्छेदजीवनग्लानियुक्तयः।
भावना रचना स्वादविभ्रमौदास्यबुद्धयः।।699।।
विक्रमः स्वैरता चित्तविह्वलत्वं विरोधिता।
वक्ष्येऽधुना फलान्येषां तत्तद्दलकलाजुषाम्।।700।।

वाणी का स्थान कण्ठ में 16 दलवाला विशुद्ध चक्र है। क्रमशः दलों के विषय को बताता हूँ, ध्यान से सुनों। क्षय, प्रभाव, विच्छेद, जीवन, ग्लानि, मुक्ति, भावना, रचना, स्वाद, विभ्रम, औदासीनता, बुद्धि (ज्ञान), विक्रय, स्वच्छन्दता, चित्तविह्वलता और विरोधिता – अब मैं इन तत्तद्दलों में विद्यमान उक्त कलाओं का सेवन करनेवालों को मिलनेवाला फल बताता हूँ।(698-700)

बोधः प्रणव उद्गीथो नैर्मल्यं शान्तता तथा।
स्वाहा नमोऽमृतं षड्ज ऋषभस्तदनन्तरम्।।701।।
गान्धारो मध्यमश्चापि पंचमो धैवतस्तथा।
निषादः सर्वशेषे स्यात्क्रमेण सुरवन्दिते।।702।।

बोध, प्रणव, उहगीथ, निर्मलता, शान्तता, स्वाहा, नमस्कार, अमृत, षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत, निशाद और सर्वशेष – हे सुरवन्दिते! यह सब फलक्रमशः मिलते हैं।(701-702)

इति पूर्वादिपत्रस्थे फलान्यात्मनि षोडश।
ललनाघण्टिकायां चक्रं षोडशपत्रकम्।।703।।
पर्णान्यमुष्य वक्ष्येऽहं क्रमेणैव सुरेश्वरि।
विरागोन्मादनिर्वेदाऽवहेलामर्षभीतयः।।704।।
तितिक्षास्फीतितानर्थलालसोदारतास्तथा ।
स्वभावं साम्प्रतं वक्ष्यं फलानि क्रमतः प्रिये।।705।।
मदो मानस्तथा स्नेहः शोकः खेदश्च लुब्धता।
अरतिः संभ्रमश्चोर्मिः श्रद्धा तोषोऽपराधिता।।706।।

इस प्रकार पूर्वादि दलों में स्थित कलाओं के 16 प्रकार के फल साधक को प्राप्त होते हैं। ललना नामक छोटी घण्टी जैसी लटकी हुई छोटी जिह्वा के स्थान

पर 64 दलोंवाला चक्र है। (यह षोडशपत्रकम् शब्द के बहुव्रीहिसमास से निर्णीत है, अतः 16 गुणा 4 = 64 अर्थ है।) इसके कुल प्रधान 12 दलों के ही कलाओं का वर्णन क्रमशः करता हूँ, हे सुरेश्वरी! विराग, उन्माद, वैराग्य, अवेहलन, अमर्ष, भीति (भय), तितिक्षा, स्फीतिता (स्पष्टता), अनर्थ, लालसा, उदारता ओर स्वभाव। हे प्रिये! अब मैं क्रमशः इनके फल को बताऊँगा। मद, मान, स्नेह, शोक, खेद, लोभ, अरति, संभ्रम, ऊर्मि, श्रद्धा, संतोष और अपराधिता – ये सब पूर्वादिक्रम से प्रधान 12 दलों का फल क्रमशः कहा हूँ।(703–706)

फलानि ललनाचक्रे स्युः पूर्वादिदलेष्विति।
भ्रूमध्ये त्रिदलं चक्रमाज्ञासंज्ञं दलानि तु।।707।।

भ्रूमध्य में तीनदलों वाला एक चक्र आज्ञा चक्र नाम से प्रसिद्ध है (अधिकतर ग्रन्थों में दो दल ही कहा गया है, इस ग्रन्थ में पूर्वोत्तर भागों में भी दो दल ही कहा गया है किन्तु यहाँ तीन दल कहने का रहस्य स्वयं प्रकट करते हैं) (707)

आविर्भावतिरोभावौ तत्परं च विकारिता।
सत्त्वं रजस्तम इति फलानि कथितानि वै।।708।।

तीन दल के स्वभाव है आविर्भाव –तिरोभाव, तत्परता और विकारिता। उनके फल इस प्रकार कहे गये हैं कि सत्त्व, रज और तम। (708)

ततोऽप्यस्ति मनश्चक्रं षड्दलं तद्दलानितु।
कामः क्रोधस्तथा लोभो द्वेषोऽप्यसूयता।।709।।

उससे भी संलग्न एक मनश्चक्र है और वह छः लोंवाला है। उन दलों का स्वरूप है – काम, क्रोध, लोभ, मोह, द्वेष और असूया।(709)

स्वप्नं रसोपयोगश्च घ्राणं रूपोपलम्भनम्।
स्पर्शनं शाब्दबोधश्च पूर्वादिषु दलेष्विति।।710।।

तथा स्वप्न, रस का उपभोग (रसन), घ्राण, रूपोपलब्धि (चक्षुः), स्पर्शज्ञान (त्वक्) और शब्दबोध (श्रवण) – ये सब पूर्वादि दलों में क्रमश विद्यमान कलायें (शक्तियाँ/रश्मियाँ) हैं।(710)

ततोऽपि षोडशदलं सोमचक्रमितीरितम्।
एतद्दलानां नामानि क्रमेण विनिबोध मे।।711।।

इससे भी ऊपर एक 16 दल वाला सोमचक्र के बारे में कहा गया है। इन दलों के नामों को मुझ से क्रमशः जानो। (711)

आशयोपशमप्रज्ञा स्मृतयः सदसत्तथा।
लयो निमित्तः सत्ता च प्रमाणाक्षयवासनाः।।712।।
अद्वैतयोगं भूमिश्च पिण्डाविद्या निवृत्तयः।
दलेशु षोडशस्वस्य कलाः षोडश संस्थिताः।।713।।

आशय, उपशम, प्रज्ञा, स्मृति, सत्, असत्, लय, निमित्तसत्ता, प्रमाण, अक्षय, वासना, अद्वैतयोग, (ज्ञान की) भूमिकायें, पिण्डविद्या और निवृत्तियाँ। ये सब 16 कलायें इस चक्र के16 दलों में प्रतिष्ठित हैं।(712–713)

कृपा क्षमाऽऽर्जवे धैर्यं वैराग्यधृतिसम्पदः।
हास्यरोमांचनिचयो ध्यानं च स्थिरता तथा।।714।।
गाम्भीर्यमुद्यमश्छन्नमौदार्यैकाग्रते तथा।
फलान्येतानि जीवस्य पूर्वादिदलगामिनः।।715।।

इन कलाओं से जीव (साधक)को प्राप्त होनेवाले फल पूर्वादिदिक् के अनुसार क्रमशः इस प्रकार है – कृपा, क्षमा, आर्जव (सरलता), धैर्य, वैराग्य, धैर्य, सम्पत्, हास्यता, खूब रोमांच, ध्यान, स्थिरता, गाम्भीर्य, उद्यम, आच्छादन (ढकना), उदारता और एकाग्रता।(714–715)

चक्रं सहस्रपत्रन्तु ब्रह्मरन्ध्रे सुधाधरम्।
तत्सुधासारधाराभिरभिवर्धयते तनुम्।।716।।

इससे ऊपर 100 दलोंवाला सहस्रारचक्र है, अमृत को धारण कर ब्रह्मरन्ध्र में स्थित है। उसी की अमृतमय सारपूर्ण धारा से यह शरीर अभिवृद्धि को प्राप्त करता है।(716)

सहस्रदलपद्मस्य दलानामस्य नाम हि।
फलानां चैव नामानि नाब्रुवं विस्तृतेर्भयात्।।717।।

सहस्रदलपद्म के दलों का नाम और उनके फलों को नाममात्र के लिये भी विस्तार के भय से यहाँ नहीं कहूँगा।(717)

गुदाच्च द्व्यंगुलादूर्ध्वमाधाराद्द्व्यंगुलादधः।
एकांगुलं देहमध्यं तप्तजम्बूनदप्रभम्।।718।।
तत्रास्ते अग्निशिखा तन्वी चक्रात्तस्मान्नवांगुलैः।
देहस्य कन्दोत्थसेधायामाभ्यां चतुरंगुलम्।।719।।
ब्रह्मग्रन्थिरिति प्रोक्तं तस्य नाम पुरारिणा।

गुदा से दो अंगुल ऊपर और मूलाधार से दो अंगुल नीचे एकांगुल परिमाणवाला, देह के मध्य में स्थित, तपा हुआ जम्बूदीप के नदी का तट के समान चमकता हुआ, एक सूक्ष्म अग्निशिखा विद्यमान है। इस चक्र से 9 अंगुल ऊपर देह का कन्दस्थान है, जिससे उत्पन्न (उभरा हुआ) क्षेत्र में 4 अंगुल परिमाणवाला ब्रह्मग्रन्थि है। पुरारि (शिवजी) के द्वारा उसका यह नाम कहा गया है।(718-720)

तन्मध्ये नाभिचक्रन्तु द्वादशारमवस्थितम्।।720।।

उसके बीच में 12 अराओंवाला नाभिचक्र अवस्थित है।(720)

लूतेव तन्तुजालस्य तत्र जीवो भ्रमत्यसौ।
सुषुम्णया ब्रह्मरन्ध्रमारोहत्यवरोहति ।।721।।

तन्तु के जाल में स्थित लूताकीट के समान यह जीव सुषुम्णा नाड़ी के द्वारा ऊपर की ओर ब्रह्मरन्ध्र तक और वहाँ से नीचे मूलाधार तक भ्रमण करते रहता है।(721)

जीवः प्राणसमारूढो रज्ज्वांकोऽजाविकस्तथा।
सुषुम्णां परितो नाड्यः कन्दादौ ब्रह्मरन्ध्रतः।।722।।

जीव प्राण पर समारुढ होकर रस्सी से बाँधे हुए भेड़-बकरी के समान सुषुम्ना के चारों तरफ फैली हुई नाड़ियों से ब्रह्मरन्ध्र से निकलकर कन्दस्थान में (भ्रमण करते रहता है)।(722)

क्रोडीकृत्य स्थिताः कन्दशाखा इव महीरुहम्।
सूक्ष्मातिसूक्ष्मरूपेण तस्मात्सूक्ष्मतरेण च।।723।।
चतुर्विंशतिसाहस्रा नाड्यस्तस्याः समीपगाः।
तासां भूरितराणान्तु मुख्याः प्रोक्ताश्चतुर्दश।।724।।

जैसे पेड़, समस्त शाखाओं को जोड़कर धारण किया हुआ रहता है उसी प्रकार यह कन्दस्थान भी समस्त नाड़ियों को क्रोडीकृत यानि समेटकर परस्पर सम्बद्ध कर अपने से बाँध के रखा है अर्थात् कन्दस्थान सकल नाड़ियों का मूल है। इसलिये सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म और सूक्ष्मतर रूप से 24000 नाड़ियाँ कन्दस्थान के समीप में है यानि कन्दस्थान से सम्बद्ध हैं। उनमें से अतिविशेष व मुख्य केवल 14 ही कहे गये हैं।(723-724)

सुषुम्णेडापिंगला च कुहूस्था च सरस्वती।
गान्धारी हस्तिजिह्वाच वारणा च यशस्विनी।।725।।

विश्वोदरा शंखिनी च ततः पूषा पयस्विनी।
अलम्बुषेति तत्राद्यास्तिस्रो मुख्यतमा मताः।।726।।

उन 14 नाड़ियों का नाम है – सुषुम्ना, इड़ा, पिंगला, कुहूस्था (कुहू), सरस्वती, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, शंखिनी, पूषा, पयस्विनी और अलम्बुसा। इन 14 में से भी आद्य तीन प्रमुख हैं – यही सकल शास्त्रों का मत है।(725-726)

सुषुम्णा तिसृषु श्रेष्ठा शांकरी मुक्तिमार्गगा।
कन्दमध्ये स्थिता तस्या इडा सव्येऽथ दक्षिणे।।727।।
पिंगले द्वे पिंगलयोश्चतस्रश्चन्द्रभास्करौ।
क्रमात्कालगतर्हेतुः सुषुम्णा कालशोषिणी।।728।।

इन तीनों में से भी सुषुम्णा श्रेष्ठ है। समस्त प्रकार के क्लेशों को शान्त करनेवाली (शमन) होने से शांकरी नाम से भी कहा गया है। मुक्ति का मार्ग है। कन्द के मध्य में स्थित उसके बायें में इड़ा और दाहिने में पिंगला है। ये इड़ा और पिंगला ही क्रमशः चन्द्र और भास्कर हैं, जो काल के गति का कारण है और जो सुषुम्णा के चारों तरफ लता के समान लिप्टी हुई हैं। सुषुम्णा काल को भी शोषण करनेवाली है।(727-728)

सरस्वती कुहूश्चास्ते सुषुम्णायास्तु पार्श्वयोः।
इडायाः पृष्ठपूर्वस्थे गान्धारीहस्तिजिह्वके।।729।।

सरस्वती और कुहू भी सुषुम्णा के बगल में हैं। इड़ा के पिछले भाग में व पूर्व की ओर क्रमशः गान्धारी और हस्तिजिह्वा हैं।(729)

क्रमात्पूषायशस्विन्यौ पिंगलापूर्वपृष्ठयोः।
विश्वोदरा मध्यदेशे स्यात्कुहूहस्तिजिह्वयोः।।730।।

उसी क्रम से पिंगला के पूर्व और पृष्ठ भाग में पूषा और यशस्विनी हैं। विश्वोदरा नाम की नाड़ी कुहू और हस्तिजिह्वा के बीच में है।(730)

मध्ये कुहूयशस्विन्योर्वारणा संस्थिता मता।
पूषासरस्वतीमध्यमधिशेते पयस्विनी।।731।।

इड़ा और यशस्विनी के बीच में वारणा नाड़ी स्थित है। पूषा और सरस्वती के बीच में पयस्विनी की स्थिति है।(731)

अंगुष्ठाद्दक्षिणांघ्रिस्था देहे विश्वोदराखिले।
शंखिनी सव्यकर्णान्ते पूषा त्वावामनेत्रतः।।732।।

यशस्विनी तु वितता दक्षिणश्रवणावधि।
अलम्बुषा ह्यधोमूले नवलक्षव्यवस्थिता।।733।।

दाहिने पैर में स्थित होकर संपूर्ण शरीर में विश्वोदरा सम्बद्ध रहती है। शंखिनी बायें कान तक, पूषा बायीं आँख तक, पयस्विनी दाहिनें कान तक व्याप्त है। अधः (मूलाधार – लिंग) के मूल में से निकल कर अलम्बुसा नाड़ी नौलाख नाड़ियों से व्यस्थित यानि सम्बद्ध रहती है।(732–733)

पुनरन्या शमं चैका नाडीर्विग्रहगामिनीः।
जगाद भगवान् रुद्रस्ता अपि व्याहरामि ते।।734।।

पूर्वोक्त के समान 101 नाड़ियों के बारे में जो इस शरीर में मुख्यरूप से कार्य कर रहे हैं, भगवान् रुद्र ने कहा था। उन्हें भी तुम्हारे लिये कह रहा हूँ।(734)

सर्गा विसर्गा धमनी कम्पिनी बन्धिनी हिता।
निम्नाऽथ भासुरा संकोचिनी दूता प्रकाशिनी।।735।।
प्रबुद्धा क्षेपिणी च स्यादालस्याथ विलम्बिता।
घर्घरा वेशिनी पूर्णा क्षिप्ता रूक्षा च भोगिनी।।736।।
क्लिन्ना स्निग्धा तथा चण्डा चण्डी भानुमती ध्रुवा।
केकरा कुटिला शुद्धा धरित्री दर्दुराकुला।।737।।
काकतुण्डी मनोमाला चित्रा तेस्विनी सती।
अव्यक्ता मालिनी मन्दा द्राविणी मधुमत्यपि।।738।।
चेतना मुदिता भ्रामिण्यतो रसवहापि च।
सौवीरी कपिला कर्षिण्युत्तरा रंजिनी तथा।।739।।
सुमुखी रेवती विश्वदूता चाप्यायनी ततः।
चन्द्रा हेमा च मैत्री च नन्दा चापि कपर्दिनी।।740।।
तन्द्रावती विशाला च विचित्रा माण्डवी तथा।
कल्पा सुकल्पा तदनु लोहिनी पूतनापि च।।741।।
धारिणी धोरिणी धीरा सुरभिर्वेगवत्यपि।
विवर्णा कृन्तनी चैव विकल्पा कोटराऽचला।।742।।
तपिनी तापिनी धूम्रा मरीचिर्ज्वालिनी रुचिः।
अग्निज्वाला च सम्मोहा मूला स्वप्नावहापि च।।743।।
तन्द्रावती लम्बिका च घण्टिकाऽविग्रहापि च।
कैवल्या च तुरीया च विभ्रान्तिश्च प्रशान्तया।।744।।

योगिनी श्रेण्यापि ततो निर्वाणा चापुनर्भवा।
अमृता सर्वशेषे च क्रमेणैताः प्रकीर्तिताः।।745।।

वे नाम इस प्रकार हैं – सर्गा, विसर्गा, धमनी, कम्पिनी, बन्धिनी, हिता, निम्ना, भासुरा, संकोचिनी, दूता, प्रकाशिनी, प्रबुद्धा, क्षेपिणी, आलस्या, विलम्बिता, धर्धरा, वेशिनी, पूर्णा, क्षिप्ता, रूक्षा, भोगिनी, क्लिन्ना, स्निग्धा, चण्डा, चण्डी, भानुमती, ध्रुवा, केकरा, कुटिला, शुद्धा, धरित्री, दर्दुरा, अकुला, काकतुण्डी, मनोमाला, चित्रा, तेजस्विनी, सती, अव्यक्ता, मालिनी, मन्दा, द्राविणी, मधुमती, चेतना, मुदिता, भ्रामिणी, रसवहा, सौवीरी, कपिला, कर्षिणी, रंजिनी, सुमुखी, रेवती, विश्वदूता, आप्यायनी, चन्द्रा, हेमा, मैत्री, नन्दा, कपर्दिनी, तन्द्रावती, विशाला, विचित्रा, माण्डवी, कल्पा, सुकल्पा, लोहिनी, पूतना, धारिणी, धोरणी, धीरा, सुरभि, वेगवती, विवर्णा, कृन्तनी, विकल्पा, कोटरा, अचला, तपिनी, तापिनी, धूम्रा, मरीचि, ज्वालिनी, रुचि, अग्निज्वाला, सम्मोहा, मला, स्वप्नावहा, मन्द्रावती, लम्बिका, घण्टिका, अविग्रहा, कैवल्या, तुरीया, विभ्रान्ति, प्रशान्ता, योगिनी, श्रेष्ठी, निर्वाणा और अपुनर्भवा। सर्वशेष नाड़ी है 'अमृता'–ये क्रम से बताये गये हैं।(735–745)

योगैरेतासु सम्प्रेष्य प्रणादिदशमारुतान्।
यच्चिकीर्षति तत्सर्वं संसाधयति योगवित्।।746।।

विभिन्न योगों का अभ्यास से इनको प्रेरित कर प्राणादि 10 वायुओं पर अधिकार प्राप्त करके जो – जो करना चाहता है योगवेत्ता साधक वह सब सिद्ध कर लेता है (746)।

65. सहस्रारचक्रनाड्यो वायवश्च = सहस्रारचक्र के नाड़ियाँ और वायु –

अंगुष्ठमात्रः पुरुषो विपरीतांगो हि संस्थितः।
मस्तिष्कमध्ये तस्यैव शरीरांगविनिःसृताः।।747।।
सन्ति नाड्यो विभिन्ना याः सूक्ष्माः केश इवाश्रिताः।
एकैककेशसंस्थाश्च नाड्यः षोडश षोडश।।748।।

अंगुष्ठमात्र परिमाण (नाप) वाला पुरुष विपरीत अंगोंवाला (बाहर जैसा उसके विपरीत) होकर मस्तिष्क का बीच में सम्यक् स्थित है। उसके ही द्वारा शरीर के समस्त अंगों में फैली हुई विभिन्न सूक्ष्म नाड़ियाँ है जो कि केशसमान आश्रित हैं। प्रत्येक केश संस्था 16–16 नाड़ियों से सम्पन्न है।(747–748)

इच्छानाड्यस्तु ताःप्रोक्ता वैशिष्ट्येन समन्विताः।
क्रियाकाले प्रवर्धन्ते लुप्यन्ते च ततः परम्।।749।।

इच्छानाड़ी उन्हें कहते हैं जो विशिष्टता से युक्त होकर क्रिया काल में अभिव्यक्त होते हैं और क्रिया समाप्त होने पर लुप्त हो जाते हैं।(749)

कयाऽपि दृष्ट्या नेक्ष्यन्ते साधनैरपि नैव च।
यदा सक्रियतां यान्ति तदैवानुभवो भवेत्।।750।।

किसी भी प्रकार के दृष्टि से ये दिखाई नहीं देते, किसी भी साधन से भी नहीं। किन्तु जब वे सक्रिय होते हैं तभी वे अनुभव में आते हैं।(750)

मूलस्रोतः संस्कृताख्या नाडी रागास्तु तद्भवाः।
षरिगमपधनीति रागाणां सारसूत्रिका।।751।।

'संस्कृता' नाम की नाड़ी ही समस्त रागों (संगीत के राग) का मूल स्रोत है क्योंकि उसी से सब का उद्‌भव है। सा रि ग म प ध नि – ये ही समस्त रागों के सारभूत सूत्र हैं।(751)

यस्मात्कस्मादतो वाद्यात्स्वराः सप्तैव तदोच्यते।
भवन्ति नान्ये सर्वत्र तथेयं सुरभारती।।752।।

इसलिये जिस किसी भी वाद्य से ये ही सात स्वर प्रकट होते हैं। सर्वत्र इनसे अन्य कुछ नहीं होता। तथा यह वाणी है अर्थात् समस्त भाषायें भी इसी से अभिव्यक्त होते हैं।(752)

यत्र कुत्रापि प्रोच्येत समानैव तदोच्यते।
वेदादीनां तथा पाठः सर्वत्रैकसवरेण हि।।753।।

जहाँ कहीं भी जो कोई भाषा बोली जाती है वह भाषा अन्यत्र सर्वत्र भी वैसे ही बोली जाती है, जैसे की वेद आदियों का पाठ सर्वत्र समान स्वर से ही किया जाता है।(753)

जायते नात्र सन्देहो यथा वेदेशु भाषितः।
यया नाड्या च भाष्यन्ते तया साकं परा अपि।।754।।

इसलिये इस विषय में संशय होता ही नहीं कि जिस प्रकार वेदों का पाठ जिन नाड़ियों से किया जाता है क्या उन्हीं नाड़ियों से अन्य भाषा आदि भी बोले जाते हैं।(754)

नाड्यो भवन्ति तासान्तु जननी संस्कृता स्मृता।
सैव जिह्वेति सम्प्रोक्ता ह्युच्चावचक्रियान्विता।।755।।

जिन -जिन नाड़ियों का बोलने में प्रयोग किया जाता है निश्चित रूप से उनके जननी 'संस्कृता' नाम की नाड़ी ही है। उसी को जिह्वा (तालु) शब्द से भी कहते हैं जो कि उच्चावचक्रिया (उदात्त, अनुदात्त आदि उत्पादक क्रिया) से युक्त होती है।(755)

संयेगादन्यनाडीनामन्या भाषास्तयोच्यते।
एवं यदाऽपरा नाड्यः सक्रियाः प्रभवन्ति हि।।756।।
तदा पृथक्पृथग्भाषा उच्चार्यन्ते क्रमेण ताः।
यदाऽन्यो मनुजो वक्ति तदा जागर्तिमास्थिता।।757।।
उचचारणं प्रारभते तद्भाषारूपसंयुता।
यां भाषां नैव जानीमो न च तां गदितुं क्षमाः।।758।।
न श्रुता नावगच्छामः परं सा ध्यानतो यदि।
श्रूयते चेत्तदा नाडी चैतन्यं साऽधिगच्छति।।759।।
तत्प्रभावाद्वयं भाषां ब्रूमस्तामप्रयत्नतः।
चतुःषष्टिसमाख्याता एता नाड्यो व्यवस्थिताः।।760।।
चतुःषष्ट्यक्षररूपा मातृकाशक्तयः स्मृताः।

नाड़ियों के परस्पर विलक्षण व भिन्न भिन्न प्रकार का संयोग से भिन्न-भिन्न भाषायें बोली जाती हैं। इस प्रकार जब कुछ नाड़ियाँ परस्पर मिलकर सक्रिय होती हैं तब पृथक्-पृथक् भाषा क्रम से उच्चारण किया जाता है। जब कोई अन्य मनुष्य बोलता है तब कुछ नाड़ियाँ जगती हैं और उच्चारण उस भाषा से युक्त होकर आरम्भ होता है। इसलिये जिस भाषा को हम नहीं जानते, न सुने हैं और न निश्चितानुभव है उस भाषा को हम नहीं बोल सकते, नही समझ सकते। किन्तु उस भाषा को यदि एकाग्रता से सुनें और समझें तो हम में भी उस भाषा सम्बन्धी नाड़ियों का संयोग होकर जब चेतनता को प्राप्त होता है तब उसके प्रभाव से हम भी उस भाषा को विना कोई विशेष प्रयत्न किये बोल सकते हैं। ये नाड़ियाँ कुल 64 बतायें गयें हैं और उन नाड़ियों को 64 अक्षर रूप मातृकाशक्तियों के रूप में व्यवस्थित हैं, ऐसे स्मृत है।(756-761)

जिह्वायां लिंगमध्ये च योनौ वा नाडिका भृशम्।।761।।
स्थित्वैताः प्राणिनं नैकानानन्दान् प्रापयन्ति च।

जिह्वा में तथा लिंगमध्य (उपस्थ) में अथवा योनी में मजबूती से स्थित होकर प्राणियों को अनेक प्रकार के आनन्द को अनुभव कराते हैं।(761-762)

ललनाचक्रमागत्य नाड्य एताः पुनः पुनः।।762।।

चक्षुर्नासाहस्तपादेष्विन्द्रियेषु प्रसारिताः।

संकोचमाप्ताः सर्वत्र प्रवर्तन्ते यथा तथा।।763।।

ललना चक्र में आकर ये नाड़ियाँ पुनः-पुनः चक्षु, नासिका, हाथ, पैर आदि सकल इन्द्रियों और पूरे शरीर में फैलते रहते हैं व संकोच को प्राप्त होते हैं - इस प्रकार सर्वत्र यथा तथा (क्रिया के अनुरूप) प्रवृत्त होते हैं।(762-763)

तेषामेवाश्रयेणात्र सुखानि प्रददन्ति ताः।

श्रीयन्त्रस्य च यावत्यः सन्त्यवारणदेवताः।।764।।

तासां नामानि नाडीनां स्वरूपाण्येव सन्ति हि।

श्रीयन्त्रावरणे मुख्ये देवते प्रतिपादिते।।765।।

इन्द्रियों को आश्रय करके ही नाड़ियाँ सुख दुःख देते हैं। श्रीयन्त्र के आवरण देवता जितने हैं (कुल 380) उनके नाम नाड़ियों के स्वरूप ही है। श्रीयन्त्र के आवरण के विषय में मुख्य रूप से दो ही देवता का प्रतिपादन किया गया है।(764-765)

कालिका सुन्दरी चेति सर्वसौख्यप्रदे उभे।

कालिका कृष्णवर्णत्वात्सुन्दरी रक्तवर्णतः।।766।।

कालिका और सुन्दरी - ये दोनों सकल प्रकार के सौख्य प्रदान करते हैं। कालिका कालीरंगवाली है और सुन्दरी लालरंगवाली है।(766)

एवं नाड्यां संस्कृतायां वर्धते ज्ञानमुत्तमम्।

पठनान्मननाच्चैव चिन्तनादपि नित्यशः।।767।।

साधनातो गुरूणां च कृपातः प्राप्यते सदा।

एतदेवाक्षरं ब्रह्म सृष्टिस्थितिलयादिकान्।।768।।

अकारोत्कुरुते नित्यं करिष्यति न संशयः।

साधनायै स्वरूपं तन्मननाच्चिन्तनाच्च यत्।।769।।

प्रबुद्धं सत्स्वरूपं स्वं प्रकटय्येष्टमृच्छति।

अथ च नामानि वक्ष्ये क्रमशः सप्त नाडीनाम्।।769 क.।।

इस प्रकार से संस्कृता नाड़ी प्रकट हो जब तब उत्तम ज्ञान की वृद्धि होती है। गुरुकृपा से युक्त होकर नित्य पठन-पाठन, मनन और चिन्तन रूपी साधना से ही यह अक्षर प्रणव प्राप्त होता है। इस अक्षर को आश्रित करके ही ब्रह्म यानि ईश्वर सृष्टि-स्थिति-लय आदि को किया करता है और करते रहेगा साधना के लिये ही क्योंकि उस प्रणव के स्वरूप का मनन-चिन्तन करने से प्रबुद्ध होते हुये अपना स्वरूप ही को प्रकट कर इष्ट (मोक्ष) को प्राप्त करता है।(767-769क)

विवेचनी च श्रमिका मनोबुद्धिप्रवर्तिका।
विषयग्राहिणी नाडी विद्यते सत्प्रवर्तनी।।770।।
स्वयं संरक्षणी नाडी तथा स्वोत्कर्षणी स्मृता।
एवं शास्त्रेषु नाडीनां सप्त भेदाः प्रकीर्तिताः।।771।।

अब मैं क्रमशः 7 नाड़ियों के नाम बताता हूँ (यथानाम तथा गुण है) विवेचनी, श्रमिका, मनोबुद्धिप्रवर्तिका, विषयग्राहिणी, सत्प्रवर्तनी, स्वयं संरक्षिणी और स्वोत्कर्षणी नाड़ी। इस प्रकार शास्त्रों में शरीर में स्थित नाड़ियों के सात भेद बताये गये हैं जो मुख्य कार्य होते हैं उनके अनुसार। (770-771)

शक्तिर्विवेचनी नाम चतुर्धा परिकीर्तिता।
न्यायोपमानसत्ताख्ये मनु यत्वेति नामिका।।772।।
तथा मृदुलता शक्तिः क्रमशः परिकीर्तिता।
तेषां कार्यन्तु नाम्नैव यथा तथा विबुध्यते।।773।।

विवेचनी नामक नाड़ी की शक्ति चार प्रकार की कही गई है - न्याय सत्ता, उपमान सत्ता, मनुष्यत्व और मृदुलता नाम से क्रमशः हैं। उनके कार्य तो उनके नाम से ही निश्चय होता है।(772-773)

नाडी च श्रमिका चेयं मुनिभिः पंचधा स्मृता।
मैत्रीसत्ता स्नेहसत्ता पितृसत्ताऽपरिच्छदा।।774।।
वासानुरागसत्तेयं सत्ता सम्मिलनात्मिका।
स्थितिस्तेषां च कार्यतः सुबोध्या चेति कीर्तिता।।775।।

श्रमिका नाम की नाड़ी की शक्ति को पाँच प्रकार का मानते हैं - मैत्रीसत्ता, स्नेहसत्ता, पितृसत्ता, अपरिच्छदसत्ता, वासानुरागसत्ता जो की सम्मिलनात्मिकासत्ता नाम से भी जाना जाता है। इनकी स्थिति कार्य से ही जानी जा सकती है ऐसे कहा गया है।(774-775)

मनःप्रवर्तिकाशक्तिः पंचधा परिकीर्तिता।
काव्यानुवर्तनयुता सुप्रतीकात्मिका तथा।।776।।
प्रमोदरचनासत्ता प्रथिता पृथिवीतले।
आमोदरचनासत्ता मोदात्मिका तथा सत्ता।।777।।

मनःप्रवर्तिका नाड़ी की शक्ति को भी पाँच प्रकार का कहा गया है - काव्यानुवर्तनयुता, सुप्रतीकात्मिका, प्रमोदरचनासत्ता, आमोदरचनासत्ता और मोदरचनासत्ता - ये पृथिवी पर प्रसिद्ध हैं।(776-777)

विशयग्रहिणीशक्तिः नित्यं द्वादशधा स्मृता।
रूपांककालवृत्तान्तवर्णस्थानव्यवस्थिता।।778।।
प्रमाणगुरुतारागवाग्व्यापारात्मिकाः खलु।
अविभक्तप्रमाणाख्या कथिता क्रमशो बुधैः।।779।।

विषयग्राहिणी नाड़ी की शक्ति नित्य ही 12 प्रकार का कहा गया है। रूप, अंक, काल, वृत्तान्त, वर्ण, स्थान, व्यवस्था, प्रमाण, गुरुता, राग, वाग्व्यापार और अविभक्तप्रमाण नाम से क्रमशः विद्वानों द्वारा कहा गया है।(778-779)

अथोत्तरविभागस्तु नाडी च सत्प्रवर्तिका।
शास्त्रेषु कथिता शक्तिः पंचधा सत्प्रवर्तिका।।780।।
अन्तःकरणशुद्ध्यर्था सत्ता चैवैषणात्मिका।
अत्मज्ञानात्मिका भक्तिःसत्ता चोपकृतिः स्मृता।।781।।
वैराग्यसहकृता वै नान्या साऽसत्प्रवर्तिका।

अब अगला विभाग सत्प्रवर्तिका नाम की नाड़ी की शक्ति के बारे में शास्त्रों में 5 प्रकार का कहा गया है। अन्तःकरण की शुद्धि के लिये सन्मार्ग में प्रवृत्ति के अनुकूल पुत्रैषणासत्ता, वित्तैषणासत्ता, लोकैषणासत्ता, आत्मज्ञानोपकारिणी भक्तिरूपीसत्ता और आत्मज्ञानात्मिकासत्ता। ये सब वैराग्ययुक्त हो तो सत्प्रवर्तिका हैं, अन्यथा असत्प्रवर्तिका होते हैं।(780-782)

सेयं संरक्षणीशक्तिः षड्भेदात्मिका मता।।782।।
प्रणोपार्जनसंहारशौर्यपोषणसंयुता।
गोपनाख्या च सत्तेयं क्रमशः परिकीर्तिता।।783।।

वह यह संरक्षणी नाड़ी की शक्ति छः प्रकार मानी गई है। प्राण, उपार्जन, संहार, शौर्य, पोषण और गोपन नाम की सत्तायें क्रमशः कहे गये हैं।(782-783)

तत्स्वरूपन्तु विज्ञेया तत्क्रियातश्च वै तथा।
सेयं स्वोत्कर्शिणी शक्तिश्चतुर्धा मुनिभिर्मता।।784।।
आत्मशलाघात्मिका सत्ता सावधानात्मिका खलु।
सम्मानसत्तानाम्नीयं सत्ता दार्ढ्यात्मिका स्मृता।।785।।

उनके स्वरूप को उनसे हो रही क्रियाओं के अनुसार जानना चाहिये। वह यह स्वोत्कर्षिणी नाड़ी की शकिताँ मुनियों के द्वारा बताया गया है कि 4 प्रकार के हैं। वे हैं क्रमशः आत्मशलाघात्मिकासत्ता, सावधानात्मिकासत्ता, समानसत्ता नामवाली और यह जो दार्ढ्यात्मिकासत्ता है।(784-785)

सर्वशास्त्रार्थबोधिनी तत्त्वज्ञानप्रबोधिनी ।
निद्रापहारिणीनाम्नी सर्वतत्त्वप्रपोषिणी।।786।।
विभक्तसर्वतत्त्वा च द्वन्द्वक्षयकरी तथा ।
सूक्ष्मातिसूक्ष्मतत्त्वानां ग्राहिणी चोर्ध्वगामिनी।।787।।
सर्वानन्दकरी सेयमधोगामिनीसंज्ञका ।
यां ज्ञात्वा तु महायोगी साक्षाद्ब्रह्ममयो भवेत्।।788।।

नाड़ियों को पुनः दो प्रकार से जाना जा सकता है ऊर्ध्वगामिनी और अधोगामिनी। उन दो में से - सर्वशास्त्रार्थबोधिनी, तत्त्वज्ञानप्रबोधिनी, निद्रापहारिणी, सर्वत्तत्वप्रपोषिणी, विभक्तसर्वतत्त्वा, द्वन्द्वक्षयकरी और सूक्ष्मातिसूक्ष्मतत्त्वग्राहिणी -इने 7 प्रकार के नाड़ियों को ऊर्ध्वगमिनी नाड़ी कहा गया है और जो केवल सकल विषयों के आनन्दानुभव करानेवाली नाड़ियों का समुदाय हैं, उन्हें सर्वानन्दकरी नाम से अथवा अधोगामिनी नाम से कहा गया है जिनको जानकर महायोगी साक्षात् ब्रह्ममय हो जाता है।(786-788)

विवेचनी चाश्रमिका मनोबुद्धिप्रवर्तिका।
विषयग्राहिणी नाडी विद्यते सत्प्रवर्तिनी।।789।।
अथ संरक्षणी नाडी तथा स्वोत्कर्षणी स्मृता।
एवं शास्त्रेषु नाडीनां सप्त भेदाः प्रकीर्तिताः।।790।।

सूचनाः- 789 - 790 ये दोनों 770 - 771 के समान हैं। फरक दो में है - श्रमिका के जगह पर आश्रमिका और स्वयं संरक्षणी के स्थान पर संरक्षणी किया गया है। किन्तु आगे इनके प्रभेदों का वर्णन में बहुत फरक है।(789-790)

नाडी चाश्रमिका चेयं मुनिभिः पंचधा स्मृता।
मैत्रीसत्ता स्नेहसत्ता पितृसत्ता परिच्छदा।।791।।

वासानुरागसत्तेयं सत्ता सम्मिलनात्मिका।

आश्रमिका नाम की नाड़ी की शक्तियाँ 5 प्रकार से अभिव्यक्त होती हैं, ऐसे मुनियों द्वारा स्मृत है। मैत्रीसत्ता, स्नेहसत्ता, पितृसत्ता, परिच्छदसत्ता (पूर्व में अपरिच्छद कहा गया था) और विवेचिनी (जिसको पूर्व में वासनानुरागसत्ता जो की सम्मिलनात्मिका सत्ता है।(791–792)

सेसं संरक्षिणी शक्तिः षड्भेदात्मिका मता।।792।।
प्राणोपार्जनसंहारशौर्यपोषणसंयुता ।
गोपनाख्या च सत्तेयं क्रमशः परिकीर्तिता।।793।।

वह यह संरक्षिणी नाड़ि की शक्तियों का 6 भेद माना गया है। प्राण, उपार्जन, संहार, शौर्य, पोषण और गोपन नामक सत्तायें क्रमशः कहे गये हैं। (792–793)

सेयं स्वोत्कर्षिणी शक्तिश्चतुर्धा मुनिभिर्मता।
आत्मश्लाघात्मिका सत्ता सावधानात्मिकाखलु।।794।।
सम्मानसत्तानाम्नीयं सत्ता दार्ढ्यात्मिका स्मृता।

वह यह स्तोत्कर्षिणी के शक्तियों का 4 भेद मुनियों ने माना है। आत्मश्लाघा– त्मिका, सावधानात्मिका, समानसत्ता नामवाली और दार्ढ्यात्मिका सत्तायें स्मृत हैं। (794– 795)

शास्त्रेषु कथिता शक्तिः पंचधा सत्प्रवर्तिका।।795।।
अन्तःकरणशुद्ध्यर्था सत्ता चैवैषणात्मिका।
अत्मज्ञानात्मिका भक्तिःसत्ता चोपकृतिः स्मृता।।796।।

सत्प्रवर्तिका नाड़ी की शाक्तियों का भेद शास्त्रों में 5 प्रकार का कहा गया है। अब अगला विभाग सत्प्रवर्तिका नाम की नाड़ी की शक्ति के बारे में शास्त्रों में 5 प्रकार का कहा गया है। अन्तःकरण की शुद्धि के लिये सन्मार्ग में प्रवृत्ति के अनुकूल पुत्रैषणासत्ता, वित्तैषणासत्ता, लोकैषणासत्ता, आत्मज्ञानोपकारिणी भक्तिरूपीसत्ता और आत्मज्ञानात्मिकासत्ता। ये सब वैराग्ययुक्त हो तो सत्प्रवर्तिका हैं, अन्यथा असत्प्रवर्तिकाहोते हैं।(795–796)

मनःप्रवर्तिकाशक्तिः पंचधा परिकीर्तिता।
काव्यानुवर्तनयुता सुप्रतीकात्मिका तथा।।797।।
प्रमोदरचनासत्ता प्रथिता पृथिवीतले।
विशयग्रहिणीशक्तिः नित्यं द्वादशधा स्मृता।।798।।

रूपांककालवृत्तान्तवर्णस्थानव्यवस्थिता ।
प्रमाणगुरुतारागवाग्व्यापारात्मिकाः खलु। ।799।।

विषयग्रहिणी नाड़ी की शक्ति नित्य ही 12 प्रकार का कहा गया है। रूप, अंक, काल, वृत्तान्त, वर्ण, स्थान, व्यवस्था, प्रमाण, गुरुता, राग, वाग्व्यापार और अविभक्तप्रमाण नाम से क्रमश विद्वानों द्वारा कहा गया है। अब अगला विभाग सत्प्रवर्तिका नाम की नाड़ी की शक्ति के बारे में शास्त्रों में 5 प्रकार की कही गई है। अन्तःकरण की शुद्धि के लिये सन्मार्ग में प्रवृत्ति के अनुकूल पुत्रैषणासत्ता, वित्तैषणासत्ता, लोकैषणासत्ता, आत्मज्ञानोपकारिणी भक्तिरूपीसत्ता और आत्मज्ञानात्मिकासत्ता। (796-800)

शक्तिर्विवेचनी नाम चतुर्धा परिकीर्तिता।
न्यायोपमानसत्ताख्ये मनुष्यत्वेति नामिका। ।800।।
तथा मृदुलता शक्तिः क्रमशः परिकीर्तिता। ।801।।

विवेचनी नाड़ी की शक्तियों के 4 भेद कहे गये हैं। न्याय सत्ता, उपमान सत्ता, मनुष्यत्व और मृदुलता नाम से क्रमशः हैं। उनके कार्य तो उनके नाम से ही निश्चय होते हैं।(800-801)

कण्ठोर्ध्वे परमेशानि लम्बिका चतुरंगुले।
चतुःषष्टिदले पद्मे चाक्षराण्यपि सन्त्यलम्।
महाकाली महालक्ष्मीर्महापूर्वा सरस्वती। ।802।।
त्रिशक्तिचामुण्डा मध्येलम्बिकायां सुशोभिताः।
त्रिषष्टिश्चतुःद्वाष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः। ।803।।

हे परमेशानी! कण्ठ के ऊर्ध्व में 4 अंगुल ऊपर 'लम्बिका' नाम का चक्र है। 64 दलवाला इस पद्म में अक्षर भी उसी तरह अंकित हैं। महालक्ष्मी, महाकाली और महासरस्वती के सहित त्रिशक्तिचामुण्डा लम्बिका के मध्य में सुशोभित हैं। 63 या 64 वर्ण शिवमत में स्वीकृत है।(802-804)

प्राकृते संस्कृते वापि स्वयं प्रोक्ताः स्वयम्भुवा। ।804।।
अनुस्वारो विसर्गश्च क पौ चापि पराश्रयौ।
दुःस्पृष्टश्चेति विज्ञेयो लृकारः प्लुत एव च। ।805।।
चतुर्णामेव चक्राणामैक्याद्यल्ललनाभिधम्।
चक्रं सम्पद्यते तस्य चतुःषष्टिदलानि वै। ।806।।

भवन्ति मातृकास्तत्र तावत्यः समुपासिताः।
ताराया मातृका एव वर्णरूपेण संस्थिताः।।807।।
त्रिषष्टिवर्णा विख्याताः सन्ति तत्र महौजसः।
महाबिन्दुस्तथा पूर्णश्चतुःषष्ट्यंगको मतः।।808।।
वियतोऽधिपतिस्तत्र देवता तु सदाशिवः।
तत्कर्णिकासमासीनः शान्त्यतीतेश्वरः प्रभुः।।809।।
पंचवक्त्रो दशभुजो विद्युत्पुंजनिभाकृतिः।
निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्याशान्तिरनुक्रमात्।।810।।
परिवार्य स्थिताश्चैताः शान्त्यतीतस्य सुन्दरि।
वामभागे समासीनाः शान्त्यतीता मनोन्मनी।।811।।
पंचवक्त्रधराः सर्वा दशबाह्विन्दुभूषणाः।
बिन्दुतत्त्वं समाख्यातं कोट्यर्बुदशतैर्वृतम्।।812।।
कथिता सप्तभागा ये मस्तिष्कस्य तथा वै ते।
सहस्रारं महापद्मं सप्तभागविभाजितम् ।।813।।

प्राकृत से निपतित और संस्कृत प्रक्रिया से सिद्ध जो स्वयम्भू के द्वारा स्वयं कहा गया है वर्ण ऐसे हैं – अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय – जो पराश्रित होकर उच्चारित हैं तथा दु:स्पष्ट – 'ळ'और 'ह्ळ' (ड को ळ और ढ को ह्ळ उच्चारण होता है) तथा प्लुत और लर्किार। चार चक्रों का ऐक्य से जो चक्र बनता है वह 'ललना' नाम का चक्र है। उस चक्र का सम्पादन 64 दलों से होता है। वहाँ मातृकायें भी उतनी ही है, अत: उतनी की ही उपासना की जाती है। तारा (प्रणव) के ही मातृकायें वर्णरूपेण संस्थित हैं। इसलिये महान् ओजस्वी 63 वर्ण विख्यात हैं। महाबिन्दु को मिलाकर 64 संख्या की पूर्ति होती है। आकाश का अधिपति सदाशिव ही देवता हैं। उसके कर्णिका में समासीन है शान्त्यतीतेश्वर प्रभु जो की पंचमुखी, दशभुजावाले और विद्युत्समूह के समान आकृतिवाले हैं। हे सुन्दरी! शान्त्यतीत के साथ में निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या और शान्ति क्रमश: चारों तरफ से आवृत करते हुए स्थित हैं। बायें भाग में शान्त्यतीता मनोन्मनी, पंचवक्त्रधारिणी, दशबाहु और चन्द्र से विभूषित है। बिन्दुतत्त्व के बारे में कहा गया है कि एक करोड़ अरब संख्याकदलों से अर्थात् असंख्य दलोंवाला सहस्रार चक्र है। यह महापद्म है और यह 7 भागों में विभक्त है।(804-813)

66. आज्ञाचक्रं नाड्यो वायवश्च = आज्ञाचक्र के नाड़ियाँ और वायु –

हस्तिजिह्वा च गान्धारी तथा चालम्बुषा पुनः।
आज्ञाचक्रस्य नाड्यःस्याुर्द्वौ वायू च तथोदिते।।814।।

हस्तिजिह्वा, गान्धारी और अलम्बुसा-ये तीन नाड़ियाँ आज्ञा चक्र के हैं और दो वायु पूर्व में (श्लोक संख्या 601) कहा गया है (श्वासिनी और महावल)।(814)

67. विशुद्धचक्रनाड्यो वायवश्च = विशुद्धचक्र के नाड़ियाँ और वायु –

पूषा यशस्विनी नाड्यौ कर्णयोर्विशतः सदा।
स्कन्धयोर्वारुणा चैव व्याप्ता वै मारिका तथा।
अन्यास्तु मात्रिकास्तिक्ता शिवा बाला सरस्वती।।815।।
अमृता श्रीरवन्ती च तथैव च कुमारिका।
निःसृता दलमध्यमाभ्यां शोभिताश्च यथाक्रमम्।।816।।
मध्ये स्कन्धे च शीताऽपि प्रादुर्भूता च नाडिका।
वायवः षोडश ज्ञेया विशुद्धे च यथाश्रुतम्।।817।।

विशुद्धचक्र से निकलकर पूषा और यशस्विनी कानों में प्रवेश करती हैं। इसी प्रकार दल के मध्यभाग के दायीं और बायीं ओर से निकलकर वारणा, ऐमारिका (मारिका), तिक्ता, शिवा, बाला, सरस्वती (पयस्विनी), अमृता, श्रीः, अवन्ती और कुमारिका नाम के नाड़ियाँ स्कन्धों में क्रमशः व्याप्त होते हैं व सुन्दर भी दीखती हैं। चक्र के मध्य से निकलकर स्कन्ध के मध्य में शीता नाम की नाड़ी चलती है। 16 प्रकार के वायु विशुद्ध में जानना चाहियें जैसे की पूर्व में (श्लोक संख्या 597-600 में) कहा गया है ।(815-817)

68. अनाहतचक्रनाड्यो वायवश्च = अनाहतचक्र के नाड़ियाँ जो स्वयम्भू के द्वारा स्वयं कहा गया है और वायु –

वृन्दा च शारदा नीला पीता द्वादश वायवः।
अनाहते भवन्त्येवं नाड्यो वायुक्रमश्च वै।।818।।

अनाहतचक्र में अर्थात् अनाहत से निकलती हैं नीली रंग की वृन्दा और पीलीरंग की शारदा (अवन्तिका) – नाम के दो नाड़ियाँ होती। वायु में कुल 12 वायु है, जैसे की पूर्व में (श्लोक संख्या 581-584) कहा गया है। (818)

69. मणिपूरचक्रनाड्यो वायवश्च = मणिपूरचक्र के नाड़ियाँ जो स्वयम्भू के द्वारा स्वयं कहा गया है और वायु –

तारका माधवी तारा मुक्ता काली बिजौलिका।

इल्ता शुक्रेल्तिकातीतास्तारा च तारका तथा।।819।।
विश्वोदरी शारदा च नाड्या वै मणिपूरके।
स्तनयोर्नाडिकास्तिस्रो निःसरन्ति विनिश्चितम्।।820।।
दशैव वायवः प्रोक्ता मणिपूरे सदैव हि।
इत्थं हि मणिपूरस्य नाड्यश्च वायवः सन्ति।।821।।

तारका, माधवी, तारा, मुक्ता, काली, बिजौलिका, इल्ता, शुक्रा, विश्वोदरी और शारदा – ये नाड़ियाँ मणिपूरक में यानि मणिपुर से निकलते हैं। उनमें से तारा, तारका और शारदा ये तीन नाड़ियाँ निश्चितरूप से स्तनों की ओर जाती हैं। मणिपूर में सदैव ही 10 प्रकार के वायु पूर्व में (श्लोक संख्या 563–565) कहा गया है। इस प्रकार मणिपूरस्थ वायु और नाड़ियाँ है।(819–821)

70. स्वाधिष्ठानचक्रनाड्यो वायवश्च = स्वाधिष्ठानचक्र के नाड़ियाँ और वायु–

शंखिनी चैव सूत्रा च विश्वा चार्वन्तिका तथा।
उपस्थे च कुहू व्याप्ता इमा नाड्यस्तु विश्रुताः।।822।।
षडेव वायवो ज्ञेयाः स्वाधिष्ठाने यथोदिताः।
तेषां कार्याश्च तथैव स्युर्यथानाम तथागुणः।।823।।

शंखिनी, सूत्रा, विश्वा, चारु, अवन्तिका तथा कुहू जो उपस्थ में व्याप्त है – स्वाधिष्ठान के ये नाड़ियाँ प्रसिद्ध हैं। पूर्व में कहे अनुसार (श्लोक संख्या 487–489 और 548–550) स्वाधिष्ठान से प्रमुख 6 वायु होती हैं। उनके कार्य भी उनके नाम के अनुसार ही हैं यथा नाम तथा गुण – यह यहाँ चरितार्थ है।(822–824)

71. मूलाधारचक्रनाड्यो वायवश्च = मूलाधारचक्र के नाड़ियाँ और वायु –

कालधमनील्तिले च तथा नाडी च शंखिनी।
पायेर्निःसृत्य संव्याप्ता स्रहस्रारावधौ हि सा।।824।।
चत्वारो वायवो ज्ञेया मूलाधारे यथाक्रमम्।
एत एव सदा नाड्यः प्रचलन्ति च वायवः।।825।।

कालधमनी, इल्तिला तथा शंखिनी नाड़ी। इनमें शंखिनी नाड़ी गुदादेश से निकलकर सहस्रार पर्यन्त जाता है। इस प्रकार 3 नाड़ियाँ होती हैं। वायु कुल 4 प्रकार के हैं जो यथाक्रम पूर्व में दर्शाये गये हैं। (श्लोक संख्या 478–480 और 533–536 में)। इतनी ही नाड़ियाँ और वायु मुख्यरूप से निकलती हैं और ये ही इस चक्र को चलाती हैं।(824–825)

72. मिश्रचक्रनाड्यो वायवश्च = मिश्रचक्र के नाड़ियाँ और वायु –

मिश्रचक्रेषु नाड्यस्तु वायवश्च यथाक्रमम्।
सम्पूज्य भान्ति चक्रस्थाः शास्त्रानुमोदितं यथा ।।826।।

मिश्रचक्रों में यानि कोणस्थ अधोमुखी चार चक्रों में यानि उनसे निकलती नाड़ियाँ और वायु यथाक्रम पूर्व में दर्शाये गये हैं (क्रमशः 545-547, 551-561, 566-580 और 593-596 श्लोकों में)। शास्त्रों से अनुमोदित हैं जैसे वैसे ही भासते हैं। यदि चक्रस्थ इनकी सम्यक् पूजा करें अर्थात् चिन्तन, मनन व ध्यान करें तो फल भी तदनुसार मिलता है।(826)

73. पंचीकरणशक्तयः = पंचीकरण की शक्तियाँ -

पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाश एव च।
पंचभूतात्मको देहोज्ञातव्यो हि वरानने ।।827।।
अस्थि मांसं त्वचा नाडी रोम चैव तु पंचमम्।
पृथिवी पंचगुणा चोमा दुर्गा च जयपूर्विका ।।828।।
उग्रचण्डा तथा दुर्गा वनदुर्गा च शक्तयः।
कीर्तिरस्त्रान्वितं चैव ठःद्वयं साहसन्तथा ।।829।।
सफलताग्निजाया च मृत्युंजयस्तथैव च।
विजयो निर्भयश्चैव वायव्यं खलु सर्वदा ।।830।।
दुर्गायाः सर्गबीजं च दुर्गाबीजन्तथैव च।
सर्वतः सिद्धविद्या वै पृथ्वीतत्त्वं च वै श्रृणु ।।831।।
ब्रह्मा देवश्च वर्णश्च पतिं चाधो विशुद्धकम्।
संकेतितोऽत्र मन्त्रश्च गुरुमुखात्तु बुध्यते ।।832।।

पृथ्वी तत्त्व : पृथिवी, जल, अग्नि (तेज), वायु और आकाश - इस पंचभूतों से बनी हुयी है यह शरीर, ऐसा जानना चाहिये। हे वरानने! हड्डी, मांस, चमड़ी, नाड़ियाँ और पाँचवाँ दोष - ये पाँच पृथ्वी के गुण हैं और क्रमशः उमा, जयदुर्गा, उग्रचण्डा, दुर्गा और वनदुर्गा - ये पाँच शक्तियाँ है। अस्त्र से अन्वित ठःद्वय, साहस और कीर्ति सहित सफलता प्रदायक अग्निजाया (अर्थात् स्वाहा) पदान्त मन्त्र पृथिवी तत्त्व की एक सिद्ध विद्या है। दूसरी सिद्धविद्या (मंत्रविशेष) है - मृत्युंजय से युक्त विजय, निर्भय, वायव्य बीज सहित दुर्गा के सृष्टिबीज एवं दुर्गाबीज। हे देवी! सुनो ये दोनों पृथ्वी तत्त्व की सिद्ध विद्यायें (मन्त्र) हैं। इसके देवता हैं ब्रह्मा, वर्ण है स्वर्ण जैसे पीला और यह अधोमुखी विशुद्ध चक्र का पति

यानि अधिष्ठाता तत्त्व है। (यहाँ जो संकेतित मन्त्र है उसे गुरुमुख से ही जाना जाता है। इस लिये हम प्रकट नहीं किये हैं)।(827-832)

जल तत्त्व :

शुक्रशोणितमज्जाश्च मूत्रं लाला च पंचमम्।
आपः पंचगुणाः प्रोक्तास्तारा दक्षिणकालिका।।833।।
भैरवी छिन्नमस्ता च तथा धूमावती शुभा।
दयाकूर्चवधू प्रेमकुन्ती (कालि) **स्मृतिस्तथैव च।।834।।**
प्रोक्ता शक्तिस्तथा ह्यत्र कुलकुण्डलिनी ननु।
योगिन्यथ रागो धूम्रं महाविद्या प्रकीर्तिताः।।835।।
ऐशान्यां जलतत्त्वं च विष्णुदेवस्तथा श्रृणु।
श्यामवर्णन्तथा चाधश्चक्रं स्वाधिष्ठानकम्।।836।।

जल तत्त्व : वीर्य, खून, मज्जा, मूत्र और पाँचवाँ है लार -ये पाचँ जल के गुण हैं और क्रमशः तारा, दक्षिणकालिका, भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, शुभा, दया, कूर्च्चवधू, प्रेमकुन्ती और स्मृति - ये इस जलतत्त्वके शक्तियाँ हैं। इस जलतत्त्व के मन्त्र का स्वरूप है - कुलकुण्डलिनी, योगिनी, राग और धूम्र बीजयुक्त को इसका महाविद्या कहा गया है। ऐशान्य दिशा में वास है जल तत्त्व का और उसका देवता है विष्णु, रंग - श्याम (हल्का काला)। यह अधोमुखी स्वाधिष्ठान चक्र का अधिष्ठातृ तत्त्व है।(833-836)

अग्नितत्त्व :

क्षुधा तृष्णा तथा निद्रा कान्तिरालस्यमेव च।
तेजः पंचगुणं प्रोक्तं त्रिपुरा बगला तथा।।837।।
कमला चैव मातंगी शक्तिश्च भुवनेश्वरी।
अथाकर्षणशक्तिश्च स्थिरभासा च वैभवम्।।838।।
पद्मबीजं च हिस्सी नु प्रसादबीजं वै परा।
ध्वनिमातंगबीजं च मायाबीजं तथैव च।।839।।
महाविद्या भवन्त्येता आग्नेये रुद्रदेवताः।
अग्निस्तत्त्वं तथा रक्तवर्णं चाहुर्विचक्षणाः।।840।।
अधोमुखे मणिपूरे ज्ञेया देव्यो ह्यनुक्रमम्।
यथासंज्ञं प्रभावश्च तेषां नित्यं न संशयः।।841।।

अग्नितत्त्व : भूख, प्यास, नींद, कान्ति और आलस्य - ये अग्नि तत्त्व के पाँच गुण हैं तथा त्रिपुरा, बगला कमला, मातंगी और भुवनेश्वरी - ये क्रमशः पाँच शक्तियाँ हैं। आकर्षणशक्ति और स्थिरप्रकाश - ये दो अग्नितत्त्व का वैभव है। (इसका मंत्र है-) पद्मबीज, हिस्सी (पराप्रासाद), प्रासादबीज, ध्वनिमातंगी के बीजों से युक्त मायाबीज। यह अग्नितत्त्व का महाविद्यामन्त्र है। इसके देवता हैं रुद्र और रंग है लाल - ऐसे विद्वान् लोग कहते हैं। अधोमुख मणिपुर चक्र का अधिष्ठातृ तत्त्व है। देवीयों को यथाक्रम जानना चाहियें और उनके नाम के अनुसार उनके प्रभाव को जानें, इसमें संशय नहीं।(837-841)

वायुतत्त्व :

धावनं चलनं चेष्टा संकोचनप्रसारणे।
वायुः पंचगुणः प्रोक्तो देवी सिद्धकरालिका।।842।।
प्रत्यंगिरा सिद्धिलक्ष्मीर्भद्रकाली तथा पुनः।
दृश्यमंकुशमोजश्च शोषणं बीजमेव च।।843।।
विज्ञेया दुःखघ्नी शक्तिः शिवः प्रसादो वै तथा।
अहंकारश्च रावश्च कामो हि कामबीजकम्।।844।।
सिद्धविद्या भवन्त्येता वायुस्तत्त्वं तथेश्वरः।
नैर्ऋत्ये श्वेतवर्णश्च ह्यधोवक्त्रमनाहतम्।।845।।
देवी कामकलाकाली इत्येताः शक्तयः क्रमात्।
रागद्वेषौ तथा लज्जा भयं मोहश्च पंचमः।।846।।

वायुतत्त्व : धावन, चलन, चेष्टा, संकोचन और प्रसारण-ये पाँच वायु के गुण हैं-ऐसे कहा गया है। इसके शक्तियाँ हैं-देवी, सिद्धकरालिका, प्रत्यंगिरा, सिद्धिलक्ष्मी, भद्रकाली-ये पाँच देव्यात्मक शक्तियाँ, इसके और 5 विशेषकार्यशक्ति हैं-दृश्य, अंकुश, ओजस्, शोषण और बीज - इन्हे दुःखनाशक शक्ति समझें। (वायुतत्त्व का मंत्र-) शिवः प्रासादः, अहंकार, राव, काम और कामबीज- यह वायुतत्त्व का सिद्धविद्या है। वायुतत्त्व के देवता हैं-ईश्वर, देवी-कामकला काली, स्थान-नैर्ऋत्य, वर्ण-सफेद, अधोमुखी अनाहतचक्र का अधिष्ठातृ तत्त्व है वायु। (842-846)

आकाशतत्त्व :

नभः पंचगुणं प्रोक्तं कुब्जा चामुण्डिका तथा।
महाकाली महालक्ष्मीर्महापूर्वा सरस्वती।।847।।

भयः सर्वगतश्चैव विच्चेबीजं च सिद्धिदम्।
मोहश्च योगनिद्रा च वाक्कामबीजं वै सदा।।848।।
क्रोध ऐश्वर्यलज्जे च तथेच्छा च लक्ष्मीः खलु।
विद्या ज्ञेयाः कामवाग्बीजं शोक एव च। ।849।।
शक्तिः कुण्डलिनी चैव खेचरीबीजमेव च।
सिद्धविद्या भवन्त्येता देवोऽयं च सदाशिवः।।850।।
आकाशस्तत्त्वमाहुश्च ललनास्थानमेव च।

आकाशतत्त्व : राग, द्वेष, लज्जा, भय और पाँचवाँ है मोह – ये आकाशतत्त्व के 5 गुण हैं। कुब्जा, चामुण्डिका (चामुण्डा) महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती – ये पाँच शक्तियाँ हैं। इनमें भय तो सर्वगत है। 'विच्चे' – यह बीज सिद्धिदायक है। अनेक सिद्धविद्याओं को गिनते हुए कह रहे हैं कि – मोह, योगनिद्रा, वाक् और काम इनके बीज तथा क्रोध, ऐश्वर्य, लज्जा, इच्छा और लक्ष्मी – इनके बीजों को मिलाकर के ही विद्या समझें। और काम-वाक्-शोक-शक्ति-कुण्डलिनी-खेचरी के बीज ये सब सिद्धविद्यायें हैं। इसका देव सदाशिव है, ललना स्थान है, ऐसा यह आकाशतत्त्व है।(846-851)

प्रणवस्वरूपवर्णनम् = प्रणव के स्वरूप का वर्णन --

सूर्यश्चैव प्रकाशश्च ओमिति ब्रह्मरूपिणम्।।851।।
प्रणवो हि परं तत्त्वं त्रिवेदं त्रिगुणात्मकम्।
त्रिदैवतं त्रिधामस्थं त्रिप्रज्ञं त्रिरवस्थितम्।।852।।
त्रिमात्रं च त्रिकालं च त्रिलिंगं कवयो विदुः।
सर्वमेतत्त्रिरूपेण व्याप्तं हि प्रणवेन तु।।853।।
अग्निः सोमश्च सूर्यश्च त्रिधामेति प्रकीर्तितम्।
अन्तःप्रज्ञं बहिःप्रज्ञं घनप्रज्ञमुदाहृतम्।।854।।
हृत्कण्ठे तालुके चेति त्रिस्थानमिति कीर्त्यते।
अकारोकारमकारैस्त्रिमात्रः स उच्यते।।855।।
कर्मारम्भेषु सर्वेषु त्रिमात्रं तं प्रकीर्तयेत्।
स्थित्वा सर्वेषु शब्देषु सर्वं व्याप्तमनेन हि।।856।।
अकारो ब्रह्मणो रूपमुकारो विष्णुरूपवत्।
मकारो रुद्ररूपः स्यादर्धमात्रं परात्मकम्।।857।।
वाच्यं तत्परमं ब्रह्म वाचकः प्रणवः स्मृतः।

वाच्यवाचकसम्बन्धस्तयोः स्यादौपचारिकः।।858।।
श्रीदेव्याः परमं स्थानं हृदयं परिकीर्तितम्।
शिवस्थानं महेशानि सहस्रारं परिकीर्तितम्।।859।।
स्थान-भेदान्नाम-भेदाद्रू पभेदान्महेश्वरि।
कथमैक्यं महादेवि तस्मादिह तु भावना।।860।।
स्थानभेदे रूपभेदे नामभेदेन वै मम।
तात्पर्यं विद्यते देवि किन्तु चैतन्यभावना॥861।।

सूर्य, प्रकाश और ओम् – ये ब्रह्म भी पर तत्त्व प्रणव ही है। उस प्रणव को त्रिवेदात्मक, त्रिगुणात्मक, त्रिदैवत, त्रिधामस्थ, त्रिप्रज्ञ, त्रिस्थानस्थ, त्रिमात्र, त्रिकाल, त्रिलिंग इत्यादि रूप से कवि (विद्वान् लोग) जानते है। त्रिरूप प्रणव के द्वारा सब को व्याप्त कर लिया गया है। त्रिधाम है – अग्नि, सोम और सूर्य। त्रिप्रज्ञ – अन्तःप्रज्ञ, बहि प्रज्ञ और घनप्रज्ञ। त्रिस्थानं – हृदय, कण्ठ और तालु। त्रिमात्र – अ, उ और म। समस्त कर्मो के आरम्भ में त्रिमात्र ॐ का उच्चारण करना चाहिये। सभी शब्दों में स्थित होकर सब को ॐ के द्वारा व्याप्त कर लिया गया है। त्रिदेव – अकार ब्रह्मा का रूप है, उकार विष्णु और मकार रुद्ररूप है। अर्धमात्रा परमात्मा ही है। परब्रह्म वाच्य है और प्रणव उसका वाचक है। लेकिन यह वाच्यवाचक भाव सम्बन्ध औपचारिक ही है, वास्तविक नहीं। इसी प्रकार स्थान भेद का व्यवहार होता है – देवी का स्थान हृदय कहा गया है और हे महेशानी! शिव का स्थान सहस्रार बताया गया है। हे महेश्वरी! इस प्रकार स्थानभेद, नामभेद और रूपभेद होने पर ऐक्य कैसे हो सकता है? हे महादेवी! इस लिये ऐक्यता की भावना करनी है। यद्यपि मेरा तात्पर्य स्थानभेद, नामभेद और रूपभेद में भी है किन्तु हे देवी! चैतन्य दृष्ट्या तो एकत्व ही है इसलिये एकत्व की भावना करने का विधान किया है – यह मेरे कहने का अभिप्राय है।(851-861)

गुरुमहिमा = गुरु की महिमा –

गुरुमुख्याः क्रियाः सर्वा निर्वाणं गुरुरूपकम्।
निर्वाणं परमं ब्रह्मनिर्वाणन्तु गुरोः पदम्।।862।।

सभी कार्य गुरु मूलक ही होते हैं। निर्वाण भी गुरुरूप ही है। निर्वाण पर ब्रह्म है और निर्वाण गुरु के चरण ही है। (862)

गुरुः शक्तिर्गुरुर्विद्या गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्विराट् स्वरूपवान्।।863।।

गुरु ही शक्ति, विद्या, महेश्वर, ब्रह्मा, विष्णु, विराट्, आदि समस्त स्वरूप है।(863)

गुरुर्मन्त्रो हि चैतन्यः किं बहु ब्रह्म केवलम्।
चैतन्य एव तात्पर्यं ध्यानं तु भावनैव हि।।864।।

गुरु ही मन्त्र, मंत्र चैतन्य आदि है और अधिक क्या कहें गुरु केवल ब्रह्म है। अतः गुरुशब्द का तात्पर्य है चैतन्य, ध्यान तो भावना मात्र है।(864)

केन दृष्टं ध्येयरूपं भावनामात्रगोचरम्।
दृढभावनया युक्ते प्रत्यक्षं दर्शनं भवेत्।।865।।

ध्येय का स्वरूप को किसने देखा है, वह केवल भावना का ही विषय है। दृढ़ भावना से युक्त होने पर ही प्रत्यक्ष दर्शन अर्थात् अनुभव होता है।(865)

चैतन्यं सर्वदा भाव्यं गुरौ देवि न संशयः।
गुरुं विना न विद्याऽऽप्तिर्न च मन्त्राप्तिरेव च।।866।।

हे देवि! साक्षात् ब्रह्म रूपी चैतन्य को गुरु में भावना सदा करनी चाहिये। इस में कोई संशय नहीं। क्योंकि गुरु के विना विद्या और मन्त्र की प्राप्ति नहीं हो सकती।(866)

गुरुस्थानं श्रेष्ठभूतं गुरौ सर्वस्य भावना।
गुरुदैवतमन्त्राणामैक्यं सम्भावयन्धिया।।867।।
मन्त्रार्थं हृदि निश्चित्य गुरुरूपं परामृशन्।
सर्वं गुरौ विलीनं वै ज्ञात्वा तु प्रजपेत्प्रिये।।868।।

गुरु का स्थान (जमीन, मकानादि नहीं) माता, पिता आदि के भी अपेक्षा सर्वश्रेष्ठ है। गुरु में ही सबकी भावना करनी चाहिये। हे प्रिये! इसलिये गुरु, देवता और मन्त्र इन तीनों के अभेद भावना को बुद्धि से सम्भावित करते हुये मन्त्रार्थ को हृदय में निश्चयकर उसको गुरुरूपेण विचार करते हुये अन्ततः सब कुछ को गुरु में ही विलीनता को जानकर मन्त्र को जपना चाहिये।(867-868)

स्वाभिन्नत्वेन सम्भाव्य त्रितयं त्रितयं त्रिषु।
सर्वचक्षुः सर्वमुखं सर्वस्यैव स्वरूपिणम्।।869।।

स्व से अभिन्न गुरु को समझकर भावना करें तथा तीनों में त्रितय - त्रितय की भावना करें। क्योंकि वह सर्वचक्षु है, सर्वमुख है और सभी का स्वरूप ही है।(869)

गुरोः शिवस्य चाभेदं सर्वं सम्भावयन्धिया।
चैतन्यं च विभाव्याथ महातेजः स्मरेच्छिवे।।870।।
गुरुकृपा भवेद्देवि देवरूपो गुरुः स्मृतः।
गुरुरूपो भवेदात्मा आत्मरूपो मनुर्भवेत्।।871।।

गुरु और शिव का अभेद की बुद्धि से सम्भावित करते हुये चैतन्य की भावना करके शिव में महातेज का स्मरण करें। हे देवि! तब गुरुकृपा अवश्य होगी। क्योंकि साधक ने शिवरूप में गुरु का स्मरण किया है। गुरुरूप आत्मा है और आत्मा रूप मन्त्र है।(870-871)

मनुरूपन्तु सकलं विभाव्या मूर्तिकल्पना।
स्वयं भावना या देवि ताद्रूप्यत्वं प्रजायते।।872।।

मंत्ररूप सब कुछ है। अतः मंत्रों से मूर्ति के स्वरूप की कल्पना करें। हे देवी! यह निश्चत है कि हम स्वयं जैसी भावना करेंगे तद्रूप ही मूर्ति आदि उत्पन्न होंगे अर्थात् जैसे मूर्तिकार के द्वारा मूर्ति का निर्माण होता है।(872)

चैतन्यमूर्तिं संचिन्त्य किं न सिद्ध्यति भूतले।
त्रयाणामेकगं तेजस्तत्सर्वत्र मूर्तिकल्पना।।873।।

अब उस पत्थर आदि के मूर्ति में जिस प्रकार चैतन्यमूर्ति की भावना कर (अर्थात् प्राण प्रतिष्ठा करके सजीव सचेतन मानकर) पूजा आदि करने से इस पृथिवी पर क्या सिद्ध नही होता है अर्थात् वाञ्छित सकल फल प्राप्त कर लेते हैं। ठीक उसी प्रकार सर्वत्र मूर्तिकल्पना की जाती है अर्थात् तीनों का एकत्व और उसमें तेज (चेतनता) की भावना से सकल फल प्राप्त होगा ही।(873)

ध्यानोक्तदेवतां ध्यात्वा स्वस्वरूपं विभावयेत्।
अर्धनारीश्वरमपि मन्त्रचैतन्यविग्रहम्।।874।।
गुरुदैवतमन्त्राणामैक्यं सम्भावयन्धिया।
चैतन्यं च सर्वेषां तेजःपुंजं विभावयेत्।।875।।

ध्यान श्लोकों के में उक्त देवता का ध्यान श्लोक के अनुसार करके स्वस्वरूप की भावना करें। अर्धनारीश्वर को भी मन्त्र चैतन्य आत्मक विग्रह (मूर्ति) की सर्वप्रथम भावना करें। तत्पश्चात् गुरु-मंत्र देवता की ऐक्यत्व को बुद्धि से सम्भवित करके इन सब के चैतन्य को तेजःपुञ्ज के रूप में उस मूर्ति में धारण करें।(874-875)

उपदेष्टा गुरुर्देवि मन्त्रचैतन्यबोधनम्।
चैतन्यस्य स्ववरूपं वै गुरुरूपं विभावयेत्।।876।।

हे देवी! उपदेष्टा गुरु ही मन्त्रचैतन्य का बोधक है। क्योंकि चैतन्य का स्वरूप ही गुरु के रूप में विभावित है।(876)

मन्त्रदेवगुरूणां हि त्वैक्यं सम्भावयन्धिया।
तेजःपुंजनिभं सर्वं ह्यक्षरस्य स्वरूपकम्।।877।।

गुरु–देवता–मंत्र इन तीनों की एकत्व को बुद्धि से सम्भावित करके सब को अक्षर का स्वरूप तेज:पुंज के समान देखें।(877)

तेजःपुंजाक्षराणि च सर्वेष्वैक्यं विभावयेत्।
सर्वं चैतन्यजं तेजः कोटिसूर्यसमप्रभम्।।878।।

तेज:पुंजात्मक अक्षर के साथ सब के ऐक्यता की भावना करें। ऐसे ऐक्यता की भावना करने से अनुभव होने लगेगा की सबकुछ वास्तव में कोटिसूर्य के समान प्रभा रूपी चैतन्य तेज:पुंजात्मक ही है।(878)

देवतागुरुमन्त्राणामैक्यं सम्भावयन्धिया।
सर्वतेजोमयं भाव्यं जगत्स्थावरजंगमम्।।879।।

देवता–गुरु–मंत्र– इन तीनों की एकता को बुद्धि से सम्भावित करके सम्पूर्ण स्थावरजंगममय इस जगत् को सर्वतेजोमय। यानि चैतन्यरूप से ही भावना करनी चाहिये।(879)

एवं यो भावयेत्तस्य देवता वरदा भवेत्।
प्रत्यक्षं दर्शनं देवि प्रीतौ लीना हि वर्तते।।880।।

ऐसी भावना जो करता है उसके प्रति देवता वरदान देनेवाले होते हैं। हे देवी! तादृश ऐक्यता की प्रीति में तल्लीन साधक को निश्चितरूप से देवता का प्रत्यक्ष दर्शन यानि अनुभव होता है।(880)

प्रत्यक्षं दर्शनं देवि प्रीतौ प्रीता हि वर्तते।
तथा वाक्यादिसंसिद्धिप्रीत्यर्थं विनियोगकम्।।881।।

हे देवी! प्रत्यक्ष दर्शन (यानि अपरोक्षानुभूति) होने पर प्रीति की अभिवृद्धि होगी। अत: वाक्य आदि की संसिद्धि पूर्वक प्रीति के लिये विनियोग अत्यन्त आवश्यक है।(881)

बीजं विना तु निर्बीजं शववत्परिकीर्तितम्।
बीजयुक्तं भवेद्यन्त्रं निश्चितं सिद्धिदायकम्।।882।।

मंत्र का विनियोग विना बीज नहीं हो सकता, उसे निर्बीज माना जायेगा शववत् निष्फलक कहा गया है। यदि बीज युक्त यन्त्र-मन्त्र-तन्त्र है तो वह निश्चित ही सिद्धिदायक होगा।(882)

बीजाभावे मातृकाणान्संलिखेद् बिन्दुभूषितान्।
मन्त्रमध्ये तु लिखितं तद्यन्त्रं पूजयेच्छिवे।।883।।

बीजाभाव में यानि बीज का ज्ञान न हो तो मन्त्र के प्रत्येक अक्षर को बिन्दु से विभूषित कर यन्त्र में लिखें। हे शिवे इस प्रकार मंत्र के मध्य में अर्थात् यथाविधि - यंत्र पर लिख कर मंत्र की ही पूजा करनी चाहिये।(883)

त्रैलोक्यमोहने चक्रे पंचाशद्वर्णविग्रहे।
चतुरस्रं मातृकावर्णैर्मण्डितं सिद्धिहेतवे।।884।।

त्रैलोक्यमोहनचक्र में जो 50 वर्णमयशरीरवाला है, उसमें 4 अस्त्र मातृकावर्णो से मण्डित है सिद्धि के लिये। (884)

मुक्तामाणिक्यघटितं समस्थलविराजितम्।
त्रैलोक्यमोहनं नाम कल्पद्रुमफलप्रदम्।।885।।

मुक्तामणियों से संरचित, समस्थल पर विराजमान, त्रैलोक्यमोहन नामक चक्र कल्पदुम के समान सकल फलप्रदायक है। (885)

तत्त्वाक्षरसमायुक्तं देवीसप्ताक्षरात्मिका।
मातृकावर्णैर्मण्डितं सम्पूर्णं सिद्धिहेतवे।।886।।

तत्त्वाक्षर से समायुक्त देवी के सप्ताक्षरों से युक्त होकर मातृकावर्णो से मण्डित होने पर यह संपूर्ण चक्र भी सिद्धियों के लिये ही है।(886)

यन्त्रराजं यजेद्देविसर्वकामार्थसिद्धिदम्।
देवीं मातृकायुक्तैः क्षिप्रं पूजाफलं लभेत्।।887।।

हे देवी! यन्त्रराज यानि श्रीयन्त्र का ही पूजन करें, क्योंकि वह सकल कामनाओं का विषयीभूत फलों को निश्चितरूप से देता है। मातृका युक्त देवी की पूजा शीघ्रफलदायक होती है।(887)

बिन्दुध्वनिसकाशात्तु प्रत्येकं वर्णजातयः।
मातृकावर्णा उच्यन्ते अक्षरेति च संज्ञया।।888।।

बिन्दु और ध्वनि से समायुक्त प्रत्येक वर्णजाति को ही मातृकावर्ण कहते हैं और अक्षर भी उसी का नाम है।(888)

श्रीचक्रे शिवयो रूपं विरड्रूपे तु साम्यगा।
तेजःपुंजनिभा रेखा सर्वचैतन्यरूपिणी।।889।।

श्रीचक्र में शिवशक्ति दोनों के स्वरूपात्मक विराट् स्वरूप का साम्य है, अतः तेजःपुञ्ज के समान सर्वचैतन्यरूपिणी रेखात्मक यन्त्र है।(889)

चैतन्यं भावयेत्सर्वं बिन्द्वादिभूपुरान्तकम्।
उत्तरोत्तरबीजं च बिन्दोरस्य विभावयेत्।।890।।

बिन्दु से लेकर भूपुर पर्यन्त समग्र श्रीयन्त्र को चैतन्यात्मक समझें (केवल रेखात्मक या धात्वात्मक नहीं) और भावना भी करें। तथा बिन्दु से लेकर इसका उत्तरोत्तर बीजों की भी भावना करें।(890)

भावनाप्रेषणं देवि देवेन क्रियते शिवे।
प्रतापं श्रृणु देवेशि यत्सर्वं क्रियते सदा।।891।।

हे देवी!, हे शिवे! देव (यानि शिव) के द्वारा सदा केवल भावना से ही प्रेषण (प्रेरणा) दिया जाता है। हे देवेशी! उसका प्रताप सुनो, जो सदा सब कुछ कर रहा है।(891)

भावनैव तु सम्प्रोक्ता भावना सिद्धिदा मता।
भावना यदि नो सिद्धा तत्प्रत्यक्षं कथं भवेत्।।892।।

भावना ही कही गई है इसलिये भावना ही सिद्धिप्रदायिनी है। यदि आपकी भावना सिद्धा यानी पक्की व दृढ़ नहीं है फिर देवादि (फलादि की भी) प्रत्यक्ष भी वैसे ही होगा।(892)

सर्वं दर्पणवद्भाव्यं स्वप्रकाशस्वरूपकम्।
मूलतेजःप्रकाशेन नाभिन्नं भावयेत्प्रिये।।893।।

हे प्रिये! सम्पूर्ण जगत् को दर्पणवत् भावना करें कि यह स्वप्रकाश स्वरूपवाला है क्योंकि मूलतेजः स्वभाववाला तेज से अभिन्न है–ऐसी भावना करें।(893)

आकीटाद् ब्रह्मपर्यन्तं सर्वं शक्तिमयं जगत्।
शक्तिपूजनतो देवि ब्रह्माण्डं पूजितं भवेत्।।894।।

कीट से ब्रह्माजी पर्यन्त संपूर्ण जगत् शक्तिमय है, इसलिये शक्ति की पूजा करने से ब्रह्माण्ड की पूजा हो गयी।(894)

।।श्रीमदाद्यशंकराचार्यविरचितः श्रीयतिदण्डैश्वर्यविधानान्तर्गतः साधनापादः।।

।।श्रीमदाद्यशंकराचार्य विरचित श्रीयतिदण्डैश्वर्यविधान के अन्तर्गत साधनापाद की व्याख्या पूरी हुई।।

यतिदण्डैश्वर्यविधाने

अथ सिद्धिपादो नाम चतुर्थः पादः=सिद्धिपाद नामक चौथा पाद आरम्भ होता है।

1. चक्रराजापरपर्याये श्रीयन्त्रे पश्चिमाम्नायशक्तीनां विवरणम् = चक्रराज का पर्यायवाची श्रीयन्त्र में पश्चिमाम्नायस्थ शक्तियों का वर्णन –

निगमागमसंशुद्धचक्रराजो हि वस्तुतः।
ख्यातिं श्रीयन्त्रनाम्नैव गतः सर्वत्र दृश्यते।।1।।

निगम और आगम से संशुद्ध चक्रराज ही वस्तुतः श्रीयन्त्र नाम से सर्वत्र प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ दिखाई दे रहा है।(1)

परिपूर्णतमस्यास्य श्रीचक्रस्य विशेषतः।
पश्चिमस्था तु चरमुण्डा दक्षिणस्था च चण्डिका॥2।।

(**प्रयोगविशेषमाश्रित्य प्रसिद्धव्युत्क्रमः** = प्रयोगविशेष को आश्रय करके प्रसिद्ध का व्युत्क्रम किया गया है।)

परिपूर्णतम इस श्रीचक्र का विशेषतः दक्षिण में स्थित है चण्डिका और पश्चिम में स्थित है चामुण्डा। (श्लोक में प्रयोगविशेष को आश्रय कर प्रसिद्ध क्रम से विपरीत क्रम बताया गया है)।(2)

ते चोभे अधराम्नायभूते सत्यौ निरन्तरम्।
दक्षिणस्यां तु काष्ठायां तिष्ठतश्चैकरूपतः॥3।।

वे दोनों अधराम्नाय के होते हुये भी निरन्तर दक्षिण दिशा में एकरूप से ही रहते हैं। अर्थात् चण्डिका और चामुण्डा एक ही हैं।(3)

चामुण्डा भद्रकाली च तदा नैर्ऋत्यनायिका।
संजायते स्वयं शुद्धा साधकेभ्यः सुखप्रदा।।4।।

वही चामुण्डा जब नैर्ऋत्य दिशा का अधिष्ठात्री हो जाती है तब वह स्वयं शुद्धा (दिशा गत दोषों से असंस्पृष्ट) और साधकों को सब फल प्रदान करनेवाली भद्रकाली हो जाती है।(4)

दक्षिणस्था तु सा तारा देवी स्यात्पूर्वदिग्भवा।
महालक्ष्मीस्तथा चोभे संयुक्ते भवतो यदि।।5।।

तदा त एव जायेते महालक्ष्मीः सुविश्रुता।
ददाति तत्फलं भूता साऽऽग्नेयाम्नायनायिका।।6।।

दक्षिण में स्थित होने पर वह तारा देवी होती है और पूर्वदिशा में हो तो वह मातालक्ष्मी होती है और यदि वह दक्षिण और पूर्व दोनों से संयुक्त होतो वे ही (तारा और महालक्ष्मी) आग्नेयाम्नाय का अधिष्ठात्री होकर महालक्ष्मी नाम से प्रसिद्ध होती है और सब फल देनेवाली होती है।(5-6)

तथा भगवती देवी पूर्वस्था रक्तदन्तिका।
उत्तरस्था पंचवक्त्रा महाकाली च विश्रुता।।7।।
मिलित्वा तिष्ठतो यत्र तदा भवति सेश्वरी।
दशवक्त्रा महाकाली चेशानाम्नायनायिका।।8।।

उसी प्रकार जब पूर्वदिक् में रहती है वह रक्तदन्तिका नाम से प्रसिद्ध होती है। उत्तर में स्थित हो तो पंचवक्त्रा और महाकाली कही जाती है। दोनों पूर्वोत्तर दिशा को मिलाकर ईशानाम्नाय के अधिष्ठात्री के रूप में वह 'ईश्वरी' होती है और वह दशवक्त्रा महाकाली होती है।(7-8)

एवं कुबेरदिक्संस्था विपरीतेति पूर्विका।
प्रत्यंगिरा भद्रकाली भक्तानां सिद्धिसाधिका।।9।।
पश्चिमस्थाऽत्र सा देवी या मातंगीति शब्द्यते।
मोहिनीशब्दपूर्वा सा सिद्धिदात्री सरस्वती।।10।।
द्वे इमे मिलिते सत्यौ वायव्याम्नायनायिका।
महासरस्वती देवी भूत्वा तत्रैव तिष्ठति।।11।।

एवं कुबेर (उत्तर) दिक् में विपरीत प्रत्यंगिरा व भद्रकाली नाम से जानी जाती है जो भक्तों के सिद्धि को साधनेवाली है। यहाँ पश्चिमदिशा में जब होती है तब वह मातंगी शब्द (नाम) से कही जाती है और मोहिनी शब्द पूर्वक सिद्धिदात्री तथा सरस्वती नाम से कही गयी है। जब दोनों दिशाओं के बीच वायव्यकोण में वह वायव्याम्नाय के अधिष्ठात्री के रूप में स्थित रहती है तब वह महासरस्वती नाम से प्रसिद्ध होती है।(9-11)

भद्रकाली महालक्ष्मीः पूर्वोक्ते द्वे इमे तथा।
दशवक्त्रा महाकाली सैषा महासरस्वती।।12।।
देव्यश्चेमाश्चतस्रोऽपि समष्ट्या मिलिताः स्वतः।
देवी त्रिशक्तिचामुण्डा भवत्यत्र स्वरूपतः।।13।।

पूर्वोक्त दो भद्राकाली, महालक्ष्मी तथा दशवक्त्रा महाकाली एवं वह यह अभी कही गई महासरस्वती ये चारों देवियाँ समष्टि रुप में मिलकर स्वतः त्रिशक्ति देवी चामुण्डा स्वरूप होती है।(12-13)

वाग्बीजस्यास्ति या शक्तिरधिष्ठात्री स्वरूपिणी।
भवत्यभयदा सैषा सप्तशत्याः सुधामयी।।14।।

सप्तशती के वाग्बीज का जो शक्ति है, अधिष्ठात्री स्वरूपा है, वह यह सुधामयी व अभयदा है।(14)

सा हि पूर्वचरित्रस्य महाकालीति विश्रुताम्।
सादाख्यां लभते भूता सेशानाम्नायनायिका।।15।।

वही पूर्वचरित्र के महाकाली नाम से प्रसिद्ध है। वही ईशानाम्नाय का अधिष्ठात्री होती है तब उसी सत् नाम यानि महाकाली नाम की होती है।(15)

मायाबीजस्य या शक्तिरधिष्ठात्रीति शब्दिता।
सा मध्यमचरित्रस्य साररूपाऽत्र विद्यते।।16।।

मायाबीज की जो शक्ति है जिसे अधिष्ठात्री शब्द से भी कहा गया है वह मध्यमचरित्र का साररूपेण यहाँ विद्यमान है।(16)

यां वदन्ति महालक्ष्मीं साऽऽग्नेयाम्नायनायिका।
मूले तिष्ठति संतुष्टा भोगैश्वर्यप्रदाऽनिशम्।।17।।

जिसको महालक्ष्मी कहते हैं वह आग्नेयाम्नाय की नायिका है। वह उत्तम चरित्र की देवी मूलाधार में सन्तुष्ट रहती है। भोगैश्वर्य सदा देती है।(17)

तथैव कामबीजस्याधिष्ठात्री शक्तिरुत्तमा।
साह्युत्तमचरित्रस्य साररूपेति कथ्यते।।18।।

उसी प्रकार कामबीज का अधिष्ठात्री उत्तमशक्ति, वह उत्तमचरित्र का साररूपेण यहाँ विद्यमान है।(18)

महासरस्वती सैषा वायव्याम्नायनायिका।
महाज्ञानप्रदा नित्यं सन्तोष्टव्या स्वभक्तितः।।19।।

वह यह महासरस्वती वायव्याम्नाय की नायिका है। नित्य ही महाज्ञानप्रदान करनेवाली होने से अपनी भक्ति से उन्हें सन्तुष्ट कर लेना चाहिये।(19)

चामुण्डा भद्रकाली सा नैर्ऋत्याम्नायनायिका।
विच्चे तु पश्चिमाम्नायनायिका कुब्जिकैव हि।।20।।

वह चामुण्डा भद्रकाली के रूप में नैर्ऋत्याम्नाय की नायिका है। नवार्णमन्त्रस्थ 'विच्चे' सहित साक्षात्पश्चिमाम्नाय नायिका कुब्जिका है।(20)

तद्बीजजपमन्त्रोक्ता चामुण्डा च तथेश्वरी।
विच्चे च कुब्जिका चैव पंचेमा दिव्यशक्तयः॥21॥

जपमन्त्रों के उक्त बीज, चामुण्डा, ईश्वरी, विच्चे और कुब्जिका को मिलाकर ये पांच दिव्यशक्तियाँ हैं।(21)

तिष्ठन्ति पश्चिमाम्नाये देव्या कुब्जिकया सह।
समष्ट्या संगताः सर्वाश्चैकीभूता विशेषतः॥22॥

पश्चिमाम्नाय से कुब्जिका सहित देवियाँ जो रहती हैं वे समष्टि से संगत होकर विशेषतः सभी एकीभूत होते हैं।(22)

2. नवार्णमन्त्रदेवीनां परं स्वरूपम् =नवार्णमन्त्र के देवियों का परम स्वरूप –

वाग्बीजं प्रथमं तद्धि महाकालीति कथ्यते।
मायाबीजं महालक्ष्मीः सुप्रसिद्धैव वर्तते॥23॥

'ऐं' यह वाग्बीज जो पहला हे वह महाकाली है – ऐसा कहा गया है जो मायाबीज ह्रीं है वह सुप्रसिद्ध महालक्ष्मी हैं।(23)

महासरस्वती देवी कामबीजं प्रकीर्त्यते।
चामुण्डायै भद्रकाली चामुण्डैव निगद्यते॥24॥

जो कामबीज 'क्लीं' है वह महासरस्वती देवी है। 'चामुण्डायै' यह मन्त्र साक्षात् भद्रकाली है जिसे चामुण्डा शब्द से ही कहते हैं।(24)

विच्चे पदं कुब्जिका स्यात्पंचेमाः संगता इह।
नवार्णरूपे तन्मन्त्रे निषीदन्त्येकरूपतः॥25॥

'विच्चे' यह पद कुब्जिका है। यहाँ ये पाँच देवियाँ संगत हैं। नवार्णरूप उस मंत्र में एकरूप से ये पाँच देवियाँ बैठी हुई हैं।(25)

तदन्ते कुब्जिकादेव्या विद्यमानतया पुनः।
सर्वासां पश्चिमाम्नाये समावेशोऽस्त्यभीष्टकृत्॥26॥

उसके अन्त में कुब्जिका देवी की विद्यमानता के कारण सभी का पश्चिमाम्नाय में समावेश अभीष्टकारक है।(26)

3. पश्चिमाम्नायस्य श्रेष्ठत्वं तद्देवीनां सादिकूटसूचकत्वं च = पश्चिमाम्नाय के श्रेष्ठत्व और तत्रस्थ देवियों का सादिकूटसूचकता –

श्रेष्ठोऽतः पश्चिमाम्नायस्तत्रत्यः शाम्भवोऽसित यः।
स एव शाम्भवस्तासां मत आगमवेदिनाम्।।27।।

पश्चिमाम्नाय इसलिये श्रेष्ठ है कि उसमें जो शाम्भव है वही सादि कूट का भी शाम्भव देवता है - यह आगमवेत्ताओं का मत है।(27)

एताः समष्टिरूपेण तत्रैकीभूतविग्रहाः।
सादिकूटस्य संकेतबोधिकाः प्रभवन्त्यहो।।28।।

ये सब समष्टि रूप से वहाँ एकीभूत विग्रह वाले हैं और सादिकूट का संकेत बोधिका होने की सामर्थ्ययुक्त हैं।(28)

उग्रचण्डा भद्रकाली कात्यायनी तथैव च।
महालक्ष्म्याः स्वरूपं ता धारयन्ति स्थिता इह।।29।।

उग्रचण्डा, भद्रकाली, कात्यायनी और महालक्ष्मी का स्वरूप यहाँ धारण की हुई हैं।(29)

(**यत्तृतीयं ततोऽग्रे तु वाणीदैवतमुत्तमम्।**) यह श्लोकार्ध असम्बद्ध होने से कोष्ठक में रखा गया है।(जो तृतीय है, उससे आगे तो सर्वोत्तम वाणी देववाक् है।)

चामुण्डा प्रस्तुता देवी भोगैश्वर्यप्रदायिनी।
तिष्ठत्यनाहते चक्रे विशुद्धे याति चान्ततः।।30।।

प्रस्तुत चामुण्डा देवी भोगैश्वर्यप्रदान करनेवाली अनाहत चक्र में बैठी रहती है किन्तु अन्त में वह विशुद्ध चक्र में चली जाती है।(30)

ततोऽस्मिल्ललनाचक्रे गत्वा स्थैर्येण तिष्ठति।
फलं ददात्यसौ भूयोऽनाहतस्यैव नित्यशः।।31।।

उससे आगे वह ललना चक्र में जाकर स्थिरता पूर्वक बैठती है। अनाहत के ही फल को निरन्तर खूब देती है।(31)

अतो हि पश्चिमाम्नायो भोगभाग्भिरहर्निशम्।
सेव्यते पूज्यते भक्त्याऽऽगमतत्त्वज्ञसाधकैः।।32।।

भोग के इच्छुक आगमतत्त्व के ज्ञाता साधकगण इसलिये निरन्तर पश्चिमाम्नाय की ही पूजा, चिन्तन - मननआदि करते हैं।(32)

तदैव ज्ञायते सृष्टेः पूर्वरूपं स्वतः स्फुरत्।
सृष्टिसूत्रकमत्रत्यं वाग्बीजात्मकमव्ययम्।।33।।

तभी यह जान पाते हैं कि श्रीयन्त्रस्थ 'ऐं' यह वाग्बीजात्मक अव्यय ही

सृष्टि का सूत्र है क्योंकि साधक के समक्ष सृष्टि का पूर्वरूप स्वतः स्फुरित होता है।(33)

यद् द्वितीयं ततो मायाबीजात्मकमनुत्तमम्।
तन्मध्यमचरित्रन्तु यदध्यायत्रयात्मकम्।।34।।

तदनन्तर जो दूसरा बीज है, अनुत्तम मायाबीज 'ह्रीं' है, वह मध्यमचरित्र है, जो कि तीन अध्ययों से युक्त है।(34)

दृश्यते तत्तु सत्तत्त्वं सृष्टिस्थितिलयात्मकम्।
सत्त्वरजस्तमोयुक्तं ध्यानगम्यार्थदर्शनम् ।।35।।

सत्त्वरजस्तमोयुक्त सृष्टिस्थितिलयात्मक इस संसार का रहस्य ध्यानगम्य पदार्थदर्शन है उसका दर्शन होता है।(35)

तदुत्तमचरित्रन्तु नवाध्यायैः प्रपूरितम्।
अव्यक्तमपि जानन्ति व्यक्तमागमवेदिनः।।36।।

तत्पश्चात् उत्तम चरित्र तो नौ अध्ययों से पूरित है क्योंकि वह नवतत्त्वात्मक सृष्टि का प्रतीक है, इस अव्यक्ततत्त्व को भी जानते है व्यक्तागमों को जाननेवाले सिद्धलोग।(36)

नवतत्त्वात्मकं सृष्टिः सृष्टिः सृष्टिः पुनः।
तथा सृष्टिलयश्चैव स्थितिसृष्टिः स्थितिः स्थितिः।।37।।
एवं स्थितिलयश्चासौ लयसृष्टिर्लयस्थितिः।
लयलयात्मकं चैव नवरूपं भवत्यदः।।38।।

नवतत्त्वात्मक सृष्टि जो कहा गया वह कैसे? सृष्टि, स्थिति और लय प्रत्येक तीन रूप के हैं। कैसे – सृष्टिसृष्टि, सृष्टिस्थिति, सृष्टिलय, स्थितिसृष्टि, स्थितिस्थिति, स्थितिलय, लयसृष्टि, लयस्थिति और लयलय रूप से।(37-38)

विषयेष्वेषु सर्वेषु पूर्वमात्मकृपा क्षमा।
या परा भवशक्तिः साऽपेक्षते विबुधैः सदा।।39।।

विद्वानों के द्वारा इसका अनुभव करने के लिये सब से पहले इन सब विषयों पर क्षमा के साथ आत्मकृपा होनी चाहिये तथा जो पर भवशक्ति है उसकी श्री (वैभव यानि कृपा) की सदा अपेक्षा है।(39)

ततो गुरुकृपाप्राप्तिः सा देवशक्त्यात्मिका मता।
पुनचेष्टकृपालभ्या साऽनुग्रहस्वरूपिणी ।।40।।

उससे फिर गुरुकृपा की प्राप्ति, जिसे देवशक्त्यात्मक ही माना गया है।

अन्तमें इष्टकृपा जो की सदा लभ्य ही है क्योंकि वह ईश्वर का अनुग्रहशक्तिरूप ही है।(40)

(यदि गुरुदैवतयोरैक्यं वस्तुतो विभाव्यते तदा शक्त्योर्व्युत्क्रमोऽपि शोभत एव, व्युत्क्रम एव वा तयारैक्यव्यंजकमिति ध्येयम्।)

(यदि गुरु और देवता का ऐक्य वास्तविक रूप से अनुभव में आता है तो शक्तियों का व्युत्क्रम भी शुभ ही है अथवा व्युत्क्रम ही इन देनों की ऐक्यता का अभिव्यंजक समझना चाहिये।)

सप्तशत्याः पराम्बायाः स्तोत्रस्यैतस्य वस्तुतः।
नवार्णस्यापि मन्त्रस्य विज्ञेयं तत्त्वमुत्तमम्।।41।।

पराम्बा के सप्तशती स्तोत्र का नवार्णवमन्त्र का और श्रीयन्त्र का यह सामरस्यता जो वस्तुतः सर्वोत्तम तत्त्व है वह जानने योगय है।(41)

महात्रिपुरसुन्दर्या जगन्मातुः कृपां विना।
न ज्ञायतेऽतिगुप्तं तत्तयैवाऽत्र प्रकाशितम्।।42।।

महात्रिपुरसुन्दरी की कृपा के विना इस अतिगुप्ततत्त्व को कोई नहीं जान सकता। उस जगन्माता की कृपा से ही यहाँ मेरे द्वारा प्रकाशित किया गया है।(42)

एकेन्द्रियमनोवृत्त्या निगमागमवेदिभिः ।
अवलोक्य हृदाकाशे ध्येयं पूज्यं प्रयत्नतः।।43।।

एकाग्रमनोवृत्ति से निगम आगम वेत्ताओं के द्वारा अपने हृदयाकाश में अवलोकन करके प्रयत्नपूर्वक यह तत्त्व पूज्य व ध्येय है।(43)

4. षट्चक्राणां विभिन्नमुखेन ध्यानविधानम् = षट्चक्रों के विभिन्नप्रकार से ध्यान का विधान –

अधोमुखं द्वादशपत्रमेकं, विचिन्त्य चक्रं हृदये निगूढम्।
विभावये तत्र परां त्रिशक्तिमाम्नायविद्याश्च यथाक्रमेण।।44।।

हृदय में निगूढ़ एक 12 दलवाला अधोमुख चक्र का चिन्तन करके वहाँ परा त्रिशक्ति का ध्यान करके यथाक्रम आम्नायविद्या को प्रकट करता हूँ।(44)

विभावयेच्चापि पुनस्तदन्तश्चक्रं षडस्रं शुभकर्णिकावत्।
द्वयोस्तदित्थं स्थितितो यथावत्संकेतितं स्यादपि सादिकूटम्।।45।।

उसके भी भीतर एक 6 दलोंवाला चक्र को फूल का कर्णिका के समान कल्पना करनी चाहिये। इस प्रकार दो चक्रों के स्थिति से यथावत् सादिकूट को संकेतित किया गया है।(45)

देव्युवाच -

देव्युवाच-देवदेव महादेव सृष्टिस्थित्यन्तकारक।
मूर्ध्नि पद्मं सहस्रारं रक्तवर्णमधोमुखम्।।46।।
तस्य मध्ये स्थितं ध्यायेद् गुरुं शान्तं सशक्तिकम्।
मूलाधारे महाशक्तिं कुण्डलीरूपधारिणीम्।।47।।

देवी कही - हे देवादिदेव महादेव!, हे सृष्टि स्थिति और संहार कारक!, यह कहा गया है कि सर्वप्रथम मस्तिष्क में एक लालरंग का अधोमुखी सहस्रार चक्र जो है, उसके बीच में सशक्ति शान्तिपूर्वक विराजमान गुरु का ध्यान करके तत्पश्चात् मूलाधार में कुण्डलिरूप धारण की हुई महाशक्ति का ध्यान करना चाहिये।(46-47)

अधोवक्त्रक्रमेणैव सर्वपद्मेषु भावना।
तदा कथं भवेत्तत्र चिन्तनं गुरुदेवयोः।।48।।
आधारतत्त्वे स्थितिः सा त्वमधोभागे कथम्भवेः।
विपरीतघटे यथा जलस्थितिः कथं भवेत्।।49।।

लेकिन क्रम से जब चक्र को अधोमुख क्रम से भावना करनी है तो वहाँ गुरु और देव का चिन्तन कैसे हो सकता है। आधारतत्त्व स्वरूप मूलाधारचक्र में जो अधोमुख है उसमें आपकी स्थिति कैसे हो सकती है, जैसे उल्टे घड़े में पानी की स्थिति नहीं हो सकती।(48-49)

महादेव उवाच -

यथैवोक्तं त्वया देवि तथैव वीरवन्दिते।।50।।
एवमेवानुसंदेहो जायते नात्र संशयः।
कथ्यते परमेशानि सन्देहोच्छेदकारणम्।।51।।

महादेव कहते हैं - हे वीरों के द्वारा पूजित देवी! आपके द्वारा जैसे कहा गया ऐसा ही संशय होना स्वाभाविक है, इसमें कोई संशय नहीं है। लेकिन, हे परमेशानी! सन्देह के उच्छेद का साधन मैं कहूँगा।(50-51)

तानि पद्मानि देवेशि सुषुम्नान्तःस्थितानि च।
परब्रह्मस्वरूपाणि शब्दब्रह्ममयानि च।।52।।

वे सकल चक्र सुषुम्ना के भीतर में स्थित हैं। हे देवेशी! वे सब परब्रह्मस्वरूप हैं और शब्दब्रह्ममय भी हैं।(52)

तत्सर्वं पंकजं देवि सर्वतोमुखमेव च।
प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च द्वौ भावौ जीवसंस्थितौ।।53।।

अत: वे सब चक्र सर्वतोमुख हैं, केवल अधोमुख नहीं या केवल ऊर्ध्वमुख नहीं। हे देवी! जीव में दो भाव संस्थित हैं – प्रवृत्ति और निवृत्ति।(53)

प्रवृत्तिमार्गः संसारो निवृत्तिः परमात्मनि।
प्रवृत्तिभावचिनतायामधोवक्त्राणि चिन्तयेत्।।54।।

प्रवृत्तिमार्ग संसार है और निवृत्तिमार्ग परमात्मा में ले जाता है। प्रवृत्ति भाव की चिन्तन काल में चक्रों का ध्यान अधोमुख ही करना है। (54)

निवृत्तिमार्गे चिन्त्यानि सदैवोर्ध्वमुखानि च।
प्रवृत्तौ च निवृत्तौ च द्विधा पद्मनि चिन्तयेत्।।55।।

निवृत्तिमार्गकाल में सदैव इन चक्रों को ऊर्ध्वमुख ही चिन्तन करें। प्रवृत्ति और निवृत्ति उभय मार्गावलम्बी साधक का कर्तव्य है कि वह दानों प्रकार से (ऊर्ध्वमुख और अधोमुख) चिन्तन करें।(55)

तस्मादूर्ध्वाधोमुखं भक्तिमुक्तिप्रदायकम्।
तदनुसारतस्प्राज्ञैः सावधनेन चिन्तयेत्।।56।।

इसलिये ऊर्ध्वमुख और अधोमुख क्रमश: मुक्ति और भुक्ति (संसार) प्रदायक हैं। इस बात को ध्यान में रखते हुये बुद्धिमान साधकों को सावधानी से चिन्तन करना चाहिये।(56)

तत्सर्वं पंकजं देवि सर्वतोमुखमेव च।
प्रवृत्तिभावचिन्तायामधोवक्त्राणि चिन्तयेत्।।57।।
निवृत्तिभावमार्गेषु सदैवोर्ध्वमुखानि च।
ऊर्ध्वाधश्चिन्तयेत्प्राज्ञो भोगमोक्षाभिलाषुकः।।58।।

और भी स्पष्ट करते हुये कहते हैं कि –हे देवी! वे सकल चक्र वास्तव में सर्वतोमुख हैं। इसलिये प्रवृत्तिमार्गी साधक का कर्तव्य है की वह सदा चक्रों को अधोमुखी ही चिन्तन करें और निवृत्तिमार्गी साधक सदैव चक्रों को ऊर्ध्वमुखी ही चिन्तन करें। तात्पर्य यह है कि भोग या मोक्ष की अभिलाषा के अनुसार अधोमुख या ऊर्ध्वमुख चिन्तन करना है।(57-58)

इत्थं च – इस प्रकार ध्यान करें –

इत्थंच –अधोमुखंद्वादशपत्रचक्रंषट्कोणगर्भंहृदि चिन्तयित्वा।
विभावयेत्तत्र परां त्रिशक्तिमाम्नायविद्याश्च यथाक्रमेण।।59।।

षट्कोणगर्भित 12 दलवाला अधोमुख चक्र को हृदय में भावना करके उसमें यथाक्रम आम्नायविद्याओं के सहित त्रिशक्तिचामुण्डा का ध्यान करें।(59)

तच्चक्रमादौ विभजेच्चतुर्धा समन्ततस्तत्त्रिदलक्रमेण ।
ततश्च पूर्वादिदिशश्चतस्रः प्रकल्पिताः स्युर्विदिशश्च तत्र ।।60।।

पहले उस चक्र को चार भागों में विभाजन कर लें, प्रत्येक भाग तीन-तीन दल का हो। फिर उन्हें पूर्वादि दिशों में ग्रहण कर विदिशाओं की भी प्रकल्पना कर लें।(60)

पूर्वतो भुवनां तत्र स्वाधिष्ठाननिवासिनीम् ।
ध्यायेद्यथाक्रमं देवि सृष्टिचक्राधिदेवताम्।।61।।

हे देवी! उनमें से पूर्व त्रिदल में सृष्टिचक्र की अधिदेवता स्वधिष्ठानचक्र निवसिनी देवी से आरम्भ कर क्रमशः ध्यान करें।(61)

दक्षिणे दक्षिणां कालीं मणिपूरनिवासिनीम्।
ध्यायेत्तथैव सुभगे स्थ्सितिचक्राधिनायिकाम्।।62।।

हे सुभगे! दक्षिणत्रिदल में दक्षिण काली मणिपूरचक्र निवासिनी स्थितिचक्र की अधिनायिका का ध्यान करें।(62)

पश्चिमे कुब्जिकां देवीमनाहतनिवासिनीम्।
ध्यायेत्कुण्डलिनीरूपां संहारक्रमनायिकाम्।।63।।

पश्चिमत्रिदल में संहार क्रम की नायिका अनाहतचक्र निवासिनी कुण्डलिनी रूपा कुब्जा देवी का ध्यान करें।(63)

उत्तरे गुह्यकालीं च विशुद्धान्तर्व्यवस्थिताम्।
उपासीत यथायोगमनाख्याचक्रनायिकाम्।।64।।

उत्तरत्रिदल में अनाख्याचक्र की नायिका विशुद्धचक्रान्तर्व्यवस्थित गुह्यकाली का ध्यान यथायोग (यथासंभव) करना चाहिये।(64)

ऊर्ध्वं पूर्वेशयोर्मध्ये श्रीबालात्रिपुरां भजेत्।
आज्ञाचक्रमासीनामूर्ध्वाम्नायाधिदेवताम्।।65।।

पूर्व और ईशानकोण के मध्य में आज्ञाचक्र निवासिनी ऊर्ध्वाम्नाय का अधिदेवता श्रीबालात्रिपुरा का ध्यान करें।(65)

अधःपश्चिमकाष्ठायां मध्ये तारां भजेत्सुधीः।
मूलाधारस्थितां देवीमधराम्नायनायिकाम्।।66।।

नीचे पश्चिम और नैर्ऋत्य के बीच में अधराम्नाय का अधिष्ठातृदेवी मूलाधार निवासिनी तारा देवी का ही विद्वान् ध्यान करें।(66)

ईशकोणे महाकालीं दशवक्त्रां नवार्णगाम्।
पंचाननां महाकालीं रक्तदन्तांसुयोगजाम्।।67।।

ईशान कोण में दशवक्त्रा महाकली नवार्णनिवासिनी तथा सुयोगजा रक्तदन्ता पंचवक्त्रा महाकाली का ध्यान करें।(67)

आग्नेये तु महालक्ष्मीं नवार्णात्मस्वरूपिणीम्।
द्वयोस्ताराकमलयोः शुभसंयोगरूपिणीम्।।68।।

आग्नेय कोण में नवार्ण आत्मस्वरूपिणी तारा और कमला दोनों के शुभसंयोग रूपिणी महालक्ष्मी का ध्यान करें।(68)

नैर्ऋत्ये भद्रकालीं च नवार्णामेव केवलाम्।
चिन्तयेद्रक्तचामुण्डां चण्डिकां मिश्ररूपिणीम्।।69।।

नैर्ऋत्यकोण में केवल नवार्णरुपा, रक्तचामुण्डा और चण्डिका का मिश्रस्वरूपिणी भद्रकाली का ध्यान करें।(69)

महासरस्वतीं वायौ विपरीतस्वरूपिणीम् ।
प्रत्यंगिराभद्रकालीं मोहिनीं वाग्विमिश्रिताम्।।70।।

वायव्य कोण में महासरस्वती सहित विपरीतप्रत्यंगिरा वाग्मिश्रित मोहिनीरूपा भद्रकाली का ध्यान करें।(70)

मध्ये त्रिशक्तिचामुण्डामुपाम्नायाधिदेवताम्।
ध्यायेत्पश्चात्कुब्जिकायां समष्ट्या लयगामिनीम्।।71।।

मध्य में उपाम्नाय के अधिदेवता समष्टिभाव से लयगामिनी कुब्जिका में त्रिशक्तिचामुण्डा का ध्यान करें।(71)

अथ तासां क्रममाह यथादृष्टं यथाश्रुतम्।
वक्ष्याम्युपासनासिद्ध्यै हकसादिस्वरूपगम्।।72।।

अब में उनका क्रम जैसे श्रुत हैं, जैसे अनुभव में आते हैं और ह-क-सादि स्वरूपेण विद्यमान उनके बारे में वैसे ही कहूँगा, उपासना की सिद्धि के लिये।(72)

तत्रादौ दक्षिणाकाली मणिपूराधिवासिनी।
महोग्रतारातत्पश्चान्मूलाधारनिवासिनी ॥73।।
विचिन्त्य तत आज्ञायां बालात्रिपुरसुन्दरी।
एतत्त्रितयमेकत्र हादिकूटमिति स्मृतम्॥74।।

उनमें सर्वप्रथम दक्षिणाकाली मणिपूरचक्र के अधिष्ठातृ देवता, तत्पश्चात् मूलाधारचक्र निवासिनी महोग्रतारा का चिन्तन यानि ध्यान करके आज्ञाचक्र में बालात्रिपुरसुन्दरी का ध्यान करें। ये तीनों एकत्र गृहीत होने को ही हादिकूट कहा गया है।(73-74)

ततो विशुद्धगा ध्येया गुह्यकाली दशानना।
स्वधिष्ठागता तद्वद्ध्येया श्रीभुवनेश्वरी ॥75।।

कादिकूट – तदनन्तर विशुद्धचक्रस्थ दशानना गुह्यकाली का ध्यान करके स्वाधिष्ठानस्थ श्री भुवनेश्वरी का ध्यान करना चाहिये।(75)

अनाहते ततो ध्येया कुब्जिका बहुरूपिणी।
एतत्त्रितयमेकत्र कादिकूटमिति स्मृतम्।।76।।

उसके बाद अनाहत में बहुरूपिणी कुब्जिका का ध्यान करें। इन तीनों का एकत्र ध्यान करने को कादिकूट कहा गया है।(76)

नैर्ऋत्ये च ततो ध्येया भद्रकाली यथोदिता।
आग्नेये च महालक्ष्मीस्तारा पद्मास्वरूपिणी।।77।।

सादिकूट – तत्पश्चात् नैर्ऋत्यकोण में पूर्वोक्त भद्रकाली का ध्यान करके आग्नेय कोण में पद्मस्वरूपिणी तारा और महालक्ष्मी का ध्यान करना चाहिये।(77)

ईशाने च ततो ध्येया महाकाली यथोदिता।
महासरस्वती च पश्चाद्यथोक्ता वायुकोणगा।
एतच्चतुष्टयं भद्रे सादिकूटमिति स्मञ्ज्तम्।।78।।

इसके बाद ईशानकोण में पूर्वोक्त महाकाली और तत्पश्चात् वायव्यकोण में यथोक्त महासरसवती का ध्यान करें। हे भद्रे! इन चारों का एकत्र ध्यान करने को ही सादिकूट कहा गया है।(78)

मध्ये त्रिशक्तिचामुण्डा विचिन्त्या चतुरान्वया।
याति सा विलयं पश्चात्कुब्जिकायां सहानुगा।।79।।

मध्य में चारों अन्वयों के साथ त्रिशक्ति चामुण्डा का चिन्तन करने के पश्चात् उसका भी विलय अनुचारिणियों सहित कुब्जिका में करें।(79)

अथ चातो गुह्यकाली भुवना कुब्जिका ततः।
दक्षिणा कालिका तारा श्रीविद्या परमेश्वरी।।80।।
महाकाली महालक्ष्मीर्महापूर्वा सरस्वती।
ततस्त्रिशक्तिचामुण्डा भद्रकालीस्वरूपिणी।।81।।
ध्येया पश्चात्कुब्जिकायां समष्ट्या लयगामिनी।
लघुक्रमोऽयं देवेशि चामुण्डाया नवार्णगः।।82।।

अब लघुक्रम आरम्भ करते हैं – गुह्यकाली, भुवना, कुब्जिका, दक्षिणा कालिका, तारा, श्रीविधा, परमेश्वरी, महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती, त्रिशक्ति

चामुण्डा, भद्रकाली स्वरूपिणी–ये ध्येय हैं क्रमशः, तत्पश्चात् ये सब लयस्वभाववाले होने के कारण समष्टिदृष्टि से कुब्जिका में इनका विलय की भावना करें। हे देवेशी! चामुण्डा का नवार्णवगत यह लघुक्रम दर्शाया गया है।(80–82)

कामादिदोषरहिता कादिहादिमतानुगा।
वांछिता कल्पिता सिद्धिर्मनोरथमया तथा॥83॥
कादिहादिवपुर्यस्या विहारश्च कुलद्वये।
सम्प्रदायत्रयं धर्मः सा षडाम्नायगाऽवतु॥84॥

कामादि दोष रहित और कादिहादि दोनों मतों में अनुगत वाञ्छिता, कल्पिता या वाञ्छितकल्पलता मनोरथमयी सिद्धि स्वरूपा है। कादिहादि – दोनों शरीर है जिसके, कुलद्वय में जो विहार करती है और जिसका संप्रदायत्रय ही धर्म है वह षड़ाम्नाय अनुगत देवी हमारी रक्षा करें। (83–84)

सम्प्रदाय यं वक्ष्ये हादिकादिविभूषितम्।
कुलद्वयस्थितिर्यस्य यज्ज्ञानात्साधकः शिवः॥85॥

कादि और हादि विभेद से विभूषित तथा कुल द्वय में स्थिति है जिसका ऐसा सम्प्रदायत्रय (तीन संप्रदाय) के बार में कहता हूँ, जिसके ज्ञान से साधक साक्षत् शिव ही होता है।(85)

कादिहादिविभेदेन द्विधाम्नायार्थसंहतिः।
कादिः काली महाशक्तिर्हादिस्त्रिपुरसुन्दरी॥86॥

दो प्रकार से आम्नायार्थ का संघात होता है कादि साक्षात् महाशक्ति काली है और हादि साक्षात्महात्रिपुरसुन्दरी है।(86)

कादित्वाद्ब्रह्मरूपत्वं हादित्वाच्छिवरूपता।
चिच्छक्तिः कादिरूपा हादिश्चिज्ज्ञानगोचरा॥87॥
चिदानन्दरूपाख्यं शिवशक्त्यात्मकं महः।
कादिस्तु कामराजोऽस्ति हादिर्लोपामुद्रेरिता॥88॥

(लोपापुरेरिता, लोपामुदेरिता इति च पाठभेदः कैश्चित्कल्प्यते)।

एवं हि शास्त्रसम्मत्या पारिभाषिकमीरितम्।
सादिश्च तारिणी प्रोक्ता तृतीयस्तत्त्वदर्शिभिः॥89॥

कादि ब्रह्मरूपा है, हादि शिवरूपा है तथा कादि चिच्छक्ति रूपा है और हादि चिज्ज्ञानविषया है। चिदानन्दस्वरूपा नामक शिवशक्ति–उभयात्मक कादि

पूज्यनीया है जो की कामराजकूट है। हादि कूट को लोपामुद्रा द्वारा कथित समझें। अथवा यूं भी कह सकते हैं – कादि होने से ब्रह्मरूपता, हादि होने से शिवरूपता, कादि चिच्छक्तिरूप है, हादि चिज्ज्ञानगोचरा है। कादि पूज्य चिदानन्दस्वरूपाख्य और शिवशक्त्यात्मक है। हादि लोपामुद्रा से पूर्वकाल में कहा गया था। इस प्रकार शास्त्रों के सम्मति से पारिभाषिक कुछ बातें बतायी गई है।(87-89)

साधनाया उभौ मार्गौ प्रसिद्धावागमोदितौ।
प्रवृत्तिमार्गः प्रथमो द्वितीयश्च निवृत्तिगः।।90।।
प्रथमः संसृतौ रागं कारयत्येष निश्चितम्।
द्वितीयः संसृतेस्त्यागं भावयत्यत्र निश्चितम्।।91।।

आगमों में कहे गये दो मार्ग प्रसिद्ध है – प्रवृत्ति और निवृत्ति। प्रवृत्ति मार्ग में संसार के विषयों के प्रति अनुराग होता है – यह सुनिश्चित है। दूसरा निवृत्ति मार्ग संसार का त्याग पूर्वक मोक्ष की ओर ले जाता है – यह सुनिश्चित है।(90-91)

अधोमुखानि यानीह चक्राणि गदितानि वै।
तानि चैश्वर्यदान्याहुरेतच्छास्त्रविचक्षणाः।।92।।

जितने अधोमुख चक्र कहे गये हैं यहाँ वे सब ऐश्वर्यप्रदायक हैं-ऐसे शास्त्रों के ज्ञाता विद्वान् लोग कहते हैं, अतः यह प्रवृत्तिपरायण संसारमार्गियों के द्वारा ध्यातव्य है।(92)

यानि शारीरचक्रेषु प्रोक्तान्यूर्धमुखानि वै।
तानि मोक्षप्रदान्याहुर्योगशास्त्रविशारदाः।।93।।

जितने ऊर्ध्वमुखी चक्र इस शरीर में कहे गये हैं वे मोक्षप्रदायक हैं – योगशास्त्र के विद्वान् लोग ऐसा कहते हैं। अतः निवृत्तिपरायण मोक्षमार्गी साधकों द्वारा ध्यातव्य है।(93)

विनैश्वर्यं न मोक्षः स्यात्तस्माद्ध्येयं सुशोभिते।
अतो योगे द्विधैवाहुश्चक्राणां चिन्तनं शुभम्।।94।।

लेकिन ऐश्वर्य के विना मोक्ष नहीं हो सकता इसलियें दोनों (अधोमुखी और ऊर्ध्वमुखी) प्रकार के चक्रों का ध्यान करना चाहिये। हे सुशोभिते! इसलिये योग शास्त्रों में दोनों प्रकार के चक्रों का चिन्तन को शुभ कहा है।(94)

अधोमुखानां चक्राणां चिन्तनं ये प्रकुर्वते।
लक्ष्मीं वै ते प्राप्नुवन्ति केवलां लोकसौख्यदाम्।।95।।

केवल अधोमुख चक्रों का चिन्तन (ध्यान) जो करते है उन्हें केवल लौकिक सुख

देनेवाली लक्ष्मी प्राप्त होगी।(95)

ऊर्ध्ववक्त्रस्थचक्राणां चिन्तनं ये प्रकुर्वते।
सलक्ष्मीकं तु मोक्षं ते प्राप्नुवन्ति क्रमादिह॥96॥

केवल ऊर्ध्वमुख चक्रों का चिन्तन करते हैं जो उन्हें क्रमशः पहले लक्ष्मी प्राप्ति होगी पश्चात् मोक्ष प्राप्त होगा।(96)

परं लक्ष्मीप्रभावेन यदि मार्गे मतिभ्रमः।
भवेत्तदा तत्पतनं मोक्षलाभो न जायते॥97॥

लेकिन प्राप्त लक्ष्मी के प्रभाव से यदि अपने मार्ग के विषय में मतिभ्रम हो जाये तो उसका (साधक का) तब पतन अवश्य होगा और मोक्षलाभ नहीं होगा।(97)

तस्मादैश्वर्यसम्प्राप्त्यै मोक्षलाभाय चात्मनः।
द्विधैव तेषां चक्राणां चिन्तनं श्रेयसे भवेत्॥98॥

इसलिये ऐश्वर्य प्राप्ति और मोक्षलाभ दोनों स्वयं को प्राप्त हो ऐसी यदि अपेक्षा है तो अपने कल्याण के लिये उन दोनों प्रकार के चक्रों का (अधोमुख और ऊर्ध्वमुख) चिन्तन करें। (98)

निवृत्तियोगमार्गे तु सदैवोर्ध्वमुखानि च।
ऊर्ध्वाधश्चिन्तयेत्प्राज्ञो भोगमोक्षाभिलाषुकः॥99॥

किन्तु योगमार्ग में निवृत्तिपरायण है जो वह सदैव ऊर्ध्वमुख चक्रों का ही चिन्तन करें। भोग-मोक्ष दोनों को चाहने वाले साधक प्राज्ञ दोनों (ऊर्ध्व और अधः) आकार के चक्रों का चिन्तन करें। (तात्पर्य से यह भी ग्रहण कर लेना चाहिये कि - जिसको केवल भोग चाहिये मोक्ष नहीं वह केवल अधः चक्रों का चिन्तन करें)।(99)

प्रवृत्तिमार्गः संसारे निवृत्तिः परमात्मनि।
प्रवृत्तिमार्गचिन्तायामधोवक्त्राणि चिन्तयेत्॥100॥

स्पष्ट करते हुये कहते हैं कि-प्रवृत्तिमार्ग संसार में जाता है और निवृत्ति मार्ग परमात्मा में पहुँचाता है। इसलिये जिसे केवल संसार चाहिये वह प्रवृत्तिमार्ग में रहकर अधोमुखी चक्रों का ही चिन्तन करें।(100)

क्रमेण कूटानीमानि दद्याद् बीजानि पार्वति।
अधोनाडीक्रमं चैव शृणु तत्तदभिख्यया॥101॥

हे पार्वति! क्रमशः इन कूटों को बीज से जोड़ना है, साथ ही नाड़ी क्रम को भी। अतः सुनो उन-उन नामों से ही।(101)

इडा च पिंगला चैव सुषुम्ना तदनन्तरम्।
गान्धारी हस्तिजिह्वा च तत्पश्चात्स्यादलम्बुषा।।102।।
ततो विश्वोदरा ज्ञेया सरस्वत्यप्यनन्तरम्।
कुहूश्च वारणा चैव रण्डा पूषाऽत्र शंखिनी।।103।।
चित्रा पयस्विनी चापि मधुमत्यथ चेतना।
गालिनी धमनी चैव कपिला तत्परा भवेत्।।104।।
विश्वदूता धारिणी च घोरिणी लम्बिका तथा।
कैवल्या सर्वशेषे स्यात्क्रमनाड्य उदीरिताः।।105।।

इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, उसके बाद अलम्बुसा, फिर जानों विश्वोदरा, तदन्तर सरस्वती, कुहू, वारणा, रण्डा, पूषा, शंखिनी, चित्रा, यशस्विनी, मधुमती, चेतना, गालिनी, धमनी, तत्पश्चात् कपिला, विश्वदूता, धारिणी, धोरिणी, घोरिणी, लम्बिका, सर्वशेषरुपेण कैवल्या – कुल 25, यह नाड़ी क्रम कह दिया गया है।(102–105)

प्रधानाः प्राणवाहिन्यो भूयस्तत्र दश स्मृताः।
इडा च पिंगला चैव सुषुम्ना च तृतीयका।।106।।
गान्धारी हस्तिजिह्वा च पूषा चैव यशस्विनी।
अलम्बुषा कुहूस्तत्र शंखिनी च दश स्मृताः।।107।।

लेकिन प्राणवाहिनी प्रधान नाड़ियाँ केवल 10 ही हैं – इड़ा, पिंगला और तीसरा है सुषुम्ना, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलम्बुसा, कुहू और शांखिनी।(106–107)

5. अथ ब्रह्मनाडीनिरूपणम् = अब ब्रह्मनाडी का निरूपण करते हैं –

मूलाधारत्रिकोणस्था सुषुम्ना द्वादशांगुला।
मूलार्धच्छिन्नवंशा या ब्रह्मनाडीति सा स्मृता।।108।।

जो सुषुम्ना नाड़ी मूलाधार का त्रिकोण में स्थित स्वयम्भूलिंग से निकलकर सहस्रदलपद्म की कर्णिका पर्यन्त जाकर तत्रस्थ परमशिव में लीन होती है, उसके नीचे से 12 अंगुल तक की लम्बाई को ही ब्रह्मनाड़ी कहते हैं।(108)

6. नाडीनां स्थाननिरूपणम् = नाड़ियों के स्थान का निरूपण –

इडा च पिंगला चैव तस्याः पार्श्वद्वये गते।
विलम्बिन्यामनुस्यूते नासिकान्तमुपागते।।109।।

इडायां हेमरूपेण वायुर्वामेन गच्छति।
पिंगलायान्तु सूर्शत्मा याति दक्षिणपार्श्वतः।।110।।

उस सुषुम्ना नाड़ी के दोनों तरफ (दायें और बायें) पिंगला और इड़ा क्रमशः स्थित हैं। वे दोनों नासिकान्त में पहुंचकर विलम्बिनी नाड़ी में अनुस्यूत होते हैं। बायें भाग से ही इड़ा नाड़ी में स्वर्ण जैसे आभा युक्त वायु चलता है। दक्षिण (दहिने) भाग से पिंगला में सूर्य जैसी गरम हवा चलती है।(109-110)

विलम्बिनीति या नाडी व्यक्ता नाभौ प्रतिष्ठिता।
तत्र नाड्यः समुत्पन्नास्तिर्यगूर्ध्वा अधोमुखाः।।111।।
तन्नाभिचक्रमित्युक्तं कुक्कुटाण्ड इव स्थितम्।
गान्धारी हस्तिजिह्वा च तस्मान्नेत्रद्वयं गते।।112।।

नाभि में प्रतिष्ठित व्यक्त नाड़ी है विलम्बिनी। नाभि में उत्पन्न नाड़ियाँ ही नीचे, ऊपर और टेढ़ा-मेढ़ा चलते हुए पूरे शरीर में व्याप्त होते हैं। इसलिये उसको नाभिचक्र कहते हैं। कुक्कुटाण्ड के समान वह स्थित है। उसी से निकलकर गान्धरी और हस्तिजिह्वा दोनों नेत्रों तक जाते हैं।(111-112)

पूषा चालम्बुषा चैव श्रोत्रद्वयमुपागते।
शूरानाममहानाडी तस्माद् भ्रूमध्यमाश्रिता।।113।।

पूषा ओर अम्बुसा - ये दोनों कानों तक जाते हैं तथा नाभि से ही निकलकर शूरा नाम की महानाड़ी भ्रूमध्य में जाकर आश्रित होती है।(113)

विश्वोदरी तु या नाडी सा भुंक्तेऽन्नं चतुर्विधम्।
सरस्वती तु या नाडी सा जिह्वान्तं प्रसर्पति।।114।।

विश्वोदरी नाम की जो नाड़ी है वह चारों प्रकार के अन्न को खाती है यानि पचाती है। सरस्वती नाम की जो नाड़ी है वह नाभि से जिह्वा पर्यन्त जाती है।(114)

एकाह्वया तु या नाडी पीत्वा च सलिलं क्षणात्।
क्षुधामुत्पादयेद् घ्राणे श्लेष्माणं संचिनुते सदा।।115।।

एकाह्वया नाम की जो नाड़ी है वह क्षणभर में पानी को पी जाती है यानि पचाति है तथा भूख-प्यास उत्पन्न करती है एवं नाक में कफ का संचय करती है। (115)

नाभेरधोगतास्तिस्रो नाडिकाः स्युरधोमुखाः।
मलं त्यजेत्कुहूर्नाडी मूत्रं मुंचति वारुणी।।116।।

नाभी से नीचे की ओर जानीवाली 3 प्रमुख नाड़ियाँ है, वे अधोमुखी हैं। उनमें से कुहू नाड़ी मल त्याग करती है और वारुणी नाड़ी मूत्र को त्यागती है। (116)

चित्राख्या सीवनी नाडी शुक्रमोचनकारिणी।
नाडीचक्रमिति प्रोक्तं बिन्दुरूपमतः श्रृणु।।117।।

चित्रा नाम की सीवनी नाड़ी शुक्र (रज या वीर्य) को बाहर फेंकती है। यह नाड़ीयों का चक्र (यानि व्यूह) मेरे द्वारा कहा गया। अब बिन्दु के बारे में सुनो।(117)

नाडीभेदे मरुद्भेदे मरुतां स्थानमेव च।
चेष्टाश्च विविधास्तेषां ज्ञात्वैव द्विजसत्तम।।118।।
शुद्धोपायेऽस्ति नाडीनां पूर्वोक्तज्ञानसंयुतः।
विविक्तदेशमासाद्य सर्वसम्बन्धवर्जितः।।119।।

हे द्विज सत्तम! नाड़ीभेद, वायुभेद, वायु के स्थान और इनकी चेष्टाओं को जान करके ही विविक्त (एकान्त) देश में बैठकर सकलसम्बन्धों (विषय सम्बन्धों) से रहित होकर साधता करनी है। इस केलिये दोष रहित उपाय का निश्चय करने में पूर्वोक्त नाड़ियों का ज्ञान से युक्त होना अनिवार्य है।(118-119)

कृत्वा तु बैन्दवे स्थाने घ्राणरन्ध्रे निरोधयेत्।
द्विसप्ततिसहस्राणि नाडीद्वाराणि पंजरे।।120।।

पूर्वोक्त प्रकार के स्थानादि में बैठकर बिन्दुस्थान में मन को स्थिरकर 72000 नाड़ियों का पिंजरा रूपी इस शरीर में नाड़ी के द्वारों को बन्द करने के लिये दोनों नासिका छिद्रों से रेचक करके कुम्भक लगाकर सकल द्वारों को बन्द करें।(120)

7. अथ नाडीद्वारस्थानयोः सह योगनिरूपणम् = अब नाड़ी के द्वार और स्थान सहित योग का निरूपण -

सुषुम्ना शाम्भवी शक्तिः शेषास्त्वन्ये निरर्थकाः।
हृल्लेखा परमानन्दा तालुमूले व्यवस्थिता।।121।।

सुषुम्ना ही शाम्भवी शक्ति है बाकी सब निरर्थक हैं। हृल्लेखा परमानन्दरूपा वह सुषुम्ना तालु के मूल में व्यवस्थित रहती है।(121)

सर्वमार्गेण तिर्यक्स्थां सुषिरां च विचिन्तयेत्।
अधश्चोर्ध्वं कुण्डलिन्याः सर्वद्वारं निरोधयेत्।।122।।

सब मार्गों के द्वारा तिर्यक्स्थित छिद्र का चिन्तन करें। नीचे और ऊपर के सभी द्वारों (नौ=9) को बन्द करें जो कुण्डलिनी के बाह्य प्रवृत्ति का कारण है।(122)

वायुना सह जीवोऽयं ज्ञानमोक्षमवाप्नुयात्।
ज्ञात्वासुषुम्नां तद्भेदं कृत्वा वायुं च मध्यगम्।।123।।
अत ऊर्ध्वं निरोधे तु मध्यमां मध्यमध्यगाम्।
उच्चारयेत्परां शक्तिं ब्रह्मरन्ध्रनिवासिनीम्।।124।।

वायु के साथ यह जीव ज्ञान पूर्वक मोक्ष को प्राप्त करता है। यह तब संभव है जब सुषुम्ना को जानकर उसका भेदन करके उसके बीच में विद्यमान वायु को ऊर्ध्वगति प्रदान कर (ऊर्ध्व की ओर ही रोकें) मध्यमध्य में सुषुम्ना में रहनेवाली वायु में गति उत्पन्न होने पर ब्रह्मरन्ध्र निवासिनी पराशक्ति (के बीज) का उच्चारण करें। (123-124)

आधारपश्चिमे लिंगे कपाटं तत्र विद्यते।
तस्योद्घाटनमात्रेण मुच्यते भवबन्धनात्।।125।।

मूलाधार का पश्चिमभाग में इस कुण्डलिनी का कपाट रुपी लिंग (द्वार) विद्यमान है, उसको खोलने मात्र से भवबन्धन से यह साधक मुक्त होता है।(125)

सुषुम्नामध्यदेशे तु गान्धारी वामचक्षुषि।
दक्षिणे हस्तिजिह्वा च पूषा कर्ण च दक्षिणे।।126।।
यशस्विनी वामकर्णे चानने चाप्यलम्बुषा।
कुहूश्च लिंगदेशे तु मूलस्थाने च शंखिनी।।127।।

सुषुम्ना मध्य देश में रहती है, जब की गान्धारी बायीं आँख में, हस्तिजिह्वा दाहिने आँख में, पूषा दाहिने कान में, यशस्विनी बायें कान में, मुख में अलम्बुसा, लिंगदेश में कुहू और मूलस्थान में शङ्खिनी नाड़ी व्याप्त है।(126-127)

कुण्डलिन्याः समुद्भूता गायत्री प्राणधारिणी।
प्राणविद्या महाविद्या यस्तां वेत्ति स वेदवित्।।128।।

कुण्डलिनी से उत्पन्न हुई सकल इन्द्रिय रूपी गयों को रक्षाकरनेवाली (गयान् त्रायते या सा) गायत्री तथा प्राणों को धारणकरने वाली जो महाविद्या = प्राणविद्या है, उसे जो जानता है वह वेदों का वेत्ता है।(128)

अधोमुखानि चक्राणि मिश्रणाच्चक्रयोर्द्वयोः।
भवन्ति तेषां नामानि व्यवस्थां च प्रदर्शये।।129।।

दो चक्रों के मिश्रण से जो अधोमुख चक्र होते हैं उनके नाम और व्यवस्था को दर्शाता हूँ।(129)

ब भ ल उ ऊ ऋ ॠ लृ ल ए ऐ च सुवर्णकाः।

अधोमुखस्याधिष्ठाने सम्प्रोक्ताश्चक्रवेदिभिः ।।130।।

अधोमुख स्वाधिष्ठान में ब, भ, ल, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, लॄ, ए और ऐ – ये सुन्दर वर्ण होते हैं – ऐसे चक्रवेत्ताओं ने कहा है।(130)

स्वाधिष्ठानगता अत्र त्रयो वर्णाः समीरिताः।

विशुद्धस्याष्टवर्णाः स्युरेवमेकादश स्थिताः।।131।।

यहाँ 3 वर्ण स्वाधिष्ठानचक्र के कहे गये है और विशुद्धचक्र के 8 वर्ण, कुल मिलाकर 11 वर्ण कहे गये हैं।(131)

पंचवर्णा अत्र लुप्ता विशुद्धस्य भवन्ति हि।

षडेव केवलं ध्येया ईशाने मण्डले तथा।।132।।

इन 11 में से विशुद्ध के पाँच वर्णों को छोड़कर केवल 6 वर्ण (स्वाधिष्ठान के 3 और विशुद्ध के 3) ही ईशान कोण में ध्येय हैं ।(132)

म य र त ण ढ ड फाः पनौ चैव सुवर्णकाः।

अधोमुखमणिपूरे प्रोक्तास्तत्तत्त्वदर्शिभिः ॥133।।

तत्त्वदर्शियों द्वारा अधोमुख मणिपूरचक्र में म, य, र, त, ण, ढ, ड, प, फ और न – ये 10 वर्ण कहे गये हैं।(133)

स्वाधिष्ठानस्य वर्णाः स्युर्मणिपूरगतास्त्रयः।

सप्तवर्णाः समाख्याता एवं दश भवन्ति हि।।134।।

स्वाधिष्ठान के 3 वर्ण और मणिपूर के 7 वर्ण, कुल मिलाकर 10 वर्ण कहे गये हैं।(134)

एतेषु द्वौ तनौ लुप्तौ मणिपूरस्य वर्णितौ।

एवमष्टौ चिन्तनीया वर्णाश्चाग्नेयमण्डले।।135।।

इनमें से मणिपूर के दो वर्ण त और न को छोड़कर केवल 8 वर्णों का चिन्तन आग्नेयकोण में करना है।(135)

त थ द ध न क ख ग घ औ चैव टठौ तथा ।

अधोमुखेऽनाहताख्ये वर्णाः प्रोक्ता महर्षिभिः।।136।।

महर्षियों ने अधोमुखी अनाहत चक्र में कहा है कि –त, थ, द, ध, न, क, ख, ग, घ, ङ, ट और ठ –ये 12 वर्णं है।(136)

पंचार्णा मणिपूरस्य सप्तानाहतगास्तथा।

संयुज्य द्वादश प्रोक्तास्तेष्वेकोऽस्ति विलुप्तकः।।137।।

स चानाहतगो धः स्यादेवमेकादशार्णकाः।
चक्रे सदा चिन्तनीया नैर्ऋत्येऽत्र भवन्ति हि।।138।।

5 वर्ण मणिपूर के और 7 वर्ण अनाहत के हैं, कुल मिलाकर 12 वर्ण कहे गये हैं। उनमें से एक वर्ण का लोप कहा गया है (यानि एक को छोड़कर) और वह भी अनाहत का धकार को छोड़कर शेष वर्णों का ध्यान करना है (11 वर्णों का ही ध्यान करना है) नैर्ऋत्य कोण में जहाँ यह चक्र विद्यमान है।(137-138)

अ आ इ ई उ ओ औ अं अः घ ङ च छ जास्तथा।
झ ञाश्चैवेति विज्ञेया अधोमुख विशुद्धके ।।139।।
एतेष्वनाहतस्योक्ता वर्णाः सप्त तथा नव।
विशुद्धस्य तयोर्योगात्षोडशार्णा भवन्ति हि।। 140।।
उभयोरत्रैक एक ई ञौ स्यातामदर्शितौ।
चतुर्दशैवात्र चिन्त्या वर्णाः वायव्यकोणके।।141।।

अ, आ, इ, ई, उ, ओ, औ, अं, अः घ, ङ, च, छ, ज, झ तथा ञ - ये 16 वर्ण अधोमुख विशुद्ध में जानना चाहिये। इनमें से अनाहत के 7 वर्ण हैं और विशुद्ध के 9 वर्ण, दोनों मिलाकर केवल 16 वर्ण हुये। इनमें से दोनों (अनाहत और विशुद्ध) के एक-एक वर्ण क्रमशः ई और ञ का लोप करें (यानि इन दोनों को छोड़कर) शेष 14 वर्णों का ही वायव्य कोण में ध्यान करना है।(139-141)

अ छ क द ड य व लृ वर्णाः सन्त्येषु सुस्थिराः।
ये सुषुम्नास्पर्शवन्त ऊर्ध्वाधोमध्यवर्तिनः ।।142।।

इन सभी चक्रों में अ, छ, क, द, य, व और लृ - ये वर्ण स्थिर हैं। ये सुषुम्ना से सीधे सम्बद्ध हैं और ऊपर, नीचे तथा मध्य में स्थित हैं।(142)

द्वयोश्चक्रयोर्वर्णाः स्युर्यावत्संख्यान्विता इह।
तेषामर्धा एव चिन्त्या क्रमो ह्येष सुनिश्चितः।।143।।

दो चक्रों के वर्ण जितनी संख्या से युक्त हैं यहाँ उनके आधे का ही चिन्तन करना चाहिये। यह साधना क्रम निश्चय किया गया है।(143)

यथा विशुद्धानाहतयोर्वर्णयोगेऽष्टविंशतिः ।
चतुर्दश तदर्धाः स्युर्वायव्ये मण्डले ततः।।144।।

जिस प्रकार विशुद्ध और अनाहत के वर्णों का योग (16+12) 28 है, उसके आधा यानि 14 वर्ण ही वायव्यकोण में ध्यातव्य है।(144)

एतेनैव क्रमेणात्र चक्रे वन्येष्वपि स्थिताः।
वर्णाश्चिन्तनमायान्ति तत्र कार्यो न संशयः।।145।।

इसी क्रम से अन्य चक्रों में भी ग्रहण करें और उतने ही वर्णों का चिन्तन करें, इस विषय में संशय न करें।(145)

बाह्योदीच्याः पश्चिमायास्तथाऽन्तर्यागो वायव्यस्य मध्ये प्रदिष्टः।
बाह्यस्तस्या दक्षिणायास्तथान्तर्यागो नैर्ऋत्यस्य मध्ये प्रदिष्टः।।146।।

बाह्य याग उत्तर और पश्चिम के बीच में तथा अन्तर्याग वायव्य कोण के बीच में करने के लिये उपदिष्ट है। बहिर्याग दक्षिण और पश्चिम के बीच में तथा नैर्ऋत्य कोण में अन्तर्याग करने का विधान है।(146)

बाह्यो यागो दक्षिणायाश्च प्राच्या अन्तर्यागो वह्निकोणे प्रदिष्टः।
बाह्याः प्रच्या उत्तरस्यास्तथाऽन्तर्यागः प्रोक्तः शम्भुकोणे सुधीभिः।।147।।

इसी प्रकार बहिर्याग पूर्व और दक्षिण के बीच तथा अन्तर्याग अग्निकोण के बीच में करने के लिये उपदिष्ट है एवं बहिर्याग पूर्व और उत्तर के बीच में तथा अन्तर्याग ईशान कोण में करने उपदिष्ट है।(147)

सम्प्रदायप्रभेदाद्वा गुरुनिर्दिष्टमार्गतः।
लुप्तवर्णेषु भेदोऽपि यत्र तत्र प्रजायते।।148।।

सम्प्रदाय के भेद से और गुरुनिर्दिष्ट मार्ग विशेष के कारण लुप्तवर्णो यानि त्यागे जाने वाले वर्णो के विषय में जहाँ तहाँ भेद उत्पन्न हुये दीखते हैं।(148)

त्रिषष्टिश्चतुः शष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः।
प्राकृते संस्कृते वापि स्वयं प्रोक्ताः स्वयम्भुवा।।149।।
स्वरा विंशतिरेकश्च स्पर्शानां पंचविंशतिः।
यादयश्च स्मृता अष्टौ चत्वारश्च यमाः स्मृताः।150।।
अनुस्वारो विसर्गश्च क ़ पौ चापि पराश्रयौ।
दुःस्पृष्टश्चेति विज्ञेयो लृकारः प्लुत एव च।।151।।
चतुर्णामेव चक्राणामैक्याद्यल्ललनाभिधम्।
चक्रं सम्पद्यते तस्य चतुःषष्टिदलानि वै।152।।
भवन्ति मातृकास्तत्र तावत्यः समुपासिताः।
ताराया मातृका एव वर्णरूपेण संस्थिताः।।153।।
त्रिषष्टिवर्णा विख्याताः सन्ति तत्र महौजसः।
महाबिन्दुस्तथा पूर्णश्चतुःषष्ट्यंकगो मतः।।154।।

63 या 64 वर्ण शम्भुमत में स्वीकृत है। कैसे – प्राकृत से निपतित और संस्कृत प्रक्रिया से सिद्ध जो स्वयम्भू के द्वारा स्वयं कहा गया है वर्ण ऐसे हैं – (स्वर 9, कादि मावसान व्यंजन 25, अन्तःस्थ 4, ऊ मा 4, अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय – जो पराश्रित होकर उच्चारित हैं तथा दुःस्पृष्ट – 'ळ' और 'ह्ळ' (ड को ळ और ढ को ह्ळ उच्चारण होता है) तथा स्वरों के दीर्घ 4 सहित प्लुत 9 और लर्किार = 64। 'ललना' का सम्पादन 64 दलों से होता है। वहाँ मातृकायें भी उतनी ही है, अतः उतनी की ही उपासना की जाती है। तारा (प्रणव) के ही मातृकायें वर्णरूपेण संस्थित हैं। इसलिये महान् ओजस्वी 63 वर्ण विख्यात हैं। महाबिन्दु (अनुस्वार) को मिलाकर 64 संख्या की पूर्ति होती है।(149-154)

सर्वस्याः साधनाः समुचितविधये सन्ततं देहगानाम्,
चक्राणां चिन्तनं वै प्रमुखमुपदिशन्त्यागमस्ते वपीह।
चक्राण्यैश्वर्यसिद्धिं प्रवदति तरसाऽधोमुखान्येव तस्माद्,
बाह्यान्तर्यागरूपः क्रम इह गदितः सोऽपि सम्यग्विचिन्त्यः।।155।।

सभी साधनाओं के समुचित विधि के लिये आगमशास्त्र मुख्यरूप से देहगत चक्रों का निरन्तर चिन्तन करने का उपदेश दिया है। उसमें भी अधोमुख चक्र ही शीघ्र ऐश्वर्य सिद्धि प्रदान करते हैं इसलिये बहिर्याग और अन्तर्याग का क्रम यहाँ कहा गया है वह भी सम्यग् विचारणीय है। (155)

8. प्रणवदीक्षाक्रमः(सर्वसाधकेभ्यः)=सभी साधकों केलिये प्रणवदीक्षा का क्रम

यथा स्वल्पसुखे मग्नो न प्राप्नोति महत्सुखम्।
तथा सिद्धौ निमग्नस्य मुक्तिर्दूरे प्रवर्तते।।156।।

जिस प्रकार क्षुद्रसुख में लिप्त पुरुष को बड़ा सुख प्राप्त नहीं हो सकता उसी प्रकार सिद्धियों में लिप्त साधक के प्रति मुक्ति दूर हो जाती है।(156)

तस्मात्सिद्धीस्तृणीकृत्य भेजेच्छ्रीपरमेश्वरीम्।
अल्पं तपः क्षणान्नश्येन्मध्यमं चापि गर्वतः।।157।।

इसलिये सिद्धियों को सूखी घास के बराबर समझकर त्याग के परमैश्वर्यभूता श्री यानि मुक्ति के साधन का ही सेवन करें। थोड़ा सा तप भी मध्यमप्रमाण (के पापों को) क्षणभर में गर्वपूर्वक यानि निश्चित रूप से नष्ट करता है।(157)

दक्षिणोपासकः काल ऊर्ध्वः सायुज्यमाप्नुयात्।
देवतायास्तथा पूर्वं सारूप्यं लभते परम्।।158।।

दक्षिणाम्नाय के उपासक महाकाल के साथ सायुज्य को प्राप्त करता है। ऊर्ध्वाम्नाय का उपासक तद्देवता के साथ सायुज्य को प्राप्त करेगा। पूर्वाम्नाय का साधव सारूप्य को प्राप्त करेगा।(158)

सामीप्यं चोत्तरो लोके पश्चिमेऽवैदिके फलम्।
लाभस्त्यागे चोपकारो ह्यधोमार्गोऽप्युदर्कयुक्।।159।।

उत्तराम्नाय का साधक उस देवता के लोक में सामीप्य मुक्ति को प्राप्त करेगा। पश्चिमाम्नाय के उपासक अवैदिक (यानि लौकिक) सकल फलों को प्राप्त करेगा। लाभ का त्यागपूर्वक अधराम्नाय के साधक को भविष्य में विशेष उपहार प्राप्त होगा।(159)

एकाम्नायं च यो वेत्ति स मुक्तो नात्र संशयः।
किं पुनश्चतुराम्नायवेत्ता साक्षाच्छिवो भवेत् ।।160।।

एकाम्नाय को जो जानता है वह मुक्त हो जाता है, इसमें संशय ही नहीं तो चारों आम्नायों को जाननेवाले के बारे क्या कहा जाय, वह तो साक्षात्शिव ही है।(160)

चतुराम्नायविज्ञानादूर्ध्वाम्नायः परः प्रिये।
तस्मात्तदेव जानीयाद्यदीच्छेत्सिद्धिमात्मनः।।161।।

चाराम्नायों का विज्ञान की अपेक्षा ऊर्ध्वाम्नाय श्रेष्ठ है। हे प्रिय! इसलिये यदि स्वात्मसिद्धि चाहते हों तो उसे अवश्य जानना चाहिये।(161)

सुन्दरी तारिणी काली क्रमदीक्षाभिगामिनी।
मपूर्णो महेशानि क्रमाच्छम्भुर्भविष्यति।।162।।

सुन्दरी, काली, तारिणी – ये क्रम दीक्षा के अभिमानी हैं। हे महेशानी! जो क्रमदीक्षा से पूर्णतया युक्त है वह क्रमदीक्षा के कारण शम्भु हो जाता है।(162)

(1) काद्याम्नायक्रमः –

सुन्दरी हादिविद्या च सादिविद्या च तारिणी।
कादिविद्या गुह्यकाली मतत्रयविभिन्नगा।।163।।

सुन्दरी हादिविधा है, सादि विद्या तारिणी है, कादिविद्या गुह्यकाली है – इस प्रकार मत त्रय के अनुसार विभिन्न मार्ग हैं यानि तीन भिन्न मार्ग हैं।(163)

वाचिको लक्षगुणितः उपांशुः परिकीर्तितः।
उपांशोः कोटिगुणितो मानसस्तु प्रशस्यते।।164।।

वाचिक जप की संख्या से एक लाख गुणा ज्यादा श्रेष्ठ उपांशु जप कहा गया है। और उपांशु जप की अपेक्षा से एक करोड़ गुणा श्रेष्ठ कह कर मानस जप की प्रशंसा की गई है।(164)

(2) विद्याक्रमः -

सर्वाम्नायप्रभेदेन षड्धा विद्याक्रमः स्मृतः।
पूर्वाम्नाये चोन्मनी च पूर्णेशी भुवनेश्वरी।।165।।
द्वीपं शाम्भवकं दिव्यं लिंगमूले व्यवस्थितम्।
आद्या श्यामा दक्षिणा च दक्षिणाम्नायवर्त्मनि।।166।।
संवर्तशाम्भवं दिव्यं मणिपूरे व्यवस्थितम्।
पश्चिमे कुब्जिका वज्रकुब्जिकाऽघोरकुब्जिका।।167।।
सर्वाधिकारविद्याख्यं शाम्भवं चतुरन्वयम्।
उपमार्गे महापूर्वा काली लक्ष्मीः सरस्वती।।168।।
चामुण्डा च महाविद्येश्वराख्यं शाम्भवं हृदि।
उत्तरे सिद्धिलक्ष्मीश्च महासिद्धिकरालिका।।169।।
कामकला गुह्यकाली हंसशाम्भवकण्ठजम्।
ऊर्ध्वे बाला पंचदशी षोडशी परशाम्भवम्।।170।।

समस्त आम्नायों का प्रभेद के कारण 6 प्रकार के विद्याक्रम उपदिष्ट है। पूर्वाम्नाय में उन्मनी, पूर्वेशी, भुवनेश्वरी के साथ लिंगमूल यानि मूलाधार में दिव्य द्वीप शाम्भवक व्यवस्थित हैं। दक्षिणाम्नाय में आद्या, श्यामा, दक्षिणा के साथ मणिपूर में दिव्य संवर्त शाम्भव व्यवस्थित हैं। पश्चिमाम्नाय में कुब्जिका, वज्रकुब्जिका, अघोरकुब्जिका के साथ चतुरन्वयी अर्थात् स्वाधिष्ठान सर्वाधिकार विद्या नाम का शाम्भव हैं। उपाम्नाय में महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती के सहित चामुण्डा के साथ हृदय यानि अनाहत में महाविद्येश्वर नामक शाम्भव विराजमान हैं। उत्तराम्नाय में सिद्धिलक्ष्मी, महासिद्धिकरालिका, कामकला सहित गुह्यकाली के साथ कण्ठ यानि विशुद्ध में हंस शाम्भव विद्यमान हैं। ऊर्ध्वाम्नाय में बाला, पंचदशी, षोड़शी के साथ पर शाम्भव आज्ञा में विराजमान हैं।(165-170)

(3) काद्याम्नायक्रमः -

स्वनाभिमथनाद्देवि स्वकीयरसना पुरा।
ब्रह्माण्डं गर्भतस्तस्या जातं दिव्येन योगिना।।171।।

हे देवी! दिव्य योगी परमशिव के द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति के पूर्वकाल में अपने नाभि का मन्थन (यानि मणिपूर का चिन्तन) करने पर अपना ही रस (यानि शक्ति=माया) की उत्पत्ति हुई। उस शक्ति के गर्भ से ही यह ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ है। (171)

तदारभ्य महेशानि कुब्जादेवीति विश्रुता।
त्रयीविद्या तदा तया जगतः सिद्धये जाता।।172।।

हे महेशानी! इस सृष्टि को आरम्भ करने से वह शक्ति=माया ही कुब्जादेवी नाम से प्रसिद्ध हुई। तब उसमें जगत् की स्थिति के लिये त्रयी विद्या उत्पन्न हुई।(172)

काद्याम्नायक्रमं देवि वक्ष्यामि श्रृणु सुव्रते।
गुह्यकाली च भुवना कुब्जिका वज्रकुब्जिका।।173।।
अघोरकुब्जिका पश्चाच्छाम्भवं चतुरन्वयम्।
सर्वाधिकारं देवेशि लघुपूर्णाभिषेचनम्।।174।।

हे देवी! इन तीन विद्याओं में से कादि आम्नाय का क्रम मैं सुनाता हूँ सुनो। हे सुव्रते!, हे देवेशी! गुह्यकाली, काली, भुवना, कुब्जिका, वज्रकुब्जिका, अघोरकुब्जिका, पश्चात् चतुरन्वय शाम्भव तथा सर्वाधिकार युक्त लघुपूर्णाभिषेक। (173-174)

दशवक्त्रा षोडशार्णा चतुष्पंचाशदोर्युता।
सर्वासां गुह्यकालीनां सा वै मुख्यतमा स्मृता।।175।।

दशवक्त्रा, षोडशार्णा, चतु:पंचाशद्वर्णा - इन सभी गुह्यकालियों में से वही सर्वोत्तम कहा गया है।(175)

यथा कामकला काली गुह्यकाली यथा द्विज।
यथा छिन्ना तथा तारा वज्रकपालिनी यथा।।176।।
सिद्धिलक्ष्मीस्तथा देवि विशेषो नास्ति कश्चन।
एकैव पूजा विज्ञेया प्रयोगाश्च तथा द्विज।।177।।

हे द्विज! कामकलाकाली, गुह्यकाली, छिन्ना (छिन्नमस्ता), तारा, वज्रकपालिनी और सिद्धलक्ष्मी जिस प्रकार ये देवियाँ हैं उस प्रकार कोई और विशेष नहीं है। हे द्विज! इसलिये एक ही पूजा का विधान करें और प्रयोग भी एक ही प्रकार करें।(176-177)

(4) हाद्याम्नायक्रमः -

हाद्याम्नायक्रमं वक्ष्ये भोगमोक्षप्रदायकम्।
क्षिणा कालिका पश्चान्महोग्रतारिणी ततः।।178 ।।
बाला पंचदशी पश्चात्षोडशी तदनन्तरम्।
षडन्वयं शाम्भवं च रश्मिहीनं च सेचनम्।।179।।
भैरवीयमुदिता कुलपूवा देशिकैर्यदि भवेत्कुलपूर्वा।
सैव शीघ्रफलदा भुवि विद्या दृश्यते पशुजनेष्वपि गोप्या।।180।।

हादि आम्नाय क्रम को कहूँगा जो भोग और मोक्ष देनेवाला है। दक्षिणाकाली, महोग्रतारा, बालापंचदशी, पश्चात् बालाषोडशी, षडन्वय शाम्भव हैं। रश्मि हीन सेवन (यानि रश्मि राहित अभिषेक होता है) यह कुलभैरवी स्वरूप कह दिया गया है। यदि गुरु कुलभैरवी का उपासक हो तो अच्छा क्योंकि इस पृथिवी पर वही शीघ्रफलदेनेवाली विद्या देखी गयी है। इस विद्या को पशुवत् जीवन व्यतीत करनेवालों से छिपाये रखना।(178-180)

(5) हादिपंचक्रमः -

हादिपंचक्रमं वक्ष्ये दक्षिणकालिका तथा।
तारा छिन्ना च बगला महात्रिपुरसुन्दरी।।181।।

हादि पाँच का क्रम बताता हूँ- दक्षिणाकाली, तारा, छिन्ना, बगला और महात्रिपुरसुन्दरी।(181)

(6) हादिनवक्रमः -

परेश्वरशाम्भवं च लघुपूर्णाभिषेचनम्।
अयन्तु भक्तिदो दिव्यः क्रमः सर्वार्थसाधकः।।182।।
हादिनवक्रमं वक्ष्ये चाद्या श्यामा च दक्षिणा।
श्रीमदेकजटा पश्चाच्छ्रीमन्नीलसरस्वती।।183।।
महोग्रतारिणी पश्चाद् बाला पंचदशी तथा।
षोडशीशाम्भवं रश्मिहीनं षडन्वयं स्मृतम्।।184।।
सर्वाधिकारं तत्रैव लघुपूर्णाभिषेचनम्।
अयं मुक्तिप्रदो दिव्यः क्रमः शंकरसाधितः।।185।।

हादि नौ का क्रम कहता हूँ, सुनो। परेश्वरशाम्भव और लघुपूर्णाभिषेक यह क्रम दिव्य है, भक्तिप्रदायक और सर्वार्थसाधक भी है। आद्या, श्यामा, दक्षिणा,

श्रीमदेकजटा, श्रीमन्नीलसरस्वती, महोग्रेतारिणी, बालापंचदशी और षोडशी, रश्मिहीन षडन्वय शाम्भव युक्त है। उसी में लघुपूर्णाभिषेक युक्त सर्वाधिकार होता है। यह क्रम दिव्य है और मुक्ति प्रदायक है जो शंकर से साधित क्रम है।(182–185)

(7) कादिनवक्रमः –

कादिनवक्रमं वक्ष्ये प्रत्यक्षफलदायकम्।
सिद्धिलक्ष्मीः कराली च श्रीमत्कामकलात्मिका।।186।।
उन्मनी चान्नपूर्णा च तथा श्रीभुवनेश्वरी।
कुब्जिका वज्रकुब्जा च श्रीमहाघोरकुब्जिका।।187।।
रश्मिहीनं शाम्भवं च पश्चात्सर्वाधिकारकम्।
लघुपूर्णाभिषेकश्च क्रमः शक्रादिसाधितः।।188।।

कादि नौ का क्रम कहूँगा जो प्रत्यक्षफलदायक है। सिद्धलक्ष्मी, कराली, श्रीमत्कामकला, उन्मनी, अन्नपूर्णा, श्रीभुवनेश्वरी, कुब्जिका, वज्रकुब्जिका, श्रीमहाघोरकुब्जिका, इनके साथ रश्मिहीन शाम्भव हैं। तत्पश्चात् लघुपूर्णाभिषेक युक्त सर्वाधिकार होता है। यह क्रम इन्द्र आदि के द्वारा साधित है।(186–188)

(8) सादिक्रमः –

सादिक्रमः संवरौधिमतं दिव्यं श्रृणु प्रिये।
पन्नगेशी वज्रपूर्णा योगिनी विजयेश्वरी।।189।।
एकजटा च नीला च महानीलसरस्वती।
उग्रतारा महोग्रा च महार्या तारिणी तथा।।190।।
नवात्मशाम्भवं ज्ञेयं ततः पूर्णाभिषेचनम्।
इयन्तु मुक्तिदा विद्या चीनमार्गेण पूजिता।।191।।

हे प्रिये! सादिक्रम को सुनो, जो दिव्य संवरौधिमत है। पन्नगेशी, वज्रपूर्णा, योगिनी, विजयेश्वरी, एकजटा, नीला (नीलसरस्वती), महानीलसरस्वती, उग्रतारा, महोग्रा, महार्या और तारिणी – ये नौ स्वरूप शाम्भव युक्त हैं। इसके बाद पूर्णाभिषेक होता है, यह मुक्ति दायिनी विद्या है। यह चीन मार्ग (अग्निचयन करके साधना करनेवालों के द्वारा स्वीकृत पद्धति) से पूजा की जाती है।(189–191)

(9) महाक्रमः –

महाक्रममिं वक्ष्ये चाद्या श्यामा च दक्षिणा।
एकजटा च नीला च महोग्रा शारदा तथा।।192।।

श्रीबालात्रिपुरा श्रीमद्बालात्रिपुरसुन्दरी ।
सिद्धिलक्ष्मीस्तथा सिद्धिकराली कामकालिका ।।193।।
उन्मनी चान्नपूर्णा च भुवनेशी च कुब्जिका।
वीरकुब्जा तथा वज्रकुब्जिाका परमेश्वरी ।।194।।
पंचदशी षोडशी च श्रीमहाषोडशाक्षरी।
षडन्वयशाम्भवं च महापूर्णाभिषेचनम् ।।195।।
पाशुपतत्रयं चैव महाशोढाख्यन्यासकम्।
अथवा भुवनान्ते च कुब्जिका वज्रकुब्जिका ।।196।।
अघोरकुब्जिकान्ते च शाम्भवं चतुरान्वयम्।
सर्वाधिकारं तत्रैव लघुपूर्णाभिषेचनम् ।।197।।

अब जो महाक्रम नाम से विशेष क्रम है उसे मैं तुम्हें बताऊँगा। आद्या, श्यामा, दक्षिणा, एकजटा, नीला, महोग्रा, शारदा, श्रीबालात्रिपुरा, श्रीमहाबालात्रि पुरसुन्दरी, सिद्धिलक्ष्मी, सिद्धिकराली, कामकला, उन्मनी, अन्नपूर्णा, भुवनेशी, कुब्जिका, वीरकुब्जा, वज्रकुब्जिका, परमेश्वरी, पंचदशी, षोड़शी, महाषोडशाक्षरी – ये सब षडन्वय शाम्भव सहित हैं। तत्पश्चात् महापूर्णाभिषेक, पाशुपतत्रय और महाषोढान्यास होता है। अथवा भुवनेशी के अनन्तर कुब्जिका, वज्रकुब्जिका और अघोरकुब्जिका के अन्त में चतुरन्वय शाम्भव सहित लघुपूर्णाभिषेक युक्त सर्वाधिकार माना गया है।(192–197)

(10) पूर्णक्रमः –

पूर्णक्रममहं वक्ष्ये परब्रह्मस्वरूपकम्।
आद्या श्यामा दक्षिणा च श्रीमदेकजटा तथा ।।198।।
नीलासरस्वती चैव महोग्रा तारिणी तथा।
शारदा बाला त्रिपुरा बालात्रिपुरसुन्दरी ।।199।।
सिद्धिलक्ष्मीः सिद्धिपूर्वा कराली सिद्धिकालिता।
सिद्धिकपालिनी श्रीमद्गुह्या कामकलात्मिका ।।200।।
उन्मनी चान्नपूर्णा च भुवना भुवनेश्वरी।
श्रीमद्भुवनपूर्वा च सुन्दरी सर्वसिद्धिदा ।।201।।
महाकाली महालक्ष्मीर्महापूर्वा सरस्वती।
चामुण्डा कुब्जिकाघोरकुब्जिका वीरकुब्जिका ।।202।।

वज्रपूर्वा कुब्जिका च कुब्जिकाघोरपूर्विका।
पंचदशी षोडशी च गायत्री ब्रह्मरूपिणी।।203।।
श्रीमहाषोडशी पूर्णशाम्भवं च षडन्वयम्।
सर्वाधिकाररूपा च गायत्री च चतुष्पदा।।204।।
पाशुपतत्रयं चैव महापूर्णाभिषेचनम्।
महाषोढाह्वयो न्यासस्ततः सप्तदशाक्षरी।।205।।
साम्राज्यदीक्षा मेधा च केवला मुक्तिदायिनी।
वानप्रस्थाश्रमे पश्चान्महामेधाऽभिधीयते।।206।।

परब्रह्मस्वरूप पूर्ण क्रम को बताता हूँ, सुनो। आद्या, श्यामा, दक्षिणा, श्रीमदेकजटा, नीला, सरस्वती, महोग्रा, तारिणी, शारदा, बालात्रिपुरा, बालात्रिपुरसुन्दरी, सिद्धिलक्ष्मी, सिद्धिकराली, सिद्धिकालिका, सिद्धिकपालिनी, श्रीमहागुह्या, कमला, उन्मनी, अन्नपूर्णा, भुवना, भुवनेश्वरी, श्रीमद्भुवनसुन्दरी, सर्वसिद्धिदा, महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती, चामुण्डा, कुब्जिका, अघोरकुब्जिका, वीरकुब्जिका, वज्रकुब्जिका, घोरकुब्जिका, पंचदशी, षोड़शी, ब्रह्मरूपिणी गायत्री और श्रीमहाषोड़शी – ये सब षडन्वय पूर्णशाम्भव सहित हैं। सर्वाधिकाररूपा चतुष्पदा गायत्री, पाशुपतत्रय, महापूर्णभिषेक और महाषोढान्यास करने का विधि है। तत्पश्चात् सप्तदशाक्षरी, साम्राज्यदीक्षा और मेधादीक्षा जो केवल मुक्तिप्रदायिनी है, यह पूर्णक्रम है। वानप्रस्थाश्रमी साधक हो तो उस केलिये उक्त के पश्चात् महामेधा कहा गया है।(198-206)

महासाम्राज्यदीक्षाया लोके परतरं नहि।
न न्यासपूजने तत्र नियमो नापि विद्यते।।207।।

महासाम्राज्यदीक्षा से बढ़कर इस लोक में कुछ और नहीं, क्योंकि उसमें न तो पूजा है, न कोई नियम ही है।(207)

केवलं धारणान्मुक्तिर्मन्त्रोच्चारणाच्छिवे भवेत्।
एवं संकेतमात्रस्तु कथितं ते मयाऽधुना।।208।।

केवल धारण करने मात्र से मुक्ति होगी। मन्त्रोच्चारण कर देगा तो शिव ही हो जायेगा। इस प्रकार संकेतमात्र मेरे द्वारा कहा गया है।(208)

गुरुवक्त्राम्बुजादेव तत्सर्वं ज्ञायते बुधैः।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गोपनीयं त्वया शिवे।।209।।

बुद्धिमान् साधक उन सब बातों को गुरुमुख से ही जानेगा, इसलिये हे शिवे! सर्व प्रकार से प्रयत्न पूर्वक आपके द्वारा इसकी रक्षा करनी चाहिये।(209)

इयं हिरण्यकशिपूपासिता षोडशाक्षरी।
पूर्वमप्युद्धृता चैव साम्प्रतं च समुद्धृता।।210।।

यह षोडशाक्षरी हिरण्यकशिपु के द्वारा उपासित था। इस प्रकार पूर्व पूर्व में भी इसे ग्रहण किया गया है और अब भी इसे ग्रहण करते हैं।(210)

महाप्रलयकर्तृत्वान्नोपास्येयं नृणां प्रिये।
शतशीर्षायुतकरा दुर्निरीक्ष्यनराकृतिः।।211।।

लेकिन, हे प्रिये! आम आदमी द्वारा इसकी उपासना नहीं करनी चाहिये। क्योंकि यह महाप्रलयकारिणी भी है अर्थात् भौतिकमनुष्यरूप की अहमियत समाप्त हो जाती है और समष्टिरूप का अभिमानी हो जाता है। सौ सिरवाला एवं दस हजार हाथों वाला इत्यादि स्वरूप को प्राप्त करता है, यानि कहने का अभिप्राय है कि वह दुर्निरीक्ष्य नराकृतिवाला हो जाता है। तात्पर्य यह है कि वेदान्तज्ञान के विना असुरता की संभावना है।(211)

9. लघुक्रमः = लघुक्रम का वर्णन -

तत्त्वं परतरं दिव्यं शाक्तानां हि कलौ युगे।
षडाम्नायप्रबोधाय कथयामि लघुक्रमम्।।212।।

इस कलियुग में जो सर्वश्रेष्ठ व दिव्य लघुक्रम साधन तत्त्व है षडाम्नाय का अनुभव के लिये वह मैं अब कहूँगा।(212)

यदि दैववशात्पूर्णक्रमं कश्चिन्न विन्दति।
तदा महाक्रमं कुर्यात्परब्रह्मपदाप्तये।।213।।

यदि दैववशात् पूर्णक्रम किसी को प्राप्त नहीं हुआ हो तब वह ब्रह्मपद प्राप्ति केलिये महाक्रम का अनुष्ठान करें।(213)

कलौ दैववशाद्देवि सुगुरुश्चेन्न लभ्यते।
तदा सूक्ष्मप्रकाराख्यं लघुक्रममथाचरेत्।।214।।

यदि हे देवि! दैववशात्, सुयोग्य गुरु न मिले तो लघुक्रम नाम से कहा गया इस संक्षिप्त प्रकार का ही आचरण करें।(214)

लघुक्रमे गुह्यकाली भवना कुब्जिका तथा।
दक्षिणा कालिका तारा श्रीविद्या परमेश्वरी।।215।।
चामुण्डाया नवार्णं च सर्वदीक्षाप्रदीपनम्।

एकैकमन्त्रसंयुक्तः कुर्यात्कौलाभिषेचनम्।।216।।

लघुक्रम में गुह्यकाली, भुवना, कुब्जिका, दक्षिणकालिका, तारा, श्रीविद्या, परमेश्वरी और सर्वदीक्षा को प्रदीप्त करनेवाली चामुण्डा का नवार्णमन्त्र का प्रयोग करें। एक-एक मन्त्र से संयुक्त होकर कौलाभिषेक करें।(215-216)

स्वगुरुक्रममार्गेण शाम्भवं च समाश्रयेत्।
कदाचन प्रमादान्न कुर्याद्भिन्नक्रमं तथा।।217।।

स्वगुरु द्वारा दर्शित क्रममार्ग से शाम्भव का भी आश्रयण करें। कभी प्रमाद न करें और धैर्यपूर्वक धारण करें।(217)

मन्त्राराधनसक्तस्य प्रथमे वत्सरत्रये।
जायन्ते बहवो विघ्ना नियमस्थस्य नारद।।218।।

क्योंकि मन्त्राराधना में आरूढ़ होने पर प्रथम तीनदिन (कम से कम) बहुत सारे विघ्न उत्पन्न होते हैं। हे नारद! जितने नियम में आप स्थित होंगे उतनी ही परीक्षा होगी।(218)

नोद्वेगं साधको याति कर्मणा मनसा यदि।
तृतीयवत्सरादूर्ध्वं राजानश्च महीभृतः।।219।।
प्रार्थयन्तेऽनुरोधेन गर्विता अपि मानिनः।
प्रसादः क्रियतां नाथ ममोद्धरणकारणम्।।220।

यदि साधक तन से व मन से उद्विग्न नहीं होगा तो तीसरे दिन के बाद (यानि थोड़े ही दिनों में) पृथिवीपति राजा लोग, भले ही माननीय हों, गर्वित हों तो भी अपने गर्वादि को त्यागकर विनम्रता पूर्वक अनुरोध करते हुए कहेंगे - हे नाथ! प्रसन्न होकर मेरे उद्धार का मार्ग प्रशस्त करें।(219-220)

प्रज्वलन्तं च पश्यन्ति तेजसा विभवेन च।
अतस्ते मुनिशार्दूल निष्ठुरं वक्तुमक्षमाः।।221।।

उस साधक का तेज और वैभव (सिद्धियों) से प्रज्वलित जैसा उन्हें दिखाई देता है, इसलिये हे मुनिशार्दूल। वे राजा होते हुए भी निष्ठुर वचन प्रयोग करने (या आज्ञा) देने में असमर्थ होते हैं।(221)

नवमाद्वत्सरादूर्ध्वं स्वयं सिद्ध्यति मन्त्रराट्।
ततो न प्रमदितव्यं सावधानेन वर्तव्यम्।।222।।

नौवें दिन के बाद वह मन्त्रराज स्वयं सिद्ध हो जाता है, तात्पर्य यह है कि शीघ्र ही लक्ष्य प्राप्त होता है। लेकिन प्रमाद नहीं करना चाहिये किन्तु सावधानी बरतनी चाहिये।(222)

सिद्धिं प्रदर्शयन्मानं स्वीकुर्वँश्च पतेदेव।
न कर्तव्योऽत्र संशयः त्यजेत शुष्कपर्णवत्।।223।।

सिद्धियों का प्रदर्शन करने और मान-सम्मान स्वीकारने से पतन निश्चित रूप से होगा। इस में संशय न करें, बल्कि सूखे पत्तों के समान सब कुछ त्याग दें।(223)

विद्यां परां कतिचिदम्बरमम्ब केचिद्-आनन्दमेव कतिचित्कतिचिच्च मायाम्।
त्वां विश्वमाहुरपरे वयमामनामः साक्षादपारकरुणां गुरुमूर्तिमेव।।224।।

हे अम्ब! कुछ लोग आप परा विद्या को अम्बर (समुद्रपर्यन्त पृथिवी रूपी राज्यात्मक ऐश्वर्य), कुछ लोग आनन्द, कुछ लोग माया और कुछ अन्य लोग विश्व कहते हैं लेकिन हम आपको साक्षात् अपारकरुणामय गुरुमूर्ति मानकर पूजते हैं।(224)

स्त्रिया दीक्षा शुभा प्रोक्ता मातुश्चाष्टगुणाधिका।
स्वप्नलब्धा च या विद्या तत्र नास्ति विचारणा।।225।।

स्त्री से दीक्षा प्राप्त करना शुभ कहा गया है और माँ से प्राप्त कर लेना तो 8 गुणा ज्यादा श्रेष्ठ है। स्वप्न में प्राप्त विद्या के बारे में विचार करने की जरूरत ही नहीं, क्योंकि वह सर्वोत्तम है।(225)

प्रणवोच्चारणाद्धोमाच्छालग्रामशिलार्चनात्।
ब्रह्मणीगमनाच्चैव शूद्रश्चाण्डालतां व्रजेत्।।226।।

शूद्रवर्णवाला व्यक्ति यदि प्रणवोच्चारण करता है, होम करता है, शालग्राम की पूजा करता है या ब्राह्मणी से सम्बन्ध (संभोग) करता है वह चाण्डालता को प्राप्त करेगा।(226)

शूद्रस्य प्रणवोच्चारं पुराणासम्मतं प्रिये।
तस्माद्यत्नेन कर्तव्यं तन्त्रोक्तं शूद्रजातिना।।227।।

हे प्रिये! इसलिये शूद्र का प्रणवोच्चारण पुराणादि शास्त्र असम्मत है। इसलिये शूद्रजाति के व्यक्ति को दीक्षा आदि यत्नपूर्वक तन्त्रोक्त पद्धति से ही देना चाहिये।(227)

महाविद्याप्रभावेन शूद्रो वैश्यत्वमाप्नुयात्।
प्रणवाद्ये महेशानि गृह्णीयुः शूद्रजातयः॥228॥

हे महेशानी! तन्त्रोक्त पद्धति से प्रणव आदि को जो शूद्रजातिवाला ग्रहण करेगा व ग्रहणकरायेगा वे दोनों ही चाण्डालता न प्राप्त कर महाविद्या के प्रभाव से वह शूद्र भी वैश्यत्व को प्राप्त करेगा।(228)

एतद्दीक्षापरं तत्त्वं सुगोप्यं परमेश्वरि।
स्वयोनिमिव रक्षय तत्र नास्ति विचारणा॥229॥

यह दीक्षा विषयक रहस्यपूर्ण बात को गोपनीय रखना चाहिये। हे परमेश्वरी! अपने योनि के समान रक्षा करनी चाहिये। इस विषय में विचार नहीं करना चाहिये। (229)

10. श्रीविद्याचक्रक्रमाणामवबोधः = श्रीविद्या में चक्रों के क्रम का निर्णय –

श्रीविद्याचक्रक्रमः साम्प्रतं त्रिप्रकारकः –1. हयग्रीवक्रमः, 2. आनन्द भैरवक्रमः, 3. दक्षिणामूर्तिक्रमः। 1. त्रिपुरा, 2. त्रिपुरेशी, 3. त्रिपुरसुन्दरी, 4. त्रिपुरवासिनी, 5. त्रिपुरा, 6. श्रीत्रिपुरमालिनी, 7. त्रिपुरासिद्धा, 8. त्रिपुराम्बा, 9. श्रीविद्यापंचदशाक्षरी, 10. श्रीविद्याषोडशाक्षरी चेत्येवं हयग्रीवक्रमस्तथाऽयं शुष्कभाव एव भवति। आर्द्रभावे नैव।

1. त्रिपुरा, 2. त्रिपुरेशी, 3. त्रिपुरसुन्दरी, 4. त्रिपुरवासिनी, 5. त्रिपुरा, 6. श्रीत्रिपुरमालिनी, 7. त्रिपुरासिद्धा, 8. त्रिपुराम्बा, 9. त्रिपुरभैरवी, 10. श्रीविद्या-पंचदशाक्षरी, 11. श्रीविद्याषोडशाक्षरी – अयमानन्दभैरवक्रमोऽस्ति।

1. त्रिपुरा, 2. त्रिपुरेशिनी, 3. त्रिपुरेशी, 4. त्रिपुरसुन्दरी, 5. त्रिपुर-वासिनी, 6. त्रिपुरा, 7. श्रीत्रिपुरमालिनी, 8. त्रिपुरासिद्धा, 9. त्रिपुराम्बा, 10. त्रिपुरभैरवी, 11. श्रीविद्यापंचदशाक्षरी, 12. लघुपाशुपतः, 13. मध्यमपाशुपतः, 14. महापाशुपतः, 15. श्रीविद्याषोडशाक्षरी, 16. षडान्वयशाम्भवः, 17. सर्वाधिकारदीक्षा, 18. श्रीविद्यासप्तदशी चायं दक्षिणामूर्तिक्रमो विद्यते। यथार्थतस्तु शिवत्वप्राप्तये षडाम्नायानामावश्यकता विद्यते, तैरेव षडाम्नायैश्चत्वार उपाम्नाय भूत्वा दशाम्नाया भवन्ति। अतो दशाम्नायानामुपासना ऽऽवश्यकीति।

वास्तव में शिवत्व की प्राप्ति के लिये 6 आम्नायों की आवश्यकता है। उन्हीं 6 आम्नायों के द्वारा 4 उपाम्नाय होकर कुल 10 आम्नाय हो जाते हैं। इसलिये 10 आम्नायों की उपासना ही आवश्यकी है।

11. मातृकावर्णनम् = मातृकाओं का वर्णन – पहली विधि

अथोभयात्मका वर्णाः स्युरग्नीषोमभेदतः।
त एव स्युर्विद्या भूयः सोमेनाग्निविभागतः।।230।।

अग्नि और सोम भेद से वर्ण दो प्रकार के होते हैं। सोम से अग्नि का विभाग पूर्वक उन वर्णों को जानना ही श्रेष्ठ विद्या है।(230)

स्वराख्याः षोडश प्रोक्ताः स्पर्शाख्याः पंचविंशतिः।
व्यापकाश्च दशैते स्युः सोमेनाग्न्यात्मकाः क्रमात्।।231।।

स्वर नाम से 16 वर्ण हैं, स्पर्श नाम से 25 वर्ण हैं। सोम से अग्न्यात्मक वर्ण अलग होकर क्रमशः ये व्यापक 10 होते हैं।(231)

एषु स्वरा ह्रस्वदीर्घभेदेन द्विविधा मताः।
पूर्वो ह्रस्वः परो दीर्घो बिन्दुसर्गान्तिमौ मतौ।।232।।

इनमें स्वरवर्ण ह्रस्व और दीर्घ भेद से दो प्रकार के हैं। पूर्व ह्रस्व और पर दीर्घ होते हैं। अन्तिम दो को बिन्दु ओर विसर्ग युक्त (यानि अं और अः) माने गये हैं।(232)

आद्यन्तस्वरस्वरषट्कस्य मध्यमं यच्चतुष्टयम्।
वर्णा आगम--धनैस्तन्नपुंसक--मीरितम्।।233।।

आदि और अन्त स्वरों के समुदाय से 6 - 6 तथा मध्य में स्थित से 4, कुल 6+6+4 = 16 वर्णो को आगमवेत्ता लोग नपुंसक वर्ण मानते हैं। आदि 6 = अ, आ, इ, ई, उ और ऊ। अन्त्य 6 = ए, ऐ, ओ, औ, अं और अः। मध्य 4 = ऋ, ॠ, ऌ और ॡ।(233)

तच्चतुष्कं सुषुम्नाख्ये कुर्यात्प्राणायनस्थितिम्।
दक्षोत्तरस्थे प्राणाख्ये स्यातां दक्षोत्तराणे।।234।।

मध्य के जो 4 हैं वे सुषुम्ना नामक नाड़ी में प्राण के आधार बनते हैं। दाहिने और बायें जो दो प्राण हैं वे ही दक्षिण और उत्तर के आधार होते हैं।(234)

दक्षसव्यस्थिते ह्रस्वदीर्घाः पंचोद्भवन्ति च।
भूतभूतकलाभिस्तदुदयः प्रागुदीरितः।।235।।

दाहिने और बायें में स्थित ह्रस्व एवं दीर्घ सहित पाँच उत्पन्न होते हैं मूलभूत कलाओं के साथ, यह पूर्व में कहा गया है।(235)

बिन्दुसर्गौ च यौ प्रोक्तौ तौ सूर्यशशिनौ क्रमात्।
तयोर्विकारविस्तारः पुरस्तात्सम्प्रवक्ष्यते।।236।।

बिन्दु और विसर्ग जो दो कहे गये हैं (अं और अः) वे दो सूर्य और चन्द्रमा हैं। उन दोनों के विकारों का विस्तार आगे कहे जायेंगे।(236)

स्पर्शाख्या अपि ये वर्णाः पंचपंचविभेदतः।

भवन्ति पंच वर्गास्तदन्त्यश्चात्मा रविः स्मृतः।।237।।

स्पर्श नाम से जो 25 प्रकार के कहे गये हैं, वे पाँच-पाँच के पाँच वर्ग हैं। उन 25 वर्णोमें जो अन्त्यवर्ण (केवल मकार) है, वह पुरुष के स्वरूप (यानि आत्मा) है, उसे साक्षात् सूर्य ही माना गया है।(237)

चतुर्विंशतितत्त्वाख्यास्तस्माद्वर्णाः परे क्रमात्।

तेन स्पर्शाक्षराः सौराः प्राणाग्नीलाम्बुखात्मकाः।।238।।

शेष 24 वर्णों को (सांख्यदर्शन सम्मत प्रकृति और उसके कार्य सहित) क्रमशः 24 तत्त्व माना गया है। इसलिये स्पर्श वर्ण सभी सौर हैं और वे प्राण = वायु, अग्नि = तेज, इला = पृथिवी, अम्बु = जल और ख = आकाश रुपी पंच भूतात्मक हैं।(238)

व्यापकाश्च द्विवर्गाः स्युस्तथा पंचविभेदतः।

शशीनाग्न्युत्थिता यस्मात्स्वरस्पृग्व्यापकाक्षराः।।239।।

इन से भिन्न दो वर्ग व्यापक (यादि और शादि) होते हैं और प्रत्येक वर्ग पाँच वर्ण भेद से युक्त हैं। जिसलिये वे चन्द्र से अग्नि द्वारा उत्पन्न हुये है इसलिये व्यापकाक्षर स्वरस्पृक् होते हैं।(239)

तत्त्रिभेदसमुद्भूता अष्टात्रिंशत्कला मताः।

स्वराः सौम्याः स्पर्शयुग्मैः सौरा याद्याश्च वह्निजाः।।240।।

उनके पुनः सत्त्वादि त्रिगुणों के भेद के कारण 38 कलायें होते हैं। स्वर सौम्या (चान्द्र), स्पर्श सौर और यादि वह्निज (अग्निज) होते हैं।(240)

षोडश द्वादश संख्या जायन्ते क्रमशः कलाः।

वर्णेभ्य एव तारस्य पंचभेदैस्तु भूतगैः।।241।।

सर्वगाश्च समुत्पन्नाः पंचाशत्संख्यकाः कलाः।

तेभ्य एव तु तावत्यः शक्तिभिर्विष्णुमूर्तयः।।242।।

क्रमशः कलायें 16 और 12 संख्या (कुल 38) उत्पन्न होते हैं। तार (प्रणव) से ही सब वर्ण उत्पन्न होते हैं। आकाशादि भूतगत पाँचभेदों के वजह से 50 संख्यायुक्त वर्ण समुत्पन्न होते हैं। उन (50) वर्णों से उतनी ही (50) शक्तियाँ होती हैं और शक्तियों से विष्णुमूर्तियाँ (50 भेद के) होते हैं।(241-242)

तावत्यो मातृभिः सार्द्धं तेभ्यः स्यू रुद्रमूर्तयः।
तेभ्य एव तु पंचाशत्स्युरोषधय ईरिताः।।243।।

उतनी मातृकाओं के साथ उतनी ही रुद्रमूर्तियाँ होते हैं और उन्ही 50 वर्णों से 50 प्रकार के औषधियाँ कही गई हैं।(243)

याभिस्तु मन्त्रिणः सिद्धिं प्राप्नुयुर्वांछितार्थदाम्।
अमृता मानदा पूषा तुष्टिः पुष्टी रतिर्धृतिः।।244।।
शशिनी चन्द्रिका कान्तिर्ज्योत्स्ना श्रीः प्रीतिरंगदा।
पूर्णा पूर्णामृता कामदायिन्यः स्वरजाः कलाः।।245।।

कामदायिनी जो स्वरों से अन्य कलायें जिनसे मन्त्र जापक साधक अभी टार्थ प्रदायक सिद्धि को प्राप्त करते हैं, वे इस प्रकार हैं – अमृता, मानदा, पूषा, तुष्टि, पुष्टि, गति, धृति, शशिनी, चन्द्रिका, कान्ति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति अंगदा, पूर्णा और पूर्णामृता।(244–245)

तपनी तापनी धूम्रा मरीचिर्ज्वालिनी रुचिः।
सुषुम्ना भोगदा विश्वबोधनी धारणी क्षमा।।246।।
कामाद्या वसुदाः सौराष्ठकान्ता द्वादशेरिताः।

वसु (सब प्रकार के धन) को देनेवाले सौरवर्ण [स्पर्शयुग्म (अन्त्य म = आत्मा को छोड़कर) शेष के आधा = 12] से उत्पन्न कलायें इस प्रकार हैं – तपनी (तपिनी), तापनी (तापिनी), धूम्रा, मरीचि, ज्वालिनी, रुचि, सुषुम्ना, भोगदा, विश्वबोधनी (विश्वबोधिनी), धारणी (धारिणी), क्षमा और कामाद्या। ये कलायें कादिष्ठान्त अथवा डादि भान्त 12 से उत्पन्न कहे गये है।(246–247)।

धूम्रार्चिरुष्मा ज्वलिनी ज्वालिनी विस्फुलिंगिनी।।247।।
सुश्रीः सुरूपा कपिला हव्यकव्यवहे अपि।
याद्यार्णयुक्ता वह्न्याद्या दश धर्मप्रदाः कलाः।।248।।

धर्मप्रदायक यकारादिवर्णयुक्त (जो व्यापक दो वर्ग कहे गये थे) य, व, र, ल, ळ और श, ष, स, ह, क्ष = 10 वह्नि से जन्य होने से वह्निजा कहे जाते हैं। उनके 10 कलायें इस प्रकार हैं – धूम्रार्चि, ऊ मा, ज्वलिनी, ज्वालिनी, विस्फुलिंगिनी, सुश्री, सुरूपा, कपिला, हव्यवहा और कव्यवहा।(247–248)

सृष्टिर्ऋद्धिः स्मृतिर्मेधा कान्तिर्लक्ष्मीर्धृतिः स्थिरा।
स्थितिः सिद्धिरकारोत्थाः कला दश समीरिताः।।249।।
अकारप्रभवा ब्रह्मजाताः स्युः सृष्टये कलाः।

240 वें श्लोक में बताये गये 38 कलाओं को 244–245 में 16 स्वरों से, 246–247 में 12 स्पर्शों से और 247 – 248 में 10 स्वर यादि गण से उत्पन्न को दर्शाकर अभि (श्लोक संख्या 241–242 में बताये गये) प्रणव के 50 कलायें पूर्वोक्त 50 वर्णों उत्पन्न बता रहा है। (अ, उ, म प्रत्येक से 10, 10, 10 तथा बिन्दु से 4 एवं नाद से 16 कुल 50)। अकार से उत्पन्न ब्रह्माणी से उत्प्रेरित सृष्टि के लिये ही जो अकार से निष्पन्न 10 कलायें इस प्रकार हैं – सृष्टि, ऋद्धि, स्मृति, मेधा, कान्ति, लक्ष्मी, धृति, स्थिरा, स्थिति और सिद्धि।(249 – 250)

जरा च पालिनी शान्तिरैश्वरी रतिकामिके।।250।।
वरदा ह्लादिनी प्रीतिर्दीर्घाश्चोकारजाः कलाः।
उकारप्रभवा विष्णुजाताः स्युः स्थितये कलाः।।251।।

उकार से उत्पन्न विष्णु जी से उत्प्रेरित, स्थिति के लिये ही है जो उकार निष्पन्न 10 कलायें इस प्रकार हैं – जरा, पालिनी, शान्ति, ऐश्वरी, रति, कामिका, वरदा, ह्लादिनी, प्रीति और दीर्घा।(250–251)

तीक्ष्णा रौद्री भया निद्रा तन्द्रा क्षुत्क्रोधिनी क्रिया।
उत्कारी चैव मृत्युश्च मकाराक्षरजाः कलाः।।252।।
मकारप्रभवा रुद्रजाताः संहृतये कलाः।

मकार से उत्पन्न रुद्र से उत्प्रेरित, संहार के लिये ही हैं जो मकार से निष्पन्न 10 कलायें इस प्रकार हैं – तीक्ष्णा, रोद्री, भया, निद्रा, तन्द्रा, क्षुत्, क्रोधिनी, क्रिया, उत्कारी और मृत्यु।(252–253)

बिन्दोरपि चतस्रः स्युः पीता श्वेताऽरुणाऽसिता।।253।।

बिन्दु से उत्पन्न 4 कलायें हैं (अनुग्रह के लिये माना जाता है) – पीता, श्वेता, अरुणा और असिता। (253)

निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्या शान्तिस्तथैव च।
इन्धिका दीपिका चैव रेचिका मोचिका परा।।254।।
सूक्ष्मा सूक्ष्मामृता ज्ञानामृता चाप्यायनी तथा।
व्यापिनी व्योमरूपा स्यादनन्ता नादसम्भवा।।255।।
नादजाः षोडश प्रोक्ता भुक्तिमुक्तिप्रदायिकाः।

नाद से उत्पन्न 16 कलायें (निग्रह के लिये माना जाता है) जो भुक्ति व मुक्ति प्रदायक हैं, वे इस प्रकार हैं – निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति, इन्धिका,

दीपिका, रेचिका, मोचिका, परा, सूक्ष्मा, सूक्ष्मामृता, ज्ञानामृता, आप्यायिनी, व्यापिनी, व्योमरूपा और अनन्ता।(254-256)

केशव-नारायण-माधव-गोविन्द-विष्णवः।।256।।
मधुसूदनसंज्ञश्च सप्तमः स्यात्त्रिविक्रमः।
वामनः श्रीधरश्चैव हृषीकेशस्त्वनन्तरः।।257।।
पद्मनाभस्तथा दामोदाराह्वो वासुदेवयुक्।
संकषर्णश्च प्रद्युम्नः सानिरुद्धाः स्वरोद्भवाः।।258।।

स्वरों से उत्पन्न 16 विष्णुमूर्तियों के नाम बता रहे हैं - केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध।(256-258)

ततश्चक्री गदी शार्ङ्गी खड्गी शंखी हली तथा।
मुशली शूलिसंज्ञश्च भूयः पाशी तथांकुशी।।259।।
मुकुन्दो नन्दजो नन्दी नरो नरकजिद्धरिः।
कृष्णः सत्यः सात्त्वतश्च शौरिः शूरो जनार्दनः।।260।।
भूधरो विश्वमूर्तिश्च वैकुण्ठः पुरुषोत्तमः।
बली बलानुजो बालो वृषघ्नश्च वृषस्तथा।।261।।
हंसो वराहो विमलो नृसिंहो मूर्तयो हलाम्।

हलों यानि व्यंजनों (कादि-मान्त=25, यादि=5, शादि=5 कुल मिलाकर 35) से उत्पन्न विष्णुमूर्तियों के नाम बता रहे हैं। (अब तक 50 वर्ण कहते रहे, लेकिन यहाँ 16+35=51 वर्ण, तदनुरुप 51 विष्मुमूर्ति होंगे) अतः श्लोकसंख्या 242 से विरोध की आशंका हो सकती हे। उत्तर यह है कि पूर्व में सामान्यतया गिनाते वक्त 'क्ष' यह संयुक्त वर्ण अथवा 'ळ' इस दुःस्पृष्ट वर्ण को छोड़कर कहा गया था। लेकिन यहाँ उन्हें जोड़कर कह दिया गया है) चक्री, गदी, शार्ङ्गी, खड्गी, शंखी, हली, मुशली (मूसली), शूली, पाशी, अंकुशी, मुकुन्द, नन्दज, नन्दी, नर, नरकजित्, हरि, वृष्णि, सत्य, सात्यवत, शौरि, शूर, जनार्दन, भूधर, विश्वमूर्ति, वैकुण्ठ, पुरुषोत्तम, बली, बलानुज, बाल, वृषघ्न, वृष, हंस, वराह, विमल और नृसिंह - ये व्यंजनों के विष्णुमूर्तियाँ हैं।(259-262)

कीर्तिः कान्तिस्तुष्टिपुष्टी धृतिः शान्तिः क्रिया दया।।262।।
मेधा च हर्षा श्रद्धाह्वा लज्जा लक्ष्मीः सरस्वती।
प्रीती रतिश्च सम्प्रोक्ताः क्रमेण स्वरशक्तयः।।263।।

स्वर से जन्य विष्णु के शक्तियाँ जो सकल कामनाओं को देती हैं – कीर्ति, कान्ति, तुष्टि, पुष्टि, धृति, शान्ति, क्रिया, दया, मेघा, हर्षा, श्रद्धा, लज्जा, लक्ष्मी, सरस्वती, श्री, प्रीति और रति नाम से कहे गये हैं।(262–263)

जया दुर्गा प्रभा सत्या चण्डा वाणी विलासिनी।
विरजा विजया विश्वा विनदा सुतदा स्मृतिः॥264॥
ऋद्धिः समृद्धिः शुद्धिश्च भुक्तिर्मुक्तिर्मतिः क्षमा।
रमोमा क्लेदिनी क्लिन्ना वसुदा वसुधाऽपरा॥265॥
परा परायणा सूक्ष्मा सन्ध्या प्रज्ञा प्रभा निशा।
अमोघा विद्युता चेति शक्तयः सर्वकामदाः॥266॥

जया, दुर्गा, प्रभा, सत्या, चण्डा, वाणी, विलसिनी, विरजा, विजया, विश्वा, विनदा, सुनदा, स्मृतिः, ऋद्धि, शुद्धि, भक्ति, मुक्ति, मति, क्षमा, रमा, उमा, क्लेदिनी, क्लिन्ना, वसुदा, वसुधा, पराऽपरा, परायणा, सूक्ष्मा, सन्ध्या, प्रज्ञा, निशा, अमोघा, विद्युता – ये व्यंजनों से उत्पन्न विष्णु शक्तियाँ हैं जो सकल कामनाओं को देनेवाली हैं।(264–266)

इमाः पंचाशदुद्दिष्टा नमोऽन्ता वर्णपूर्वकाः।
सधातुप्राणशक्त्यात्मयुक्ता यादिषु मूर्तयः॥267॥

ये कुल मिलाकर 50 नाम के चतुर्थ्यन्त के साथ 'नमः' शब्दान्त वर्णपूर्वक शक्तियों का उपदेश किये गये। इनमें से यादियों में स्थित मूर्तियाँ विशेषतः धातु, प्राणशक्ति और आत्मा से युक्त हैं।(267)

श्रीकण्ठोऽनन्तसूक्ष्मौ च त्रिमूर्तिरमरेश्वरः।
अधीशो भावभूतिश्च तिथिः स्थाणुर्हराह्वया॥268॥
झिण्टीशो भौतिकः सद्योजातश्चानुग्रहेश्वरः।
अक्रूरश्च महासेनः स्युरेताः स्वरमूर्तयः॥269॥

अब रुद्र मूर्तियों के नामों को बता रहे हैं। उनमें भी पहले स्वरमूर्तियों को बता रहे हैं –श्रीकण्ठ, अनन्त, सूक्ष्म, त्रिमूर्ति, अमरेश्वर, अधीश, भावभूति, तिथि, स्थाणु, हर, झिण्टीश, भौतिक, सद्योजात, अनुग्रहेश्वर, अक्रूर और महासेन। (268–269)

ततः क्रोधीशचण्डेशपंचान्तकशिवोत्तमाः।
तथैकरुदकूर्मैकनेत्राख्यचतुराननाः॥270॥
अजेशशर्वसोमेश्वराह्वा लांगलिदारुकौ।

अर्द्धनारीश्वरश्चोमाकान्तश्चाषादिदण्डिनौ ।।271।।
अद्रिर्मीनश्च मेषश्च लोहितश्च शिखी
तथा। छगलाण्डद्विरण्डौ च महाकालकपालिनौ ।।272।।
भुजंगेशः पिनाकी च खड्गीशश्च बकस्तथा।
श्वेतो भृगुश्च नकुलौ शिवः संर्वत्तकस्ततः ।।273।।

व्यंजनों से उत्पन्न रुद्रमूर्तियाँ - कोधीश, चण्डीश, पंचान्तक, शिव, उत्तम, एकरुद्र, कूर्म, ऐकनेत्र, अजेश, षर्व, सोमेश्वर, लांगली, दारुक, अर्धनारीश्वर, उमाकान्त, चाष, आदिदण्डी, अद्रि, मीन, मेष, लोहित, शिखी, छगलाण्ड, द्विरण्ड, महाकाल, कापाली, भुजंगेश, पिनाकी, खड्गीश, वक (बक), श्वेत, भृगु, नकुल (सहदेवसहित), शिव और संवर्तक।(269-273)

पूर्णोदरी च विरजा तृतीया शाल्मली तथा।
लोलाक्षी वर्त्तुलाक्षी च दीर्घघोणा तथैव च।।274।।
सुदीर्घमुखीगोमुख्यौ नवमी दीर्घजिह्विका।
कुण्डोदर्यूर्ध्वकेश्यौ च मुखी विकृतिपूर्विका।।275।।
सज्वालोल्काश्रिया विद्या मुख्यः स्युः स्वरशक्तयः।

स्वरों से उत्पन्न रुद्रशक्तियाँ - पूर्णोदरी, विरजा, शाल्मली, लोलाक्षी, वर्तुलाक्षी, दीर्घघोणा, सुदीर्घमुखी, गोमुखी, दीर्घजिह्विका, कुण्डोदरी, ऊर्ध्वकेशी, विकृतमुखी, ज्वाला, उल्का, श्रिया और विद्या।(274-276)

महाकालीसरस्वत्यौ सर्वसिद्धिसमन्विते।।276।।
गौरी त्रैलोक्यविद्या च तथा मन्त्रात्मकशक्तिके।
भूतमात्रा लम्बोदरी द्राविणी नागरी तथा।।277।।
वैखरी मंजरी चैव रूपिणी वीरणी तथा।
कोटरी पूतना भद्रकाली योगिन्य एव च।।278।।
शंखिनीगर्जिनीकालरात्रिकुर्दि (ब्जि) न्य एव च।
कपर्दिनी महावज्रा जया चैव सुमेश्वरी।।279।।
रेवती माधवी चैव वारुणी वायवी तथा।
रक्षोपधारिणी चान्या तथैव सहजाह्वया।।280।।
लक्ष्मीश्च व्यापिनी मायेत्याख्याता वर्णशक्तयः।
इत्युक्तस्त्रिविधो न्यासः क्रमात्सर्वसमृद्धिदः।।281।।

व्यंजनों से उत्पन्न रुद्रशक्तियों के नाम इस प्रकार है – महाकाली, महासरस्वती, सर्वसिद्धिसमन्विता, गौरी, त्रैलोक्यविद्या, मन्त्रात्मकशक्तिका भूतमाता, लम्बोदरी, द्राविणी, नागरी, वैखरी, मंजरी, रूपिणी, वीरणी, कोटरी, पूतना, भद्रकाली, योगिनी, शंखिनी, गर्जिनी, कालरात्रि, कुब्जिनी (कुर्दिनी), कपर्दिनी, महावज्रा, जया, सुमेश्वरी, रेवती, माधवी, वारुणी, वायवी, रक्षोपधारिणी, सहजा, लक्ष्मी, व्यापिनी और माया। इस प्रकार तीनों प्रकार के न्यास – कलान्यास, विष्णुमूर्तिन्यास शक्ति सहित और रुद्रमूर्ति न्यास शक्तिसहित जो सकल प्रकार के समृद्धि देनेवाले हैं उन्हें क्रमश बता दिया गया।(276–281)

चन्दनकुचन्दनागुरुकर्पूरोशीररोगजलघुसृणाः ।
कंकोलजातिमांसीमुराचोरग्रन्थिरोचनपत्राः ।।282।।
पिप्पलबिल्वगुहारुणतृणक – लवंगाह्वकुम्भिवन्दिन्यः।
सोडूम्बरीकाश्मीरिकास्थिराब्जदरपुष्पिकामयूरशिखाः।।283।।
प्लक्षाग्निमन्थसिंहीकुशाह्वदर्भाश्च कृष्णहरपुष्पी।
रोहिणलण्डकबृहतीपाटल–चित्रातुलस्यपामार्गः।।284।।
शतमूलीलताद्विरेफाविष्णुक्रान्तामुषल्यथांजलिनी।
दूर्वा श्रीदेवीसहे तथैव लक्ष्मीः सदा भद्रा।।285।।
आदीनामिति कथिता वर्णानां क्रमवशादथौषधयः।
गुटिकाकषायमसितप्रभेदतो निखिलसिद्धिदायिन्यः।।286।।

अब 50 प्रकार के औषधियों के नाम बता रहे हैं – चन्दन, कुचन्दन, अगुरु, कर्पूर, उषीर, रोगज, लघुसृण, कंकोल, जाति, (जटा) मांसी, मुरा, चोग्रन्थि, (गो) रोचन, (तेज) पत्र, पिप्पल, बिल्व, गुहारुण, तृणक, लवंग, कुम्भिवन्दिनी, उदुम्बर, काश्मीरिका, स्थिराब्ज, दरपुष्पिका, मयूरशिखा, प्लक्ष, अग्निमन्थ, सिहोकुशा, दर्भ, कृष्णहर, (शंख) पुष्पी, रोहिण, लण्डक, बृहती, पाटल, चित्रा, तुलसी, अपामार्ग, शतूली (शतावरी), (सोम) लता, द्विरेफा, विष्णुक्रान्ता, मुशली (मूसली), अंजलिनी, दूर्वा, श्रीदेवी, सहा, लक्ष्मी, सदा और भद्रा। इनके अलावा इनके प्रजातियों सहित अनन्त औषधियाँ होने पर भी वर्णों से उत्पन्न प्रमुख 50 औषधियों का नाम क्रमशः कह दिया गया। गुटिका, कषाय और असित (भस्म) के भेद से सब प्रकार के सिद्धिप्रदायक ये औषधियाँ हैं।(282–286)

यथा भवन्ति देहान्ते ह्यमीपंचाशदक्षराः।
येन येन प्रकारेण तथा वक्ष्यामि तत्त्वतः।।287।।

ये 50 अक्षर जिस-जिस प्रकार से होते हैं उस उस प्रकार को वास्तविकरूप से बताऊँगा।(287)

समीरिताः समीरेण सुषुम्नारन्ध्रनिर्गताः।
व्यक्तिं प्रयान्ति वदने कण्ठादिस्थानघट्टिताः।।288।।

देहोत्पत्ति के अन्त में (अर्थात् देह की उत्पत्ति) होने पर वायु के द्वारा प्रेरित होकर सुषुम्ना का छिद्र से निकलकर कण्ठादि 8 स्थानों से घर्षित होकर व्यक्ति के मुख में पहुँचते हैं।(288)

उच्चैरुन्मार्गगो वायुरुदात्तं कुरुते स्वरम्।
नीचैर्गतोऽनुदात्तं च स्वरितं तिर्यगा गताः।।289।।

ऊर्ध्वमार्ग (ऊर्ध्वभागों) से सम्बद्ध उच्च स्थान से टकराते हुये वायु उदात्त स्वर उत्पन्न करता है। निचले स्थान व अधोमार्ग यानि अधोभागों से युक्त होने पर अनुदात्त स्वर उत्पन्न होता है। तथा तिर्यग् मार्गों से वायु स्वरित स्वर को उत्पन्न करता है।(289)

अर्धैकद्वित्रिसंख्याभिर्मात्राभिर्लिपयः क्रमात्।
सव्यंजना ह्रस्वदीर्घप्लुतसंज्ञा भवन्ति ताः।।290।।

अर्धमात्रा, एकमात्रा, दोमात्रा और तीनमात्रा का संकेत युक्त लिपियाँ क्रम से व्यंजन, ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत नाम से कहे जाते हैं।(290)

अकारेकारयोर्योगादेकारो वर्ण इष्यते।
तस्यैवैकारयोगेन स्यादैकाराक्षरं तथा।।291।।

अकार और इकार का योग से एकार स्वर वर्ण होता है, पुनः उस अकार का एकार के साथ योग होने पर ऐकार स्वर वर्ण होता है।(291)

उकारयोगात्तस्यैव स्यादोकाराह्वयः स्वरः।
तस्यौवौकारयोगेन स्यादौकाराह्वयः स्वरः।।292।।

उस अकार का उकार के साथ योग होने से ओकार स्वरवर्ण तथा पुनः अकार के साथ ओकार का योग होने से औकार स्वर वर्ण होता है।(292)

सन्ध्यक्षराः स्युश्चत्वारो मन्त्राः सर्वार्थसाधकाः।
लृवर्णो वर्णयोर्व्यक्तिर्लरोः सम्यक्प्रदृश्यते।।293।।

इसलिये ये चारों सन्ध्यक्षर हैं, ये मन्त्र स्वरूप हैं, इसलिये सकल कामनाओं को पूरा करने वाले हैं। इसी प्रकार से ल् और र् वर्ण का योग से लृकार की अभिव्यक्ति स्पष्ट ही दिखाई दे रहा है। (293)

बिन्दुसर्गात्मनोर्व्यक्तिर्मनसो ह्यजपां वदेत्।
कण्ठात्तु निःसरन्सर्गः प्रायोऽचामेकतः परः।।294।।
नश्वरः सर्ग एव स्यात्सो मा सप्राणकस्तु हः।
संसर्गः क्लेशितः कण्ठे वायुनाऽकादिमीरयेत्।।295।।

मन में जो अजपा (हं सः) जो बोला जाता है, उसी से बिन्दु (अनुस्वार) और सर्ग (विसर्ग) निष्पन्न (अभिव्यक्त) हुये हैं। प्रायः, किसी न किसी अच् (स्वर) के बाद ही इनका प्रयोग कण्ठ से निकलते हुए वक्त होता है। 'हः' इत्यादि के रूप में व्यक्त विसर्ग ऊ मा युक्त, सप्राण और नश्वर होता है। विसर्ग सहित कण्ठ के साथ वायु द्वारा संयोग होने पर 'अ' और 'क' वर्ग के वर्णो का उच्चारण होता है।(294-295)

वर्गस्पर्शनमात्रेण कं स्वरस्पर्शनात्तु खम्।
स्तोकगम्भीरसंस्पर्शाद् गघौ ङश्च बहिर्गतः।।296।।
विसर्गतालुगः सोष्मेशं च वर्ग च यं यथा।
ऋटुरेफषकारांश्च मूर्धगो दन्तगस्तथा।।297।।
लृ-तवर्ग-ल-सानोष्ठादुपध्मानसंज्ञकान्।
दन्तौष्ठाभ्यां वं च तत्तत्स्थानतोऽर्णान्समीरयेत्।।298।।

अल्पप्राणमात्र से 'क' ओर महाप्राण से 'ख' एवं 'ग' और 'घ' को भी क्रमशः जाने, 'ङ' वर्ण बाह्य यानि नाकि की सहायता से अल्प प्राण द्वारा उच्चारण होता है। (यहाँ अल्पप्राण को वर्गबाह्यस्पर्शन व स्तोक और महाप्राण को स्वरस्पर्शन व गम्भीर शब्दों से कहा गया है। इस कण्ठ्य -अ, कु, ह और विसर्ग के बारे में वर्णन कर, इस प्रक्रिया का अतिदेश शेष वर्णों में कर रहे हैं -इ चु य श तालु; ऋ, टु, र, ष मूर्धा; लृ तु, ल, स दन्त्य; उ, पु, उपध्मानीय ओठ; व दन्तोष्ठ (औरकख जिह्वामूलीय वर्ण-जिह्वामूल तथा पफ उपध्मानीय वर्ण ओष्ठ) से उच्चारण होते हैं।(296-298)

ह्रस्वाः पंच परे च सन्धिविकृता पंचाथ बिन्द्वन्तिकाः,
काद्याः प्राणहुताशभू कखमया याद्याश्चशार्णान्तिका।
हान्ताः षक्षळसाः क्रमेण कथिता भूतात्मकास्ते पृथक्,
तैस्तैः पंचभिरेव वर्णदशकैः स्युः स्तभनाद्याः क्रियाः।।299।।

ह्रस्व 5, उनके बाद सन्धि से विकृत (दीर्घ) 5, बिन्द्वन्त 5 (ए ऐ ओ और अं), कादि 5, चादि 5, टादि 5, तादि 5, पादि 5, यादि 5 (य व र ल श), हान्त (श स ह क्ष ळ)। इस प्रकार पाँच -पाँच अवयववाले 10 गण अथवा 10

अवयववाले 5 गण कुल मिलाकर 50 वर्ण (5 गुणा 10 अथवा 10 गुणा 5 = 50) हुये। समस्त स्तम्भनादि क्रियायें इन वर्णों से ही होते हैं। (यहाँ श्लोक में ''प्राणहुताशभू'' का तात्पर्य है पांच और पांच। ''कखमा:'' का तात्पर्य है क ख आदि से शुरु करके म पर्यन्त वर्ण। ''याद्याश्च शार्णान्तिका'' का तात्पर्य है यादि शपर्यन्त पांच वर्ण। एवं ''हान्ता:") का तात्पर्य को स्वयं दिखाये हैं श क्ष ळ स और हकार:) ये सब पृथक्-पृथक् भूतात्मक हैं। ''प्राणहुताशभू'' का दूसरा अर्थ है प्राण और आग्नि से उत्पन्न होने वाले ये वर्ण है।(299)

उद्गदादिलळ: को नसौ च चतुर्थार्णका वसौ वार:।
दृष्ट्यैव द्वितीयरक्षा वह्नेरद्वन्द्वयोनि कादियषा:।।300।।

स्तम्भनादि सकल फल प्रदायक कहकर वर्णों की महिमा गाकर उदाहरणार्थ रहस्यपूर्ण भाषा से बीजमन्त्र बता रहे हैं। वार - 7 संख्या का बोधक है। ''उद्गदादिलळ:'' का तात्पर्य है उ ग द ध न ल ळ - इन वर्णों से युक्त बीजमंत्र तथा ''कोनसौ'' का तात्पर्य है क ख ग घ ङ न स एवं ''चतुर्थार्णका वसौ'' का तात्पर्य है घ झ ढ ध भ व स और ''अद्वन्द्वयोनि कादि'' (यषा: पाठभेद है) का तात्पर्य है क ख ग घ ङ य श - इस प्रकार 4 मन्त्र 7-7 वर्णों का बताकर फल कहते हैं। ''दृष्टचैव द्वितीयरक्षा वह्ने:'' अर्थात् दृष्टिमात्र से अग्नि से दूसरे की रक्षा करने का सामर्थ्य प्राप्त होता है।(300)

मरुत: कपोलबिन्दुकपंचमवर्णा: शहौ तथा व्योम्न:।
मनुषु परेष्वपि मन्त्रे कसेतु कर्माणि तस्य संसिद्धौ।।301।।

वायु और आकाश का बीजों को (कपोलबिन्दु यानि ँ अर्थात्) अर्धचन्द्र बिन्दु से युक्त कर तथा क, पंचमवर्ण, श और ह वर्णों से निर्मित मन्त्र को श्रेष्ठ मन्त्रों में माना गया। इस मन्त्र का मन्त्री (जापक) कर्मफलसिद्धि के लिये प्रयोग करें। यहाँ ध्यान दे केवल '' ं '' का मतलब अनुस्वार जो कि केवल नासिका से उच्चार्य है और '' ँ '' का मतलब अनुनासिक जो कि मुख और नासिका दोनों से उच्चार्य है। मंत्र - यँ कँ ङँ मँ णँ नँ मँ शँ हँ।(301)

स्तम्भनाद्यमथ पार्थिवैरयामक्षरैश्च परिवर्षणादिकम्।
दाहशोषणसशून्यतादिकान् वह्निवायुवियदक्षरैश्चरेत्।।302।।

आयामक्षर पार्थिव (वह राजा जो अवसर को नहीं खोता, आलस्य नहीं करता, व्यर्थ काल क्षपण नहीं करता, शीघ्रनिर्णयी) के द्वारा कृत परिवर्षणादि (बाणादि अस्त्र शस्त्र बरसना, घेरना आदि), दाह, शोषण, सशून्यता आदि कुप्रभाव

सहित स्तम्भनादियों को नष्ट करने के लिये वह्निबीज (रँ), वायुबीज (यँ) और वियद्बीज (आकाशबीज हँ) अक्षरों के द्वारा अनुष्ठान करें। मन्त्र – रँ यँ हँ।(302)

दशभिर्दशभिरमीभिर्नमोऽन्तिकैर्द्वन्द्वश्च बिन्दुयुतैः।
योनेर्मध्ये कोणत्रितये मध्ये च संयजेन्मन्त्री।।303।।

नमः शब्द अन्त में युक्त हो ऐसे 10-10 वर्णों के समूह द्वन्द्वश बिन्दुयुक्त हो अर्थात् केवल अनुस्वार (अनुनासिक नहीं) से युक्त मंत्र से योनि के बीच में और त्रिकोण के बीच में जापक संयोजन करें।(303)

पूर्वोक्ताद् बिन्दुमात्रात्स्वयमथरवतन्मात्रतामभ्युपेता-
ऽकारादीन्द्व्यष्टकादीनपि तदनुगतान् पंचविंशत्तथैव।
यादीन्संयुक्तधातूनपि गुणसहितैः पंचभूतैश्च ताभि-
स्तन्मात्राभिर्व्यतीत्यप्रकृतिरथ हंसज्ञा भवेद्व्याप्य विश्वम्।।304।।

पूर्वोक्त को बिन्दुमात्र युक्त यानि अनुस्वार से ही (अनुनासिक न हो) अथवा स्वयं शब्द जितनी स्वाभाविक मात्रा के जैसे हैं वैसे ही यानि उतनी मात्रा से हा युक्त अकारादि 16 वर्ण तदनुगत दीर्घादि सहित तथा 25 ककारादि मकारपर्यन्त और धातु (स्वर) संयुक्त यादि 9/10 वर्णों का जप प्रकृति को छोड़कर शेष त्रिगुणों, पंचभूतों सहित तन्मात्राओं का चिन्तन के साथ करें तो वह साधक विश्व को व्याप्त कर हंसज्ञ होगा।(304)

अथ प्रणवसंज्ञकं प्रतिवदामि मन्त्रं परं,
सषट्कमपि सार्चनं सहुतक्लृप्ति सोपासनम्।
अशेषदुरितापहं विविध-काम -कल्पद्रुमं,
विमुक्तिफलसिद्धिदं विमलयोनिसंसेवितम्।।305।।

अब सर्वश्रेष्ठ मंत्र, प्रणव नाम से सुप्रसिद्ध, षट्क – अर्चना-होम-सिद्धि आदि की प्रक्रिया सहित उपासना कहूँगा। प्रणव सकलपापों का नाशक है, विविध कामनाओं को पूरा कर देने वाला कल्पवृक्ष जैसा है, विमुक्तिपर्यन्त फल को सिद्ध करने वाला और शुद्धान्तःकरणवाले योगियों से संसेवित है।(305) (श्लोक संख्या 306 उपलब्ध नहीं है।) अथवा -2. दूसरी विधि –

मन्त्रस्यास्य मुनिः प्रजापतिरथच्छन्दश्च देव्यादिका,
गायत्री गदिता जगत्सु परमात्माख्यस्तथा देवता।
अक्लीबैयुगमध्यगध्रुवयुतैरंगानि कुर्यात्स्वरैर्मन्त्री,
जातियुतैश्च सत्यरहितैर्वा व्याहृतिभिः क्रमात्।।307।।

इस मंत्र के ऋषि प्रजापति हैं, दैवीगायत्री आदि से जगती पर्यन्त छन्द हैं, परमात्मा देवता हैं, अनपुंसक युग्ममध्यग ध्रुवयुक्त स्वरों से अथवा सप्तव्याहृतियों में से सत्य को छोड़कर शेष छः से क्रमशः अंगन्यास करें।(307)

ध्यानश्लोकः -

विष्णुं भास्वत्किरीटांगदवलययुगाकल्पहारोदरांघ्रिं,
श्रौणीभूषंसवक्षोमणिमकरमहाकुण्डलामण्डितांसम्।
हस्तोद्यच्चक्रशंखाम्बुजगदममलं पीतकौशेयमाशा-
विद्योतद्भासमुद्यद्दिनकरसदृशं पद्मसंस्थं नमामि।।308।।

ध्यान श्लोक का अर्थ - मैं विष्णु को नमस्कार करता हूँ। विष्णुजी कैसे हैं? चमकता हुआ किरीट, अंगकी, वलय और श्रेष्ठ हारों से सुशोभित सिर, वक्ष, हाथ, उदर आदि पैर पर्यन्त सभी अंग हैं जिनका तथा कूल्हा प्रदेश भी आभूषणों से विभूषित है जिसका, कौस्तुभ आदि मणियों से विभूषित वक्ष तथा मकरमहाकुण्डल युक्त कान आदि से विभूषित है कन्धा जिसका, हाथ में उठाये हुये सुदर्शनचक्र-शंख-कमल और गदा हैं जिसके, पीलेरंग के वस्त्रों से विभूषित हैं जो, दसों दिशाओं में उगता सूर्य का प्रकाश के समान प्रकाश व्याप्त हो रहा है जिसकी दिव्यता से ऐसे कमलासनस्थ हैं भगवान् विष्णु।(308)

दीक्षितो मुनिरिमं शतं लक्षं प्रजपेत्प्रतिहुनेच्च दशांशम्।
पायसैर्घृतयुतैश्च तदन्ते विप्रभूरुहभवाः समिधो वा।।309।।

दीक्षित साधक इस प्रणव को 100 लाख (1 करोड़) जपे, दशांश हवन करें खीर और घी से अथवा जप के अन्त में श्रेष्ठवृक्षों के समिधाओं से हवन करें।(309)

सर्पिः पायसशालीतिलसमिदाज्यैरनेन यो जुहुयात्।
ऐहिकपारत्रिकमपि स तु लभते वांछितं फलं न चिरात्।।310।।

घी, खीर, चावल, तिल और समिधा से जो हवन करता है वह शीघ्र ही इस लोक के और परलोकों के वांछित फल प्राप्त करेगा।(310)

अभ्यर्च्य वैष्णवमथो विधिनैव पीठ-
मावाह्य तत्र सकलार्थकरं मुकुन्दम्।
अंगैः स मूर्तियुगशक्तियुगैः सुरेन्द्र-
वज्रादिकैर्यजतु मन्त्रितमः क्रमेण।।311।।

पहले वैष्णवविधि से पूजा कर पीठ का आवाहन करके उस पर सकलपुरुषार्थ को देनेवाले भगवान् विष्णुजी (मुकुन्द) की पूजा करें। इन्द्रादि उनके अस्त्र वज्रादि सहित समस्त मूर्तियुग व शक्तियुगों से युक्त अंकों के द्वारा ही अर्चना हो (केवल विष्णु अकेले का न हो किन्तु परिवार व परिकर सहित हो)।(311)

वासुदेवः संकषर्णः प्रद्युम्नश्चाऽनिरुद्धकः।
स्फटिकस्वर्णदूर्वेन्द्रनीलाकाराश्च वर्णतः॥312॥
चतुर्भुजाश्च शंख-गदा-पंकजधारिणः।
किरीटकेयूरिणश्च पीताम्बरधरा अपि॥313॥
सशान्तिश्रीसरस्वत्यौ रतिश्च त्रिदलाश्रिता।
अच्छः पद्मराजो दुग्धदूर्वावर्णाः स्वलंकृताः॥314॥

वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न ओर अनिरुद्ध ये क्रमशः स्फटिक, स्वर्ण, दूर्वेन्द्र और नीले रंगवाले हैं। सभी चतुर्भुज है, जिनमें वरमुद्रा सहित शंख, गदा और कमल धारण किये हुये हैं। तथा सभी किरीट, केयूर, आदि आभूषणों को और पीताम्बर धारण कर सुशोभित हैं। शान्ति, लक्ष्मी, सरस्वती और बिल्वाश्रिता रति संग में हैं जिनके जो कि क्रमशः स्फटिक, स्वर्ण, दूध और दूर्वा रंग की हैं तथा आभूषणों से अलंकृत हैं।(312-314)

आत्मान्तरात्मपरमज्ञानात्मनस्तु मूर्तयः।
निवृत्तिश्च प्रतिष्ठाह्वा विद्या शान्तिश्च शक्तयः॥315॥

आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा ओर ज्ञानात्मा के मूर्ति हैं। इन की शक्तियाँ हैं - निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या और शान्ति।(315)

ज्वलज्ज्वालारुचः प्रोक्ता आत्माद्या मूर्तिशक्तयः।
इति पंचावरणात्मकं विधानं प्रणवोद्भवम्॥316॥

आत्मा आदि मूर्तिस्वरूप और इनके शक्ति जलती हुई अग्नि के समान देदीप्यमान हैं। इस पांच आवरणवाले प्रणवोद्भव का विधान है।(316)

इत्थं मन्त्री तारमनुं जापहुतार्चाभेदैरंगीकृत्य च युंज्यादपि योगान्।
यैःसंलभ्यापीह समग्रां श्रियमन्ते शुद्धं विष्णोर्धाम परं प्राप्स्यति योगी॥317॥

इस प्रकार जापक साधक जप, पूजा, हवन आदि भेदों के द्वारा प्रणव मन्त्र को स्वीकर करके योग में लगे। जिससे यहाँ समग्र ऐश्वर्य प्राप्त करके अन्त में विष्णु के अत्यन्त शुद्ध परमपवित्र धाम को योगी प्राप्त करेगा।(317)

करपादमुखादिविहीन-मनारतदृश्य-मनन्यग-मात्मपदम्।
यमिहात्मनि पश्यति तत्त्वविदस्तमिमं किल योगमिति ब्रुवते॥318।।

योग प्राप्ति से दूशणस्वरुप इन छः वैरी हैं – काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद योग का लक्षण – तत्त्ववेत्ता जिसको अपने स्वरूप में अनुभव करते हैं जो हाथपैरादि रहित, दृश्य से असम्बद्ध, अनन्य आत्मा है वही योग है– ऐसे कहते है। (318)

योगाप्तिर्दूषणपरं त्वथ कामकोपलोभप्रमोहमदमत्सरतेति षट्कम्।
वैरं जयेत्सपदि योगविदेनमंगैर्योगस्य धीरमतिरष्टभिरिष्टदैश्च॥319॥

योग प्राप्ति से दूषणस्वरुप इन छः वैरी हैं – काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य पर विजय को प्राप्त कर लक्ष्य में तत्पर धीरमतिवाला योगवित्, इष्टप्रदायक योग के 8 अंगों के द्वारा लक्ष्य प्राप्त करता है।(319)

यमनियमासनपवनायामाः प्रत्याहृतिश्च धारणा च।
ध्यानं चापि समाधिः प्रोक्तान्यंगानि योगयोग्यानि॥320।।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि – योग के ये 8 अंग कहे गये हैं।(320)

सत्यमहिंसा समता धृतिरस्तेयं क्षमाऽऽर्जवं च तथा।
वैराग्यमिति यमः स्यात्स्वाध्यायतपोऽर्चनाव्रतानि तथा।।321।।
सन्तोषश्च संशौचो नियमः स्यादासनं च पंचविधम्।
पद्मस्वस्तिकभद्रकवज्रकवीराह्वयाः क्रमात्तदपि।।322।।

यम हैं – सत्य, अहिंसा, समता, धृति, अस्तेय, क्षमा, आर्जव और वैराग्य। **नियम** हैं – स्वाध्याय, तप, पूजा, व्रत, सन्तोष और शौच। **आसन** – आसन प्रमुख पाँच प्रकार के हैं। वे इस क्रम से हैं – पद्म, स्वास्तिक, भद्रक, वज्रक और वीर नामक आसन।(321-322)

रेचकपूरककुम्भकभेदात्त्रिविधः प्रभंजनायामः।
मुंचेद्दक्षिणयाऽनिलमथानयेद्वामया च मध्यगया।।323।।
संस्थापयेच्च नाडीस्त्वेवं प्रोक्तानि रेचकादीनि।
षोडश तद्द्विगुणचतुःषष्टिमात्रकाणि तानि च क्रमशः।।324।।

प्राणायाम – रेचक : पूरक : कुम्भक : रेचक भेद से त्रिविध प्राणायाम है। दाहिने नाक से छोड़े श्वास को बायें नाक से श्वास भरें और बीच कि (यानि कुम्भक अर्थात् यथासम्भव भीतर रोकना यानि न लेना, न छोड़ना) स्थिति के द्वारा सुषुम्ना

नाड़ी में स्थित रहना, फिर श्वास छोड़ना यह प्राणायाम है। 1:2:4:1 की अनुपात से बढ़ाते हुये कहे गये रेचकादियों को 16:32:64:16 मात्रा क्रमशः करने का अभ्यास होना चाहिये।(323-324)

चिदात्मैक्यधृतस्य प्राणस्य स्यात्संहृतिः स्थानात्।
प्रत्याहारो ज्ञेयश्चैतान्ययुतस्य सम्यगनिलस्य।।325।।
स्थानस्थापनकर्मप्रोक्ता स्याद्धारणेति तत्त्वज्ञैः।
यो मनसि देवताया भावः स्यादस्य मन्त्रिणः सम्यक्।।326।।
संस्थापयेच्च तत्रेत्येवं ध्यानं विदन्ति तत्त्वविदः।
सत्तामात्रं शुद्धं नित्यमपि निरंजनं च यत्प्रोक्तम्।।327।।
तत्प्रविचिन्त्य च तस्मिंश्चित्तलयः स्यात्समाधिरुद्दिष्टः।
अष्टांगैरिति कथितैः पुनराशुनिगृह्यतेऽरिरात्मविदा।।328।।

प्रत्याहार – चिदात्मा के साथ ऐक्यतापूर्वक प्राण के माध्यम से इन्द्रियों का विषयों से उपसंहार कर लेने का नाम प्रत्याहार है। **धारणा** – तत्त्वज्ञों ने कहा है कि चैतन्य युक्त प्राण का ज्ञेय भूता पृथिवी आदि पंच तत्त्वों या अन्य किसी ध्यनोपयोगी विषय के स्थान पर स्थापना करने की क्रिया का नाम धारणा है। **ध्यान** – तत्त्ववेत्ता योगियों का कहना है कि जो जिस साधक के मन में जिस देवता आदि के प्रति सम्यक् भाव है उस जापक साधक का उस मन को उसी देवता आदि में स्थापित करने को ध्यान कहते हैं। **समाधि** – जिस आत्मा परमात्मा को नित्य शुद्ध निरंजन सत्तामात्र स्वरूप कहा गया है उस में चित्त का लय हो जाना समाधि है, ऐसे शास्त्रों में उपदिष्ट है। आत्मवेत्ता के द्वारा वासनावशात् उपस्थित शत्रु (राग, द्वेषादि) को कथित अष्टांगों के ही अभ्यास द्वारा पुनः निग्रह कर लिया जाता है।(325-328)

अथवा – 3. तीसरी विधि –

अथवा शोषणदाहनप्लावनभेदेन शोधिते देहे।
पंचाशद्भिर्मात्राभेदैर्विधिवत्समानयेत्प्राणान्।।329।।

शोषण, दाहन, प्लावन और भेदन के द्वारा शोधित शरीर में 50 मात्रा रूपी वर्ण भेद के द्वारा विधिवत् प्राणों को समता भाव में ले आयें।(329)

पंचाशदात्मकोऽपि च कलाप्रभेदेन तार उद्दिष्टः।
तावन्मात्रा यमनात्कलाश्च विधृता भवन्ति तत्त्वविदः।।330।।
पूर्वं त्विडया वदने विचिन्तयेद् धूम्रमालिनं बीजम्।
तेनागतेन देहं प्रशोषयेत्सान्तराधिकारचरणम्।।331।।

पिंगलया प्रतिमुंचेत्तथैव काशनिभेन रक्तरुचा।
प्रतिदह्य पूर्वविधिना मुंचेन्नैशाकरेण सुसितेन।।332।।

पूर्व में 50 कलाओं का प्रभेद युक्त प्रणव का उपदेश दिया गया है। तत्त्ववित् द्वारा उतनी मात्राओं का संयमन करने से कलायें धारित होंगी। इसके लिये पहले साधक अग्निबीज (रं) से इड़ा द्वारा पूरक करते हुये मुख में चिन्तन करें। उसके द्वारा प्राप्त तेजोमय शक्ति से सान्तरधिकार पर्यन्त देह को सुखाये (सूखने की भावना करें) तत्पश्चात् पिंगला द्वारा रेचक करते हुए छोड़ें, कैसे? पूर्वविधि से ही रक्तरंग (लाल रंग) युक्त प्रकाशसदृश प्राण द्वारा जलाकर सफेद प्रकाश सदृश (निर्मल) होने की भावना करते हुये प्राण को छोड़ें।(330-332)

सम्पूरयेत्सुधामयजलशीकरवर्षिणा तनूं सकलाम्।
निर्माय मानसेन च परिपूर्णमनाश्चिरं भूयात्॥333।।

पूरक करते हुए भावना करें की आप अमृतमय जल के बौछार से एक मानस नये पूरे शरीर का निर्माण करके परिपूर्णमनवाला होकर चिरकाल रहे।(333)

सुजीर्णमितभोजनः सुखसमाप्तनिद्रादिकः, सुशुद्धतलसद्गृहेविरहिते च शीतादिभिः।
पटाजिनकुशोत्तरे सुविशदे च मृद्वासने, निमीलितविलोचनः प्रतिविशेत्सुखं प्राङ्मुखः॥334।।

सम्यक् प्रकार मितभोजन पच गया हो, सुखपूर्वक निद्रादि विश्राम समाप्त हो गया हो, शीतादि रहति सुशुद्धफर्शयुक्त घर में कुशासन + मृगादिचर्मासन + वस्त्रासन पर अथवा मिट्टी के ही एक थोड़ा ऊँचा चबूतरा जैसा बना हुआ आसन पर पूर्वाभिमुख होकर ध्यानानुकूल पद्मासन आदि किसी भी आसन में बैठकर आँखें बन्द करके भीतर प्रवेश करें अर्थात अन्तर्मुख होवें।(334)

प्रसारितं वामकरं निजांके निधाय तस्योपरि दक्षिणं च।
ऋजुः प्रसन्नोऽवहितेन्द्रियः सन्नाधारमत्यन्तसमं स्मरेत्स्वम्।।335।।
तन्मध्यगतं प्रणवं प्रणवस्थं बिन्दुमपि च बिन्दुगतम्।
नादं विचिन्त्य तारं यथा बहूच्चार्य तन्नयेत्सुषुम्नान्तम्॥336।।

अपने गोदी में बायें हाथ को रखके उसके ऊपर दाहिने हाथ को रखें। शरीर को सीधे व तनावराहित स्थिर कर संयमित इन्द्रियवाला होकर योगी मूलाधार का अच्छी तरह से स्मरण करें तत्पश्चात् उसके बीच में स्थित प्रणव को, उसके भी बीच में स्थित बिन्दु को व बिन्दुगत नाद - इस प्रकार तत्रस्थ प्रणव का चिन्तन करके उतने देर तक कई बार उच्चारण करें जब तक सुषुम्ना में प्रवेश न हो जायें।(335-336)

तन्मध्यगतं शुद्धं शब्दब्रह्मातिसूक्ष्मतन्तुनिभम्।
तेजःस्मरेच्च तारात्मकमपि मूलं चराचरस्य सदा।।337।।

उसके भी बीच में चराचर जगत् का मूल तारात्मक (प्रणवरूपी) होने पर भी जो वास्तव में शब्द ब्रह्म है अत्यन्त सूक्ष्म तन्तु (धागे) या रश्मि के सम्पन प्रकाश है उसका सदा स्मरण करें।(337)

ॐकारो गुणबीजं प्रणवस्तारो ध्रुवश्च वेदादिः।
आदिरुमध्यो मपरो नामास्य त्रिमात्रकश्च तथा।।338।।

तीन मात्रावाला जिसके आदि में अ, मध्य में उ और अन्त में म मात्रा है जिसका ये अनेक नाम हैं – ॐकार, गुणों का बीज, प्रणव, तार, ध्रुव और वेदों का आदि।(338)

अस्य तु वेदादित्वात्सर्वमनूनां प्रयुज्यतेऽथादौ।
योनिश्च सर्वदेहे भवति च स च ब्रह्मसर्वसंवादः।।339।।

यह वेदों का भी आदि होने से सकल मन्त्रों के आदि में प्रयोग किया जाता है। सकल देह में वह योनि (बीज यानि कारण) रूप से स्थित है और वह ब्रह्म यानि वेद तथा ब्राह्मणों के सकल संवाद का मुख्य विषय है।(339)

ऋक्च तदाद्यादिः स्यात्तन्मध्यान्तं यजुश्च मान्तादिः।
सामादि तस्य भेदा बहवः प्रोक्ता हि वेदलोकेषु।।340।।

अकारमात्रा में ऋग्वेद को आद्यादि (स्वरवर्ण), उकार में यजुर्वेद को तन्मध्यान्त (स्पर्शवर्ण) और मकार में सामवेद को यान्तादि का ध्यान करें क्योंकि उसके बहुत भेद वेदों में भी कहा गया है।(340)

उच्चार्योच्चार्य च तं क्रमान्नयेदुपरि षड्द्वयान्तान्तम्।
मनसा स्मृते यदाऽस्मिन्मनो लयं याति तावदभ्यसेत्।।341।।

बार-बार उच्चारण करके द्वादशान्त पर्यन्त उसको क्रमशः ऊपर ले जायें। मन से स्मरण बार-बार करें तब तक जब तक उसी में लीन नहीं हो जायें।(341)
अथवा –4. चौथी विधि–

अथवा बिन्दुं वर्तुलमावर्तैस्त्रिभिरुपेतमेवमिव।
प्रोतं रविबिम्बेन च समभ्यसेत्स्रुतसुधामयं तेजः।।342।।
अपमृत्युरोगपापजिदचिरेण नृणां सिद्धिदो योगः।

तीन आवर्तों से युक्त गोलाकर बिन्दु को सूर्यप्रकाश से ओत-प्रोत व टपकता हुआ अमृतमय तेज के रूप में अभ्यास (चिन्तन) करें। ऐसी अभ्यास से

अपमृत्यु, रोग, सकलपाप को जीतकर शीघ्र ही उस साधक के लिये योग सिद्धिदायक होता है।(342-343) अथवा -

5. पांचवीं विधि -

अथवा मूलाधारे स्थिता प्रभा विसर्पिभेदतन्तुनिभा।।343।।
वदनामृतकरबिम्बं स्यूताध्याताऽमृताम्बुलवलुलिता।
स्थावरजंगमविषहृद्योगोऽयं नात्र सन्देहः।।344।।

मूलाधार में स्थित फैलने के स्वभाववाले रश्मियों के सदृश प्रभा जो कि ओत प्रोत व सम्यक् आध्यात अमृतमय जलबिंदुओं से युक्त है ओर सुखामृत को तेजोमय करता है तथा स्थवर जंगम के अन्तर्वर्ति जहर को नष्ट करनेवाला है, ऐसा यह योग है, इसमें संशय नहीं।(343-344) अथवा -

6. छठी विधि -

अथवा त्रिवल्यबिन्दुगाधाम प्रणवेन समुन्नयेदूर्ध्वम्।
पीतोर्णातन्तुनिभं सौषुम्नेनैव वर्त्मना योगी।।345।।
तसिमन्निधाय चित्तं विलयं गमयेद्दिनेशसंख्याते।
पुनरावृत्तिहीनं निर्वाणपदं व्रजेत्समभ्यासात्।।346।।

त्रिवल्य यानि तीन अवयववाला, बिन्दुगधाम (बिन्दु में है विश्राम स्थान जिसका ऐसे धाम) में सुषुम्ना के मार्ग से योगी प्रणवाभ्यास के द्वारा पीले रंग से चमकीले धागें के सदृश चित्त को उस (धाम में) बारहवें चक्र में विलीन करें। इसका सम्यक् अभ्यास करने से पुनरावृत्ति से रहित निर्वाण पद को वह योगी प्राप्त करेगा।(345-346) अथवा -

7. सातवीं विधि -

अथवादिबीजयोः पुनरुमपि विशेषमपि संहरेद् बिन्दौ।
बिन्दुं नादे तमपि च शक्तौ शकितं तथैव शान्ताख्ये।।347।।
तेजस्यनन्यगे चिति निर्द्वन्द्वे निष्कले सदानन्दे।
सूक्ष्मे च सर्वतोमुखकरपदनयनादिलक्षणेऽलक्ष्ये।।348।।
स्वामिनि संहृत्यैवं करणेन्द्रियवर्गनिर्गमापेतः।
प्रविलीनपुण्यपापो निरुच्छ्वसन् ब्रह्मभूत एव स्यात्।।349।।

आदि बीज अकार और उकार (सामान्य) को उकार विशेष में, उस उकार विशेष को मकार रूपी बिन्दु में, बिन्दु को नाद में, नाद को शक्ति में, शक्ति को शान्ताख्य तेज में विलीन करें। वह तेज क्या है - वह अनन्यग, चैतन्य,

सर्वद्वन्द्वरहित, निष्कल, सदानन्द स्वरूप, सूक्ष्म, सर्वत मुख-हाथ-पैर-आँख आदि से युक्त, फिर भी अलक्ष्य, स्वामी है। ऐसा सकल करण और इन्द्रियों का अविषयभूत आत्मा में विलीन करके वह योगी सकल पुण्य-पाप रहित होकर ब्रह्मभूत होता है। अतः श्वास-प्रश्वास से रहित होता है।(347-349) अथवा -

8. आठवीं विधि -

अथवा योगोपेताः पंचावस्थाः क्रमेण विज्ञाय।
ताभिर्युंजीत सदा योगी सद्यः प्रसिद्धये मुक्तेः।।350।।

योग से युक्त पाँच अवस्थाओं को जानकर क्रमश उनसे मुक्त होकर योगी सदा सद्योमुक्ति को प्राप्त कर लेता है।(350)

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुरीयास्तदन्तिके च तास्तासु।
स्वैरिन्द्रियैर्यदात्मा भुंक्ते भोगान्स जागरो भवति।।351।।
संज्ञारहितैरपि तैरस्यानुभवो भवेत्पुनः स्वप्नः।
आत्मनिरुद्धयुक्ततया नैराकुल्यं भवेत्सुषुप्तिरपि।।352।।
पश्यन्ति परं यदात्मा निस्तमसा चेतसा तुरीयं तत्।
आत्मपरमात्मपदयोरभेदतो व्याप्नुयाद्यदा योगी।।353।।
तच्च तुरीयातीतं तस्यापि भवेन्न दूरतो मुक्तिः।

वे पाँच अवस्था के नाम व लक्षण इस प्रकार है - जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय और तुरीयातीत। उनमें इन्द्रियों द्वारा जितने समय विषयों का भोग करता है उतने काल का नाम जाग्रत है। इन्द्रियों की चेतनता के विना ही केवल अन्तरिन्द्रिय से जितने समय विषयों का भोग करता है उतने काल का नाम स्वप्न है। बहिरिन्द्रिय और अन्तरिन्द्रिय दोनों के बिना ही निराकुल रहकर आत्मा अज्ञान व सुख का अनुभव करता है जितने समय तक उस समय का नाम सुषुप्ति है। अज्ञान रहित चित्त से जब आत्मा पर तत्त्व का अनुभव करता है वह तुरीय है। आत्मा और परमात्मा का अभेदरूप से व्याप्त यानि अनुभूतिस्वरूपता का ही अनुभव हो तब वह योगी स्वरूपप्रतिष्ठ है, यह तुरीयातीत है, ऐसे योगी को मुक्ति दूर नहीं होती है।(351-354) अथवा -9. नौवीं विधि -

अथवा सूक्ष्माख्यायां पश्यन्त्यां मध्यमाख्यावैखर्योः।।354।।
ससुषुम्नाग्रगयोरपि युंज्याज्जाग्रदादिभिः पवनम्।
बीजोच्चारो जाग्रद्बिन्दुः स्वप्नः सुषुप्तिरपि नादः।।355।।
शक्त्यात्मकं तुरीयं शान्तं लय आत्मनस्तुरीयान्तम्।

सूक्ष्मशब्दरूपी पश्यन्ती में मध्यमा और वैखरी जो सुषुम्ना के अग्र में होते हैं, उन्हें जाग्रदादि के द्वारा प्राण को लेकर युक्त करें। बीजोच्चार पूर्वक जाग्रद् को बिन्दु में, स्वप्न और सुषुप्ति को नाद में, शक्ति को तुरीय में और अन्त में शान्तता में आत्मा (जीवात्मा) लय को ही तुरीयातीत जाने।(354–356)

अंगुष्ठगुल्फजानुद्वितयं च गुदं च सीवनी मेढ्रम्।।356।।
नाभिर्हृदयं ग्रीवा स लम्बिकाग्रं तथैव नासा च।
भ्रूमध्यललाटाग्रं सुषुम्नाग्रं द्वादशान्तमित्येवम्।।357।।

द्वादशान्त किसको कहते हैं – दो अंगूठे, दो टखना, दो घुटना, गुदा, सीवनी, मेढ्र, नाभि, हृदय, ग्रीवा, लम्बिकाग्र, नासा और भ्रूमध्य जो ललाटाग्र है।(356–357)

उत्क्रान्तौ परकायप्रवेशने चागतौ च पुनः स्वतनौ।
स्थानानि धारणायाः प्रोक्तानि मरुत्प्रयोगनिपुणैः।।358।।
स्थानेष्वेष्वात्ममनःसंयोगसमीकरणकर्मणोऽभ्यासात्।
अचिरेणोत्क्रान्त्याद्या भवन्ति संसिद्धयः प्रसिद्धतराः।।359।।

उत्क्रमण (मरण), परकायप्रवेश और अपने शरीर में लौटना – इन क्रिया विशेषों के समय धारणा के स्थान और प्राण प्रयोग के विधि को जाननेवाले निपुण योगियों ने कहा है कि जिन स्थानों में आत्म–मन का संयोग रूपी समीकरणकर्म के अभ्यास से शीघ्र ही उत्क्रान्त्यादि प्रसिद्ध होती हैं कि उन स्थानों में ही धारणा करनी चाहिये।(358–359)

कण्ठे भ्रूमध्ये हृदि नाभौ सर्वांगके स्मरेत्क्रमशः।
लवरसमीरहवर्णैरनिलममाकालवं च नेयं स्यात्।।360।।
अवनिजलानलमारुतविहायसां शक्तिभिश्च तद्बीजैः।
सारूप्यमात्मनश्च प्रति नीत्वा तत्तदाशु जयति सुधीः।।361।।

वे स्थान हैं – कण्ठ, भ्रूमध्य, हृदय, नाभि और सर्वांग में क्रमशः पृथिवी, जल, अग्नि, वायु ओर आकाश तत्त्वों की उनके बीजमंत्रों के साथ [लं, वं, रं, (समीर) यं, हं] शक्तियों सहित धारणा करें। आत्मा के सारूप्यता के प्रति ले जाकर तत्तद् भूतों को जीत लेता है बुद्धिमान योगी।(360–361)

एवं प्रोक्तैर्योगैराद्यौ जयतोऽन्वहं तथाऽऽत्मानम्।
अचिरेण भवति सिद्धिः समस्तसंसारमोचनी नित्या।।362।।

पूर्वोक्त 9 प्रकार के योगसाधनाओं के द्वारा प्रणव के आदि दो मात्राओं (अ और उ) पर विजय को प्राप्त करते हुये अहं और आत्मा रूपी पर विषय को प्राप्त कर शीघ्र ही समस्त संसार से मुक्त करानेवाली सिद्धि प्राप्त होती है।(362)

इति योगमार्गभेदैः प्रतिदिनमारूढयोगयुक्तधिया।
सिद्धय उपलभ्यन्ते मुक्तिपुरीसम्प्रवेशनद्वारा॥363।।

इस प्रकार योग के विभिन्न मार्ग भेदों द्वारा नित्य निरन्तर अभ्यास कर योग पर आरूढ़ व युक्त बुद्धि द्वारा मुक्तिपुरि में प्रवेश के माध्यम से सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।(363)

कल्पः पुलकानन्दौ वैमल्यस्थैर्यलाघवानि तथा।
सकलप्रकाशवित्तेत्यष्टावस्थाःप्रसूचिकाः सिद्धेः॥364।।
त्रैकाल्यज्ञानेहे मनोज्ञताच्छन्दतो मरुद्रोधः।
नाडीसंक्रमणविधिर्वाक्सिद्धिर्देहतश्च देहाप्तिः॥365।।
ज्योतिःप्रकाशनं चेत्यष्टौ स्युः सिद्धयः प्रयोगयुजः॥366।।
अणिमा महिमा च तथा गरिमा लघिमेशिता वशित्वं च।
प्राप्तिः प्राकाम्यं चेत्यष्टैश्वर्याणि योगयुक्तस्य॥367।।

सिद्धि के सूचक 8 अनुभव हैं - कम्प, पुलकितता, आनन्द, निर्मलता, स्थैर्य, लाघव (हल्कापन), सकलप्रकाश और सकलवित् (सकल विषयक ज्ञान)। 8 प्रकार की सिद्धियाँ जो प्राप्त होते हैं वे इस प्रकार हैं - त्रैकालिकज्ञान, त्रैकालिक ईहा (चेष्टा, कर्म), मनोज्ञता, स्वेच्छापूर्वक वायु रोकना, नाड़ी संक्रमण विधि, वाक्सिद्धि, एक देह से दूसरे देह की प्राप्ति (परकायप्रवेश) और ज्योति का प्रकाशन अथवा अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, ईशिता, वशिता, प्राप्ति ओर प्राकाम्य - ये 8 ऐश्वर्य योगयुक्त को प्राप्त होते हैं।(364-367)

अष्टैश्वर्यसमेतो जीवन्मुक्तः प्रवक्ष्यते योगी।
योगानुभवमहामृतरसपानानन्दनिर्भरः सततम्॥368।।

अष्ट ऐश्वर्य से युक्त योगी को जीवन्मुक्त कहते हैं क्योंकि वह योगानुभव जन्य महामृतरस का पान कर सतत आनन्द से परिपूर्ण होता है।(368)

इत्येवं प्रणवविधिः समीरितोऽयं, भक्त्या तं प्रभजति यो जपादिभेदैः।
स प्राप्नोत्यनुततनित्यशुद्धबुद्धं, तद्विष्णोः परमतरं पदं नराग्र्यः॥369 ।।

इस प्रकार प्रणव का यह विधि सम्यक् प्रकार से कह दिया गया है। उसको जो जपादिभेद से भक्तिपूर्वक भजता है (अभ्यास करता है) वह नरश्रेष्ठ निश्चितरूप से व्यापक नित्य शुद्ध बुद्ध उस विष्णु के परमतर पद को प्राप्त करता है। (369)

अकारश्च उकारश्च मकारो बिन्दुरेव च।
अर्धचन्द्रो निरोधी च नादो नादान्त एव च।।370।।
कौण्डली व्यापिनी शक्तिः समनाश्चेति सामयाः।
निष्कलं चात्मतत्त्वं च शक्तिश्चैव तथोन्मना।।371।।

अकार, उकार, मकार, बिन्दु, अर्धचन्द्र, निरोधिनी, नाद, नादान्त, कौण्डली, व्यापिनी, शक्ति ओर समना - ये सामय है। जो निरामय है वे हैं - निष्कल आत्मतत्त्व, शक्ति और उन्मना।(370-371)

साभासं तन्निराभासं परतत्त्वमनुत्तमम्।
श्षट्त्यागात्सप्तमं प्रोक्तं लयमालयमुत्तमम्।।372।।

वह आत्मतत्त्व साभास और निराभास (भेद से जाना जाता है) तथा वह अनुत्तम परतत्त्व है। छः को त्यागने से जो सातवाँ है वह सर्व लयात्मक सर्वोत्तम आलय है।(372)

तत्र सर्वे प्रलीनास्तु तत्समास्तत्प्रसादतः।
तच्छक्तिबृंहिताः शाक्ताः परिपूर्णा भवन्ति हि।।373।।

उसमें सब प्रलीन होने पर सब उसके समान होते हैं। उसकी और उसकी शक्ति की कृपा से उपोद्बलित शाक्त भी परिपूर्ण हो जाते हैं। (373)

क्रमं तेषां प्रवक्ष्यामि लीयन्ते सुरसुन्दरि।
अकारं ब्रह्मदैवत्यं हृदयं यावदध्वनि।।374।।
कलाष्टकेन संयुक्तं कलयेत्सर्वजन्तुषु।
सिद्धिर्ऋद्धिर्धृतिर्लक्ष्मीर्मेधाकान्तिधृतिः स्वधा।।375।।

हे सुरसुन्दरी! मैं इनके लय का क्रम को बताता हूँ। ब्रह्मदेवताक अकारमात्रा सकलजन्तुओं में आठ कलाओं से युक्त होकर कुण्डलिनी के मार्ग में हृदय पर्यन्त देश को धारण करता है। वे आठ कलायें हैं - सिद्धि, ऋद्धि, धृति, लक्ष्मी, मेधा, कान्ति, धृति और स्वधा।(374-375)

सद्यो ब्रह्मकला एताः पश्चिमं व्याप्य संस्थिताः।

ये ब्रह्माजी के कलायें भूः (पृथिवी तत्त्व) को व्याप्तकर संस्थित हैं।(376)

जरा रक्षा रतिः पाल्या काम्या तृष्णा मतिः क्रिया।।376।।

वृद्धिर्माया च नाडी च भ्रामणी मोहिनी तथा।
वामदेवकला ह्येता वैष्णवांशे व्यवस्थिताः॥377।।
कण्ठान्तं यावत्तद्व्याप्तमापो व्याप्य स्थितास्त्विमाः।

उकारमात्रा विष्णुदेवाताक (सकलजीवों में निम्न 13 कलाओं से युक्त होकर) हृदय से कण्ठपर्यन्त भुवः (जलतत्त्व) को व्याप्त कर स्थित हैं। कामदेव की वे कलाये हैं – रजा, रक्षा, रति, पाल्या, काम्या, तृष्णा, मति, क्रिया, वृद्धि, माया, नाड़ी, भ्रामणी, मोहिनी।(376–378)

तमो मोहा क्षुधा निद्रा मृत्युर्माया भयं जरा।।378।।
अघोरस्य कला ह्येता रौद्रांशे तु व्यवस्थिताः।
ताल्वन्तं यावत्तद्व्याप्तं तैजसी व्यरप्तिरुत्तमा॥379।।

मकारमात्रा रुद्रदेवताक (8 कलाओं से युक्त होकर सभी जीवों में) कण्ठ से तालुपर्यन्त स्वः (तेजस्तत्त्व यानि) अग्नि को व्याप्त कर स्थित हैं। अघोर रुद्र के वे कलायें हैं – तमः, मोह, क्षुधा (भूख), निद्रा, मृत्यु, माया, भय और जरा। (378–379)

निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्या शान्तिस्तथैव च।
पुरुषस्य कला ह्येता ईश्वरे तु व्यवस्थिताः।।380।।
वाय्वावरणमाश्रित्य बिन्द्वन्तं यावदुज्ज्वलाः।
शान्त्यवस्था तु तुर्याख्या नादान्ते सम्प्रचक्ष्महे।।381।।

वायुतत्त्वरूपी ईश्वर में व्यवस्थित पुरुष की कलायें हैं – निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या और शान्ति। ये वाग्रूपी आवरण को आश्रय करके तालु से बिन्दु पर्यन्त व्याप्त होकर व्यवस्थित उज्ज्वल कलायें हैं।(380–381)

व्याप्तिः सादाशिवी सा तु व्योमाख्या शून्यरूपिणी।
तारा सुतारा तरणी तारयन्ती सुतारिणी॥382।।
द्वादशान्तपदारूढास्तु कलाः स्मृताः।
ईशानस्य कला ह्येताः पंच वै कारणात्मिकाः।।383।।

तुर्या नाम की शान्त्यवस्था के विषय में नादान्त का प्रकरण में मैं कहूंगा। आकाशतत्त्वरुपी (शून्यरूपिणी) आवरण को आश्रय करके बिन्दु से ऊपर व्याप्त है। व्याप्ति शिव की कला हे सदाशिवी! तथा ईशान के 5 कलायें कारणात्मिका हैं।

उन्हें तुर्यान्त के कलायें माने गये हैं। वे द्वादशान्त पर आरूढ़ है। वे कलायें हैं – तारा, सुतारा, तरणी, तारयन्ती और सुतारिणी।(382–383)

स्थूलस्त्वेवं समाख्यातो ह्यध्वा वै ब्रह्मभूतजः।
सूक्ष्मं चैवमतो वक्ष्ये ह्यध्वानं तु यथास्थितम्।।384।।

इस प्रकार ब्रह्मभूतज स्थूल अध्वा की व्याख्या समाप्त हुई। सूक्ष्म अध्वा जैसा स्थित है वैसे अब मैं कहूँगा।(384)

यश्चार्धचन्द्रः कथितः प्लावको बिन्दुमूर्धनि।
तच्छक्त्यामृतमुद्दिष्टं कलायुक्तं महेश्वरि।।385।।

हे महेश्वरी! जो प्लावक अर्धचन्द्र बिन्दु के ऊपर कहा गया है, उसकी शक्ति से कलायुक्त अमृत उद्दिष्ट है।(385)

ज्योत्स्ना ज्योत्स्नावती चैव सुप्रभा विमला शिवा।
अर्धचन्द्रकला ह्येताः सर्वज्ञपदसंस्थिताः।।386।।
विद्यावरणसम्बद्धा मन्त्रकोटिविभूषिताः।

सर्वज्ञपद पर आरूढ़, विद्यारूपी आवरण से सम्बद्ध मन्त्रकोटी से विभूषित अर्धचन्द्र की ये कलायें हैं – ज्योत्सना, ज्योत्स्नावती, सुप्रभा, विमला और शिवा।(386–387)

क्रियाशक्तिस्वरूपास्तु संस्थिता विमलाः शुभाः।।387।।
रुन्धनी रोधनी रौद्री ज्ञानबोधा तमोपहा।
निरोधिका कला ह्येताः सर्वदेवनिरोधिकाः।।388।।

क्रियाशक्ति स्वरूपा, अत्यन्त विमल और शुभ निरोधिका की ये कलायें हैं– रुन्धनी, रोधनी, रौद्री, ज्ञानबोधा और तमोपहा।(387–388)

नित्य तृप्ता महाभागा वामाशक्तिस्वरूपकाः।
इन्धिका दीपिका चैव रोचिका मोचिका तथा।।389।।
ऊर्ध्वगामिन्य इत्येताः कला नादसमुद्भवाः।
एताः स्वतन्त्रतायुक्ताः सकले निष्कले स्थिताः।।390।।

नाद से उत्पन्न नित्यतृप्त महाभागा उर्ध्वगामिनी वामा शक्तिस्वरूपा ये कलायें हैं – इन्धिका, दीपिका, रोचिका और मोचिका। ये स्वतन्त्रता से युक्त सकल और निष्कल में स्थित रहती हैं।(389–390)

कुण्डलाख्या महाशक्तिस्तृतीयाप्युपचर्यते।
ध्वनिरूपो यदा स्फोटस्त्वदृष्टाच्छिवविग्रहात्।।391।।

प्रसरत्यतिवेगेन ध्वनिना पूरयन् जगत्।
स नादो देवदेवेशः प्रोक्तश्चैव सदाशिवः।।392।।

क्रिया शक्ति और वामाशक्ति की अपेक्षा तीसरी शक्ति कुण्डल नामकी महाशक्ति औपचारिकरूप से मानी गई है। इस महाशक्ति के कारण अदृष्ट शिवस्वरूप से ध्वनि रूप स्फोट जब अतिवेग से ध्वनि के माध्यम से ही पूरे जगत् को व्याप्त करते हुये फैलती है तब उस ध्वनि रूप स्फोट को ही 'नाद' कहते हैं, उसी को देवदेवेश और सदाशिव शब्द से भी कहते हैं।(391-392)

ध्वनिरध्वगतो यत्र विश्राम्यत्यनिरोधितः।
निरोधिनीतिविख्याता सर्वदेवनिरोधिका।।393।।

अध्वगत ध्वनि विना अवरोधक के जहाँ विश्राम को प्राप्त होवे उसे ही 'निरोधिनी' कहते हैं। क्योंकि वह सर्वदेव निरोधिका है।(393)

निरुद्धस्य महेशत्व-महिमा न प्रवर्तते।
असंख्यातास्तु कोट्यो वै मन्त्राणां तत्र संस्थिताः।।394।।

उस निरुद्ध अवस्था में महेशत्व की यानि इसमें संस्थित मन्त्रों की असंख्य कोटी महिमा प्रवृत्त नहीं होती।(394)

लभन्ते तत्प्रविष्टा वै स बिन्दुश्चेश्वरः स्मृतः।
यदा शिवामृतं मूर्ध्नि पतति सृष्टिकारणम्।।395।।
आप्यामस्तु भवेत्तेन सोऽर्धचन्द्र इति स्मृतः।
संहारः सर्वभूतानां सृष्टिकारणमेव च।।396।।
मकारो ह्यत्र वै रुद्रो वर्णसंघट्ट उत्तमः।
यदा स्थितिं च लभते स्वोन्मुखं सृष्टिकारणम्।।397।।
प्रतिष्ठाख्य उकारस्तु विष्णुः साक्षाद्भवत्यसौ।
निवुत्तिस्तु यदा सर्वं निष्पन्नं प्रणवं विभु।।398।।
अकाराख्यं परं धाम ब्रह्म च कमलासनः।
मन्त्रसृष्टिर्भवेदेषा शिवस्य परमात्मनः।।399।।

उसमें प्रविष्ट होकर जिस स्वरूप का लाभ होता है उसी को 'बिन्दु' कहते हैं, वह ईश्वर है, सृष्टि के कारण भूत तत्त्व है। जब शिवामृत सिर पर गिरता है (बिन्दुविसर्ग चक्र से टपकता है) तब उससे जो स्थूलता होती है, उसे 'अर्धचन्द्र' नाम से कहा गया। जब सकलभूतों का संहार पूर्वक सृष्टि का कारण स्वरूप होता है तब वह 'मकार' है, रुद्रदेवताक और वर्णों का संघट्ट स्वरूप है। जब स्वोन्मुख सृष्टि का

कारण स्वरूप को स्थिति भाव का लाभ होता है तब वह 'उकार' है वह साक्षात् विष्णुदेवताक होता है। प्रणव का निष्पन्न व्यापक स्वरूप निवृत्त होकर 'अकार' नामक पर धाम (यह स्थूल जगत् विराट्) अभिव्यक्त होता है और वह कमलासनस्थ ब्रह्मादेवताक होता है। परमात्मा शिव का प्रणव रूपी मन्त्र की सृष्टि है। (395-399)

ततोऽष्टविधभेदेन पंचाशद्वर्णरूपिणी ।
ज्ञानशक्तिः परा सूक्ष्मा मातृकां तां विदुर्बुधाः ॥400॥

उससे आठ प्रकार का भेद से युक्त 50 वर्णरूपी ज्ञानशक्ति जो अत्यन्त सूक्ष्म व अभिव्यक्त होती है। जिसे 'मातृका' नाम से विद्वान् लोग जानते हैं।(400)

सा योनिः सर्वमन्त्राणां सर्वत्रारणिवत्स्थिता।
जुहोति वीर्यमतुलममृतं सृष्टिसंयुतम् ॥401॥

मातृका ही सकलमन्त्रों का बीज है, क्योंकि वह सर्वत्र अरणि के समान स्थित है। उस मातृका रूपी अरणि में सृष्टि से सम्बद्ध अतुल अमृतरूपी वीर्य का हवन होता है।(401)

तेनासौ देवदेवेशो ह्यमृतेशः परापरः।
मृत्योरुत्तारयेद्यस्मान्मृत्युजित्तेन चोच्यते ॥402॥

प्रणवरूप होने से (प्रणव की उपासना करनेवालों को) देवेश अमृतेश परापर परमात्मा मृत्यु से तार देता है, इसलिये उसका नाम 'मृत्युजित्' कहा गया। (402)

जीवनं सर्वभूतेषु नेत्रभूतं प्रकीर्तितम्।
समस्तमन्त्रजातस्य स्वामिवत्परमेश्वरः ॥403॥

सर्वभूतों में नेत्र अथवा प्राण को स्वामी जैसे माना जाता है वैसे समस्त मन्त्रों का स्वामी परमेश्वर प्रणव है।(403)

प्रणवः प्राणिनां प्राणो जीवनं सम्प्रतिष्ठितः।
गृह्णाति प्रणवः सर्वं कलाभिः कलयेच्छिवम् ॥404॥

प्राणियों का प्राण व जीवन के रूप में प्रणव ही प्रतिष्ठित है, क्योंकि प्रणव सबको ग्रहण करता है और कलाओं से शिव को धारण करता है।(404)

षट्प्रकारं महाध्वानं शट्कारणपदस्थितम्।
जुहोति विद्यया सर्वमुकारेण प्रचोदितम् ॥405॥

छः कारणपद में स्थित छः प्रकार के महा अध्वा संपूर्ण को उकार के द्वारा प्रेरित होकर विद्या द्वारा हवन होता है।(405)

स्वरूपं यत्स्वसंवेद्यं सम्यक्संतृप्तिलक्षणम्।
सर्वामृतपदाधारं सविसर्गं परं शिवम्॥406॥
पूर्णं निरन्तरं तेन पूर्णाहुत्या तु पूर्णया।
स्वोच्चारा या स्वभावस्था स्वस्वरूपा च स्वोदिता॥407॥
इच्छाज्ञानक्रियारूपा सा चैका शक्तिरुत्तमा।
तया प्रकुरुते नित्यं शक्तिमान्स शिवः स्मृतः॥408॥

जो स्वसंवेद्य स्वरूप, सम्यक्तृप्ति रूप सर्वामृतपदों का आधार, सविसर्ग परम शिव उससे निरन्तर पूर्ण है। स्वोच्चार रूप स्वभावस्था, स्वस्वरूपा , स्वोदिता, इच्छाज्ञानक्रियारूपा जो है वह एक ही उत्तम शक्तिरूप है। जिस उस पूर्ण शक्ति द्वारा जो शक्तिमान् नित्य सकल (पंचविध क्रिया) क्रिया करता है वह शिव है - ऐसे कहा गया है।(406-408)

उद्दीप्ताक्षरसम्बद्धं तत्त्ववर्णपदात्मकम्।
भुवनानि कलाः मन्त्राःकारणानि षडैव तु॥409॥

उद्दीप्ताक्षर सम्बद्ध तत्त्व, वर्ण, पद, भुवन, कला और मन्त्र ये ही छः कारण हैं।(409)

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्चापीश्वरश्च सदाशिवः।
शिवश्चेति स्वशक्त्या तु षट्त्यागात्सप्तमे लयः॥410॥
ज्ञानशक्तिस्वरूपास्तु ज्ञाताः सार्वज्ञ्यदायिकाः।
सूक्ष्मा चैव सुसूक्ष्मा च ह्यमृतामृतसम्भवा॥411॥
व्यापिनी चैव विख्याता शक्तिस्तत्त्वसमाश्रिताः।
अलुप्तशक्तिसम्बन्धाच्चिच्छक्तिसमधिष्ठिताः॥412॥

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर सदाशिव और शिव - इन छः को अपने शक्ति सहित त्यागने से सातवें में आश्रित ज्ञानशक्तिस्वरुपा ज्ञाता, सर्वज्ञत्वादिदायिका सूक्ष्मा और अमृतामृतसम्भवा सुसूक्ष्मा ही 'व्यापिनी' नाम से विख्यात है।(410-412)

शक्तितत्त्वे स्थिता ह्येताश्चिन्मात्रा अपि लक्षिताः।
व्यापिनी व्योमरूपा च ह्यनन्ता नाथसंज्ञिता॥413॥

शक्तितत्त्व में स्थित ये चिन्मात्र के रूप से भी लक्षित हैं, आकाशरूप है, अनन्त है ओर 'नाथ' संज्ञा से व्यापिनी लक्षित है।(413)

अनाश्रिता महेशानि व्यापिन्यस्तु कलाः स्मृताः।
सर्वज्ञा सर्वगा दुर्गा सवना स्पृहणा धृतिः॥414॥

समना चेति विख्याता एताः शिवकलाः स्मृताः।
इच्छाशक्तिमधिष्ठाय इच्छासिद्धिप्रदायिकाः॥415॥
शिवतत्त्वं समाश्रित्य सुसम्पूर्णार्णवप्रभाः।
अनन्तशक्तिसंस्थानाः सूक्ष्माश्चात्यन्तनिर्मलाः॥416॥

हे महेशानी! व्यापिनी की कलाओं को अनाश्रित ही माने गये हैं। अतः उन्हें शिव की ही कला मानी गई है। वे कलाये हैं - सर्वज्ञा, सर्वगा, दुर्गा, सवना, स्पृहणा, धृति ओर समाना - इस प्रकार सुप्रसिद्ध हैं। ये सब इच्छासिद्धिप्रदायिका हैं, शिवतत्त्व को आश्रयकर व इच्छाशक्ति को अधिष्ठित करके सूक्ष्म है, अनन्तशक्ति संस्थानरूपा और अत्यन्त निर्मल है।(414-416)

क्षेत्रपालात्मकं मन्त्रं मन्त्रमापन्निवारकम्।
सूते मातंगिनीविद्यां सिद्धविद्याशुभोदयाम्॥417॥

ये क्षेत्रपालात्मकमन्त्र, आपन्निवारणमन्त्र, मातंगिनीविद्या, सिद्धविद्या और शुभोदयविद्या को जन्म देती है अर्थात् इससे उत्पन्न होते हैं।(417)

अनेन क्रमयोगेन गुणिता शिववल्लभा।
षट्त्रिंशतं च तत्त्वानां(नि)शैवानां(नि)रचयत्यसौ॥418॥

इस क्रमयोग से गुणित होकर शिववल्लभा शक्ति शैवमत स्वीकृत 36 तत्त्वों को रचती है।(418)

अन्यान्मन्त्रांश्च यन्त्राणि शुभदानि प्रसूयते।
द्विचत्वारिंशतां मूले गुणिता विश्वनायिका॥419॥

अन्य भी शुभफलदायक मन्त्रों को तथा यन्त्रों को भी जन्म देती है। वह विश्व को नयनकरने वाली मूल में ही 42 गुणा बढ़कर समस्त कार्यों को सम्पादन करती है।(419)

सा प्रसूते कुण्डलिनी शब्दब्रह्ममयी विभुः।
शक्तिं ततो ध्वनिस्तस्मान्नादस्तस्मान्निरोधिका॥420॥
ततोऽर्धेन्दुस्ततो बिन्दुस्तस्मादासीत्परा ततः।
पश्यन्ती मध्यमा वाचि वैखरीशब्दजन्मभूः॥421॥

शब्दब्रह्ममयी कुण्डलिनी को भी वह जन्म देती है। इस प्रकार विभु (शिव) ही स्वस्वरूप शक्ति से अभिव्यक्त किये, उससे ध्वनि, उससे नाद, उससे निरोधिका, उससे अर्धचन्द्र, आगे क्रमशः बिन्दु, परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी शब्दों की उत्पत्ति हुई।(420-421)

इच्छाज्ञानयक्रियात्माऽसौ तेजोरूपा गुणात्मिका।
क्रमेणानेन सृजति कुण्डली वर्णमालिकाम्।।422।।

यह शक्ति इच्छा-ज्ञान-क्रिया स्वरूपा है। तेजोमयी और त्रिगुणत्मिका होने से क्रमशः यह कुण्डलिनी शक्ति ही वर्णमालिका को उत्पन्न करती है।(422)

अकारादिसकारान्तां द्विचत्वारिंशदात्मिकाम्।
पंचाशद्वारगुणितां पंचाशद्वर्णमालिकाम्।।423।।

अकारादि सकारपर्यन्त 42 वर्णात्मक शक्ति को 50 बार गुणित (सन्ध्यक्षर और संयुक्ताक्षर) करने पर 50 वर्णमालिका हो गई (अर्थात् 42 की संख्या से 50 तक बढ़ाने के लिये कुछ वर्णों को गुणित किया गया)।(423)

सूते तद्वर्णतोऽभिन्ना कला रुद्रादिकान् क्रमात्।
निरोधिका भवेद्वह्निरर्धेन्दुः स्यान्निशाकरः।।424।।
अर्कः स्यादुभयोर्योगे बिन्द्वात्मा तेजसां निधिः।
जाता वर्णा यतो बिन्दोः शिवशक्तिमयादतः।।425।।
अग्निसोमात्मकास्ते स्युः शिवशक्तिमयाद्रवेः।
येन सम्भवमापन्नाः सोमसूर्याग्निरूपिणः।।426।।

उन वर्णों से अभिन्न क्रमशः रुद्रादि कलाओं की उत्पत्ति हुई। निरोधिका हुई, वह्नि, अर्धेन्दु चन्द्र हुआ, इन दोनों का योग से अर्क हुआ, जो बिन्दुरूप है, समस्त तेजों का निधि है। जिसलिये समस्त वर्ण बिन्दु से उत्पन्न हुये हैं इसलिये सभी वर्ण शिवशक्त्यात्मक हैं, अग्निसोमात्मक हैं। क्योंकि शिवशक्तिमय अर्क (रवि) से उत्पत्ति को प्राप्त हुये हैं, इसलिये ये सब वर्ण सोमसूर्याग्निरूप हैं।(424-426)

ततो व्यक्तिं प्रवक्ष्यामि वर्णानां वदने नृणाम्।
प्रेरिता मरुता नित्यं सुषुम्णारन्ध्रनिर्गताः।।427।।
कण्ठादिकरणैर्वर्णाः क्रमादाविर्भवन्ति ते।
एषु स्वराः स्मृताः सौम्याः स्पर्शाः सौराः शुभोदयाः।।428।।

मनुष्यों के मुख में वर्णों की अभिव्यक्ति के बारे में मैं बताऊंगा। वायु से प्रेरित होकर सुषुम्ना का छिद्र से निकलकर कण्ठ आदि (स्थानरूपी) साधनों से क्रमशः वर्ण अभिव्यक्त होते हैं। उनमें स्वरों को सौम्या (सोम सम्बन्धी), स्पर्शवर्णो को सौरा (सूर्य सम्बन्धी) कहे गये हैं।(427-428)

आग्नेया व्यापका: सर्वे सोमसूर्याग्निदेवता:।
स्वरा: षोडश विख्याता: स्पर्शास्ते पंचविंशति:।।429।।

शेष सभी व्यापक वर्ण आग्नेय कहे गये हैं। इस प्रकार वर्ण सूर्य-सोम-अग्नि देवतावाले हैं। स्वर 16, स्पर्श 25।(429)

तत्त्वात्मान: स्मृता: स्पर्शा मकार: पुरुषो यत:।
व्यापका दश ते कामधनधर्मप्रदायिन:।।430।।

25 स्पर्शों में से 24 तो तत्त्वात्मक हैं क्योंकि 25वाँ मकार पुरुष है। वे 10 (य व र ल श ष स ह क्ष त्र/ळ) काम, धन और धर्म के प्रदायक होने से उन्हें 'व्यापक' कहा गया है।(430)

ह्रस्व: स्वरेशु पूर्वोक्त: परो दीर्घ: क्रमादिमे।
शिवशक्तिमयास्ते स्युर्बिन्दुसर्गावसानका:।।431।।

स्वरों के विषय में पूर्व में किये गये वर्णन के अनुसार क्रमश: ह्रस्व और दीर्घ होते हैं, अनुस्वार और विसर्ग पर्यन्त, ये सब शिवशक्तिमय होते हैं।(431)

बिन्दु: पुमान् रवि: प्रोक्त: सर्ग: शक्तिर्निशाकर:।
स्वराणां मध्यगं यच्च तच्चतुष्कं नपुंसकम्।।432।।

अनुस्वार को पुरुष और सूर्यात्मक कहा गया है, अत: विसर्ग को शक्ति और चन्द्रात्मक कहा है। स्वरों में बीच के चार (ऋ ॠ लृ ॡ) नपुंसक वर्ण माने गये हैं।(432)

पिंगलायां स्थिता ह्रस्वा इडायां संगता: परे।
सुषुम्णामध्यगा ज्ञेयाश्चत्वारो ये नपुंसका:।।433।।

पिंगला में ह्रस्ववर्ण स्थित होते हैं और दीर्घ वर्ण इड़ा में स्थित होते हैं। जो नपुंसक 4 वर्ण हैं वे सुषुम्ना के बीच में होते हैं।(433)

विना स्वरैस्तु नान्येषां जायते व्यक्तिरंजसा।
शिवशक्तिमयान् प्राहुस्तस्माद्वर्णान्मनीषिण:।।434।।

विना स्वरों की सहायता के व्यंजनों की अभिव्यक्ति अनायास नहीं हो सकता। इसलिये विद्वान लोग वर्णों को शिवशक्तिमय कहते हैं।(434)

कारणात्पंचभूतानामुद्भूता मातृका यत:।
ततो भूतात्मका वर्णा: पंच पंच विभागत:।।435।।

कारणात्मक पंचभूतों से मातृकायें उत्पन्न होती हैं (अथवा मातृकाओं से पंचभूतों की उत्पत्ति होती है) इसलिये वर्ण भूतात्मक है (कार्यकारणभाव का

अभेद होने से) पाँच-पाँच विभाग से।(435)

वाय्वग्निभूजलाकाशाः पंचाशत्त्रिपथक्रमात्।

पंच ह्रस्वाः पंच दीर्घा बिन्द्वन्ताः सन्धिसम्भवाः।।436।।

ह्रस्व 5, दीर्घ 5 और बिन्दुपर्यन्त (विसर्ग को छोड़कर) यानि अं तक 5 (अः को छोड़के)।(436)

पंचाशत्कादयः षक्षळसहान्ताः समीरिताः।

सोमसूर्याग्निभेदेन मातृकावर्णसम्भवाः।।437।।

कादि 5 वर्ग के प्रत्येक वर्ग का 5, कुल 25 तथा श ष स ह और क्ष/ळ - ये 5 एवं शेष 5 (य व र ल और अः) कुल कुल 50 वर्ण हैं जिन्हें मातृका वर्ण कहते हैं तथा इन्हें सोम, सूर्य और अग्नि भेद से कहे गये हैं।(437)

अष्टत्रिंशत्कलास्तत्तन्मण्डलेषु व्यवस्थिताः।

अमृता मानदा पूषा तुष्टिः पुष्टी रतिर्धृतिः।।438।।

शशिनी चन्द्रिका कान्तिर्ज्योत्स्ना श्रीः प्रीतिरंगदा।

पूर्णा पूर्णामृता कामदायिन्यः स्वरजाः कलाः।।439।।

तपिनी तापिनी धूम्रा मरीचिर्ज्वालिनी रुचिः।

सुषुम्ना भोगदा विश्वा बोधिनी धारिणी क्षमा।।440।।

कामाद्या वसुदाः सौरा ठकान्ता द्वादशेरिताः।

धूम्रार्चिरुष्मा ज्वलिनी ज्वालिनी विस्फुलिंगिनी।।441।।

सुश्रीः सुरूपा कपिला हव्यकव्यवहा अपि।

यादीनां दशवर्णानां कलधर्मप्रदाः इमाः (स्मृताः) **।।442।।**

अभयेष्टकरा ध्योयाः श्वेतपीतारुणाः क्रमात्।

तत्तद् मण्डलों में 38 कलायें व्यवस्थित हैं। वे कलायें इस प्रकार हैं - अमृता, मानदा, पूषा, तुष्टि, पुष्टि, गति, धृति, शशिनी, चन्द्रिका, कान्ति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अंगदा, पूर्णा, पूर्णामृता(- ये 16 कामदायिनी स्वरजा कलायें हैं), तपनी (तपिनी), तापनी (तापिनी), धूम्रा, मरीचि, ज्वालिनी, रुचि, सुषुम्ना, भोगदा, विश्वबोधनी (विश्वबोधिनी), धारणी (धारिणी), क्षमा(- ये 12 कामादि वसु देनेवाले सौर्य कादिष्ठान्त अथवा डादि भान्त के कलायें हैं), धूम्रार्चि, ऊष्मा, ज्वलिनी, ज्वालिनी, विस्फुलिंगिनी, सुश्री, सुरूपा, कपिला, हव्यवहा, कव्यवहा

(– ये 10 धर्म को देने वाले यादि के कलायें हैं)। अभय और वरप्रदायक मुद्रा से युक्त क्रमश सफेद, पीला और लाल रंगवाले के रूप में ध्यान करने योग्य हैं। (438–443)

तारस्य पंचभेदेभ्यः पंचाशद्वर्णगाः कलाः।।443।।
सृष्टिर्ऋद्धिः स्मृतिर्मेधा कान्तिर्लक्ष्मीर्धृतिः स्थिरा।
स्थितिः सिद्धिरिति प्रोक्ताः कचवर्गकलाः क्रमात्।।444।।
अकारप्रभवा ब्रह्मणो जातास्तप्तचामीरकरप्रभाः।
एताः करधृताक्ष-स्रक्पंकजद्वय-कुण्डिकाः।।445।।

प्रणव के 5 अवयव गत भेद (अ, उ, म, बिन्दु और नाद) और 50 वर्णगत कलाओं का नाम सुनो। अकार से उत्पन्न ब्रह्मजी से उत्प्रेरित, सृष्टि के लिये ही है जो 10 कलायें इस प्रकार हैं – सृष्टि, ऋद्धि, स्मृति, मेधा, कान्ति, लक्ष्मी, धृति, स्थिरा, स्थिति और सिद्धि। ये कवर्ग और चवर्ग की कलायें क्रमशः अकाररूपी ब्रह्म से उत्पन्न हैं और वे तपा हुआ सोने के रंग जैसे रंगवाले हैं तथा उनके हाथ में रुद्राक्षमाला, कमल का फूल, दो कुण्डिकायें हैं।(443–445)

जरा च पालिनी शान्तिरैश्वरी रतिकामिके।
वरदा ह्लादिनी प्रीतिर्दीर्घाः स्युष्टतवर्गगाः।।446।।
उकाराद्विष्णोरुत्पन्नस्तमालदलसन्निभाः।
अभीतिशंखचक्रेष्टबाहवः परिकीर्तिताः।।447।।

उकार से उत्पन्न विष्णु जी से उत्प्रेरित, स्थिति के लिये ही है जो 10 कलायें इस प्रकार हैं –जरा, पालिनी, शान्ति, ऐश्वरी, रति, कामिका, वरदा, ह्लादिनी, प्रीति और दीर्घा। ये टवर्ग और तवर्ग की 10 कलायें क्रमशः उकाररुपी विष्णु से उत्पन्न हैं ओर वे कमल के पत्तों का रंग की सदृश रंगवाले हैं तथा उनके हाथों में अभय एवं वरमुद्रा, शंख, चक्र हैं।(446–447)

तीक्ष्णा रौद्री भया निद्रा तन्द्रा क्षुत्क्रोधिनी क्रिया।
उत्कारी मृत्युरेताः स्युः कथिता पयवर्गगाः।।448।।
रुद्रेण मार्णादुत्पन्नाः शरच्चन्द्रनिभप्रभाः।
उद्वहन्त्योऽभयं शूली कपालं बाहुभिर्वरम्।।449।।

मकार से उत्पन्न रुद्र से उत्प्रेरित, संहार के लिये ही हैं जो 10 कलायें इस प्रकार हैं – तीक्ष्णा, रौद्रा, भया, निद्रा, तन्द्रा, क्षुत्, क्रोधिनी, क्रिया, उत्कारी और

मृत्यु। ये पवर्ग और यवर्ग की 10 कलायें क्रमशः मकाररूपी शिव (रुद्र यानि ईश्वर) से उत्पन्न हैं और वे शरत्पूर्णिमा की चन्द्रमा के रंग के सदृश रंगवाले हैं। उनके हाथों में अभय एवं वर मुद्रा सहित शूली और कपाल हैं।(448-449)

ईश्वरेणोदिता बिन्दोः पीता श्वेताऽरुणाऽसिता।
अनन्ता च षक्षवर्णस्था जपाकुसुमसन्निभा।।450।।
अभयं हरिणं टंकं दधाना बाहुभिर्वरम्।
निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च स्याद्विद्या शान्तिरनन्तरम्।।451।।

बिन्दु से उत्पन्न 4 कलायें हैं (अनुग्रह के लिये माना जाता है) - पीता, श्वेता, अरुणा और असिता। शादिवर्ग के ये 4 कलायें ईश्वर से प्रेरित होकर बिन्दु से उत्पन्न हुये जपाकुसुम का रंग के सदृश रंगवाले हैं उनके हाथों में अभय और वरमुद्रा के साथ हिरण का सींग ओर कुल्हाड़ी है।(450-451)

इन्धिका दीपिका चैव रेचिका मोचिका परा।
सूक्ष्मा सूक्ष्मामृता ज्ञानामृता चाप्यायनी तथा।।452।।
व्यापिनी व्योमरूपा स्युरनन्ताः स्वरसंयुताः।
सदाशिवेन सहिता नादादेताः सितत्विषः।।453।।
अक्षस्रक्पुस्तकगुण-कपालाढ्यकराम्बुजाः ।
न्यासे तु योजयेदादौ षोडशस्वरजाः कलाः।।454।।
इति पंचाशदाख्याताः कलाः सर्वसमृद्धिदाः।

नाद से उत्पन्न 16 कलायें (निग्रह के लिये माना जाता है) जो भुक्ति व मुक्ति प्रदायक हैं, वे इस प्रकार हैं - निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति, इन्धिका, दीपिका, रेचिका, मोचिका, परा, सूक्ष्मा, सूक्ष्मामृता, ज्ञानामृता, आप्यायिनी, व्यापिनी, व्योमरूपा और अनन्ता। सदाशिव से प्रेरित होकर नाद से उत्पन्न (स्वरों की) ये 16 कलायें स्याँवले रंग कि हैं। इनके हाथों में रुद्राक्षमाला, पुस्तक, पाश और कपाल हैं। न्यास करते वक्त पहले स्वर जन्य कलाओं से ही करना है। इस प्रकार सकल समृद्धि प्रापिका 50 कलायें बतायी गई हैं।(452-455)

श्रीकण्ठानन्तसूक्ष्माश्च त्रिमूर्तिरमरेश्वरः।।455।।
अधीशो भावभूतिश्चातिधीशः स्थाणुको हरः।
झिण्टीशो भौतिकः सद्योजातश्चानुग्रहेश्वरः।।456।।
अक्रूरश्च महासेनः षोडश स्वरमूर्तयः।

अब रुद्र मूर्तियों के नामों को बता रहे हैं। उनमें भी पहले स्वरमूर्तियों को बता रहे हैं – श्रीकण्ठ, अनन्त, सूक्ष्म, त्रिमूर्ति, अमरेश्वर, अधीश, भावभूति, तिथि, स्थाणु, हर, झिण्टीश, भौतिक, सद्योजात, अनुग्रहेश्वर, अक्रूर और महासेन। (455–457)

पश्चात्क्रोधीशचण्डीशपंचान्तकशिवोत्तमाः ।।457।।
अप्येकरुद्र – कूर्मैकनेत्राख्य – चतुराननाः।
अजेयाः सर्वसोमेशौ तथा लांगलिदारुकौ ।।458।।
अर्द्धनारीश्वरश्चोमाकान्तश्चाषादिदण्डिनौ।
स्युरद्रिर्मीनमेषाख्यौ लोहितश्च शिखी तथा ।।459।।
छगलण्डद्विरण्डेशौ महाकालसवालिनौ ।
भुजंगेशपिनाकीक्षखड्गीशाख्या बकस्तथा ।।460।।
श्वेतमृग्वागीशनकुलिशिवाः संर्वत्तकस्ततः।
एते रौद्राः स्मृता रक्ता धृतशूलकपालकाः ।।461।।

व्यंजनों से उत्पन्न रुद्रमूर्तियाँ – कोधीश, चण्डीश, पंचान्तक, शिव, उत्तम, एकरुद्र, कूर्म, ऐकनेत्र, अजेश, शर्व, सोमेश्वर, लांगली, दारुक, अर्धनारीश्वर, उमाकान्त, चाष, आदिदण्डी, अद्रि, मीन, मेष, लोहित, शिखी, छगलण्ड, द्विरण्ड, महाकाल, कपाली (सवाली), भुजंगेश, पिनाकी, खड्गीश, वक (बक), श्वेत, भृगु, नकुल (सहदेवसहित), शिव और संवर्तक। ये रुद्रमूर्तियाँ खून के रंग के सदृशरंगवाले हैं। ये शूल और कपालधारी हैं।(457–461)

पूर्णोदरी स्याद्विरजा शाल्मली तदनन्तरम्।
लोलाक्षी वर्त्तुलाक्षी च दीर्घघोणा समीरिताः ।।462।।
सुदीर्घमुखीगोमुख्यौ दीर्घजिह्वा तथैव च।
कुण्डोदर्यूर्ध्वकेशी च तथा विकृतमुख्यपि ।।463।।
ज्वालामुखी तथा ज्ञेया पश्चादुल्कामुखी तथा।
सुश्रीमुखी च विधातुः ख्याताः स्युः स्वरशक्तयः ।।464।।

पूर्णोदरी, विरजा, शाल्मली, लोलाक्षी, वर्तुलाक्षी, दीर्घघोणा, सुदीर्घमुखी, गोमुखी, दीर्घजिह्विका, कुण्डोदरी, ऊर्ध्वकेशी, विकृतमुखी, ज्वालामुखी, उल्कामुखी, सुश्रीमुखी और विद्या। ये विधाता रुद्र के स्वरजन्य शक्तियाँ हैं।(462–464)

महाकाली–सरस्वत्यौ सर्वसिद्धि–समन्वितौ।
गौरी त्रैलोक्यविद्या च मन्त्रशक्तिस्ततः परम् ।।465।।

आत्मशक्तिर्भूतमाता तथा लम्बोदरी मता।
द्राविणी नागरी भूयः खेचरी चापि मंजरी।।466।।
रूपिणी वारिणी पश्चात्काकोदर्यपि पूतना।
स्याद्भद्रकालीयोगिन्यौ शंखिनीगर्जिनी तथा।।467।।
कालरात्रिश्च कुब्जिन्या कपर्दिन्यपि वज्रया।
जया चैव सुमेश्वर्या रेवती माधवी तथा।।468।।
वारुणी वायवी प्रोक्ता पश्चाद्रक्षोविदारिणी।
ततश्च सहजा लक्ष्मीर्व्यापिनी माययान्विता।।469।।
एता रुद्रांकपीठस्थाः सिन्दूरारुणविग्रहाः।
रक्तोत्पलकपालाभ्यामलंकृतकराम्बुजाः।।470।।

व्यंजनों से उत्पन्न रुद्रशक्तियों के नाम इस प्रकार है – सर्वसिद्धिसमन्विता, महाकाली और महासरस्वती, गौरी, त्रैलोक्यविद्या, मन्त्र शक्ति, आत्मशक्ति, भूतमाता, लम्बोदरी, द्राविणी, नागरी, वैखरी, मंजरी, रूपिणी, वीरणी, कोटरी, पूतना, भद्रकाली, योगिनी, शंखिनी, गर्जिनी, कालरात्रि, कुब्जिनी (कुर्दिनी), कपर्दिनी, महावज्रा, जया, सुमेश्वरी, रेवती, माधवी, वारुणी, वायवी, रक्षोपधारिणी, सहजा, लक्ष्मी, व्यापिनी और माया। ये व्यंजनजन्य रुद्र के शक्तियाँ हैं जो रुद्रांक रूपी पीठ में स्थित हैं, सिन्धूर का अरुणरंग के सदृशरंग की हैं। लालकमल और कपाल धारिणी हैं।(465-470)

केशव-नारायण-माधव-गोविन्द-विष्णवः।
मधुसूदनसंज्ञोऽन्यः स्यात्त्रिविक्रमवामनौ।।471।।
श्रीधरश्चैव हृषीकेशः पद्मनाभस्ततः परम्।
दामोदरो वासुदेवः संकषर्ण इतीरिताः।।472।।
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च स्वराणां मूर्तयस्त्विमाः।
पश्चात्चक्री गदी शार्ङ्गी खड्गी शंखी हली पुनः।।473।।
मुसली शूलिसंज्ञोऽन्यः पाशी स्यादंकुशी पुनः।
मुकुन्दो नन्दजो नन्दी नरो नरकजिद्धरिः।।474।।
कृष्णः सत्यः सात्त्वतः स्याच्छौरिः शूरो जनार्दनः।
भूधरो विश्वमूर्तिश्च वैकुण्ठः पुरुषोत्तमः।।475।।
बली बलानुजो बालो वृषघ्नश्च वृषः पुनः।
हंसो वराहो विमलो नृसिंहो मूर्तयो हलाम्।।476।।

केशवाद्या इमे श्यामाश्चक्रशंखलसत्कराः।

स्वरों से उत्पन्न16 विष्णुमूर्तियों के नाम बता रहे हैं – केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। हलों यानि व्यंजनों (कादि–मान्त=25, यादि=5, शादि=5 कुल मिलाकर 35) से उत्पन्न विष्णुमूर्तियों के नाम बता रहे हैं। (अब तक 50 वर्ण कहते रहे, लेकिन यहाँ 16+35=51 वर्ण, तदनुरूप 51 विष्णुमूर्ति होंगे) अतः श्लोकसंख्या 242 से विरोध की आशंका हो सकती है। उत्तर यह है कि पूर्व में सामान्य रूप से गिनाते वक्त 'क्ष' यह संयुक्त वर्ण अथवा 'ळ' इस दुःस्पृष्ट वर्ण को छोड़कर कहा गया था। लेकिन यहाँ उन्हें जोड़कर कह दिया गया है) चक्री, गदी, शार्ङ्गी, खड्गी, शंखी, हली, मुशली (मूसली), शूली, पाशी, अंकुशी, मुकुन्द, नन्दज, नन्दी, नर, नरकजित्, हरि, वृष्णि, सत्य, सात्यवत, शौरि, शूर, जनार्दन, भूधर, विश्वमूर्ति, वैकुण्ठ, पुरुषोत्तम, बली, बलानुज, बाल, वृषघ्न, वृष, हंस, वराह, विमल और नृसिंह– ये व्यञ्जन (हल्) वर्णों के विष्णुमूर्तियाँ हैं। ये केशवादि श्यामवर्ण के हैं तथा हाथ में शंख और चक्र धारण किये हुये हैं। (471–477)

कीर्तिः कान्तिस्तुष्टिपुष्टी धृतिः क्षान्तिः क्रियादयः।।477।।
मेधा सहर्षा श्रद्धा स्याल्लज्जा लक्ष्मीः सरस्वती।
प्रीती रतिरिमाः प्रोक्ताः क्रमेण स्वरशक्तयः।।478।।
जया दुर्गा प्रभा सत्या चण्डी वाणी विलासिनी।
विजया विरजा विश्वा विनदा सुनदा स्मृतिः।।479।।
ऋद्धिः समृद्धिः शुद्धिः स्याद्भक्तिर्बुद्धिः स्मृतिः क्षमा।
रमोमा क्लेदिनी क्लिन्ना वसुधा वसुदाऽपरा।।480।।
परा परायणी सूक्ष्मा सन्ध्या प्रज्ञा प्रभा निशा।
अमोघा विद्युता कीर्त्याद्याः सर्वकामदाः।।481।।
एताः प्रियतमांकेषु निषण्णाः सस्मिताननाः।
विद्युद्दामसमानाङ्ग्यः पंकजाभयबाहवः।।482।।

स्वर से जन्य विष्णु के शक्तियाँ जो सकल कामनाओं को देती हैं – कीर्ति, कान्ति, तुष्टि, पुष्टि, धृति, शान्ति, क्रिया, दया, मेधा, हर्षा, श्रद्धा, लज्जा, लक्ष्मी, सरस्वती, श्री, प्रीति और रति नाम से कहे गये हैं। जया, दुर्गा, प्रभा, सत्या, चण्डा, वाणी, विलसिनी, विरजा, विजया, विश्वा, विनदा, सुनदा, स्मृतिः, ऋद्धि,

शुद्धि, भक्ति, मुक्ति, मति, क्षमा, रमा, उमा, क्लेदिनी, क्लिन्ना, वसुदा, वसुधा, पराऽपरा, परायणा, सूक्ष्मा, सन्ध्या, प्रज्ञा, निशा, अमोघा, विद्युता – ये व्यंजनों से उत्पन्न विष्णु शक्तियाँ हैं जो सकल कामनाओं को देनेवाली हैं। ये विष्णु जी की शक्तियाँ अपने प्रियतम विष्णु के अंक रूपी पीठ में मुस्कान युक्त चेहरेवाली बैठी हुई हैं। बिजली के चमक का रंग के सदृश रंगवाली हैं। कमल और अभयमुद्रा युक्त हाथवाली हैं।477–482)

मातृका वर्णभेदेभ्यः सर्वे मन्त्राः प्रजज्ञिरे।
मन्त्रविद्याविभागेन त्रिविधा मन्त्रजातयः।।483।।
मन्त्राः पुम्देवता ज्ञेया विद्याः स्त्रीदेवताः स्मृताः।
पुंस्त्रीनपुंसकात्मानो मन्त्राः सर्वे समीरिताः।।484।।

वर्ण भेद से मातृकायें ही समस्त मन्त्र के रूप में उत्पन्न हुये हैं। मन्त्र और विद्या का विभाग से मन्त्र के तीन जातियाँ मानी गयी हैं। यद्यपि मन्त्र को पुरुष देवतावाले समझें और विद्यायें स्त्रीदेवतावाली कहे गये हैं तथापि सभी मन्त्र पुरुष, स्त्री और नपुंसकात्मक तीन जातिवाले होते हैं।(483–484)

पुंमन्त्रा हुंफडन्ताः स्युर्द्विठान्ताश्च स्त्रियो मताः।
नपुंसका नमोऽन्ताः स्युरित्युक्ता मनवस्त्रिधा।।485।।

'हुम्, फट्' इत्यादि अन्त में हो तो उन्हें पुरुषमन्त्र और 'ठः' 'ठः' इस प्रकार जिनके अन्त में द्विरावृत्त हों तो ऐसे शब्द या वर्ण समूह स्त्रीमन्त्र है तथा 'नमः' जिन मन्त्रों के अन्त में हों वे नपुंसकमन्त्र हैं। इस प्रकार मन्त्र तीन जाति के बतायें गये हैं। (485)

शस्तास्ते त्रिविधा मन्त्रा वश्यशान्त्यभिचारके।
अग्निसोमात्मका मन्त्रा विज्ञेयाः क्रूरसोमयोः।।486।।

शः वश्य, शान्ति और आभिचारिक कर्मों के लिये प्रशंसित हैं। क्रूर और सौम्य कर्मों में अग्नि सोमात्मक मन्त्रों का प्रयोग करना श्रेष्ठ है ऐसे समझें।(486)

कर्मणोर्वह्नितारान्त्यवियत्प्राणाः समीरिताः ।
आग्नेया मनवः सौम्या भूयिष्ठेन्दुमृताक्षराः।।487।।

जिस मन्त्र में वह्नि, तार, अन्त्य (क्ष/ळ), वियत् (आकाश) और प्राण के बीज हों उन्हें आग्नेय मन्त्र समझें। सौम्य मन्त्र उन्हें समझे जिसमें इन्दु और अमृत विद्यमान हों।(487)

आग्नेया संप्रबुध्यन्ते प्राणे चरति दक्षिणे।
भागेऽन्यस्मिन्स्थिते प्राणे सौम्या बोधं प्रयान्ति च।।488।।
नाडीद्वयं गते प्राणे सर्वे बोधं प्रयान्ति च।
प्रयच्छन्ति फलं सर्वे प्रबुद्धा मन्त्रिणां सदा।।489।।

प्राण दक्षिण (नासिका) प्रधान चल रहा हो आग्नेयमंत्र प्रबुद्ध (यानि जाग्रत) होते हैं और प्राण दूसरे भाग (बायीं नासिका) में स्थित (चल रहा) हो तो सौम्य मंत्र जाग्रत होते हैं। जब प्राण दोनों नाड़ी में सम चलते हों अर्थात् सुषुम्ना चल रही हो तो सभी मन्त्र जाग्रत होते हैं। जाग्रत मन्त्र ही जप करने वाले साधक को सदा फल देते हैं।(488-489)

छिन्नादिदुष्टा ये मन्त्राः पालयन्ति न साधकम्।
छिन्नो रुद्रः शक्तिहीनः पराङ्मुख उदीरितः।।490।।
बधिरो नेत्रहीनश्च कीलितः स्तम्भितस्तथा।
दग्धस्त्रस्तश्च भीतश्च मलिनश्च तिरस्कृतः।।491।।
भेदितश्च सुषुप्तश्च मदोन्मत्तश्च मूर्च्छितः।
हृतवीर्यश्च हीनश्च प्रध्वस्तो बालकः पुनः।।492।।
कुमारस्तु युवा प्रौढो वृद्धो निस्त्रिंशकस्तथा।
निर्बीजः सिद्धिहीनश्च मन्दः कूटस्तथा पुनः।।493।।
निरंशसत्त्वहीनश्च केकरो बीजहीनकः।
धूमितालिंगितौ स्यातां मोहितश्च क्षुधार्तकः।।494।।

छिन्न आदि दोषों से युक्त मन्त्र जापक को फल नहीं दे सकते और जापक की रक्षा भी नहीं कर सकते। छिन्न आदि दोषों के स्वरूप को उनके नाम के द्वारा वर्णन करते हैं। छिन्न, रुद्र, शक्तिहीन, पराङ्मुख, बधिर, नेत्रहीन (अन्धा), कीलित, स्तम्भित, दग्ध, त्रस्त, भीत, मलिन, तिरस्कृत, भेदित, सुषुप्त, मदोन्मत्त, मूर्च्छित, हृतवीर्य, हीनवीर्य (वीर्यहीन), प्रध्वस्त (मृत), बालक, कुमार, युवा, प्रौढ़, वृद्ध, निस्त्रिंशक (कूर), निर्बीज, सिद्धिहीन, मन्द, कूट (मिश्रित), निरंश, सत्त्वहीन, केकर (भेंदी - टेढ़ी दृष्टि वाला), बीजनाशक, धूमित, आलिंगित, मोहित, क्षुधा से पीड़ित - ये सब दोष कहे गये हैं। (490-494)

सर्वकालन्तु कालस्य व्यापकाः परमोऽव्ययः।
उन्मन्यन्ते परे योज्ये न कालस्तत्र विद्यते।।495।।
भूपृष्ठाद्यावदादित्यं लक्षमेकं प्रमाणतः।

दशवायुपथा मध्ये त्वयुतायुतसंख्यया ।।496।।

कालों का काल महाकाल जो परम–अव्यय–व्यापक आदि स्वरूप उस में तत्त्व को युक्त कर विलीन करें, क्योंकि वहाँ कोई काल नहीं है, ऐसे करने पर समस्त दोष दूर होते हैं। सूर्योदय से सूर्यास्त तक समय में एक लाख जप करें। (अर्थात् संवत्सराधिकरण न्याय के अनुसार 1000 साल का तात्पर्य 1000 दिन लिया गया है जैसे ठीक वैसे 1 लाख जप का तात्पर्य है 10,000 यानी 100 माला जपें)। दश दिक् के मध्ये में तो (मन्दिर आदि सिद्ध स्थान न हो तो) 10000 X 10000 = 10 करोड़ यानि 10 लाख माला जप करें।(495 – 496) (अथवा दोष निवारणार्थ एवं शाप विमोचनार्थ जिस मन्त्र का जो उपाय बतायें गये हैं उसे करके उत्कीलन करने पर मन्त्र फलदायक हो जाता है)।

एताश्च मातरः पराशक्तिप्रपंचव्याप्तिरूपा इत्याह = ये देवियाँ पराशक्ति का ही विस्तारपूर्वक व्याप्तिरूप है –

उभैव सप्तधा भूत्वा नामरूपविपर्ययैः।
एवं स भगवान्देवो मातृभिः परिवारितः।।497।।

ये मातृकायें पराशक्ति का ही विस्तार पूर्वक सर्वत्र व्याप्ति है – यह कहते हैं आगे के श्लोकों में। शिव और शक्ति – ये दो ही नाम और रूप के विपर्यास से सात भागों में होकर इस प्रकार वह भगवान् देव मातृकाओं से परिवारित यानि युक्त हो गया है।(497)

आस्ते परमया लक्ष्म्या तत्रस्थो द्योतयञ्जगत्।
शर्वो भवश्च भगवान् रुद्रः पशुपतिस्तथा।।498।।
ईशानश्चैव भीमश्च महादेवोग्र एव च।
उपादानन्तु तत्प्रोक्तं संक्षुब्धं समवायतः।।499।।

परमलक्ष्मी से युक्त होकर तत्रस्थ जगत् को प्रकाशित करते हुए – शर्व, भव, रुद्र, पशुपति, ईशान, भीम, महादेव, उग्र – इन आठ रूपों का उपादान भगवान् शिव कहे गये हैं। क्योंकि उनमें ही ये सब समवाय से यानि नित्य सम्बद्ध होकर संक्षुब्ध यानि अभिव्यक्त हैं।(498–499)

तस्माच्छून्यं समुत्पन्नं शून्यात्स्पर्शसमुद्भवः।
तस्मान्नादः समुत्पन्नः पूर्वं वै कथितस्तव।।500।।

उससे यह शून्य (आकाश) उत्पन्न हुआ और उस आकाश में स्पर्श (संयोग) उत्पन्न हुआ जिससे यह नाद उत्पन्न हुआ। यह उत्पत्ति क्रम पूर्व में ही मैंने तुम्हारेलिये बताया था।(500)

शब्दा नादादभिव्क्ताः प्रवर्तते च वै भाषा।
यतः शास्त्रं ततो कर्म ततो लोका भवन्ति वै।।501।।

उस नाद से शब्द अभिव्यक्त हुए शब्दों से भाषा, भाषा से शास्त्र, शास्त्रों से कर्म और कर्म से ये लोक होते हैं।(501)

अष्टधा स तु देवेशि व्यक्तः शब्दप्रभेदतः।
घोषो रावः स्वनः शब्दः स्फोटाख्यो ध्वनिरेव च।।502।।
झांकारो ध्वंकृतश्चैव अष्टौ शब्दाः प्रकीर्तिताः।
नवमस्तु महाशब्दः सर्वेषां व्यापकः स्मृतः।।503।।

हे देवेशी! वह शिव शब्दभेद से 8 प्रकार से अभिव्यक्त हुये हैं। वे शब्दभेद - घोष, राव, स्वन, शब्द, स्कोट, ध्वनि, झंकार और ध्वंकृत - ऐस 8 प्रकार कहे गये हैं। नौवें का नाम महाशब्द है जो सब का व्यापक है।(502-503)

नदत्यसौ सदा यस्मात्सर्वभूतेष्वव्यवस्थितः।
तस्मात्सदा शिवो देवो व्यक्तो वै त्वक्रियात्मकः।।504।।

सकल भूतों में अवस्थित होकर सदा जिसलिये नाच रही है (यानि कार्य सम्पादन कर रही है) इसलिये अक्रियात्मक होते हुये भी वह देव शिव सर्वत्र अभिव्यक्त है।(504)

नादाद् बिन्दुः समुत्पन्नः सूर्यकोटिसमप्रभः।
स चैव दशधा ज्ञेयो दशतत्त्वफलप्रदः।।505।।

नाद से बिन्दु उत्पन्न हुआ जो कि करोड़ सूर्य का प्रकाश के समान दिव्य है। वही 10 प्रकार हुई है जिससे वह 10 प्रकार का फल देनेवाली हो गयी।(505)

दशधा वर्णरूपेण दशदैवतसंयुतः।
बिन्दोः सदाशिवो ज्ञेयः सोऽष्टभेदांगसंयुतः।।506।।

दस प्रकार के वर्ण स्वरूप धारण कर दस देवताओं से युक्त होकर वह शिव ही बिन्दु के माध्यम (उपाधि) से आठ भेदवाला अंग से संयुक्त है।(506)

पंचब्रह्मकलाभिश्च विद्यांगैः शक्तिभिर्युतः।
पंचभिश्च महाज्ञानैर्मूर्तिभिश्च समन्वितः।।507।।

जो 5 ब्रह्म की कलाओं से तथा विद्या के अंग भूता शक्तियों से युक्त होकर पंचज्ञानमयमूर्तियों से समन्वित है, वह शिव है।(507)

स एवापररूपेण परमात्मा शिवोऽव्ययः।
द्विधावस्थः स च ज्ञेयः सोच्चारोच्चारवर्जितः।।508।।

वही परमात्मा अव्यय शिव अपररूप से दो प्रकार से अवस्थित हैं, वह ज्ञेय है – सौच्चार और निरुच्चार।(508)

मुद्रामन्त्रस्वरूपेण स एव च पुनर्द्विधा।
क्रियाज्ञानरूवरूपेण इच्छारूपस्वरूपतः।।509।।
शब्दावबोधरूपेण वस्तुरूपस्वरूपतः ।
स्थूलसूक्ष्मः परश्चैव परातीतो निरंजनः।।510।।
व्योमरूपस्वरूपेण समनोन्मन एव च।
उन्मनातीतो देवेशि शिवो ज्ञेयः शिवागमे।।511।।

मुद्रा और मन्त्र रूप से भी वही पुनः दो प्रकार का है। क्रिया स्वरूपेण, ज्ञानस्वरूपेण, इच्छास्वरूपेण, शब्दावबोधस्वरूपेण और वस्तुस्वरूपेण वही शिव क्रमशः स्थूल, सूक्ष्म, पर, परातीत और निरंजन कहा जाता है। व्योमस्वरूपेण (व्यापक स्वरूप से) समना और उन्मना वही है। हे देवशी! शैवागमों में कहा गया है की उन्मनातीत ही शिव समझें।(509–511)

उन्मना समना स्थानं शिवेन समधिष्ठातम्।
पंचकारणरूपेण तदधः पुनरेव सः।।512।।

समना और उन्मना – ये दोनों शिव के द्वारा ही अधिष्ठित है। कैसे? पंचकारणरूप से। कार्यरूप से भी वही नीचे भी (पृथिवी पर्यन्त) है।(512)

कारणं पंचकं देवि अधिष्ठाय त्वधस्ततः।
व्यापकः शक्तिमूर्धस्थो बिलद्वारमनाश्रितः।।513।।

हे देवी! बिल द्वार को आश्रय किये बिना मूर्धा में स्थित व्यापक शक्ति से पंच कारण रूप धारण कर, उन्हें ही अधिष्ठित करके आगे कार्यों को भी उत्पन्न करता है।(513)

अनन्तश्च सुषुम्नेशस्त्वनाथश्चोर्ध्वगस्तथा।
व्योमरूपी महादेवि बिन्द्वीशः प्ररिकीर्तितः।।514।।

हे महादेवी! बिन्दु का ईश व्योमरूपी होने से अनन्त (सर्वव्यापक) सुषुम्ना का ईश, अनाथ, ऊर्ध्वग इत्यादि शब्दों से कहा गया है।(514)

सकालः साम्यसंज्ञश्च जन्ममृत्युभयापहः।
ततोऽप्यूर्ध्वं भ्रमेद्यस्तु कालः स्यात्परमावधिः।।515।।

जो बिन्दु का ईश है वह साम्य नामवाला है, काल सहित है, जन्म और मृत्यु का भय दूर करनेवाला है, कालरूप है, परम अवधि है और अधिक क्या कहा जाय वह सब से परे है।(515)

नित्यो नित्योदितो देवि अकल्प्यश्च न कल्प्यते।
सश्चाधः कलयेत्सर्वं व्यापिन्यादिधरावधिम्।।516।।

वह नित्य, नित्योदित एवं अकल्प होने से कल्पना का विषय नहीं है। हे देवी! व्यापिनी से लेकर नीचे पृथिवी पर्यन्त सकल तत्त्वों को उत्पन्न करता है।(516)

त्रुट्यादिभिः कलाभिश्च देव्यध्वानं चराचरम्।
ऊर्ध्वमुन्मनसो यच्च तत्र कालो न विद्यते।।517।।

त्रुट्यादि काल के प्रभेद और कलायें जिनसे चराचर के मार्ग (अध्वा) का तय होता है उनसे ऊपर होने से हे देवी! उन्मना अवस्था में काल नहीं होता है।(517)

न कल्पः कल्पते कश्चिन्निष्कलः कालवर्जितः।
यः शांकर्युन्मनातीतः स नित्यो व्यापकोऽव्ययः।।518।।

कालवर्जित निकल उन्मना से भी ऊपर जो है उसकी कल्पना कोई नहीं कर सकता वह शांकरी उन्मनातीत नित्य अव्यय और व्यापक है।(518)

नववर्गास्तु ये प्राहुस्तेषां प्राणशतीरवीः(न्)।
सस्त्रिभागैव संक्रन्तिर्वर्गः प्रत्येकमुच्यते।।519।।

नौ वर्गों में विभक्त जो कहते हैं, उनके प्राण रक्षा 100 साल तक हो। वह तीन विभाग के रूपसे ही संक्रान्त है फिर भी प्रत्येक को वर्ग कहा गया है। (519)

पिण्डमन्त्रस्य सर्वस्य स्थूलवर्णक्रमेण तु।
अर्धेन्दुबिन्दुनादान्तः शून्योच्चाराद्भवेच्छिवः।।520।।

समस्त स्थूलमन्त्र और स्थूल वर्ण क्रम से है। किन्तु उनका उच्चारण करते हुए अन्त में अर्धचन्द्र, बिन्दु, नाद और नादान्त का ध्यान उच्चारणशून्य काल में करें तो वह शिव ही है।(520)

न शिखा ऋॠऌॡच शिरोमालाथ मस्तकम्।
नेत्राणि च ध वैनाशा ई समुद्रे णुणू श्रुती।।521।।
बकवर्गअआ वक्त्रदन्तजिह्वा सुवाची च।
वभयाः कण्ठदक्षादिस्कन्धयोर्भुजयोर्डढौ।।522।।
ठो हस्तयोर्झञौ शाखा जटौ शूलकपालके।
प हृच्छलौ स्तनौ क्षो रमा सजीवो विसर्गयुक्।।523।।

तत्परः कथितः प्राणः पक्षावुदरनाभिगौ।
मशताः कोटिगुह्योरु युग्मगा जानुनी तथा।।524।।
एऐकारौ तथा जंघे तत्परौ चरणावुरू।

इस शिव के सगुण शरीर में नकार शिखा है, ऋ ॠ लृ ॡ –ये चार सिरके कपाल का अवयव और मस्तक हैं। नेत्र धवर्ण है, इ ई समुद्र है, उ ऊ कान है। ब कवर्ग अ और आ वर्ण –ये वक्रदन्त जिह्वा और वागिन्द्रिय हैं। व भ य ड ढ –ये वर्ण कण्ठ, दायें व बायें कन्धा और दायीं बायीं भुजायें हैं। ठ ञ – ये वर्ण हाथ की शाखायें तथा ज ट हस्त गत त्रिशूल और कपाल है। च ड ढ ण और फ – ये पंचप्राण हैं, थ और द नाभि सहित उदर के दो भाग हैं, य श त गुण सहित ऊरु के दो भाग श स–दो घुटने हैं। ए व ऐ जंघा है तथा ओ और औ चरण (पैर) हैं।(521–525)

अतो विद्याश्च मन्त्राश्च समुद्धार्या यथा श्रृणु।।525।।

इन से विद्यायें और मन्त्रों को उद्घृत करना (यानि निकालना) किस प्रकार से वह सुनो।(525)

अथ गन्धादिपूर्वाणां तन्मात्राणामनुक्रमात्।
धारणं सम्प्रवक्ष्यामि तत्फलानां प्रसिद्धये।।526।।

गन्ध–रस–रूप–स्पर्श और शब्द तन्मात्राओं का क्रम के अनुसार धारणा करना एवं उसका फल कहूँगा ताकि यह विषय साधक को स्पष्ट हो। (526)

पीतकं गन्धतन्मात्रकं तुर्याश्रं पर्वसम्मितम्।
नासारन्ध्राग्रगं ध्यायेत्वज्रलांछनलांछितम्।।527।।

पृथिवीतत्त्व की धारणा – पीलेरंग से युक्त गन्धतन्मात्रा को एक पर्व के समान चारदलवाला कमल यानि मूलाधार में चिन्तन कर नासिकाओं के रन्ध्रों का अग्रभाग में करें। वज्र से खींचि गई रेखाओं से निर्मित चतुर्भुज के रूप में ध्यान करें।(527)

दशमाद्दिवसादूर्ध्वं योगिनोऽनन्यचेतसः।
कोऽपि गन्धः समायाति द्विधाभूतोऽप्यनेकधा।।528।।

10 दिन लगातार अभ्यास करने पर अनन्य चित्तवाला उस योगी को कोई गन्धविशेष अनुभव में आयेगा जो दो (सुगन्ध/दुर्गन्ध) भेदवाला होते हुये भी अनेक प्रकार से अनुभव होगा।(528)

ततोऽस्य ऋतुमात्रेण शुद्धो गन्धः स्थिरीभवेत्।
षड्भिर्मासैः स्वयं गन्धमयमेव भविष्यति।।529।।

फिर दो महीने में शुद्धगन्ध का स्थिरता पूर्वक अनुभव होगा। 6 महीने में वह योगी स्वयं गन्धमय हो जाता है।(529)

यो यत्र रोचते गन्धस्तं तत्र कुरुते भञ्जकम्।
त्र्यब्दात्सिद्धिमवाप्नोति प्रेरितां पांचभौतिकीम्।।530।।

जिससे जिस गन्ध को जहाँ चाहेगा वहाँ उसे खूब बना देगा। 3 साल में ऐसी सिद्धि प्राप्त होगी की वह पाँच भौतिक से सम्बन्धित वस्तु उससे (प्रेरित) होगी। (530)

तदूर्ध्वमात्मनो रूपं तत्र संचिन्तयेद्धृदि।
गन्धावरणविज्ञानं त्रिभिरब्दैरवाप्नुयात्।।531।।

उससे भी ऊपर है अपनी गन्ध स्वरूप, उसका हृदय में ध्यान करें। आगे के तीन साल में गन्ध के आवरण का विज्ञान प्राप्त होता है।(531)

ईषद्दीप्तियुतं तत्र तन्मण्डलविवर्जितम्।
ध्यानैः सम्पश्यते सर्वान् गन्धावरणवासिनः।।532।।

गन्धमण्डल रहित थोड़ी दीप्ति से युक्त होकर सकल गन्धावरण वासियों को ध्यान से देख लेता है।(532)

धरातत्त्वोक्तबिम्बाभं तत्रैवमनुचिन्तयन् ।
तत्समानत्वमभ्येति पूर्वं च द्वितयस्थिरे।।533।।

पृथिवी तत्त्व में बताये गये बिम्ब (चैतन्य) का प्रतिबिम्ब को उसी में उक्त प्रकार से चिन्तन करते हुये उसके समानता को वह योगी प्राप्त कर लेता है। पूर्वोक्त दो स्तरों में स्थिरता बनी रहने पर।(533)

स्वरूपं तत्र संचिन्त्य भासयन्तमधः स्थितम्।
तदीशत्वमवाप्नोति पूर्वोक्तेनैव वर्त्मना।।534।।

नीचे स्थित जैसे भासता हुआ स्वरूप को वहाँ चिन्तन करके पूर्वोक्त तरीके से ही अब वह उसका ईशत्व प्राप्त कर लेता है।(534)

धरातत्त्वोक्तवत्सर्वमत ऊर्ध्वमनुस्मरन् ।
तद्रूपं फलमाप्नोति गन्धावरणसंस्थितम्।।535।।

पृथिवीतत्त्व के सन्दर्भ में उक्त के समान अब कुछ उससे ऊर्ध्व भी चिन्तन करते हुये योगी को गन्धावरण में अवस्थित ध्यानानुरूप फल प्राप्त होता है।(535)

रसरूपामथो वक्ष्ये धारणां योगिसेविताम्।
यया सर्वरसावाप्तिर्योगिनः सम्प्रजायते।।536।।

योगियों के संसेवित रसतन्मात्रा की धारणा अब कहूँगा जिससे योगि को सकल प्रकार के रस की प्राप्ति होगी।(536)

जलबुद्बुदसंकाशं जिह्वायां चाग्रतः स्थितम्।
चिन्तयेद्रसतन्मात्रं जिह्वाग्राधारमात्मनः।।537।।

आपके जिह्वा के अग्रभाग में स्थित जल का बुद्बुद के सदृश तथा जिह्वाग्र ही आधार है जिसका ऐसी रस तन्मात्रा का चिन्तन करें।(537)

सुशीतं षड्रसं चिन्त्यं तद्गतेनान्तरातमना।
ततोऽस्य मासमात्रेण रसास्वादः प्रवर्तते।।538।।

सुशीत षड्रसों का उनके आन्तरिक सूक्ष्म स्वरूप से तादात्म्य होकर चिन्तन करने पर महीने भर में ही वास्तविक सूरसास्वाद प्रवृत्त होता है।(538)

वर्णानुक्रमयोगेन देवताष्टकसंयुता ।
अवर्गः प्रथमो देवि वशिनी तत्र देवता ।।539।।
तत्परस्तु कवर्गो यस्तत्र कामेश्वरी स्थिता।
मोदिनी तु चवर्गस्था टवर्गे विमला मता।।540।।
अरुणा तु तवर्गस्था पवर्गे जयिनी स्थिता।
सर्वेश्वरी यवर्गे तु शवर्गे कौलिनीति च।।541।।

वर्णों के अनुक्रम का योग से आठ देवताओं से युक्त 8 वर्ग है। हे देवी! प्रथम है अ वर्ग जिसका देवता है वशिनी। दूसरा है क वर्ग जिसमें कामेश्वरी स्थित है, च वर्ग में मोदिनी स्थित है। ट वर्ग में विमला स्थित है, त वर्ग में स्थित है अरुणा, प वर्ग में जयिनी स्थित है, य वर्ग में सर्वेश्वरी और श वर्ग में कौलिनी स्थित रहती है।(539-541)

एता वर्गाष्टके देवि अष्टौ वै वाग्देवताः।
अर्चिताः पुरुषस्याशु प्रकुर्वन्ति वशं जगत्।।542।।

ये वर्गाष्टक है
देवियों की कृपा से यह जगत् साधक के वश में आ जाता है

चतुर्दशस्वरोपेता बिन्दुत्रयविभूषिता ।
कलामण्डलमास्थाय शक्तिरूपं महेश्वरि।।543।।

हे महेश्वरी! 14 स्वर और 3 बिन्दु (अनुस्वर - 1 बिन्दु और विसर्ग-2 बिन्दु) सहित कलामण्डल से युक्त शक्ति रूप है।(543)

ककारादिक्षकारान्ता वर्णास्तु शक्तिरूपिणः।
व्यंजनत्वात्सदानन्दोच्चारणैः सह ते यतः।।544।।

ककार से लेकर क्षकार पर्यन्त वर्ण भी शक्ति स्वरूप ही हैं। जिसलिये कि व्यंजन होने के कारण वे स्वर (आनन्द) के उच्चारण सहित ही उनका उच्चारण होता है।(544)

उच्चारे स्वरसम्भिन्नास्ततो देवि न संशयः।
पंचाशद्वर्णभेदेन शब्दाख्यं वस्तु सुव्रते।।545।।

हे देवी! उच्चारण काल में वे स्वरों से मिश्रित हैं इसमें कोई संशय नहीं, फिर भी वास्तव में वे पृथक् हैं। अतः हे सुव्रते! जिन्हें शब्द नाम से कहा जाता है वे कुल 50 वर्ण भेद हैं।(545)

अकारः प्रथमं देवि क्षकारोऽन्त्यस्ततः परम्।
अक्षमात्वेति विख्याता मातृकावर्णरूपिणी।।546।।

अकार पहला और अन्त्यवाला क्षकार के साथ मकार (जिसे पूर्व में पुरुष कहा गया) के योग से अक्षमा यह मातृकार्णरूपिणी शक्ति विख्यात है।(546)

शब्दब्रह्मस्वरूपेयं शब्दातीतं तु जप्यते।
शब्दातीतं परं धाम गणनारहितं सदा।।547।।

यह शब्दब्रह्मस्वरूप है, जिससे शब्दातीत को जपा जाता है और वह शब्दतीत परम धाम ही है क्योंकि वह सदा गणनारहित है।(547)

आत्मस्वरूपं जानीहि ईशस्तु परमेश्वरः।
कथयामि वरारोहे यन्मया जायते सदा।।548।।

हे वरारोहे! आत्म के स्वरूप को जानो। ईश तो परमेश्वर है जो मेरे द्वारा सदा होता है। उसका मैं कथन करुँगा।(548)

मम शक्ति महामाया यया विवर्त्यते जगत्।
अकारादिक्षकारान्ता मातृकावर्णरूपिणी।।549।।

मेरी शक्ति महामाया है, जिससे मैं जगत् के रूप में विवर्त होकर भासता हूँ। इसकेलिये ही अकार से लेकर क्ष कार पर्यन्त मेरी शक्ति माया मातृका का स्वरूप धारण करती है।(549)

प्रणवस्य व्याहृतीनामतः सम्बन्ध उच्यते।
अकारो भूरुकारसतु भुवो मार्णः स्वरीरितः।।550।।

बिन्दुर्महस्तथा नादो जनः शक्तिस्तपः स्मृतम्।
शान्तं सत्यमिति प्रोक्तं यत्स्यात्परतरं परम्।।551।।

प्रणव के व्याहृतियों के साथ सम्बन्ध कहता हूँ। अकार भूः, उकार भुवः, मकार स्वः - ऐसे कहा गया है। तथा बिन्दु महः, नाद जनः, शक्ति तपः - कहा गया है एवं शान्ता सत्य है - ऐसा कहा गया है जो यह परतर पर है वही यह सब है।(550-551)

स्वामिन् प्रसीद विश्वेश के वयं केन भाविताः।
किं मूलाः किं क्रियाः सर्वमस्मभ्यं वक्तुमर्हसि।।552।।

ब्रह्माजी एकबार विष्णुजी से पूछे - हे स्वामी !, हे विश्वेश! आप प्रसन्न हो। हम लोग कौन हैं, किससे भावित यानि प्रेरित हैं, हमारा मूल क्या है, कौन कौन क्रियायें हैं? हमें इन सब प्रश्नों का समाधान कहिये।(552)

इति पृष्टं परं ज्योतिरुवाच प्रमिताक्षरम्।
यूयमक्षरसम्भूताः सृष्टिस्थित्यन्तहेतवः।।553।।

ऐसे पूछे जाने पर प्रकाशस्वरूप परमात्मा विष्णु थोड़े ही अक्षरों (शब्दों) में कहे - सृष्टि, स्थिति और प्रलय के कारण भूता अक्षरों से आप उत्पन्न हो।(553)

तैरेव विकृतिं यातास्तेषु वो जायते लयः।
इति तस्य वचः श्रुत्वा तमपृच्छत्सरोभूः।।554।।

अक्षरों से स्थिति काल में विकृति को प्राप्त कर प्रलय काल में आप के साथ सब इन्हीं में लीन हो जाते हैं। इस प्रकार जवाब सुनकर ब्रह्माजी फिर से पूछे।(554)

अक्षरं नाम किं नाथ कुतो जातं किमातमकम्।
इति पृष्टो हरिस्तेन सरोजोदरयोनिना।।555।।

हे नाथ! अक्षर नाम का वस्तु क्या है? वह किससे उत्पन्न होता है और उसका क्या स्वरूप है? ऐसे ब्रह्माजी से पूछे जाने पर विष्णुजी कहे।(555)

मूलार्णमर्णविकृतीर्विकृतेर्विकृतिरपि ।
तत्प्रभिन्नानि मन्त्राणि प्रयोगश्च पृथग्विधानम्।।556।।
वैदिकांस्तान्त्रिकांश्चापि सर्वान्नित्यमुवाच ह।
प्रकृतिः पुरुषश्चैव नित्यौ कालश्च सत्तम।।557।।

अणोरणीयसी स्थूलात्स्थूला व्याप्तचराचरा।
आदित्येन्द्राग्नितेजोमद्यद्यत्तत्तन्मयो विदुः ।।558।।

यद्यपि मूल वर्ण, वर्णों के विकृति और विकृतियों के भी विकृति, उनसे हुये भिन्न-भिन्न मन्त्र और प्रयोग की विधियाँ सब अलग-अलग हैं। वैदिक और तान्त्रिक सभी प्रकार के मन्त्रों को नित्य भी कहा गया है। हे सत्तम! प्रकृति और पुरुष नित्य हैं, साथ में काल भी नित्य है। तथापि अणु से भी अणु, स्थूल से भी स्थूल, चराचर को व्याप्त करके है तथा सूर्य, इन्द्र अग्नि, आदि तेजवाले जो-जो हैं वे सब अक्षरमय ही हैं।(556-558)

न श्वेतरक्तपीतादिवर्णैर्निर्धार्य चोच्यते।
न गुणेशु न भूतेषु विशेषेण व्यवस्थिता।।559।।

सफेद, पीला, लाल इत्यादि को रंग-रूप से निर्धारण कर, नहीं कहा जा सकता क्योंकि वे न गुणों में और न भूतों में विशेषरूप से व्यवस्थित हैं।(559)

अन्तरन्तर्बहिश्चैव देहिनां देहपूरणी।
स्वसंवेद्यस्वरूपा सा दृश्या देशिकदर्शितौ।।560।।

भीतर से भी भीतर और बाहर सर्वत्र देहियों के देह को व्याप्त करनेवाला वह अक्षर तत्त्वरूपा शक्ति केवल गुरु के द्वारा बताये जाने पर स्वयंवेद्यस्वरूपा मातृका का बोध होता है।(560)

ययाऽऽकाशस्त्रयो वापि लब्धया नोपलभ्यते।
पुंनपुंसकयोस्तुल्याऽप्यंगनासु विशिष्यते।।561।।

शक्ति रूपी कारण से ही आकाशादि पंचभूत (तैत्तिरीय उपनिषद् में) अथवा तेजोऽबन्नादि (छान्दोग्य उपनिषद् में) कार्यों की अभिव्यक्ति होने पर भी वह शक्ति प्राप्त (पकड़ में) नहीं होती। यथा पुरुष और नपुंसक में कुछ बराबर सा (समानता) होने पर भी वे स्त्रियों से विलक्षण ही है (अर्थात् मुक्तपुरुष और कार्यात्मक जगत् में बद्धपुरुष में कुछ समानता होने पर भी वे प्रकृति से विलक्षण है) ।(561)

प्रधानमिति यामाहुर्या शक्तिरिति कथ्यते।
याऽऽयुष्मानपि मां नित्यमवष्टभ्यातिवर्तते।।562।।

जिसे कुछ लोग प्रधान शब्द से कहते हैं तो कुछ अन्य लोग प्रकृति शब्द से कहते हैं। जो मुझ नित्य आयुष्मान् को आश्रय करके मुझे ही अतिक्रमण (आवृत) कर देती है।(562)

साऽहं यूयं तथैवान्यद्वेद्यं तत्तु सा स्मृता।
प्रलये कल्प्यते तस्यां चराचरमिदं जगत्।।563।।

मैं, आप और अन्य जो कुछ भी जहां कहीं भी वेद्य हैं, वह सब कुछ वेद्य वही है। प्रलय काल में यह चराचर जगत् उसी में विलीन रहता है।(563)

सैव स्वं वेत्ति परमा तस्या नान्योऽस्ति वेदिता।
सा तु कामात्मना सम्यङ्मयैव ज्ञायते सदा।।564।।

वह परमा है (क्योंकि वह पर को भी माति यानि नापती है, अर्थात् पर को भी अध्यास से युक्त कर सोपाधिक जैसा करती है) वह स्वयं को जानती है, उसे कोई अन्य व्यक्ति नहीं जान सकता। काम के रूप में मैं ही सदा उसको सम्यक् जानता हूँ।(564)

अकचटतपयाद्यैः सप्तभिर्वर्णवर्गैर्विरचितमुखबाह्वापादमध्याख्यहृत्का।
सकलजगदधीशा शाश्वता विश्वयोनिर्वितरतु परिशुद्धिं चेतसः शारदा वः।।565।।

अ क च ट त प य – वर्णों के इन 7 वर्गों के द्वारा विरचित मुख, दो बाहू, दो पैर, मध्य भाग (धड़) और हृदय से युक्त वह संपूर्ण जगत् के अधीश्वरी, विश्व का कारण भूता नित्या शक्ति शारदा आप सब के चित्त की परिशुद्धि प्रदान करें। (565)

ब्रह्माणी माहेशी कौमारी वैष्णवी च वाराही।
इन्द्राणी चामुण्डा समहालक्ष्मीश्च मातरः प्रोक्ताः।।566।।

इन सात वर्गों के सप्त शक्तियाँ के नाम इस प्रकार बताये गये हैं – ब्रह्माणी, माहेशी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी और चामुण्डा तथा महालक्ष्मी सहित मातृवर्ग।(566)

यां ज्ञात्वा सकलमपास्य कर्मबन्धं तद्विष्णोः परमपदं प्रयाति लोकः।
तामेतां त्रिजगति जन्तुजीवभूतां हृल्लेखां जपत च नित्यमर्चताऽलम्।।567।।

यह लोक (जीव) जिसे जानकर सकल कर्मबन्धन को काटकर उस व्यापक परम पद को प्राप्त करता है उसे जानने केलिये वह यह इन तीनों लोकों में जीवजन्तुभाव को प्राप्त होकर विद्यमान हृल्लेखा की पूजा करता हुआ जपता हुआ यही पर्याप्त साधन है।(567)

नित्योदिते सहस्राणि एकविंशच्छतानि षट्।
द्विके दशसहस्राणि तथाऽष्टौ च शतानि तु।।568।।
त्रिके सप्तसहस्राणि द्विशतीत्युदयः स्मृतः।
चतुष्के तु सहस्राणि पंच तुर्यांशतानि तु।।569।।

पंचाक्षरे सहस्राणि चत्वारि त्रिंशतोदयः।
विंशाधिकः समाख्यातो ज्ञेयश्चोदयवाहिभिः ॥570॥
षट्के तु त्रिसहस्राख्यः षट् शतान्तोदयस्ततः।
सप्तके त्रिसहस्रं तु षडशीत्यधिकं स्मृतम् ॥571॥
अष्टोत्तरशते चक्रे मन्त्रपिण्डाक्षरात्मके।
द्विशतात्मने पुनः प्रोक्त उदयः सर्वसिद्धिदः ॥572॥

जो इस शरीर में नित्य सोऽहं रूप से प्राण बनकर 24 घण्टे में 21600 बार अन्दर - बाहर होता है। दो भाग में (केवल दिन अथवा केवल रात, यानि 24 घण्ट का दिन-रात पूरा नहीं) ग्रहण करें तो 10,800 बार। तीन भाग में ग्रहण करें तो (20 घड़ी के हिसाब से) 7200 बार। चार भाग में (1 प्रहर के हिसाब से) ग्रहण करें तो 5400 बार, पाँच भाग में ग्रहण करें तो 4320 बार, छः भाग में ग्रहण करें तो 3600 बार, 7 भाग में ग्रहण करें तो 3086 (यद्यपि 3086 गुणा 7 = 21602, 2 संख्या बढ़ती है, तो उसे कादाचित्क समझना है)। और यदि 108 भाग से ग्रहण करें तो यानि मन्त्रपिण्डाक्षरात्मक रूप से ग्रहण करें तो 200 बार अजपाजप करती है। वह स्वरोदय या अजपाजप सर्वसिद्धि प्रदायक है। इसलिये उसका ध्यान अवश्य करें।(568-572)

नाभ्यधो मेढ्रकन्दे च स्थिता वै नाभिमध्यतः।
तस्माद्विनिर्गता नाड्यस्तिर्यगूर्ध्वमधः प्रियः ॥573॥

नाभि से नीचे, मेढ्र से कन्द देश पर्यन्त व्याप्त होकर रहती हुई वह शक्ति उस नाभि के बीच में से ऊपर, नीचे और मध्य इस प्रकार सभी ओर नाड़ी के रूप में फैली हुई है।(573)

चक्रवत्संस्थितास्तत्र प्रधाना दश नाडयः।
द्वासप्ततिसहस्राणि नाड्यस्ताभ्यो विनिर्गताः ॥574॥

चक्र के समान नाड़ियाँ इस शरीर में 10 स्थान में प्रधान रूप से रहती है। जिससे 72000 नाड़ियाँ निकली हुयी हैं।(574)

पुनर्विनिर्गताश्चान्या आभ्योऽप्यन्याः पुनः पुनः।
यावत्यो रोमकोट्यस्तु तावत्यो नाड्यः स्मृताः ॥575॥

पुनः उनसे और अन्य, उनसे भी अन्य, इस प्रकार पुनः पुनः विभक्त होता हुआ इस शरीर को व्याप्त करती है तुलनात्मक रूप से कहा जाय तो कह सकते हैं

की जितने करोड़ रोम (केश = बाल) उतने (तात्पर्य को बताते हुये अन्य शास्त्र में 3.5 लाख कहा गया है और कहीं 72 करोड़ 72 लाख, 10 हजार, 101 कहा गया है) नाड़ियाँ हैं।(575)

यथा पर्णपलाशस्य व्याप्तं सर्वत्र तन्तुभिः।
षट्शतानि वरारोहे सहस्राण्येकविंशतिः॥576॥

संक्षेप में कहा जा सकता है कि जिस प्रकार पीपल के पत्ते को नसे व्याप्त की हुई रहती है उसी प्रकार हे वरारोहे! इस शरीर में 72000 नाड़ियाँ के माध्यम से 21600 श्वास-प्रश्वास रूपी अजपाजप करता हुआ प्राण के रूप में शक्ति ही स्थित है।(576)

अहोरात्रेण बाह्येन अध्यात्मं तु सुराधिपे।
शतानि त्रीण्यहोरात्राः षष्टिरेव तथाऽधिकाः॥577॥

हे सुराधिपे! दिन-रात रूपी बाह्य स्थूल गणना से इस शरीर से सम्बन्धि काल की गणना 360 होते हैं।(577)

वर्षमेतत्समाख्यातं बाह्ये वैघटिका च सा।
चतुर्विंशतिसंक्रान्त्याः समाख्याताः स्वभावतः॥578॥

इस को वर्ष (साल या संवत्सर) नाम से कहा जाता है। स्थूल गणना के दृष्टि से घटिका (एक घड़ि यानि 24 मिनट, $2^1/_2$ घड़ि = 1 घण्टा) के रूप में उसको कहा जाता है। स्वभावतः 24 संक्रान्ति कही गई है (चन्द्र के पूर्णिमा और अमावस्या का दृष्टिकोण से 24 संक्रान्ति, लेकिन सूर्य का दृष्टिकोण से तो केवल 12 संक्रान्ति होते हैं)।(578)

शतानि नव वै हंस एकमेकां वहेत्सदा।
बाह्ये चैव त्वहोरात्रे अध्यात्मं तु वरानने॥579॥

अथवा हे वरानने! बाह्य दिन-रात में प्रत्येक शरीर को यह हंस प्रत्येक नाड़ी को 900 बार वहन करता (चलाता) है।(579)

चतुर्विंशती संक्रान्तीः प्राणहंसस्तु संक्रमेत्।
अहनि द्वादश प्रोक्ता रात्रौ वै द्वादश स्मृताः॥580॥

अतः प्राणहंस 24 घण्टे में 24 बार 24 संक्रान्तियों का संक्रमण करता है। दिन में 12 और रात में 12 कहा गया है।(580)

षट्शतानि दिवारात्रौ सहस्राण्येकविंशतिः।
जापो देव्याः समुद्दिष्टः सर्वदा सुलभो जडैः॥581॥

इसलिये देवी के मंत्र का 21600 जप दिनरात में जड़बुद्धिवाले (कर्मकाण्डी) साधक द्वारा सदा करना चाहिये –ऐसे यह सरलतम उपदेश दिया गया है।(581)

पंचप्रणवसंयोगाज्जपतः सिद्ध्यति ध्रुवम्।
पंचपंचकसंयुक्तो देहे सकलनिष्कलः॥582॥

पंचप्रणवों का संयोग से जपते हुए का सब कुछ सिद्ध होता है निश्चितरूप से, क्योंकि इस शरीर में 25 तत्त्वों के योग से वह परमात्मा सकल और निष्कल भाव से प्रतिष्ठित है।(582)

ह्रस्वदीर्घप्लुतं सूक्ष्ममतिसूक्ष्मपरं शिवम्।
प्रणवं पंचधा ज्ञात्वा भित्त्वा मोक्षो न संशयः॥583॥

ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, सूक्ष्म और अतिसूक्ष्म परम शिव को पांच प्रकार का प्रणव जानकर भेदन करके मोक्ष प्राप्त होगा, इसमें कोई संशय नहीं।(583)

ऊर्ध्ववक्त्रः स्थितो भानुश्चन्द्रश्चाधोमुखः स्थितः।
शक्तेर्मध्योर्ध्वभागे वै स्थानं च यत्प्रकीर्तितम्॥584॥

ऊर्ध्वमुख स्थित है सूर्य और अधोमुख स्थित है चन्द्र, दोनों के बीच ऊर्ध्वभाग में शक्ति का स्थान कहा गया है।(584)

यदा तु प्राणापानयातायातं परिहारेण।
हृदि द्वादशान्ते च विश्रान्तिः क्रियते च यदा॥585॥
तदा तदा ह्युन्मन्यन्त इति प्रणापानप्रथमपदे।
द्वादशान्ते हृदि च परतत्त्वानुभवे विश्राम्यति॥586॥

जब–जब प्राणस्थान के गमनागमन का परिहार (केवल कुम्भक का अभ्यास से) करके हृदय में अथवा द्वादशान्त में विश्राम किया जाता है तब–तब उन्मनीभाव में स्थित होते हैं, क्योंकि हृदय अथवा द्वादशान्त में प्राणापान का प्रथम पद यानि मूलस्वरूप प्राण में (विभाग विहीन होकर रहने पर) ही स्थित रहकर परतत्त्वानुभव करते हुए विश्राम करता है।(585–586)

उन्मन्यन्त इत्यभिदधद् द्वादशान्तविभिन्ना।
हृदि च व्याप्तिरस्तीति दर्शयति यथा तथा॥587॥

उन्मन्यन्ते अर्थात् उन्मनीभाव की अनुभूति को करते हुये द्वादशान्त से भिन्न हृदय में व्याप्ति यहां दर्शा रहे हैं।(587)

ध्यानयुक्तस्य षण्मासात्सर्वज्ञत्वं प्रवर्तते।
कालत्रयं विजानाति कालयुक्तस्तु योगवित्॥588॥

एतादृश ध्यान से युक्त योगी 6 महीने में सर्वज्ञ होगा और काल से युक्त योगी त्रिकालज्ञ हो जायेगा।(588)

विज्ञानं श्रवणं दूरान्मननं चावलोकनम्।
हतमृत्युर्जरां त्यक्त्वा रोगैः सर्वभयोज्झितः।।589।।

दूर से ही श्रवण, दर्शन आदि पूर्वक मनन, विज्ञान आदि होगा। मृत्यु को मारकर बुढ़ापा को त्यागकर रोगों से व सब प्रकार के भय से मुक्त होता है।(589)

सर्वैश्वर्यगुणावाप्तिर्भ वेत्कालजयात्सदा,
दक्षनासापुटे ध्यात्वा वाहनैश्वर्यमवाप्नुयात्।
वामनासापुटे ध्यात्वा सर्वैश्वर्यं सदाऽऽप्नुयात्,
सकलो ग्रहसंयुक्तो निष्कलो भावमाश्रितः।।590।।

सकल ऐश्वर्य और सकल गुणों की प्राप्ति सहित सदा कालजय को प्राप्त होगा। दाहिनी नासिका में ध्यान करने से वाहनादि सहित इस लोक के ऐश्वर्य को प्राप्त करेगा और बायीं नासिका में ध्यान करने पर परलोक के सकल ऐश्वर्य को प्राप्त करेगा। ग्रह संयुक्त हो तो (संकल्पयुक्त यानि सकाम हो तो) फल सकल सगुण होगा तथा भाव को आश्रित (निष्काम भाव से हो तो) फल निष्कल निर्गुण होगा।(590)

तद्योगादपि तद्बीजं सर्वबीजप्ररोहकम्।
तत्र मन्त्राश्च वर्णाश्च प्रतिष्ठां यान्ति नान्यथा।।591।।

उसके योग से, उसका बीज जो सकल बीजों का जन्मदाता है, जिसमें सकल मन्त्र और वर्ण प्रतिष्ठित हैं उसको योगी प्राप्त करता है अन्यथा नहीं।(591)

जपः प्राणसमः कार्यो दिनस्थो मुक्तिकांक्षिभिः।
संहारः स तु विज्ञेयः शिवधामफलप्रदाः।।592।।
व्योम्नि प्राप्तो यदा नादः पुनरेव निवर्तते।
शर्वरी सः तु विज्ञेया हृदब्जं यावदागतः।।593।।
सृष्टिरेषा समाख्याता सर्वसिद्धिफलोदया।
विविधश्च जपो ह्येतत्सर्वकामदुघश्च वै।।594।।

मुक्ति की इच्छा करने वाले योगी जप को प्राण का गति के समान गति से करना चाहिये। उस जप को दिनस्थ (स्थिति) समझना चाहिये। तथा उस जप को संहार रूप समझें जिसके नाद आकाश को प्राप्त कर लौटता है, यह शिवधाम रूपी फल को देनेवाला है। तथा उस जप को सृष्टि रूप समझें जिसके गूंज का असर

हृदयदेश पर्यन्त होता है जो की सकल सिद्धि रूपी फल देने वाला होता है और इसे शार्वरी कहते हैं। ये तीन प्रकार के जप हैं, जिनसे सब प्रकार के (यानि मोक्ष पर्यन्त) फल प्राप्त किया जा सकता है।(592–594)

12. नादभेदः = नादभेद का वर्णन –

नादस्थं पंचधा चैव शक्तिस्थं पंचधा पुनः।
ईषदुद्घाटिते वक्त्रे तदा नादं विजानता।।595।।
व्यापिन्याः पंचधा चैव समनानि कलात्मनोः।
उन्मना च परं तत्त्वं सर्वं व्याप्य व्यवस्थितम्।।596।।
एवं ज्ञात्वा विमुच्यन्ते शिवतत्त्वविदो जनाः।
अन्यथा नैव मुच्यन्ते बिन्द्वन्ते ते व्यवस्थिताः।।597।।

मुख खोलके थोड़े से भी उच्चारण करने पर जो सुनाई दे उसे नाद जानो। नादस्थ 5 प्रकार, शक्तिस्थ 5 प्रकार, व्यापिनी के 5 प्रकार, समना, निष्कल आत्मा, उन्मना ओर पर तत्त्व – सब को व्याप्त करके नाद रूपी ब्रह्म व्यवस्थित है। इस प्रकार उसको जानकर शिवतत्त्व वेत्ता लोग मुक्त हो जाते हैं। अन्य किसी भी प्रकार की साधना से बिन्दु पर्यन्त की अवस्था में ही आरूढ़ जो लोग हैं वे मुक्त नहीं हो सकते।(595–597)

जोतीरूपन्तु बिन्दुस्थं नादस्थं शब्दरूपकम्।
शक्तिस्थं स्पर्शनं चैव तदूर्ध्वगं शून्यरूपकम्।।598।।
ब्रह्मादिपंचकं यच्च तेषां शून्यं च तत्पदम्।
परापरविभागेन ते सर्वत्र व्यवस्थिताः।।599।।

बिन्दु में स्थित ज्योतिरूप, नाद में स्थित शब्दरूप, शक्ति में स्थित स्पर्शरूप, उससे ऊपर में शून्यरूप से स्थित को और ब्रह्म आदि पाँच को तथा उनके जो वास्तविक पद (स्वरूप) शून्य (यानि निर्गुण निराकार निरवयव आदि रूप) को परापरविभाग से सर्वत्र व्यवस्थित है – ऐसे जाने।(598–599)

शून्यातीतं तु समना शुद्धात्मा तून्मना तथा।
सर्वातीतं परं तत्त्वं सर्वं व्याप्य वयवस्थितम्।।600।।

शून्यातीत समना है और शुद्धात्मा उन्मना है, सर्वातीत पर तत्त्व जो सबको व्याप्त करके स्थित है।(600)

मन्त्ररूपाश्च विज्ञेया बिन्दुधर्मास्तु दैवताः।
तत्रस्थाः सर्वकर्माणि साधयन्तिन संशयः।।601।।

देवता सहित बिन्दुधर्मवाले (यानि बिन्दुयुक्त) होते हैं सभी मन्त्र ऐसे जानें। उसमें स्थित होकर सकल कार्यों को सिद्ध करते हैं, इसमें संशय नहीं। (601)

तत्त्वं चोन्मनात्मा तु समना शून्यमेव च।
स्पर्शश्चैव तथा शब्दो रूपं च तदनन्तरम्।।602।।
मन्त्रात्मनि स्थिताः सर्वे ज्ञातव्या दैशिकेन तु।
तत्रस्था ज्ञानयोगं च प्रयच्छन्ति वरानने।।603।।

उन्मना तत्त्व है, समना शून्य है, शब्द स्पर्शात्मक, उसके अनन्तर रूप होता है। ये सब मन्त्रस्वरूप में स्थित होते हैं – ऐसे दीक्षित साधक द्वारा जानना चाहिये। हे वरानने! शिष्य को गुरु इस मन्त्रस्थ ज्ञानयोग को अवश्य देते हैं।(602–603)

कर्मकाले तु सकलाः शिरःपाण्यादिभियुर्ताम्।
जपे तु सकलान्देवि निष्कलेन समन्वितान्।।604।।

हे देवी! अतः कर्मकाल में मन्त्र सदा सकल ही होते हैं। जप काल में हाथपैरादि से युक्त और निष्कल से समन्वित सकल मन्त्रों को ही जपना चाहिये।(604)

13. नादज्ञानम् = नाद का ज्ञान –

स चन्द्रो विद्यमानोऽपि अपानो हृदि मध्यमः।
यदा वोत्सन्नतां याति जीवादित्यो न चोद्गमेत्।।605।।

चन्द्र, अपान और हृदय में प्राण का रहने पर भी जब नष्ट प्रायः जैसे स्थिति में हो तब वह जीव रूपी सूर्य उठता यानि जगता नहीं, अर्थात् सक्रिय होकर व्यवहार नहीं करता।(605)

प्रभाति कीर्तिर्विज्ञेया आत्मतत्त्वप्रबोधिनी।
यदा षशी तथाऽपानो नाद एकत्र तिष्ठति।।606।।

नाद में ही एक कालावच्छेदेन व एक देशावच्छेदेन ये सब रहते हैं – प्रकाश, कीर्ति, आत्मतत्त्वप्रबोधिनी प्रमा, क्षमा और चन्द्र – ऐसा जानना चाहिये व अनुभव करना चाहिये।(606)

तुल्यार्थज्ञानमहसा सन्ध्या वै समुदाहृता।
ऊर्ध्ववक्त्रस्थितो भानुश्चन्द्रश्चाधोमुखा स्थितः।।607।।

तुल्यार्थज्ञान की महिमा से सन्ध्या को श्रेष्ठ कहा गया है क्योंकि सूर्य ऊर्ध्वमुखस्थित रहता है जब की चन्द्र सदा अधोमुखास्थित रहता है।(607)

तदन्तराले उदितस्ताल्वाकाशान्ते गोचरे।
प्रमाणरहितो भाव्यः सुशान्तः शान्तबोधनात्।।608।।

उनके अन्तराल में ताल्वाकाश के समीप विषयरूप में प्रकट शान्तता का बोध कराने से प्रमाणरहित होने पर भी उसे ''सुशान्त'' करके ही भावना (चिन्तन) करना चाहिये।(608)

व्योमपद्मो स वह्निस्तु तुल्यार्धकालकल्पनात्।
माध्याह्निकी तु विज्ञेया सन्ध्या मोक्षप्रदायिनी।।609।।
व्योममध्यस्थितः सूर्यः परादित्ये हि कथ्यते।
अनस्तमितसारो हि जन्तुचक्रप्रबोधकाः।।610।।

तुल्यार्थकालकाल्पित होने से मध्याह्नकालीन सन्ध्या के सूर्य को (वह्नि को आकाश कमल (ब्रह्म कमल) के समान श्रेष्ठ समझें, क्योंकि वह सन्ध्या मोक्षदायिनी है। आकाश के बीच में स्थित सूर्य को पर आदित्य (यानि सर्वश्रेष्ठ सूर्य) कहा गया है, क्योंकि उस समय वह अस्तता का प्रभाव से रहित होकर जीवों के चक्रों को जगाता है।(609-610)

बिन्दुः प्राणोऽप्यहश्चैव रविरेकत्र तिष्ठति।
सुप्रशान्तन्तु संतिष्ठेन्मनोऽप्यावृत्तिवर्जितः।।611।।

उस वक्त सूर्य, बिन्दु, प्राण और दिन सब एक साथ स्थित होते हैं, अत एव चहल-पहल रहित सुशान्त रहता है। (विशेष तौर पर ग्रीष्मकालीन मध्याह्न) और मन भी आवृत्ति रहित हो जाता है।(611)

कृत्वा प्रशान्तभूमौ च स्वरूपं सन्धिदेशतः।
महासन्ध्या तु विज्ञेया तुतीया परिकीर्तिता।।612।।

प्राकृतिक सन्ध्या के समान आध्यात्मिक धरा पर योगी ऐसी प्रशान्तभूमि के स्थिति का सम्पादन करके सन्धिदेश से स्वरूप की अनुभूति करें। इसे महासन्ध्या समझें। पूर्वोक्त दो सन्ध्याओं से अलग यह तीसरी सन्ध्या है।(612)

तया निबद्धया देहे सन्निधाय गुणेश्वरः।
विदध्युः साधकेन्द्राणां देवि नास्त्यत्र संशयः।।613।।

हे देवी! महासन्ध्या की स्थिति से निबद्ध साधक श्रेष्ठों के शरीर में गुणों का ईश्वर सन्निहित होकर प्रकाशित होता है यानि अनुभव में आता है, इस में कोई संशय नहीं।(613)

पदानि मन्त्रारब्धानि मन्त्रा वर्णैकविग्रहाः ।
वर्णाः स्वनिष्ठा इत्येषां स्थूलसूक्ष्मपरात्मता ।।614।।

पद मन्त्रों से आरब्ध है, मन्त्र वर्णों से आरब्ध है किन्तु वर्ण स्वनिष्ठ हैं। (यानि किसी से आरब्ध नहीं, नित्य हैं) – यही इनकी स्थूल, सूक्ष्म और पर स्वरूप है।(614)

भुवनव्यापिता तत्त्वे वनन्तादिशिावान्तके।
कालान्तर्भाविनस्ते वै निवृत्त्याद्यास्तु कलाः ।।615।।

अनन्तादि शिवान्त तक तत्त्व भुवन में व्यापी होते हैं और वे काल के अन्तर्भावी भी हैं, उन कलाओं को विवृत्ति आदि नाम से पूर्व में कहे गये हैं।(615)

14. साधनायाः कालज्ञानम् = साधना का काल ज्ञान –

मानुषाक्षिनिमेषस्य अष्टांशो हि क्षणः स्मृतः।
क्षणद्वयं त्रृटिर्ज्ञेयं तद्द्वयन्तु लवः स्मृतः ।।616।।
लवद्वयं निमेषस्तु ज्ञातव्यो गणितक्रमात् ।
दश पंच निमेषास्तु काष्ठा चैव प्रकीर्तिता ।।617।।

मनुष्य के आँखों के पलक जितने समय में गिरते हैं उसके 8 वें भाग को **क्षण** कहते हैं। 2 क्षण=एक **त्रुटि**, 2 त्रुटि=1 **लव**, 2 लव=1 **निमेश** – ऐसे काल के क्रम को गणित क्रम से जानें। 15 निमेश=1 **काष्ठा** कहा गया है।(616–617)

आध्यात्मिका होरागणे बाह्ये काष्ठा विधीयते।
अमृतं चन्द्ररूपेण द्विधा षोडशधा पुनः ।।618।।
पिबन्ति च सुराः सर्वे दश पंच पराः कलाः।
तस्यार्धपौर्णमासी तु प्रतिपद्दर्शेन संस्थिता ।।619।।

बाह्य होरा (काल) के गणना में आध्यात्मिक (शरीर का अंग विशेष आँख) की क्रिया के मध्यम सेकाष्ठा को निश्चय किया गया है। समस्त देवता चन्द्र रूप से अमृत को दो प्रकार (पूर्णिमा और अमावस्या) अथवा 16 प्रकार से (तिथियों के अनुसार) पीते हैं। अतः कुल 15 कलायें होते हैं। (फिर 16 क्यों कहा गया ? प्रतिपत् से चतुर्दशी तक 14 + 1 पूर्णिमा + 1 अमावस्या=16)। उसके (मास के) आधे में (अर्थात् शुक्ल पक्ष प्रतिपत् से अमावस्या तक का महीना मान कर) पूर्णिमा होती है तथा दर्श (यानि अमावस्या) से जुड़ा हुआ प्रतिपन् तिथि (यानि शुक्ल पक्ष की प्रतिपत्) होती है।(618–619)

हृत्पद्मसन्धिमध्ये तु सोमस्य ग्रहणं भवेत्।
पक्षद्वयेऽपि ग्रहणं भवेद्वै सर्वदेहिनाम् ।।620।।

हृदयकमल का सन्धि के बीच में चन्द्र का ग्रहण होना चाहिये। सकल मनुष्यों के द्वारा दोनों ही पक्ष में ऐसे ही ग्रहण होना चाहिये।(दोनों पक्ष का अर्थ है – शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष अथवा पूर्णिमा से पूर्णिमा या अमावस्या से अमावस्या तक मास माननेवाले के अनुसार)।(620)

एवमेव समाख्यातं यावदायुर्वरानने।
अथैवाध्यात्माहोरात्रे त्वया ह्युदय उच्यते।।621।।

हे वरानने! संपूर्ण आयु पर्यन्त काल की गणना के बारे में ऐसे बताया गया है। अब बाह्य होरा के अनन्तर आध्यात्मिक अहोरात्र जो आपके द्वारा उदय होता है उसे कहूँगा।(621)

हृत्पद्मादूर्ध्वपर्यन्तं राशयः षड् व्यवस्थिताः।
अंगुलैः षड्भिरेकैको हृत्पद्मोदितशक्तितः।।622।।
अंगुले अंगुले ह्यक्षतिथयः पंच संस्थिताः।
तस्याप्यर्धदिनं पूर्वमपरार्धनिशा भवेत्।।623।।

हृदयकमल से ऊपर 6 राशियाँ हैं। 6-6 अंगुल के अन्तर में एक-एक क्रमशः हैं, जो हृदयकमल की शक्ति से होते हैं। एक-एक अंगुल के अन्तर में 5 अक्षतिथि संस्थित है। उसके भी पूर्वार्ध दिन एवं अपरार्ध रात्री होते हैं।(622-623)

षट्पंचकास्तिथीनां ये तेऽहोरात्रास्तु मासिकाः।
त्रिंशता तैरहोरात्रैर्द्विपक्षो मास उच्यते।।624।।

6 गुणा 5 = 30 तिथियां जो हैं, उन दिनरात के समूह को मास कहते हैं। प्रत्येक तिथि दिनरातरूपा लगभग 60 घड़िवाली होती है। उन तीस अहोरात्र के समूह को ही दो पक्षोंवाला (शुक्ल व कृष्ण) मास कहा गया है।(624)

मासि राश्युदये ह्येष अधोर्ध्वप्राणसंचरे।
हृदयादुदयस्थानात्संक्रान्तिर्मकरे स्थिताः।।625।।
षडंगुलान्यधस्त्यक्त्वा कुम्भे संक्रमते पुनः।
कण्ठोर्ध्वे द्व्यंगुलं त्यक्त्वा मीने संक्रमते पुनः।।626।।
गलोर्ध्वाद्यावत्ताल्वन्तं त्यक्त्वा मेषेऽथ संक्रमेत्।
नासान्ते यावत्संक्रान्तिरंगुलानि शडेव हि।।627।।
एषा वै विषुसंक्रान्तिरुत्तरे चास्त्यवस्थिता।
जपहोमार्चनध्यानान्महाभ्युदयकारिका।।628।।

नासाग्रे तु परित्यज्य प्राणहंसो वृषे चरेत्।
शडंगुलानि संत्यज्य संक्रमेन्मिथुने पुनः।।629।।
शक्त्यन्तं यावदध्वानं संक्रान्तिर्मिथुने स्मृता।
मकराच्च समारभ्य मिथुनान्तं च सुव्रते।।630।।
उत्तरायणमत्रैते देहिकीसिद्धिवर्जितम्।
दक्षनामा तु यो रुद्रः कथितोऽत्र महेश्वरि।।631।।

यह राशि नीचे और ऊपर प्राण का संचार पूर्वक महिने में उदय होता है। हृदय रूपी उदयस्थान से मकर में स्थित होकर संक्रान्ति शुरु होती है। छः अंगुल नीचे छोड़कर यानि कण्ठ की ओर आगे बढ़कर कुम्भ में संक्रमण करता है। कण्ठ के ऊपर दो अंगुल छोड़कर मन में संक्रमण करता है। गले से ऊपर तालु के समीप तक को छोड़कर मेष में संक्रमण करता है। नासा पर्यन्त 6 अंगुल की संक्रमण ही होता है जो उसे विषु संक्रान्ति कहा जाता है और यह उत्तरायण में ही व्यवस्थित है। जप, होम, पूजा, ध्यान इस समय करने से वह महान् अभ्युदय का कारक होता है। नासाग्र को त्यागकर यह प्राण रूपी हंस वृषभ राशि में संक्रमण करता है। उससे ऊपर 6 अंगुल छोड़कर वह मिथुन में संक्रमण करता है। शक्तिपर्यन्त के मार्ग को मिथुन में संक्रमण का अवधि कहा गया है। हे सुव्रते! इस प्रकार मकर से आरम्भ कर मिथुन पर्यन्त गति को उत्तरायण कहते हैं। इस में दैहिकी सिद्धि वर्जित है। क्योंकि हे महेश्वरी! दक्ष नामक जो रुद्र है वह इस काल का अभिमानी कहा गया है।(625-631)

कार्तिकमासमखिलं स तु भुंक्ते महेश्वरि।
चण्डो मार्गशिरोमासि हरः पौषे तु कीर्तितः।।632।।
शार्ङ्गी तु माघमासे च प्रमथः फाल्गुने तथा।
भीमश्चैत्रे समाख्यातो वैशाखे मन्मथः स्मृतः।।633।।
शकुनिर्ज्येठमासे तु आषाढे सुमतिस्तथा।
नन्दोऽथ श्रावणे मासि भाद्रे गोपालकस्तथा।।634।।
पितामहक्च्व वीरेक्षि मास्याश्वयुजस्य च।
संक्रान्तयो द्वादशाऽत्र क्रमशश्च प्रकीर्तितः।।635।।

हे महेश्वरी! वह (रुद्र) संपूर्ण कार्तिकमास का भोग करता है। तथा मार्गशीर्ष मास में चण्ड, पौष में हरि, शांर्गी माघमास में, प्रथम फाल्गुन मास में, भीम चैत्र में, वैशाख में मन्यथ, ज्येष्ठमास में शकुनि, आषाढ में सुमति, श्रावण में नन्द, भाद्रपद में गोपालक, हे वीरेशी! अश्विन मास में पितामह। इस प्रकार 12 संक्रान्तियों को क्रमशः कह दिया गया।(632-635)

एवं भुक्ता सुरैस्तावन्मानुषं प्रति संभूय।
द्वादशाब्दोदये प्राणे वत्सरास्ते प्रकीर्तिताः॥636॥

बारह राशियों में संक्रमण करता हुआ अमृतरूपी चन्द्र का देवताओं के द्वारा उपभोग किये जाने पर इन मनुष्यों के उसी (मिल करके यानि इन 12 राशियों के) काल में प्राण का उदय (संचार) होने पर एक साल कहा जाता है।(636)

मणिपूरस्य बाह्ये तु नाभिपद्मं मनोहरम्।
अष्टपद्ममथावृत्ता मध्ये कुण्डं तु दुर्लभम्॥637॥

मणिपूर के बाहर एक मनोहर नाभिकमल है, 8 पंखुड़ियों से आवृत्त है। उसके मध्य में एक दुर्लभ कुण्ड है।(637)

चतुरस्रादिकं देवि तत्कुण्डं कामवश्यकम्।
एवं कुण्डं महेशानि नालत्रयविभूषितम्॥638॥

चौकोर वह कुण्ड हे देवी! काम वर्धक नशीले पदार्थ से भरा हुआ है। हे महेशानी! इस प्रकार वह कुण्ड तीन नालों से विभूषित है।(638)

ऊर्ध्वनालं सहस्रारे परामृतविभूषितम्।
मध्यनालं नाभिमध्ये मूलाधारे च सुन्दरि॥639॥

हे त्रिपुरसुन्दरी! परामृत से विभूषित ऊर्ध्व नाल सहस्रार में, मध्य नाल नाभि के बीच में तथा अधोनाल मूलाधार में जा मिलता है।(639)

विराजते ह्यधोनालं सदानन्दमयं शिवे।
होमकुण्डमिदं देवि सर्वतन्त्रे प्रकीर्तितम्॥640॥

हे शिवे! वह अधो नाल सदा आनन्दमयता से युक्त होकर विराजमान है। हे देवी! इसी को सकल शास्त्रों में 'हेमकुण्ड' नाम से कहा गया।(640)

तत्पद्मेन भवेत्पुण्यं वृत्तपुण्यं लूनयुतम्।
त्रिपत्रं वर्धते यदा बाह्ये रुधिरदर्शने॥641॥
एतन्मध्ये महेशानि यदि स्याल्लिंगताडनम्।
षट्पद्ममध्ये गते ञ्शुक्रे सन्ततिस्तेन जायते॥642॥

उस पद्म से पुण्य होता है। पुण्य से आवृत्त व बीज से युक्त त्रिकोण जब बढ़ता है (यानि कामोद्वेग तीव्र होता है) तब स्त्रीगत रुधिर का दर्शन होने पर यदि हे महेशानी! उस के बीच में (उसकी योनि में) लिंगताडन क्रिया (सम्भोग किये जाने पर) होने पर स्त्री के स्वाधिष्ठान चक्र में शुक्राणु के जाने से सन्तति (बच्चे) उत्पन्न होते हैं।(641-642)

कोणं तत्त्रैपुराख्यं तडिदिव विलसत्कोमलं कामरूपं,
कन्दर्पो नाम वायुर्विलसति सततं तस्य मध्ये समन्तात्।
ज्ञानध्यानप्रकाशः प्रथम किसलयाकाररूपः स्वयम्भू-
स्तन्मध्ये चित्रिणी सा प्रणवविलसिता योगिनां योगगम्या।।643।।

वह त्रिकोण 'त्रिपुरा' नाम की है, जो बिजली के समान चमकीली है, कोमल व काम स्वरूप है। 'कन्दर्प' नाम का वायु उसके बीच में निरन्तर विलास करता रहता है। चारों तरफ ज्ञान-ध्यान- प्रकाश को फैलाता हुआ प्रथम खिला हुआ कोमल अंकुर के समान स्वयम्भूलिंग विराजमान है। उसके बीच में 'चित्रिणी' नाम की नाड़ी जो प्रणव की महिमा से युक्त है एवं योगियों के द्वारा योग से गम्य है वह भी विराजमान है।(643)

धर्मालम्बनधर्मैश्च सर्वसत्त्वैरशेषतः।
सर्वक्लेशाशयैः शून्यं न शून्ये परमार्थतः।।644।।

वह धर्माश्रित धर्मपरक सकल जीवों से तथा पूर्णतया सकल क्लेशों के वासनाओं से शून्य है। लेकिन वस्तुतः वह शून्यरूप नहीं (अपितु पूर्ण आनन्दरूप) है।(644)

शक्तिसंस्तुतसुधारसक्रमात्पूर्णमिन्दुमणुराहुराहरन्।
छादयेदिह शुभे महाग्रहे द्रावितं पिबति तं महाभुवि।।645।।

शक्ति से संस्तुत (यानि संयुक्त) अमृतरस (वीर्य) का निकलने से अर्थात् पृथिवी पर गिरने से वह पृथिवी उसको (वीर्य को) पी जायेगी यानि वीर्य नष्ट हो जायेगा। इसलिये जिस वीर्य को लोग पूर्णचन्द्र के समान गोलाकार अणु मानते हैं उसे आहरण कर यानि ब्रह्मचर्य से इस शिवालय रूपी शरीर में ही आच्छादित (सुरक्षित) कर लें।(645)

हंसो रश्मिभिराकृष्य गर्भस्थानन्तु कारयेत्।
गर्भस्थानेकधा यद् गृहीतन्तु पुरातनम्।।646।।

हंस रश्मियों से खींचकर गर्भस्थान की रचना करता है। गर्भ में स्थित अनेक प्रकार से गृहीत जो पुरातन है उसे सुरक्षित कर लेना सभी योगियों का कर्तव्य है।(646)

कर्कटादेः समारभ्य नित्यं वर्षति तत्पुनः।
तस्मादारभ्य मकराद्ध्यानहोमजपादिकम्।।647।।
परलाकनिमित्तय तदनन्तफलं भवेत्।
पुरश्चर्यानिमित्ताय मन्त्रग्रहव्रतं च यत्।।648।।

मीनादावारभेत्सर्वं मन्त्रसिद्ध्यर्थमात्मनः।
बाह्योऽपि ततो लोके ऋतु ाट्कं समीरितम्। ।649।।

कर्क से आरम्भ करके वह नित्य आगे बढ़ता बरसता है। इस लिये मकर से ही जप, ध्यान, होमादि शुभ कर्मों को आरम्भ करके अनुष्ठान करना चाहिये। वह कर्म परलोक प्राप्ति का निमित्त से किया गया हो तो वह अनन्तफल देगा। पुरश्चरण का निमित्त से मन्त्रदीक्षा पूर्वक व्रत जो करना है वह मीन आदि से ही आरम्भ करें। जिससे अपने लिये वह मन्त्र सिद्ध हो जाता है। जैसे आध्यात्मिक ऋतुषट्क कहा गया है वह बाह्य लोक में भी वैसे ही दिखाई देता है।(647-649)

तदेवं प्राणे मिथुनान्तमुत्तरायणं निर्णीय
अपाने कर्कटादिधन्वन्तं दक्षिणायनं निर्णेतुमाह

इस प्रकार विस्तारपूर्वक मकर से मिथुन तक का उत्तरायण की व्याख्या कर दिया गया अब कर्क से धनुः पर्यन्त की दक्षिणायन के बारे में विचार पूर्वक निर्णय कर लेना चाहिये।

शरीरस्थचक्राणां शिवशक्तिनामानि =शरीरस्थचक्रों के शिवशक्तियों के नाम -

15. स्रहस्रारचक्रस्य पद्मदले तत्त्वानि च = स्रहस्रारचक्र के पद्मदल में स्थित तत्त्व -

सहस्रदलपद्मस्य वर्णो रक्तः स्मृतो बुधैः।
स्थितिश्चाधोमुखी प्रोक्ता रूपश्चावर्तसंज्ञकः।।650।।

विद्वानों के द्वारा सहस्रदलवाला सहस्रार चक्र का रंग लाल बताया गया है, उस की स्थिति अधोमुख और उसका रूप 'आवर्त' नाम से कहा गया है।(650)

सूर्याग्निवच्चैककन्दस्त्रिकोणो गुरुमन्त्रभृत्।
सूर्याचन्द्रमसौ तस्य क्रमशो मण्डलौ स्मृतौ।।651।।

सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी एक गाँठ (गुच्छा) जैसा गुरुमंत्र युक्त त्रिकोण बीच में सुशोभित है। क्रमशः सूर्य और चन्द्र उसके दो मण्डल बतायें गये हैं।(651)

महावायुर्ब्रह्मरन्ध्रः प्रथमो हंससंज्ञकः ।
सूक्ष्मो हि महती चन्द्रकलायुक्तश्च मध्यमः। ।652।।

महावायु (युक्त), ब्रह्मरन्ध्र (स्थानवाला), हंससंज्ञक प्रथम है और दूसरा चन्द्र की कलाओं से युक्त है। दोनों ही अति सूक्ष्म हैं।(652)

अधोमुखी कला तस्य नूनं निर्वाणसंज्ञिका।
कोटिचन्द्रार्कसंकाषा कला चाधोमुखी स्मृता। ।653।।

उसकी निर्वाण संज्ञक एक कला अधोमुखी है और दूसरी अधोमुखी कला करोड़ों सूर्य व चन्द्र के समान है।(653)

शून्यब्रह्मात्मिका चान्ते सच्चिदानन्दरूपिणी।
एवं चतुर्विधाः प्रोक्त ब्रह्मरन्ध्रकलाश्च ताः ॥654।।

समीप में सूक्ष्म ब्रह्मात्मिका कला और सच्चिदानन्दरूपिणी कला शोभायमान है। इस प्रकार ब्रह्मरन्ध्र कि चार प्रकार कि कलाओं को कहा गया है।(654)

16. आज्ञाचक्रस्य शिवशक्तयः = आज्ञाचक्र के शिवशक्तियां –

अतः परं प्रवक्ष्यन्ते आज्ञाचक्रस्य शक्तयः।
अचिदिच्छा महामाया यज्ञः सृष्टिः क्रियात्मिका।।655।।
गोचरात्मा लोकमुख्याः सदसच्चेन्द्रियाश्रयाः।
वेदतत्त्वं प्राणसूत्रं मातृका च स्वरोद्भवा।।656।।
सौशुम्णकुण्डलीसंवित्संयोगो मन्त्रविग्रहा ।
वर्गजा वर्णजाः स्पन्दशब्दजाः शक्तयः क्रमात्।।657।।
पंचविंशतितत्त्वानि शिवशक्तेः प्रकीर्तिताः ।
ग्रन्थान्तरेषु संग्राह्याः सप्ततत्त्वानि भूतले।।658।।

इस से आगे आज्ञा चक्र के तत्त्वरूप शक्तियों का कथन करेंगे। अर्चिः, इच्छा, माया, यज्ञ, सृष्टि, क्रियात्मिका, इन्द्रियाश्रया, सदसद्रूपा तथा लोकमुख्या, गोचर (विषया) रूपा, वेदतत्त्व, प्राणसूत्र, स्वरोद्भवा मातृका, सुषुम्नास्थ कुण्डलि संवित् संयोग, वर्गज, वर्णज, स्पन्दज और शब्दज मन्त्रविग्रहरूपा शक्तियां क्रमशः हैं। ये शिवशक्ति के 25 तत्त्व कहे गये हैं, इन्हें अन्यग्रन्थों से ही ग्रहण करें। वस्तुतः इस भूतल में 7 ही तत्त्व हैं। (655–658)

शक्तिरूपाश्च वर्ण्यन्ते चाज्ञाचक्रस्य शक्तयः।
पराभवा चित्परा च महामायात्मिका तथा।।659।।
इच्छापरा सृष्टिपरा गोचरात्मा परे मताः।
सदसत्क्रिया परे च लोकमुख्येन्द्रियाश्रये।।660।।
वेदतत्त्वपरा संवित्परा वै कुण्डली परा।
प्राणसूत्रपरा स्पन्दपरा वै मातृकापरा।।661।।
सौशुम्णसंयोगपरे स्वरोद्भवपरा तथा।
प्रोथ्ता च वर्णजपरा शब्दमन्त्रजविग्रहे।।662।।
तथाहि वर्गजपरा भेदा वै सम्प्रकीर्तिताः।
शिवशक्तिस्वरूपायाश्चाज्ञाचक्रस्य वै क्रमात्।।663।।

अब आज्ञा चक्र के शिवशक्तिरूपा शक्तियों का क्रम से कथन करते हैं – भवापरा यानि यज्ञपरा, तथा चित्परा, महामाया, इच्छापरा, सृष्टिपरा, गोचरपरा, सत्क्रियापरा, असत्क्रियापरा, लोकमुख्या, इन्द्रियाश्रया, वेदतत्त्वपरा, संवित्परा, कुण्डलिपरा, प्राणसूत्रपरा, स्पन्दपरा, मातृकापरा, सौषुम्नापरा, संयोगपरा, स्वरोद्भवपरा, वर्णजपरा, शब्दजपरा, मन्त्रविग्रहपरा और वर्णजपरा – ये भेद कह दिये गये हैं।(659–663)

17. आज्ञाचक्रस्य पद्मदलतत्त्वानि = आज्ञाचक्र के पद्मदलों में स्थित तत्त्व –

परा च मूलचक्रस्था पश्यन्ती नाभिगा स्मृता।
मध्यमा हृदयस्था च वैखरी कण्ठगा मता।।664।।
उपकर्तुं प्रतिकर्तुं च कर्तुं कारयितुं तथा।
उदासितुं पंच भेदाश्चेच्छाशक्तेः प्रकीर्तिताः।।665।।

शक्ति ही परा के रूप में मूलाधार चक्रस्थ है, पश्यन्ती के रूप धारण कर मणिपूर में, एवं मध्यमा अनाहत में और वैखरी विशुद्धि में माना गया है। इच्छा शक्ति के 5 भेद कहे गये हैं – उपकार करना, प्रतीकार करना, करना, कराना और उदासीन होना।(664–665)

निरालम्बनरूपा च सालम्बनस्वरूपगा ।
ज्ञानशक्तेश्च शास्त्रेषु द्वौ भेदौ हि निरूपितौ।।666।।
इष्टापूर्तं च स्वध्यायो जपपूजातपांसि वै।
दानं भेदाश्च षट् प्रोक्ताः क्रियाशक्तेर्विशेषतः।।667।।

शास्त्रों में ज्ञानशक्ति के दो भेद बताये गये हैं – निरालम्बनपरा और सालम्बनपरा। क्रिया शक्ति के छः भेद कहे गये हैं – इष्टापूर्त, स्वाध्याय, जप, पूजा, तप और दान।(666–667)

वेदान्ते च पंचतन्मात्राः परं योगे त्रयः स्मृताः।
ज्ञातृज्ञेयज्ञातिभेदात्तन्मात्रा वर्णिता बुधैः।।668।।

वेदान्त में 5 तन्मात्रा कहे गये हैं किन्तु योग में केवल तीन। विद्वानों ने वर्णन किया है कि योग के 3 तन्मात्रायें ये हैं – ज्ञाता, ज्ञेय, और ज्ञान।(668)

अवर्गे षोडश वर्णाश्चत्वारश्च यवर्गगाः ।
उदितेषु क्रमात्पंच शवर्गे षट्प्रकीर्तिताः।।669।।

अवर्ग में 16, यवर्ग में 4, कादि 5 वर्ग में कुल 25 और शवर्ग में 6। इस प्रकार कुल 51 मातृकायें कहा गया है।(669)

18. अनाहतचक्रस्य शिवशक्तयः = अनाहतचक्र के शिवशक्तियां –

खगेश्वरः सदानन्दः कूर्मो मेघश्च सामयः।
ज्ञानं मीनश्च चक्रीशप्रियकामौ निकामरः।।670।।
तीव्राः काचित नागाद्या धारेशो डामरस्तथा।
विष्णुश्च कुरवः श्रीशो हरीशः शिरश्च वै।।671।।
शिवस्वरूपं चक्रस्यानाहतस्य प्रकीर्तितः।
शक्तिस्वरूपं चक्रस्य तदग्रे हि प्रवक्ष्यते।।672।।

खगेश्वर, सदानन्द, कूर्म, मेघ, सामि, ज्ञान, मीन, चक्रीश, श्रियकाम, निकाम, नागादि कुछ जीव, धारेश, डामर, विष्णु, कुरु, श्रीश, हृदीश और शिरः – ये अनाहतचक्र गत शिव के रूप हैं। अब आगे अनाहतचक्रस्थ शक्तियों का वर्णन करते हैं।(670–672)

मुद्राधारे मल्लिका च शोकालीला हि काकिनी।
विमला शर्वरी राका मैनाली कुमुदा तथा।।673।।
लाकिनी डामरीबिन्दू राकिनी शाकिनी खलु।
हाकिनी श्रीकला चैव समया कुब्जिका तथा।।674।।
बहुरूपावचरा च मंगला कुलदीधिका।
महत्तरी कौशला च वामानामभिरीरिताः।।675।।

मुद्रा, धारा, मल्लिका, शोका, लीला, काकिनी, विमला, शर्वरी, राका, मैनाली, कुमुदा, लाकिनी, डामरी, बिन्दु, राकिनी, शाकिनी, हाकिनी, श्रीकला, समया, कुब्जिका, बहुरूपा, अवचरा, मंगला, कुलदीधिका, महत्तरी, कौशला और वामा – नामों से शक्तियों का वर्णन किया गया है। (673–675)

शिखेशचर्मी चास्त्रेशाः पराधि(दि)**गुरुसंज्ञकः।**
ततः पूज्यगुरुः प्रोक्तो गुरुः परमनामकः।।676।।

शिखेश, चर्मी, अस्त्रेश, पराधिगुरु, पूज्यगुरु और परमगुरु – पूर्वोक्त से अतिरिक्त ये छः शिवतत्त्व भी अनाहत में हैं।(676)

19. अनाहतचक्रस्य पद्मदलतत्त्वानि =अनाहतचक्र के पद्मदलों में स्थित तत्त्व –

पृथ्वी जलं तथा तेजो वायुराकाश एव हि।
एते पंच महाभूताः शास्त्रेषु च प्रकीर्तिताः।।677।।

गन्धरूपे रसस्पर्शौ शब्दतन्मात्रसंज्ञका:।
प्रोक्ता: पंच हि तन्मात्रा: शास्त्रकारैर्विचक्षणै:।।678।।
वाक्पाणिपादपायुश्च तथोपस्थो विशेषत: ।
पंचकर्मेन्द्रियाण्याहु: शास्त्रकारा: कवीश्वरा:।।679।।
त्वक्श्रोत्ररसनाघ्राणचक्षुरिन्द्रियसंज्ञकम् ।
पंचज्ञानेन्द्रियाण्याहुर्मुनयस्तत्त्वदर्शिन: ।।680।।
पुरुष: प्रकुति: कालस्त्रयश्चैते प्रकीर्तिता:।
त्रयोविंशतितत्त्वानामुल्लेखो मूलग्रन्थके ।।681।।

पृथिवी, जल, तेज, वायु आकाश – ये पंच महाभूत जो शास्त्रों में कथित हैं। गन्ध, रूप स्पर्श, शब्द, रस – तन्मात्रा नाम से जाने जाते हैं। शास्त्रकार विद्वान्लोगों ने इनको पंचतन्मात्रा शब्द से कहे हैं। वाक्, पाणि, पायु, पाद, उपस्थ – त्रिकालदर्शी शास्त्रकारों ने इन्हें पंच कर्मेन्द्रिय कहते हैं। त्वक्, श्रोत्र, घ्राण, रसन, चक्षु – इन्हें तत्त्वदर्शिमुनियों ने ज्ञानेन्द्रिय कहा है। प्रकृति, पुरुष और काल – इतने तत्त्वों को कहा है। इस प्रकार 23 तत्त्वों का उल्लेख कुछ मूलग्रन्थों (वेदादि सहित दर्शनशास्त्रों) में किया गया है।(677–681)

अहंकारेश्वरौ महत् कालस्थाने मनश्चेति।
कृतश्चत्वारि तत्त्वानि चान्वेष्टव्यानि वान्यत:।।682।।

ईश्वर, महत् और अहंकार तत्त्व के अलावा काल के स्थान में मनस्तत्त्व को मानते हुये कुल 25 अथवा 26 तत्त्व को माननेवाले के मत को अन्य प्रमाणों द्वारो सांख्य व योगदर्शन से अन्वेषण कर लेना चाहिये।(682)

20. विशुद्धचक्रस्य शिवशक्तय: = विशुद्धचक्र के शिवशक्तियां –

शिवस्वरूपं चक्रस्य विशुद्धस्य च कथ्यते।
ज्ञानगुह्यं खेचरं च धरभोगोभयं तथा।।683।।
मह: सर्वो द्रवो जुष्टं हृदयं मोहतेजसी।
मनोभवो महाकूलं ज्वलनं गालवस्तथा।।684।।
भीमोज्ज्वल: कुलं मूर्छा व्योमसंहारवायव:।
विश्वेश्वर: कोटिलश्च बाहुल: श्वसनं तथा।।685।।
अजतातो कुलातीतश्चेशश्च परमं शिव:।
शिवस्वरूपं कथितं शास्त्रेषु मननं पर:।।686।।

विशुद्ध चक्र गत शिव के स्वरूप का कथन करते हैं। ज्ञानगुह्य, खेचर,

धरभोगोभय, सर्वमहः, सर्वद्रव, सेवितहृदय, मोह, तेज, मन, भव, महाकूल, ज्वलन, गालव, भीमोज्जवल, कुल, मूर्छा, आकाश, संहार, वायु, विश्वेश्वर, कोटिल, बाहुल, श्वसन, अजतात, कुलातीत, ईश, परमशिव। विशुद्धिचक्रस्थ इन शिव के स्वरूपों को शास्त्रों में मनन के लिये ही विशेष रूप से कहा गया है।(683-686)

शक्तिस्वरूपं चक्रस्य वक्ष्यामि तदनन्तरम्।
योगिनी कालिकी कान्ता शबरी च शिवेश्वरी।।687।।
पद्मरागा कालिका च चाण्डाली लाकिनी तथा।
अघोरा कुब्जिका हेला डाकिनी च कुलाम्बिका।।688।।
पापघ्नी शाकिनी सिंहा हाकिनी काकिनी तथा।
राकिनी लाकिनी कामा कंकाली काममातृका।।689।।
व्योमानन्दा महादेवी गन्धिका च महत्तरी।
पराकुलेशी कुण्डलिनी पीडिका रेचिका दितिः।
शक्तिस्वरूपा कथिता मोचिकानामभिः क्रमात्।।690।।

इसके अनन्तर विशुद्धि चक्र के शक्तियों के स्वरूप को कहूँगा। योगिनी, कालिकी, कान्ता, शबरी, शिवा, ईश्वरी, पद्मरागा, कालिका, चाण्डाली, लाकिनी, अघोरा, कुब्जिका, हेला, डाकिनी, कुलम्बिका, पापघ्नी, शाकिनी, सिंहा, हाकिनी, काकिनी, राकिनी, लाकिनी, कामा, कंकाली, काममातृका, व्योमानन्दा, महादेवी, गन्धिका, महत्तरी, पराकुलेशी, कुण्डलिनी, पीडिका, रेचिका, दितिः और मोचिका। इस प्रकार क्रमशः शक्ति के स्वरुपों का कथन किया गया।(687-690)

21. विशुद्धस्य पद्मदलतत्त्वानि = विशुद्धचक्र के पद्मदलों में स्थित तत्त्व -

पुरुषः प्रकृतिर्बुद्धिरहंकारो मनस्तथा ।
ज्ञानेन्द्रियाणि च श्रोत्रं त्वग्घ्राणं चक्षुरेव च।।691।।
रसनानामभिस्तेषां तन्मात्रा कथ्यते पृथक्।
प्रथमा रूपतन्मात्रा रसना गन्धशब्दगा।।692।।
पंचमी स्पर्शतन्मात्रा शास्त्रेषु च प्रकीर्तिताः।
अथ चाष्टौ महाभूताः पृथिव्याकाशतेजसः।।693।।
जलं वायुश्च कथितास्तथा कर्मेन्द्रियाण्यपि।
शास्त्रेषु वाक्पाणिपादपायूपस्थादिनामभिः।।694।।
शुद्धविद्या कलाविद्या नियतिः काल एव च।
रागमायात्मिका प्रोक्ता शास्त्रेषु च विशेषतः।।695।।

एकत्रिंशद्धितत्त्वानामुल्लेखो दृश्यते परम्।
ग्रन्थान्तरेभ्यः कर्तव्यः पंचतत्त्वविनिर्णयः।।696।।

पुरुष, प्रकृति, बुद्धि, अहंकार, मन तथा श्रोत्र, त्वक्, घ्राण, चक्षु और रसना नाम के पाचँ ज्ञानेन्द्रियाँ, उनके तन्मात्रायें भी अलग से शास्त्रों में कहे गये हैं – प्रथम शब्द, फिर स्पर्श, रूप, रस और गन्ध। उनके पाँच महाभूत – पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश कहे गये हैं। उनसे सम्बन्धित पाँच कर्मेन्द्रियाँ जो शास्त्रों में कहे गय हैं – वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ। शुद्धविद्या, कला, विद्या, नियति, काल, राग और माया – शास्त्रों में विशेष रूप से कहे गये हैं। इन 31 तत्त्वों का उल्लेख देखा गया है, लेकिन शेष 5 तत्त्वों को अन्य (शैव-शाक्त) दर्शन के ग्रन्थों से निर्णय कर लेना चाहिये।(691-696)

22. मणिपूरचक्रस्य शिवशक्तयः = मणिपूरचक्र के शिवशक्तियां –

परावरेशः परमस्तत्परः पर एव च।
स्वच्छाघोरो चिदानन्दो योगानन्दः कुलेश्वरः।।697।।
योगेश्वर उमानन्द आनन्दः पिंगलः स्मृतः।
अतीतश्च रसस्वादश्चालस्यः शंकरस्तथा।।698।।
भूतेश्वरः सामरसः श्रीकण्ठश्च करालकः।
अनन्तः स सत्यगुरुः शान्तः सिद्धगुरुस्तथा।।699।।
पाठेश्वरः शिवगुरुस्तथा हि कुलकेश्वरः।
समयगुरुः सेनगुरुश्चक्रस्य शिवशक्तयः।।700।।
चक्षु मता गुहाकाली सम्वर्ती रत्नडाकिनी।
चण्डेश्वरी मूलकुब्जा कामा ज्वाला हि रेवती।।701।।
ललिता डाकिनी गंगा शब्दा स्पर्शा च पावनी।
प्रचण्डडाकिनी रात्री करणा कुलिका तथा।।702।।
शान्तातीता प्रतिष्ठा च शान्तिर्वै कुब्जडाकिनी।
चक्रडाकिनीनाम्नी च समया चण्डकौशला।।703।।
शक्तिस्वरूपं कथितं निवृत्तिः पद्मडाकिनी।
चक्रस्य मणिपूरस्य शास्त्रेषु च विशेषतः।।704।।

परावरेश, परम, परात्पर, स्वच्छ, अघोर, चिदानन्द, योगानन्द, कुलेश्वर, योगेश्वर, उमानन्द, आनन्द, पिंगल, अतीत, रसास्वाद, आलस्य, शंकर, भूतेश्वर, सामरस, श्रीकण्ठ, करालक, अनन्त, सत्यगुरु, शान्त, सिद्धगुरु, पाठेश्वर, शिवगुरु,

कुलकेश्वर, समयगुरु और सेनगुरु – ये मणिपूर चक्रस्थ शिव के स्वरुप हैं। शक्तियाँ ये हैं – चक्षु मती, गुहाकाली, सम्वर्ती, रत्नडाकिनी, चण्डेश्वरी, मूलकुब्जा, कामा, ज्वाला, रेवती, ललिता, डाकिनी, गंगा, शब्दा, स्पर्शा, पावनी, प्रचण्डडाकिनी, रात्री, करुणा, कुलिका, शान्तातीता, प्रतिष्ठा, शान्ति, कुब्जडाकिनी, चक्रडाकिनी, समया, चण्डकौशला, निवृत्ति और पद्मडाकिनी। शास्त्रों में विशेषरूप से मणिपूरचक्र में उक्त शिवशक्तियों को बतायें गये हैं।(697–704)

23. मणिपूरस्य पद्मदलतत्त्वानि = मणिपूरचक्र के पद्मदलों में स्थित तत्त्व –

पूर्वपंच महाभूताः क्रमात्तन्मात्रसंज्ञकाः।
ज्ञानकर्मेन्द्रिये चैव तन्मात्राश्च तयोः स्मृता।।705।।

कार्यात्मक पंचमहाभूतों के कारणरूप पंचतन्मात्राओं के सहित पंचज्ञानेन्द्रिय और पंचकर्मेन्द्रिय तथा उनके अपने कारणों के सहित तत्त्व मणिपूरचक्रस्थ पंखुड़ियों से उपलक्षित तत्त्व हैं।(705)

24. स्वाधिष्ठानचक्रस्य शिवशक्तयः = स्वाधिष्ठानचक्र के शिवशक्तियां –

सद्योजातो वामदेवस्तीव्रोऽघोरो ह्यनन्तकः।
गंगेश्वरस्तत्पुरुष अनाथश्च जनाश्रितः।।706।।
वाणिवाहश्चाम्बुवाहस्तेजोधीशश्चतुर्विधः।
श्रीकण्ठः श्रीधरःसिद्धःस चिन्त्यः शशिशेखरः।।707।।
वाणीश्वरश्चेश्वरश्च कृष्णेश्वर इतीरितः।
सर्वेश्वरश्च दिव्यौघः पाठौघः सम्प्रकीर्तितः।।708।।
श्रीर्माया चाम्बिका दक्षा विवृत्तिक्च सरस्वती।
विद्या प्रतिष्ठा शान्ता हि उन्मथा रक्तमेखला।।709।।
छिन्ना यशोवतीविद्या उमा गंगा च पार्वती।
ज्येष्ठा रौद्री च कमला श्रीदा हंसा परा सती।।
शक्तयश्चास्य चक्रस्य स्वाधिष्ठानस्य कीर्तिताः।।710।।

सद्योजात, वामदेव, तीव्र, घोर, अनन्तक, गंगेश्वर, तत्पुरुष, अनाथ, जनाश्रित, वाणिवाह, अम्बुवाह, चार प्रकार के तेजोऽधीश, श्रीकण्ठ, शंकर, सिद्ध, चित्य, शशिशेखर, वाणीश्वर, ईश्वर, कृष्णेश्वर, सर्वेश्वर, दिव्यौघ और पाठौघ – ये शिव के स्वरूप हैं। श्री, माया, अम्बिका, दक्षा, विवृत्ति, सरस्वती, विद्या, प्रतिष्ठा, शान्ता, उन्मना, रक्तमेखला, छिन्ना, यषोवतीविद्या, उमा, गंगा, पार्वती, ज्येष्ठा, रौद्री, कमला, श्रीदा, हंसा, परा और सती – ये इस स्वाधिष्ठान चक्रस्थ शक्तियों के नाम हैं।(706–710)

25. स्वाधिष्ठानस्य पद्मदलतत्त्वानि = स्वाधिष्ठानचक्र के पद्मदलों में स्थित तत्त्व-

पूर्वं पंचमहाभूतास्ततस्तन्मात्रसंज्ञकाः ।
ज्ञानकर्मेन्द्रिये चैव तन्मात्राश्च तयोः स्मृता ।।711।।

पहले या पूर्व में पंचमहाभूत, फिर पंच तन्मात्रायें, ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय सहित उनके तन्मात्रायें।(711)

26. मूलाधारचक्रस्य शिवशक्तयः = मूलाधारचक्र के शिवशक्तियां -

कामेश्वरश्च श्रीकण्ठ उड्डीश्वर जलेश्वरः।
पूर्वेश्वरो महानन्दोऽनन्तः शंकरपरादौ ।।712।।
अघोरेशः कुरंगीशश्चक्रेशातीतपिंगलाः ।
महाधीशो योगनादौ समयो विमय एव च ।।713।।
सर्वज्ञोऽनादिपुत्रेहा मित्रेशोड्डीशलुब्धकाः।
आवेशो विद्धविमलो योगे विमदकीर्तितः।
शिवस्वरूपं चक्रस्य मूलाधारस्य वर्णितः ।।714।।

कामेश्वर, श्रीकण्ठ, उड्डीश्वर, जलेश्वर, पूर्वेश्वर, महानन्द, अनन्त, शंकर, पारदेश, अघोरेश, कुरंगीश, चक्रेश, अजीत, पिंगला, महाधीश, योग, नाद, समय, विमय, सर्वज्ञ, अनादि, पुत्र, ईहा, मित्रेश, उड्डीश, लुब्धक, आवेश, विशुद्धविमल, योग में विमल, कीर्तिकला-ये मूलाधार चक्रस्थ शिव के स्वरूप वर्णित हुये।(712-714)

27. मूलाधारचक्रस्य पद्मदलतत्त्वानि =मूलाधारचक्र के पद्मदल में स्थित तत्त्व-

पिंगलेडे सुषुम्ना च गान्धारी च यशस्विनी।
अलम्बुषा हरिज्जिह्वा कथिता शंखिनी कुहूः ।।715।।

इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, गान्धारी, यशस्विनी, अलम्बुसा, हरिज्जिह्वा, शंखिनी, कुहू और कथिता।(715)

28. शरीरस्था दश वायवः = शरीरस्थ दस वायु -

प्राणापानौ समानश्च व्यानोदानौ प्रकीर्तिताः।
नागः कूर्मो च कृकलो देवदत्तो धनंजयः ।।716।।
हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिमण्डले।
उदानः कण्ठदेशे स्याद्व्यानः सर्वशरीरगः ।।717।।
उद्गीरणोन्मीलनश्च क्षुधा जृम्भा हि पोषणम्।
एतानि दश वायूनां स्थानानि क्रमात् ।।718।।

प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान - ये पाँच कहे गये हैं तथा नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय। हृदय में प्राण, गुदा में अपान, नाभिमण्डल में समान, कण्ठदेश में उदान और पूरे शरीर में व्यान रहता है। उल्टि क्रिया , उन्मेष क्रिया (पलको का गिरना), भूख - प्यास, जम्भई और पोषण - ये पांच उपवायु के कार्य प्रदेश हैं। इस प्रकार शरीर में वायु के 10 स्थान कहे गये हैं।(716-718)

29. मूलाधारचक्रस्य पद्मदलतत्त्वानि =मूलाधारचक्र के पद्मदलों में स्थित तत्त्व-

पूर्वं पंचमहाभूताः क्रमात्तन्मात्रसंज्ञकाः।
ज्ञानान्तःकरणे कालः प्रकृतिः पुरुषो महत्॥719॥

पूर्व में 5 महाभूत, तत क्रम से उनके 5 तन्मात्रा, ज्ञान व कर्म सम्बन्धी इन्द्रियां, अन्तःकरण, महत्, काल, प्रकृति और पुरुष।(719)

30. शरीरस्थानि दशाग्निस्थानानि = शरीरस्थ दस आग्नि के स्थान -

बाभ्राजको रंजकश्च क्लेदको धावकस्तथा।
निःस्नेहको बन्धकश्च प्रावको व्यापकस्तथा॥720॥
पावकः श्ले मकश्चैते कथिता हि दशाग्नयः।
त्वगसृग्मांसमेदास्थिमज्जाशुक्रकफादयः॥721॥
पित्तवायुक्रमात्तेषां स्थानानि कथितानि च।
तेजःपुंजनिभं सर्वमिष्टसिद्धिप्रदायकम्॥722।

बाभ्राज, रंजक, क्लेदक, धावक, निःस्नेहक, बन्धक, प्रावक, व्यापक, पावक और श्लैष्मक - ये दस अग्नियाँ हैं। त्वचा, खून, मांस, मेदा, हड्डी, मज्जा, शुक्र, कफ, पित्त और वात - ये क्रम से उनके स्थान हैं। तेज के पुंज के समान ये सब इष्टसिद्धि रूपी फलदायक हैं।(720-722)

।।श्रीमदाद्यशंकराचार्यविरचितः श्रीयतिदण्डैश्वर्यविधानान्तर्गतः सिद्धिपादः।।

श्रीमदाद्यशंकराचार्य विरचित यतिदण्डैश्वर्यविधान में सिद्धिपाद समाप्त हुआ।

परिशिष्ट 1

अस्मिन्मूलग्रन्थे साधनापादे 32संख्याकप्रघट्टकानन्तरं पठनीया इमे श्लोकाः-

31. बिन्दुस्थिरीकरणार्थमौषधविवरणम् :-

इस ग्रन्थ के मूल में साधनापाद के अन्तर्गत 32 वां प्रघट्टक के अनन्तर इन श्लोकों को पढें -बिन्दु का स्थिरीकरण केलिये औषधियों का विवरण -

प्रकल्प्य स्वतनुं तत्र ततो देवस्य कल्पयेत्।
येषां मनसि यद्ध्यानं तद्ध्यानं कायकल्पनम्।।प01।।

अपने शरीर को बिन्दु (वीर्य अथवा रज में कल्पना करने के अनन्तर देव (भगवान कामदेव) के शरीर का भी कल्पना करें। जिनके मन में जिसका जो ध्यान हो उसका उस ध्यान का ही नाम है 'कायकल्प'।(1)

एतत्कायकल्पनेन मौनी वाक्सिद्धिमाप्नुयात्।
इदानीं कामदेवस्य मथनं श्रृणु भैरव ।।प 02।।

इस कायकल्प के द्वारा मौनी साधक वाक्सिद्धि को प्राप्त करता है। (अर्थात् - जैसे साधक की जैसी साधना वैसी सिद्धि उसे प्राप्त होगी) हे भैरव! अब कामदेव का मथन को सुनो।(2)

कामदेवस्य मथनं सुखदं मोक्षदं परम्।
यावद् बिन्दुः स्थिरो देहे तावन्मृत्युभयं कुतः।।प 03।।

कामदेव का मथन सुखदेनेवाला और मोक्ष देनेवाला भी है। जब तक शरीर में बिन्दु स्थिर तब तक मृत्यु का भय कैसे?।(3)

बिन्दुपाताद्भवेन्नाशस्ततो हि बिन्दुरक्षणम् ।
तत्तदौषधमाचक्ष्ये येन बिन्दुः स्थिरो भवेत्।।प 04।।

बिन्दु का पतन से ही नाश होता है। इसलिये बिन्दु की रक्षा अवश्य करना चाहिये। जिन-जिन औषधियों में बिन्दु स्थिर होता है वह अब मैं बताऊँगी।(4)

नित्यं सेवनमाकुर्यादेतेषां मूलमाहरन् ।
श्वेतापराजितामूलं सिद्धिमूलं ततः परम्।।प 05।।

इनका मूल (जड़ो) को लाकर नित्य ही सेवन करना चाहिये। श्वेतापराजिता का मूल, सिद्धि का मूल।(5)

शतपर्णीमूलमेकं कदम्बमूलमेव च।
श्वेतकुन्दपुष्पमूलं करवीरं तथा सितम्।।प 06।।

शतपर्णी का मूल तथा कदम्ब का मूल, श्वेतकुन्दपुष्पा पौधे का मूल,

सफेद करवीर का मूल।(6)

कृष्णधत्तूरमूलन्तु शेफालीमूलमेव च।
चितामूलं तथा शम्भोर्निर्गुण्डीमूलमाहरन्।।प 07।।

काले धतूरे का मूल, शेफाली का मूल, चिता का मूल तथा शम्भु के निर्गुण्डी का मूल भी ग्रहण करें।(7)

एकीकृत्यविधानेन रविवारेऽर्कमूलकैः।
समभागेन योगेन्द्र चूर्णीकृत्य पृथक् पृथक्।।प 08।।

इन सबको विधि के अनुसार इक्कट्ठा करके रविवार के दिन आक के मूल का समभाग से सब को अलग-अलग चूर्ण करके।(8)

शुक्रवारे च पूर्वाह्ले मिश्रीकुर्याद्दिनत्रयम्।
षड्भिराशोधयेत्काममुद्राभिर्वामदेवता ।।प 09।।

(अर्थात् आक के जड़ जितना है उतना ही वजन पूर्वोक्त अन्य सब का भी वजन हो) शुक्रवार के दिन से आरम्भ कर तीन दिन पूर्वाह्न में मिलायें। छह प्रकार के उसका शोधन करें और काममुद्रा से काम देवता को उसमें आवाहन करें।(9)

मध्यमांगुलिमुत्तोल्य दक्षिणेनापि मुष्टिना।
धृत्वा च शोधयेदादौ रुद्रमूलानि साधकः।।प 10।।

मध्यमांगुली को ऊपर उठाकर दाहिने मुट्ठी से धारण कर रुद्रमूलों का प्रथम शोधन करें यानि निर्गुण्डी के मूलों का शोधन करें।(10)

विजयाचूर्णयोगेन पिबेच्चूर्णं द्वितोलकम्।
अर्धतोलकमुष्ट्येकं विजयाः सार्धतोलकाः।।प 11।।

विजया का चूर्ण के योग से दो तोला (तैयार किया गया चूर्ण को) पीयें। आधातोला एक मुट्ठि चूर्ण और डेढ़ तोला विजया चूर्ण।(11)

मिश्रीकृत्य विधानेन तत्तत्कुजदिने शुभे।
एतत्प्रभक्षणेनैव मदनं वशमागच्छेत् ।।प 12।।

विधि के अनुसार मिलाकर उसको शुभ मंगलवार के दिन भक्षण करें। इस भक्षण से कामदेव अवश्य वश में आयेंगे।(12)

यदा मनसि आयाति पुष्पधन्वा महाबली।
तदा तं भक्षयित्वा च कामदेवं निवारयेत्।।प 13।।

जब मन में महाबलवान् पुष्पधन्वा (कामदेव) उपस्थित हो तब उस कामदेव का भक्षण करके (त्याग और वैराग्य द्वारा) निवारण करें।(13)

इति कामस्य मथनं स्थितिर्देहे यथा श्रृणु।
अंगुष्ठगुल्फजानूरुसिमनीलिंगनाभिषु।।प 14।।
हृद्ग्रीवकण्ठदेशेषु लम्बिकायां तथा नसि। भ्रूमध्ये
मस्तके मूर्ध्नि वाय्वाकाशप्रियालये।।प 15।।

इस प्रकार कामका मथन के बारे में बता दिया गया। इस देह में कामदेव की स्थिति जिन स्थानों में वास करते हैं वह सुनो- अङ्गुष्ठ, गुल्फ, जानु, ऊरु, सीवनी, लिंग और नाभि में। तथा हृदय, कण्ठ, ग्रीवा लम्बिका, नाक, भ्रूमध्य, भाल, मूर्धा, प्रिय वायु और प्रिय आकाश (भोगानुकूल वायु और स्थानविशेष पर्यावरण) इतने स्थानों में रहता है।(14-15)

वायुरूपं स्वदेहन्तु स्थापयित्वा मनुं जपेत्।
कुम्भकप्राणयोगेन निजदेहे व्यवस्थितिः।।प 16।।

अपने देह को वायुरूप (प्राण) में स्थापित करके मन्त्र को जपें। कुम्भकप्राणायाम से अपने शरीर में ही व्यवस्थित कर लें।(16)

कण्ठाम्भोजे स्थिरो यो हि तं जनं श्रृणु भैरव।
योगारम्भावधिर्यो हि स्त्रीसंसर्गं विवर्जयेत्।।प 17।।

विशुद्ध चक्र में जो स्थिर हो उस साधक केलिये सुनो- योग के आरम्भ से साधना काल पर्यन्त स्त्रीसंसर्ग को त्याग दें।(17)

मातङ्गणां गमनं नासित यस्य स कण्ठसंस्थितः।
नित्यं करोति योगं यो धर्मात्मा स्थिरचेतसा।।प 18।।
स एव कण्ठपद्मे च स्थिरो भवति निश्चितम्।
भावज्ञानी च यो विद्वान्तं विदामि दयार्णव।।प 19।।

स्त्री के साथ क्या माता के साथ भी गमन (विहार आदि) न करें जिसका कण्ठ में स्थिति होगी। यदि वह धर्मात्मा स्थिरचित्त से नित्य योग को करता हो तो वही साधक कण्ठ कमल (विशुद्ध चक्र) में निश्चित रूप से स्थिर होता है, जो विद्वान् इस भाव का जानकार हो। हे दयार्णव! मैं उसे ही योगी जानती हूँ व मानती हूँ।(18-19)

कुण्डलीस्पर्शमात्रेण तन्मयो जायते क्षणात्।
सर्वदेहे परं भावं कृत्वा ज्ञानेन पूजयेत्।।प 20।।

कुण्डलि का स्पर्शमात्र से क्षणभर में तन्मय हो जायेगा। देव में संपूर्ण परमभाव को प्राप्त कर ज्ञान से ही पूजा करें।(20)

सर्वपीठे स्थिरो भूत्वा ज्ञानात्मा परिपूजयेत्।
क्रमणकण्ठभेदः स्याद्योगी भवति सत्वरम्।।प 21।।

सर्वपीठ में स्थिर होकर ज्ञानात्मा (ज्ञान स्वरूप) साधक ज्ञान से ही पूजा करें। क्रम से कण्ठ का भेदन होगा और वह तत्काल ही योगी होता है।(21)

धनं धान्यं धरां धर्म कीर्तिमायुर्यशः श्रियम्।
तुरगान्दन्तिनः पुत्राल्लँलोकान्सर्वसुखोदयान्।।प 22।।
एतज्ज्ञानप्रसादेन लभते परमेश्वरम्।
साधकैः स्थिरता तस्माद् बिन्दोरवश्यमेव हि।।प 23।।

धन, धान्य, भूमि, धर्म, कीर्ति, आयु, यश, सकल ऐश्वर्य, घोड़े, हाथी, पुत्र-पौत्र, स्वर्गादि लोक इत्यादि, अधिक क्या कहें - सर्व सुख का उदय होगा और इस ज्ञान प्रसाद से अन्ततः परमेश्वर को प्राप्त करेगा।(22-23)

अन्तिममंगलाचरणम् = अन्तिम मंगलाचरण -

ज्ञात्वा योगेन्द्रचक्रं त्रिभवन विवरध्वानतजालप्रकाशं,
मूलाम्भोजे रसाख्ये दशदलविमले हृत्स्वपद्मे विलासम्।
कण्ठाम्भोजे मनोज्ञे द्विदलस्वकमले भावयनतं सुरेन्द्रैः,
श्वेताम्भोजे परेशं निरवधि गगनं पूजया भावयामि।।

मूलाधारचक्र (मूलाम्भोज), स्वाधिष्ठानचक्र (रस), मणिपूरचक्र (दशदलविमल), अनाहतचक्र (हृत्स्वपद्म), विशुद्धिचक्र (कण्ठाम्भोज), ललनाचक्र (मनोज्ञ), आज्ञाचक्र (द्विदलस्वकमल) - इन सभी चक्रों में (सुरेन्द्र) देवताओं के द्वारा भावित जो मेरे सहस्रारचक्र (श्वेताम्भोज) में व्यापक आकाश के समान तीनों लोकों में व्याप्त मायाजाल का भंजक प्रकाशरूप योगेन्द्र चक्रेश परेश को जानकर पूजा के द्वारा मैं भावना करता हूँ।

।।श्रीमदाद्यशंकराचार्यविरचितः श्रीयतिदण्डैश्वर्यविधानान्तर्गतः परिशिष्टः।।

श्रीमदाद्यशंकराचार्य विरचित यतिदण्डैश्वर्यविधान में परिशिष्ट समाप्त हुआ।

इसके साथ ही ग्रन्थ भी समाप्त हुआ।